मानस-हृदय

(प्रथम-भाग)

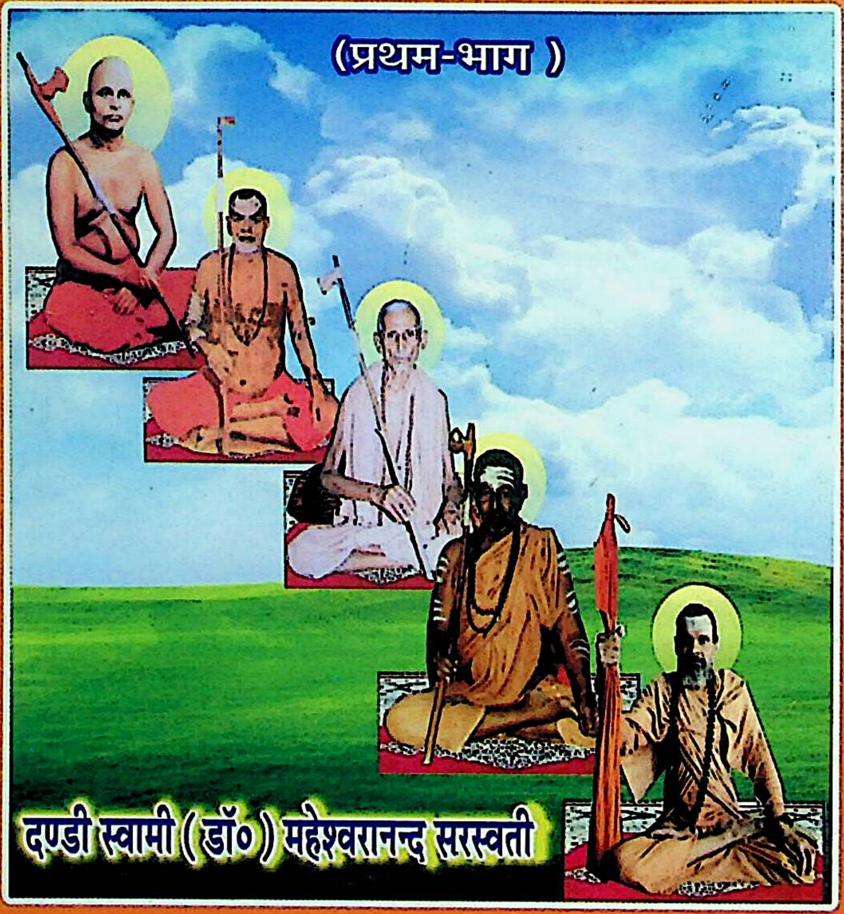

दण्डी स्वामी (डॉ०) महेश्वरानन्द सरस्वती

9.3

मानस-हृदय

लेखक :

दण्डी स्वामी (डॉ०) महेश्वरानन्द सरस्वती

वी 3/175 राजगुरु मठ शिवाला घाट, वाराणसी

प्रकाशक :
दण्डी स्वामी (डॉ०) महेश्वरानन्द सरस्वती
प्रभारी राजगुरू मठ
बी 3/175, राजगुरु मठ, शिवाला घाट, वाराणसी
मोबा. 0-9931436416 (बिहार), 0-9559447254 (यू.पी.)
7607812280 (यू.पी.)

पुस्तक प्राप्तिस्थान-
दण्डी स्वामी (डॉ०) महेश्वरानन्द सरस्वती
प्रभारी राजगुरू मठ
बी 3/175,राजगुरु मठ,शिवाला घाट,वाराणसी
मोबा. 0-9931436416 (बिहार), 0-9559447254(यू.पी.)
7607812280(यू.पी.)

संस्करण : प्रथम, वसंत पञ्चमी, सं० २०६७
मूल्य : रु० ५००.००
(रुपये पाँच सौ मात्र)

दण्डी स्वामी देवानन्द सरस्वती

अध्यक्ष एवं महान्त,
बी०-३/१७५, राजगुरु मठ
शिवाला घाट, वाराणसी (उ०प्र०)

शुभाशंसा

जब-जब होहिं धरम की हानि, वाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
तब-तब धरि प्रभु-मनुज शरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

सर्वेश्वर भगवान् नारायण के अवतार का उद्देश्य का सार गोस्वामी जी द्वारा उपर्युक्त वाक्यों में वर्णित है । सर्वेश्वर भगवान् श्रीनारायण उपर्युक्त कार्यों की पूर्ति हेतु ही श्रीराम रूप में अवतरित हुए हैं, यह तथ्य श्रुति-स्मृति-पुराणादि द्वारा सम्पुष्ट है । धर्म की स्थापना हेतु सर्वेश्वर भगवान् के अवतार के पूर्व सभी देवगण विभिन्न स्वरूपों में इस धरा पर आ गये थे, भला ऐसा क्यों न हो? सच्चा सेवक स्वामी की सुविधा की दृष्टि से अपने कर्त्तव्य का निर्वहण करता ही है । वस्तुतः मानस के भावों को अभिव्यक्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है । मानस वह सागर है, जिसमें जितना गहन गोता लगाया जाय, उतना ही उसका भाव गाम्भीर्य बढ़ता जाता है ।

परम पूज्य स्वामी सहजानन्द सरस्वती जी एक महान् विद्याविभूषित संन्यासी थे । वे साक्षात् ज्ञान, त्याग तथा आचरण की प्रतिमूर्ति थे । उन्होंने गीता हृदय की रचना कर समाज के समक्ष नूतन पथप्रदर्शित किया था । हम सब उन्हीं की शिष्य परम्परा में हैं । आज हमारे प्रधान शिष्य दण्डी स्वामी (डॉ०) महेश्वरानन्द सरस्वती ने मानस-हृदय की रचना कर मानस में वर्णित सभी प्राणियों के अस्तित्व विषयक भाव का बोध कराकर महान् कार्य करते हुए, हमारी परम्परा को जीवन्तता प्रदान की है ।

हमारी परम्परा में अनेक विद्वान् दण्डी संन्यासी हुए हैं, किन्तु आज प्रकृत ग्रन्थ के प्रकाशन से मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि हमारे नीचे हमारे उत्तराधिकारी एवं राजगुरु मठ, शिवाला वाराणसी के प्रभारी दण्डी स्वामी डॉ० महेश्वररानन्द सरस्वती जो हमारे प्रधान शिष्य हैं तथा अहर्निश हमारी एवं हमारी परंम्परा की श्रीवृद्धि में सचेष्ट रहते हैं; वे मेरे बाद भी सचेष्ट व संलग्न रहते हुए हमारी परम्परा की श्रीवृद्धि का उत्तरदायित्व का निर्वहण करेंगे ।

।। नारायणार्पणमस्तु ।।

दण्डी स्वामी देवानन्द सरस्वती

(दण्डी स्वामी देवानन्द सरस्वती)

शुभाशंसा

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

नाना पुराण-निगमागमादि सम्मत 'रामचरितमानस' के अनुसार यह सृष्टि सर्वेश्वर की समुज्ज्वल अभिव्यक्ति और उनका अभिव्यञ्जक संस्थान है, तथापि स्वतन्त्र रूप से वरण करने योग्य नहीं है। सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वेश्वर इसके अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। वे अपनी अचिन्त्यलीलाशक्ति माया और उसके विविध कार्यों के योग से भी सद्वितीय सिद्ध नहीं होते। मानस के रचयिता गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने माया और मायिक जगत् को, जीवेश्वर भेद को, मिथ्या स्वीकार किया है; न कि वास्तव। अत एव उन्होंने श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहास सम्मत सनातन वर्णधर्म, आश्रमधर्म को परम्परा प्राप्त विद्या के अनुसार ही स्वीकार किया है। जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादानकारण सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वेश्वर को स्वीकार करने के कारण उन्होंने भगवान् के साक्षात् अवतार को सम्भव मानकर उसी का प्रतिपादन किया है। निरावरण ब्रह्मस्वरूप श्रीराम-कृष्णादि की समर्चा, आत्मीय और आत्मभाव से उनकी उपासना तथा भागत्याग लक्षण की विधा से जीवेश्वर के तात्त्विक एवम् विज्ञान का प्रतिपादन कर ग्रन्थकार ने श्रौतसिद्धान्त का सर्वथा समादर किया है।

श्रीमानसकार ने श्रुतिसम्मत श्रीहरि की भक्ति को ज्ञान और वैराग्य से युक्त ख्यापित कर नाना पन्थों का निराकरण किया है। निष्काम भाव से भगवदर्थ समनुष्ठित धर्म का फल विरति, विरति का फल समाधि-संज्ञा योग और योग का फल, ज्ञान एवम् ज्ञान का फल मोक्ष स्वीकार कर गोस्वामी जी ने साधन क्रम का सारगर्भित स्वरूप ख्यापित किया है। श्रुति सेतु पालक भगवान् श्रीराम एवम् उनकी शक्ति जगज्जननी सीताजी के परिकर मनुष्य तथा मनुष्येतर स्थावर-जङ्गम विविध प्राणियों की लीला सम्पादन में सहभागिता असम्भावित परिलक्षित होने पर भी श्रीविष्णु के अवतार मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंहादि के सदृश सम्भावित है। अतः प्रातीतिक धरातल पर वे वानरादि होते हुए भी उनकी देव-गन्धर्वादिरूपता सिद्ध है। अतः उनके मानवोचित या देवोचित पराक्रमादि को काल्पनिक मानना असङ्गत है।

आर्ष प्रणीत और आर्ष-शैली में विरचित ग्रन्थों के रस-रहस्य को हृदयङ्गम करने की सनातन विद्या की अनुगमन ही इस सन्दर्भ में विहित है। 'दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्द सरस्वती' द्वारा प्रकृत 'मानस-हृदय' नामक ग्रन्थ विपुल अध्ययन और अनुशीलन का परिचायक है। ग्रन्थकार ने मनोयोगपूर्वक अपनी क्षमता के अनुरूप दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक धरातल पर प्रकृत ग्रन्थ को महत्त्वपूर्ण बनाने का भरसक प्रयास किया है।

—निश्चलानन्द सरस्वती
श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-गोवर्द्धनमठ
पुरीपीठाधीश्वर, पुरी, ओडिशा (भारत)।
ज्येष्ठ-शुक्ल-६ सोमवार, वि०सं० २०६९

२८ मई, २०१२
श्रीदक्षिणामूर्त्ति-पूर्वाम्नायमठ
वाराणसी ।

पुरोवाक्

समग्र विश्व का मूल कारण है—'एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायेय' यह परब्रह्म की अचिन्त्यप्रभावा इच्छा तथा अस्मादृश जीवों के संसार-सरण का कारण है; जीवों का मायामय दुरन्त व्यामोह। प्राणी मृगमरीचिका रूप पद अधिकार ऐश्वर्यादि के पीछे दुरित तथा तन्मूलिका अशान्ति का ही सञ्चय करता रहता है। इतस्ततः भटकता पक्षी की एकमात्र भूमि पर ही विश्राम होता है तथैव नाना योनियों में भटकता जीव करुणागार भगवान् में ही विश्रान्त होता है। किन्तु निम्बकीटवत् यह दुरभ्यस्त जीव सितशर्करोपमान ब्रह्मानन्द का पथ उद्वेलक ही मानता है। अतः वायु के द्वारा नौका की भावी विषय के द्वारा उसकी प्रज्ञा विचलित ही होती रहती है।

त्रिविध तापों से पीड़ित जगत् के समस्त प्राणियों को शरण देने वाले भगवान् श्रीराम हैं। शरण का अर्थ है—उपाय। सबों के जीवन की सारी समस्याओं का समुचित समाधान श्रीराम से मिलता है। उनके विना दूसरा कोई उपाय नहीं है। कलिदावानल ने सभी उत्तम साधनों को आत्मसात् कर लिया है। कलि अधर्म का मित्र है। अतएव इस समय मानव विशेष अधर्मपरायण हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप लोग दूषित विचार एवं गलत कर्म करने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। मानवगत कलिदोष को दूर करने वाले श्रीराम हैं। कालरूप सर्प श्रीराम से डरता है; क्योंकि राम काल के भी काल हैं। समस्त जगत् श्रीराम के वश में है। वे ही सबके कारण, आधार एवं स्वामी हैं। अतः हम सबों का श्रीराम के चरणकमलों में अविरल प्रेम हो—ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—'रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे'। अब राम और रामायण का रहस्य समझें।

अपने सद्गुणों से सबों को आनन्द देने वाले को राम कहते हैं।[1] अन्तर्दृष्टि वाले योगिगण भी जिनके दिव्य गुणों में एवं दिव्य स्वरूप में रमण करते हैं, उनको राम कहते हैं।[2] जिस सत्-चित्-आनन्दस्वरूप राम में योगिगण रमण करते हैं,[3] वह राम परम ब्रह्म है। वेदों में प्रतिपाद्य परमपुरुष भगवान् विष्णु जब राजा दशरथ के पुत्ररूप में आकर राम नाम से प्रसिद्ध होते हैं, तब वेद उनके दिव्य स्वरूप एवं दिव्य-

---

[1] रमयति सर्वान् गुणैरिति रामः।

[2] रमन्तेऽस्मिन् सर्वे जनाः गुणैरिति रामः।

[3] रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

चरित्रों का गान करने के लिए वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायणरूप में परिणत हो जाता है।[१]

वेदार्थों के विस्तार के लिए रामायण का प्रणयन हुआ। इसलिए यह वेदों का उपबृंहणरूप माना गया है। उत्तरकाण्ड में 'रामायणं वेदसमम्' ऐसा कहा गया है अर्थात् रामायण वेद के समान है।

अतः रामायण का अर्थ है—'रामः अयते प्राप्यते अनेन इति रामायणम्' अर्थात् जिससे राम प्राप्त हों, उसे रामायण कहते हैं। रामायण भगवान् का घर है। जिस प्रकार किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व, उसके परिवार एवं उसके कार्यों को समझने के लिए उसके घर से पता लगाया जाता है, उसी प्रकार श्रीराम के समस्त चरित्र को जानने के लिए रामायण का अध्ययन करना चाहिये।

'रामस्य अयनम् रामायणम्' अर्थात् श्रीराम का अयन (घर) है—रामायण। अथवा राम ही जिसके अयन हैं—'रामः अयनं यस्य इति रामायणम्'। रामायण ग्रन्थ के आधार श्रीराम हैं; परन्तु महर्षि वाल्मीकि ने श्रीरामायण की मुख्य पात्रा सीता को स्वीकार किया है। यह रामायण सीता-चरितप्रधान है[२]।

वेदार्थों का विस्तारपूर्वक ज्ञान कराने के लिए सीता-चरितयुक्त सम्पूर्ण रामायण महाकाव्य का महर्षि वाल्मीकि ने कुश-लव को अध्ययन कराया।

श्री गोविन्दराज ने कहा कि रामायण में श्रीराम का चरित्र अप्रधान है और सीता का चरित्र ही प्रधान है[३]।

इसलिए 'रामायाः अयनं रामायणम्' ऐसा अर्थ करना चाहिए। यहाँ 'रामा' शब्द सीता का वाचक है। अथवा 'रमायाः इदं चरितं रामम् तस्यायनम् रामायणम्'। रमा (सीता) चरित को राम कहते हैं और उसका अयन (आधार) घर रामायण है। अथवा जो मुख्य रूप से सीतातत्त्व का प्रतिपादन करता है, वह रामायण है। श्रीराम की शरणागति में सीता जी पुरुषकार बनती हैं। विना सीता के पुरुषकार बने भगवान् श्रीराम जीवों की शरणागति को स्वीकार नहीं करते हैं। जब जयन्त उनकी शरण में गिरा तब भगवान् उसकी ओर नहीं देख सके। जब सीता जी जयन्त के

---

[१] वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

[२] काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्। (वा०रा०,बा०का०,स०४.७)

[३] इदं च रामचरितप्रतिपादनमप्राधान्येन, प्राधान्येन तु सीताचरितमेव प्रतिपाद्यते।
(श्रीगोविन्दराज)

सिर को पकड़कर श्रीराम के चरणों में लगा दीं, तब भगवान् ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया।

सीता के संयोग-वियोग दोनों श्रीराम की शरणागति में कारण हैं। विभीषण जी की शरणागति में सीता का वियोग कारण है। सीता के कारण विभीषण-शरणागत हुए और उसकी शरणागति को प्रभु ने स्वीकार किया है। अतएव लोकाचार्य स्वामी ने श्रीवचन-भूषण ग्रन्थ में कहा है कि इतिहास श्रेष्ठ वाल्मीकि रामायण द्वारा लङ्कारूप कारागार में वास करने वाली सीता को वैभव कहा गया है[१]। इससे भी स्पष्ट है कि रामायण में सीता का चरित्र ही प्रधान है।

सम्पूर्ण रामायण के आलोडन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जगत् में विशेष रूप से श्रीराम के पराक्रम एवं वैभव प्रकट हुआ है, तो सीता के कारण ही।

जनकपुर में धनुषयज्ञ सीता के निमित्त आयोजित हुआ था। उस समय असाध्य धनुषभङ्ग का काम श्रीराम के द्वारा हुआ। उससे श्रीराम की ख्याति पूरे विश्व में फैल गयी। वन में चौदह हजार राक्षसों का वध, सुग्रीव से मित्रता एवं रावणवंश का संहार सीता के निमित्त ही हुआ। रामकथा का जगत् में प्रचार-प्रसार सीता जी से उत्पन्न कुश-लव के द्वारा हुआ। गर्भावस्था में सीता निष्कासित कर दी गयी। श्रीवाल्मीकि के आश्रम में रहकर परम मेधावी, शास्त्रमर्मज्ञ वाल्मीकि द्वारा ज्ञान-प्राप्त कुश-लव ने जगत् में श्रीराम की कृति फैलायी। इसी भाव से वाल्मीकि ने 'काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाः चरितं महत्' ऐसा कहा है।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में यह प्रसङ्ग आया है कि राक्षसियों ने अम्बा सीता को बहुत प्रकार से पीड़ित किया था। जब रावणवध के बाद श्रीहनुमान जी राक्षसियों का वध करने के लिए तैयार हुए, उस समय श्रीसीता जी ने कहा था कि इन राक्षसियों का कोई दोष नहीं है ये सब तो रावण की आज्ञा का पालन करती थीं। रावणवध के बाद ये सब कष्ट नहीं दे रही हैं। कोई पापी हो या पुण्यात्मा, उस पर दया करनी चाहिए; क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे अपराध नहीं होता हो। सीता जी ने उन राक्षसियों को विना शरणागति किये ही उनके अपराधों को क्षमा कर दिया, यह सीताजी की अहैतुकी कृपा है। भगवान् श्रीराम ने शरणागति करने पर विभीषण तथा जयन्त आदि पर कृपा की थी, परन्तु श्रीजानकी जी ने विना शरणागति के ही कृपा की। विना शरणागति के अपराधयुक्त जीवों पर कृपा करने के कारण ही श्रीराम के चरित्र की अपेक्षा

---

[१] 'इतिहासश्रेष्ठेन श्रीरामायणेन कारागृहवासकर्त्र्याकारागृहवासकर्त्र्याः वैभव उच्यते'।
—(श्रीवचनभूषण)

श्रीजानकी जी का चरित्र महान है। अतएव श्रीगुण रत्न कोशं में श्रीआचार्य जी ने कहा है कि हे मातः मैथिलि! आपने अपराध करने वाली राक्षसियों की हनुमान जी से रक्षा कराकर श्रीराम जी की महिमा को लघुतर बना दिया[१]।

वेद, इतिहास एवं पुराणादि समस्त शास्त्रों में यह निर्णय दिया गया है कि अध्यात्म में अभिरुचि रखने वाले मानव अर्थपञ्चक का ज्ञान अवश्य करें।

जो अकिञ्चन होकर अनन्य भाव से भगवान् का चिन्तन करता है, उसे अर्थपञ्चक का ज्ञान आचार्य द्वारा प्राप्त होता है; क्योंकि भगवत् स्वरूप का ज्ञान आचार्य ही कराते हैं। सांसारिक प्राणियों का कल्याण भगवान् और आचार्य से ही होता है। विना आचार्य एवं भगवान् के रावण को ब्रह्मा, रुद्र आदि देवगण भी नहीं बचा सके। अतएव जब सुयोग्य आचार्य मिलते हैं तभी चेतन का उद्धार होता है।

मानव शरीर लङ्का है और अहङ्कार रावण है। ममता कुम्भकर्ण है। काम, क्रोध आदि दोष मेघनाद आदि दुष्टों के समान हैं। विवेक ही विभीषण है। चेतन सीता की तरह शरीररूपी लङ्का में कष्ट पा रहा है। जैसे सीता जी का उद्धार आचार्य हनुमान के द्वारा हुआ, उन्होंने श्रीराम का समाचार सीता को और सीता का समाचार श्रीराम को देकर सीताजी का उद्धार कराया, उसी प्रकार श्रीहनुमान के समान सच्चे आचार्य से शिक्षा मिलने पर अर्थपञ्चक का ज्ञान होता है और उससे जीव उद्धार पाता है।

अर्थपञ्चक का अर्थ है—पाँच अर्थ। पाँच अर्थ ये हैं—परमब्रह्मस्वरूप, जीवस्वरूप, उपायस्वरूप, फलस्वरूप और विरोधिस्वरूप। वेद-प्रतिपाद्य परमात्मा जब अयोध्या में राजा दशरथ के पुत्ररूप में अवतरित हुए तब वेद वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायणरूप में प्रकट हुआ। यह रामायण हमें अर्थपञ्चक का ज्ञान कराता है।

बालकाण्ड में श्रीराम के परतत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। रावण के उपद्रव से अतिपीड़ित जगत् का उद्धार करने के लिए देवादि ने भगवान् विष्णु से मानवरूप में आने की प्रार्थना की। तदनन्तर भगवान् विष्णु ने श्रीरामरूप में आकर ताड़का-वध, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा और अहल्या का उद्धार किया। देव, दानव, मानव आदि की शक्ति जिस शिवधनुष को उठाने में समर्थ नहीं हुई, श्रीराम ने उस धनुष को

---

[१] मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयितदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुत्तरा रामस्य गोष्ठीकृता।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौरक्षतः
सानः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥ (श्रीगुणरत्नकोश)

कमलनाल की तरह उठाकर तोड़ दिया तथा महालक्ष्मी-स्वरूपा सीता से विवाह किया। उक्त कार्यों से यह सिद्ध होता है कि श्रीराम परमतत्त्व परमात्मा थे। शंबरी का मोक्ष, बाली, खरदूषण, मारीच, रावण आदि का वध भी श्रीराम को परतत्त्वरूप में प्रकाशित करता है।

जीवात्मा परमात्मा की वस्तु है। यह उनका स्वाभाविक दास है। परमात्मा की सेवा के लिए ही मानव-शरीर मिला है। मानव अपने स्वरूप को भूलकर सांसारिक चीजों का दास बन जाता है। यह जीवस्वरूप के विरुद्ध कार्य है। जीवस्वरूप का ज्ञान हमें रामायण में लक्ष्मण-चरित्र से होता है। श्रीलक्ष्मण जी बाल्यकाल से ही अपने स्वरूप के अनुकूल श्रीराम की सेवा में समर्पित रहते थे। श्रीराम की सेवारूप लक्ष्मी से सम्पन्न होने के कारण ही उनका नाम लक्ष्मण पड़ा था। अतएव वाल्मीकि ने **'लक्ष्मणो लक्ष्मीसम्पन्नः'** ऐसा कहा है। श्रीराम के वनगमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण ने प्रभु के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की है—**'कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते'** आप मुझे अपनी सेवा में लगा लें, इसमें अधर्म नहीं होगा। वन में सोये, जाग्रत आदि सभी अवस्थाओं में आपकी मैं सेवा करूँगा—**'अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते'**। वन से कन्द, मूल, फल आदि लाकर आपकी सेवा में समर्पण करूँगा। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि तुम अपनी माता सुमित्रा से आज्ञा प्राप्त कर लो। सुमित्रा जी आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति से लक्ष्मण को पहचान ली थीं। अतएव उन्होंने कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

अर्थात् श्रीराम वन जा रहे हैं तो तुम आनन्दपूर्वक जाओ और श्रीराम को पिता दशरथ समझना, जानकी को मुझे सुमित्रा समझना तथा वन को अयोध्या समझना—

तुम्हरेहि भाग राम वन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं।

वन में श्रीराम की सब प्रकार की सेवा का अवसर तुम्हें प्राप्त होगा। तुम उनकी सेवा में कभी भी प्रमाद न दिखाना। श्रीराम ने जब लक्ष्मण को अयोध्या में रहने के लिए कहा तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि [1]'मुझे आपके विना स्वर्ग, अमरत्व तथा सम्पूर्ण लोकों का ऐश्वर्य भी नहीं चाहिये। पुनः उन्होंने यह भी कहा कि आपके विना पिता,

---

१. न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना॥ (वा०रा०, अयो०का०, स०-३१.५)
नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परंतप।
द्रष्टुमिच्छेयमद्याहं स्वर्गं चापि त्वया विना॥ (वा०रा०, अयो०का०, स०-५३.३२)

माता, भाई एवं स्वर्ग भी प्रिय नहीं है। जगत् में सब प्रकार का सम्बन्ध एकमात्र आपके साथ ही है। लक्ष्मण के समस्त चरित्र पढ़ने और सुनने से यह सिद्ध होता है कि श्रीराम की सेवा में वे जीवन भर पूर्ण समर्पित रहे हैं।

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। करउँ सुभाउ नाथ पतिआहू।।
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तरजामी।।

उपायस्वरूप एवं फलस्वरूप—रामायण में जहाँ-जहाँ शरणागति का वर्णन किया गया है, उससे भगवत्प्राप्ति के उपायस्वरूप का ज्ञान होता है। विभीषण आदि भक्तों ने भगवान् की सेवारूप कैङ्कर्य करके जीवन का फल बतलाया है, उससे फलस्वरूप का ज्ञान होता है। भगवान् के नित्य धाम वैकुण्ठ में भी उनका कैङ्कर्यरूप फल जीव को प्राप्त होता है।

विरोधी स्वरूप—ब्रह्मस्वरूप, जीवस्वरूप, उपायस्वरूप और फलस्वरूप का ज्ञान माया के कारण नहीं होता है। माया ही विरोधि-स्वरूप है, जिसका ज्ञान हमें रामायण में वर्णित रावणादि के चरित्र से होता है। इस तरह रामायण में अर्थपञ्चक का स्वरूप मिलता है।

शाश्वत हितकारिणी श्रुति ही निष्पक्ष निष्कण्टक मार्ग की अवबोधिका है, अत: जीव मात्र के लिए ये शरण्य है, श्रुति प्रतिपाद्य ब्रह्मज्ञान दुरधिगम्य हैं। अत: श्रुति का वाल्मीकीय रामायण तथा परब्रह्म का श्रीराम रूप में अवतरण हुआ। वेदावतार श्रीरामायण कोमल कान्त पदावली में रामचरित की दिव्य सुरसरिता में पाठकों को अवगाहन कराकर परब्रह्मानन्द के समीप ले जाती हैं।

अत: अस्पष्ट है कि ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त सभी प्राणी तापत्रय से विमुक्ति नैसर्गिक रूप से चाहते हैं। जिंसका सबसे सुगम मार्ग शरणागति(प्रपत्ति) है। ऐसा नहीं है कि मानव श्रुतिस्मृति प्रतिपादित सिद्धान्तानुसार विवेकजन्य धर्माश्रयण में विशेष दक्ष है; परन्तु सद्ग्रन्थों में अनेकश: उदाहरण हमें मिलते हैं कि मानवेतर प्राणियों ने भी भगवान् की शरणागतिपूर्वक सद्गति प्राप्त की है। श्रुतिस्मृति प्रतिपादित ज्ञान का अवलम्ब करने में असमर्थ प्राणियों को देखकर ही परब्रह्म ने जिस प्रकार अपने रामावतार द्वारा उपदेशित तत्त्वों को बोध कराने के लिए वाल्मीकि मुनि के मुखरविन्द से वेद को ध्वनित कराया था, उसी प्रकार घोर कालिकाल के प्रभाव से उत्पन्न कलुष को विध्वंस करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास के मुखारविन्द से श्रीराभचरितमानस का नि:सरण कराया है।

प्रकृत ग्रन्थ मानसहृदय का पूर्णरूप से उपजीव्य रामचरितमानस है। संसार के

सभी प्राणियों को केन्द्र में रखकर इस ग्रन्थरत्न का निर्माण किया गया है। शरणागति करने वालों के लिए स्वत्व निवृत्तिपूर्वक भगवद् कैङ्कर्यरूप सेवा का आश्रयण आवश्यक है। जब प्राणी अपने स्वत्व का त्याग कर देता है, तब उसके समस्त पाप-पुण्य समाप्त हो जाते हैं। तदुपरान्त भगवद् कैङ्कर्यरूप उपाय उनकी मुक्ति में कारक होता है। मानस में वर्णित सभी प्राणी उपरोक्त ज्ञान-विज्ञानरूपी भूषण से भूषित थे, अंत: यह कहा जा सकता है कि मानस के सभी प्राणी पूर्णविवेक युक्त होकर भगवद् कैङ्कर्य में निष्ठित थे।

सरस्वती संन्यासियों के परम्परा में अवतरित स्वामी सहजानन्द सरस्वती एक महान आचार्य हुए थे जिन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा तप द्वारा समाज को एक नई दिशा प्रदान कर भारत के भाल को उज्ज्वल किया था। आज हम सब उनके द्वारा प्रदर्शित पथ के पथिक हो गौरवान्वित हो रहे हैं। अत: प्रकृत ग्रन्थ के प्रकाशन पर उनके चरणों के प्रति बार-बार नतमस्तक होना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

मैं अपनी परम्परा के आचार्य दण्डी स्वामी विमलानन्द सरस्वती जी (दादा गुरु) तथा अपने दीक्षा गुरु स्वामी देवानन्द सरस्वती के चरणों में बार-बार साष्टाङ्ग दण्डवत् अर्पित करते हुए मैं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ; क्योंकि प्रकृत ग्रन्थ का प्रकाशन उनके कृपा का ही प्रतिफल है। तदनन्तर अनन्तश्री विभूषित श्रीस्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज, स्थानाधीश सरौती, हुलासगंज, काशी तथा श्रीमहान्त स्वामी रामाधीनदास शास्त्री, छोटा गुदर अखाड़ा, अस्सी-वाराणसी के प्रति नमन करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ; क्योंकि प्रकृत ग्रन्थ के प्रकाशन में आप सन्तद्वय का अभूतपूर्व उत्साहवर्द्धक स्नेह प्राप्त हुआ है। आज मैं अपने सुहृद वर्गों में स्वामी शरणानन्द जी, स्वामी रामेश्वरानन्द जी को विस्मृत नहीं कर पा रहा हुँ; क्योंकि इस कार्य में आप दोनों ने समय-समय पर उत्साहवर्धन कर सङ्कल्पित कार्य को पूर्ण कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मानस-हृदय के प्रकाशन के हृदय डॉ० विजय शर्मा, श्री ललितेश्वर राय, श्री जटाशंकर सिंह एवं प्रमोद कुमार दीक्षित शतशः धन्यवाद के पात्र हैं; क्योंकि ये सभी सर्वविध यथावसर इस कार्य को पूर्ण कराने के लिए उत्साह तथा संसाधन उपलब्ध कराते रहे हैं।

अन्त में मैं उन ऋषियों के प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने अपनी साधना द्वारा परतत्त्व के रहस्य को उद्घाटित कर हम सबको उपकृत किया

है। मानस-हृदय के रचना में जिन विद्वानों के कृतियों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहयोग लिया गया है, उन सबके प्रति मैं आभारी हूँ। अन्त में दृष्टिदोष जन्य त्रुटियों के लिए सुधी पाठकों से क्षमा चाहता हुआ आशा व्यक्त करता हूँ कि वे अपना अमूल्य सुझाव हमें अवश्य देंगे।

अक्षय तृतीया २०६९
राजगुरुमठ शिवाला, काशी

(डॉ0 स्वामी महेश्वरानंन्द सरस्वती)

प्रस्तावना एवं विषय-प्रवेश

हिन्दी के शोध-प्रबन्ध २०वीं शताब्दी के पाश्चात्य प्रभाव की दिव्य देन है। वैज्ञानिक विपुल विभा में साहित्य-समीक्षा का लौल्य साहित्यमनीषियों में उद्‌गीर्ण हुआ। इतिहास के भग्नावशेषों में ज्ञानदीप प्रज्वलित कर प्रयोग और परीक्षा का श्रीगणेश हुआ। फलतः नयी स्थापनाएँ मानव-जीवन-क्षितिज पर ध्रुवतारा बनकर उगने लगीं।

कोई वस्तु पुरानी होने से ही अच्छी नहीं होती, न कोई काव्य नूतन होने से ही निन्दनीय हो जाता है। सत्पुरुष नवीन-प्राचीन की परीक्षा करके दोनों में से जो गुण प्रद होता है, उसको अङ्गीकार करते हैं, किन्तु मूढ़ की बुद्धि तो पर-ज्ञान से ही सञ्चालित होती है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ।।[1]

सत्पुरुषों की प्रकृति मधुपानरसिक द्विरेफ सदृश होती है। वे शास्त्ररसपीयूष पीकर अक्षय-अलौकिक सच्चिदानन्द, सम्पूर्णानन्द, अचलानन्द, ध्रुवानन्द, शान्तानन्द, घनानन्द, बोधानन्द, विज्ञानानन्द, अमृतानन्द, स्वरूपानन्द, आत्माानन्द, ब्रह्मानन्द, कैवल्यानन्द, महदानन्द, अजरानन्द, अक्षरानन्द, नित्यानन्द, अव्ययानन्द, अनन्तापारानन्द, परात्परानन्द, परमासीमानन्द, अनिर्वचनीयाचिन्त्यानन्द तथा निरतिशयामेयानन्दानुभव करते हैं—

सन्तो मधुव्रताः सान्द्रं पीत्याशास्त्र रसामृतम्।
लोकोत्तरं तथा क्षयूय मानन्दमुपभुञ्जते ।।

और सत्पुरुष सूक्तियाँ भी सर्वार्थहित साधिकाएँ हुआ करती हैं। ज्ञानार्णव नामक ग्रन्थ में श्री शुभ चन्द्राचार्य ने कहा है—

---

(१) महाकवि कालिदास–मालविकाग्निमित्र (नाटक) १/२

प्रबोधाय विवेकाय हितायु प्रशमाय च ।
सम्यक्तत्त्वोपेदशाय सतां सूक्तिः प्रवर्तते ।।

तथा— **अपूर्वाहलाददायिन्य उच्चैस्तरपदाश्रयाः ।**
अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महीयसाम् ।।[१]

मंखक ने साहित्यकारों को कालजयी कहा है—

जो शक्य एवं परिहुत्यदृष्टां परीक्षां ।
ज्ञातुमितस्य महतश्च कवेर्विशेष ।।

प्रबल प्रभञ्जन-प्रवेश सामान्य दीप एवं मणिदीप का रहस्योद्घाटन करत्ते हैं और युगा-युग के शीत-ताप साधारण कवि तथ महकवि के बीच की दूरी को परखते हैं। आज भी साहित्य के विविध पथ मनस्वी पदचिह्नप्रात्यार्थ लोल ललक लीन हैं।

वर्तमान युग वैज्ञानिक बोध-युग है, जिसे अनुसन्धान की अमिट-अनन्तापेक्षा है। एतदर्थ, साहित्यकार युग-धर्म का सहर्ष संवरण करते हैं, जिसके कारण स्वरूप वे अपूर्वानन्द देने वाले, उत्कृष्टतर पदारुढ़ करने वाले तथा अनर्घमूल मोह को नष्ट करने वाले होते हैं।

विश्व में सर्वाधिक श्रेयष्कर एवं विविक्त वस्तु ज्ञान ही है। भगवान् कृष्ण ने कहा है—**'नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते'**[२] में इसी ज्ञान का उपासक हूँ।

मेरी दृष्टि में उपलब्धि तथा अभाव की समानान्तर स्थिति तो इतिहास का वर्ण्य-विषय है, शोध का नहीं। शोध का एक ही उद्देश्य है—

अलभ्यक्री लब्धि तथा गुह्य का प्राकट्य ।

हिन्दी में शोध का सूत्रपात १९१८ ई० में डॉ० जे०एन० कारपेन्टर को लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा 'थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास' पर 'डॉक्टर ऑफ डिविनिटी' से हुआ। डॉ० हरदत्त शर्मा ने अंग्रेजी 'रिसर्च' शब्द के पर्यायवाची शब्द के रूप में संस्कृत में 'पर्येषणा', परीष्ठिश', 'अन्वेषण', 'संवीक्षण', 'विचयन' आदि तथा भृगणः आदि शाब्दों का निर्देशन 'नाम लिङ्गानुशासन[३] में किया है। डॉ० रघुवीर ने 'अंग्रेजी-हिन्दी-कोश' में 'रिसर्च' शब्द के लिए 'गवेषण' शब्द का प्रयोग किया है। 'रिसर्च' शब्द का पर्यायवाची शब्द 'सर्व', 'इंक्वायन', 'इनवेस्टिगेट', 'एक्जामिन' तथा 'एसर्टेन' है।

---

(१) योगवासिष्ठ–५/४/५
(२) गीता–४/३८
(३) डॉ० हरदत्त शर्मा : नामलिङ्गानुशासन, पृ०–१६९ तथा २६६.

'अनुसन्धान' शब्द अनुपूर्वक तृतीय गण की 'संधा' धातु से व्युत्पन्न है। अनुपूर्वक संधा धातु इस अर्थ समुच्चय की बोधिका है, जो आधुनिक शोध संसृति का प्राणभूत तत्त्व है।

अध्ययन-मननोपरान्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचने की चेष्टा कर पाया हूँ कि नये तथ्यों या सन्दर्भों का अन्वेषण, संवीक्षण एवं परीक्षण ही अनुसन्धान है।

रामचरितमानस भारतीय ज्ञानभक्ति और कर्म का परिपक्व सुमधुर फल है, जिसके कारण विश्व के अत्युच्च वाङ्मय में उसका सहर्ष समावेश हुआ है। वह मानव-जीवन की महिमा का गायन अपनी आर्षवाणी द्वारा करता हुआ सच्चे अध्यात्म का सनातन सन्देश सञ्चारित करता है, जो कि आधुनिक काल के ध्येयवाद के लिए अनिवार्य-सा प्रतीत होता है। इसीलिए मैं मानस को 'कलियुग का वेद' मानता हूँ।

किन्तु रामचरित मानस पर अद्यतन हुए शोधों पर दृष्टिनिक्षेप के फलस्वरूप मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानस के चरित्रों मूलतः दैव, राक्षस, नाग, खग, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर, योगिनी, पिशाचिनी आदि पर पूर्ववर्ती शोधप्रज्ञों ने उदासीन दृष्टि डाली है और इन चरित्रों के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर इनकी अदम्यास्था को परखने का प्रयास आज तक 'नहीं के बराबर ही' किया गया।

इतना ही नहीं, बल्कि परवर्ती शोधकर्त्ताओं ने रामचरित मानस के 'मानव-चरित्रों' को भी 'मानवेत्तर चरित्र' कहकर हर्ष के रूप में ही स्वीकार किया।

मेरी दृष्टि में 'मानस' के तथाकथित मानवेत्तर चरित्र 'मानवेत्तर' न होकर 'मानवचरितत्र' हीं हैं। यही कारण है कि मैंने राक्षस, रावण, वानर हनुमान, ऋक्ष जाम्बवान, काक भुशुण्डि तथा दिव्य देव–पात्रों एवं चरित्रों को 'इसी धरती का मानव सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसके लिए मुझे मुख्य रूप से भूगोल तथा पुराणादि की शरणागति का सुखद सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एतदर्थ, मैं उनका ऋणी हूँ।

आज हम संक्रमणकाल में साँस ले रहें हैं, इसलिए पुरानी मान्यताएँ अगर रुढ़िग्रस्त हैं, तो हम उन्हें त्यागने के लिए समुद्यत हैं और अगर पूर्वाग्रह-रहित तथा स्वस्थ सुकर हैं, तो हम उनका हार्दिक अभिनन्दन करने के लिए भी समुत्सुक हैं।

यही कारण है कि मैंने अज्ञात का ज्ञापन गुप्त व लुप्त सामाग्रियों का प्रकाशन-परीक्षण तथा उनका समीक्षण चाहा है। उपलब्ध सामग्रियों के विश्लेषण तथा परिष्करण हेतु एतद् विषयक अद्यावधि धारणा एवं सिद्धान्तों का संस्करण मैंने अपनी सीम्रित दृष्टि के नूतन निष्कर्ष पर करने का आयाम किया है, जो मेरे दिव्य दायित्व का संवाहक है। यही कारण है कि पिष्ट पेषण एवं रुढ़िग्रस्थ परम्पराओं से पूर्णतः पराङ्मुख होकर मैंने

युगसत्य-शिला पर आसनस्थ होने का अबोध सुलभ उपक्रम किया है। अगर थोड़ा आगे बढ़कर कहने की छूट मिल जाय, तो मैं निसङ्कोच रूप से यह स्पष्ट कर देने के लिए ललक एवं ललच रहा हूँ कि 'मानस' के मानवेत्तर चरित्रों के अध्ययन क्रम में मैंने अति आधुनिक विज्ञान बोध का सहारा लिया है और मानवेतर चरित्रों के अध्ययन क्रम में मैंने वैज्ञानिक स्थापना को ही यथासाध्य प्रश्रय दिया है। चूँकि 'व्यवस्थित ज्ञान एवं उसके अन्वेषण का ही दूसरा नाम विज्ञान है। वह उन सत्यों का और उनके सम्बन्धों का ज्ञान है जो पुन: परीक्षित हो सकते हैं, वह उन परिणामों का ज्ञान है जो प्रयोग और गवेषणा द्वारा तथा व्यक्त एवं ज्ञात से अव्यक्त और अज्ञात की ओर उन्मुख होते हुए सामान्य सिद्धान्त स्थित करने की सूचना देता है और परीक्षण करता हुआ ज्ञात (वस्तुओं के विस्तृत क्षेत्र) से लेकर हमारे ज्ञान भण्डार की वृद्धि करता है'।[१] तथा वैज्ञानिक प्रकृति का रहस्योद्घाटन करता है, उनमें सूचारु रूप से संग्रथित करता है और उसका प्रयोग करता है—

'Science is simply other name for organized knowledge and the pur suit of it. It is the knowledge of verifiable facts and of the relations between them, the results of experiment, research, generalization, proceeding from the know to the unknown, predicting, veiling and grandly adding to our stores of the known from the vast stores of the unknown'[2].

वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में मैंने विवश होकर, सत्यगर्भा कल्पना अनुमान तथा सूझ-बूझ का सहारा लिया है।

तुलसी-मानस-सुरसिता केवल अपने कलकल-छलछल निनाद से निनादित ही नहीं, अपितु पावनता और जनोपकारिता के दिव्य गुणों से भी समन्वित है। उसके तीर पर सामाजिक जीवन की सुषमा और सुरभि के पराग के पराग विकीर्ण हैं, जो इस युग की बुभुक्षा तथा पिपासा का शमन करते हैं। उसमें (मानस में) लोकपावनादर्श की प्रतिष्ठा तथा व्यापक समन्वयवाद की भव्य-नव्य भावना अनिवार्यरूपेण सन्निविष्ट है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय मेरे लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी रहा; क्योंकि प्रकारान्तर से दिव्य श्रीराम की भक्ति साधना के अवसर निरन्तर प्राप्त होते रहे। साहित्य के मर्मज्ञ शोधकर्त्ताओं ने गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्त्व का कई दृष्टियों से

---

(१) स्वर्गीय श्री वेङ्कटेश्वर शर्मा : अध्यात्म योग और चित्त-विकलन, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना–३, प्रथम संस्करण, खीष्टाब्द १९५७, विषय-प्रवेश, पृ०–१२-१३.

(२) Science and Religion, Page-73.

आकलन किया है। पूर्ण धर्म स्वरूप आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम या पूर्ण पुरुष राम के लोकपावन चरित्र की दिव्य दीप्ति तथा सीता के पातिव्रत्य के आधार पर भारतीय जीवन की पारिवारिक मर्यादा का निर्देशन हुआ है, यह स्वयं सिद्ध है। यही कारण है कि गोस्वामी जी की रामभक्ति वह महान वृत्ति है जो जीवन को सशक्त, सरस, उत्फुल्ल तथा परम पावन बनाती है— 'गोस्वामी जी की रामभक्ति वह दिव्य वृत्ति है, जिससे जीवन में शक्ति, सरसता, प्रफुल्लता, पवित्रता सब कुछ प्राप्त हो सकती है'।[१]

मानसकार तुलसीदास जी ने रामकथा से मूलरूप का युगानुरूप संशोधन-परिवर्द्धन किया तथा भारतीय परिवेश की प्रासङ्गिक अपेक्षाओं के अनुरूप सभी पात्रों के माध्यम से सौन्दर्य, शक्ति और शील–तीनों की चरमाभिव्यक्ति ने एक साथ समन्वित होकर मानव-हृदय-कुञ्ज को अपूर्व आशा से आलोकित तथा आकृष्ट कर लिया। सौन्दर्य, शक्ति, शील तथा विनय शक्ति का जैसा उत्कट आदर्श तुलसीदास ने प्रस्तुत किया, वैसा आदर्श आज तक किसी ने प्रस्तुत नहीं किया।

रामकथा के सङ्कुम्पन में दैव, मानुष तथ असुरादि सभी प्रकार के पात्रों का समानुपातिक योग है। सन्तों ने इस एक रामकथा को अनेक दृष्टियों से देखा, किन्तु सबका एक ही निष्कर्ष था कि ब्रह्म, जीव और माया का आपसी सम्बन्ध कुछ-कुछ इस ढङ्ग से जान पड़ता है कि बीच वाला परवर्ती के चङ्गुल से निकल कर पूर्ववर्ती के विस्तार में समा जाना चाहता है। यद्यपि ज्ञानवान् शङ्कर जीव को कठपुतली की तरह परतन्त्र[२], कर्मकाण्डी याज्ञवल्क्य उसे अपरिहार्य कर्म फलाधीन[३] अथवा दैवायत्त्व तथा भक्त भुषुण्डि कीटमर्कटवत्[४] मोहवश समझते हैं, तथापि तीनों अधिकारी वक्ता एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि जीव के बन्धन का मुख्य कारण अज्ञान का अमित प्रभाव या माया की प्रबलता है।

---

(१) श्रीरामचन्द्र शुक्ल: चिन्तामणि, पहला भाग, शीर्षक–तुलसी का भक्ति मार्ग, पृ०–१६१, प्रकाशक : इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग–१९६७.

(२) उमादारु जोषित की नाई।
सबहिं नचावत राम गोसाईं ॥ —(मानस : किष्किन्धाकाण्ड–१०/७)

(३) (क) कर्म प्रधन बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥ —(मानस)
(ख) भरद्वाज सुनु जाहि जब होहिं बिधाता वाम।
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि व्याल सम दाम ॥ —(मानस, बालकाण्ड)

(४) सो माया बस भयउ गोसाई।
बँध्यो कीटमर्कट की नाई ॥ —(मानस, उत्तरकाण्ड–११६'ख'/३)

रामचरित मानस की कथा-पद्धति को षड्बन्धनी मानस-प्रणाली कहते हैं, तथापि है वह अष्ट बन्ध प्रबन्ध-मार्ग।[१] इस अनोखी षड्बन्धनी प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके परमाधिकारी वक्तागण यद्यपि तीन पृथक्-पृथक् जातियों के परमपूज्य प्रधान पुरुष हैं, जो तीन दूरस्थ भिन्न-भिन्न स्थलों पर अलग-अलग बैठकर एक ही कथा को तीन पृथक्-पृथक् दृष्टियों से तीन भिन्न-भिन्न भाषाओं में अपने वर्ग के तीन परम श्रद्धलु श्रोताओं को एक साथ ही सुना रहे हैं, तथापि उनके उत्साह, शील, सौजन्य तथा फलानुसन्धान में रञ्चमात्र का भी अन्तर नहीं दिखाई देता। कैलास-शिखरवासी शिव विश्रामविटप की छाया में बैठकर देव-भाषा के माध्यम से जो कथा पार्वती से कह रहे हैं, ठीक वही कथा प्रयाग राज में गङ्गा-यमुना-सरस्वती के सङ्गम पर अक्षयवट के नीचे सुखासीन होकर महर्षि याज्ञवल्क्य अपने पत:पूत शिष्य महामुनि भरद्वाज को कर्मप्रधान पद्धति से मनुष्य भाषा में सुना रहे हैं और वही रामकथा उपासना विशाल मार्ग से सुमेरु पर्वत की नील नामक चोटी पर विराजमान होकर काक भुशुण्डि महाराज गरुड़ को सुना और समझा रहे हैं। इन तीनों दृष्टियों और भाषाओं का सुन्दर समन्वय कर गोस्वामी तुलसीदास अयोध्या वाली अपनी कुटिया में बैठकर दीन भाव से—

भाषा भनिति भोरि मति मोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।।[२]

वही जगद विख्यात रामकथा अपने समय की लोक भाषा (अवधि/बैखरी)—

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहि सुनहिं सुजान।।[३]
भाषाबद्ध करबि में सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई।।[४]

में सारे जीवलोक को सुना रहे हैं।

इस कथा-प्रणाली को घाटबन्ध कथाश्रय भी कहते हैं। इस प्रकार यह षड्बन्धनी अष्टबन्धनी कथा है—

---

(१) जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनि बरहि सुनाई।।
कहिहउ सोई संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी।।
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।। —(मानस)

(२) मानस/बालकाण्ड–८/४

(३) मानस/बालकाण्ड–१/१० (ख)

(४) मानस/बालकाण्ड–१/३० (ख)/२२

रामचरित मानस मुनि भावन।
बिरचेउ संभु सुहावन पावती।
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन।
कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन।।
रचि महेस निज मानस राखा॥
पाइ सुसमउ सिवासन भाषा।
तातें रामचरित मानस बर।
धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर।।
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई।
सादर सुनहु सुजन मन लाई।।[1]

यह कथा मानस-ताल[2] के चारों घाटों पर युग-युग से चल रही है। ज्ञानघाट पर शिव-शिवा, कर्मघाट पर याज्ञवल्क्य–भरद्वाज, भक्तिघार पर काक गरुड़ एवं गोघाट अथवा दीन घाट पर गोस्वामी तुलसी कृत और उनके भक्त जन एक साथ ही कथा के अमित रस में ऐसे डूबते-उतराते दिखाई देते हैं मानों किसी पर्व विशेष पर सम्पूर्ण भूतलग्राम परमोत्तम पुष्करिणी में अपनी-अपनी प्रीति, प्रतीति एवं रुचि के अनुसार अपने-अपने घाट पर डूब-डूबकर नहा रहा हो—

सुठि सुंदन संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि।।[3]

रामचरितामानस भी उन्हीं निगमागमों पर आधृत एक उत्कृष्ट चतुर्वर्गप्रद, सर्वपर-निर्वृत्ति कारक सदव्यवहार विधायक 'प्राकृत काव्य' है।[4]

रामचरितमानस के मानवेतर चरित्रों के अध्ययन को ही मैंने विशेष रूप से अपनाया, इसका कारण स्पष्ट है, वह यह है कि शुद्ध धर्म का स्वरूप सच्चे मानव की अपने और दूसरों के समक्ष उपस्थित करते हैं और शुद्ध धर्म है—'अखिल विश्व की स्थिति-रक्षा'। अत: कीट-पतङ्ग से लेकर मानव तक सभी प्राणियों के जीवन चक्रों को देखकर आनन्दातिरेक प्राप्त करना ही मेरा कर्मधर्म है।

---

१. मानस–१/३४/९-१३
२. जे गावहिं यह चरित सँभारे।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥ —(मानस–१/३७/१)
३. मानस-१/३६
४. धर्मनिष्ठा, वर्ष-७, माह सितम्बर १९८०, अङ्क ६, शीर्षक-वेद प्रामाण्य और तुलसीदास, पृ० १७७ : धर्मसम्राट श्री स्वामी करपात्री जी महाराज।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रकृति (माया) की विशिष्टता उसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के आधार पर सिद्ध की है। प्रकृति, स्थावर और जङ्गम रूपों में प्रस्तुत है, स्थावर है–दृश्यों में और उसका जङ्गम जल-जन्तुओं, थलचरों तथा नभचरादि के रूपों में विद्यमान है। मानस में सिंह, हाथी, ऊँट, अश्व, वृषभ, गो (गाय), महिष, मृग, महुप, गर्दभ, शशक, मेष, लोमड़ी, विडाल/शूकर, श्वान, गीद्ध, कृमि, ऋृक्ष, नाग, चञ्चरीक, उलूक, चकोर, चक्रवाक, चातकी, कोक, बिच्छू, काग, कोकिल, कीर, मयूर, बाघ, बायस, खच्चर, ग्राह, टिट्टिभ, जम्बुक, कच्छप, गरुड़, वाराह, मोर, सारस, वानर, भालू, उरग, पतङ्ग, हंस, चमगादड़, बक, सारिका, मीन, दादुर, खञ्जन, रेशम कीट, जल कुक्कुर, जलखग, कपोत, अरुणशिखा, झष, पिक, खद्योत, तीतिर, लावक तथा पीपिलिकादि प्रायः सभी प्रकार के पशु-पक्षी तथा कीट-पतङ्ग का उल्लेख प्राप्त होता है।

विश्व की चार वनस्पतियों—(१) शाक, (२) झाड़ी, (३) वृक्ष तथा (४) लता का भी वर्णन महाकवि तुलसीदास जी ने अपने मानस में येन-केन-प्रकारेण प्रायः किया ही है, वह निम्नस्थ उद्धरणों से सिद्ध है—

सबकें हृदयं मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा।।[1]
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना।।[2]
विटप बिसाल लता अरु झानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी।।[3]
जप तप नेम जलश्रय झारी। होइ ठीषम सोषइ सब नारी।।[4]
सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनने आकर बहु भाँति।।[5]

× × ×

संबत सहस मूल फल आए। सागु खाइ सत बरष गवाए।।[6]

ये सारे उल्लेख उद्दीपन रूप में नहीं, प्रत्युत इन सभी जीवों तथा वनस्पतियों का आलम्बन रूप में निर्वाह हुआ है। रामचरितमानस के अध्ययन में सभी जीव-जन्तुओं तथा चरित्रों का आनुपातिक योगदान है। जैसे-सेतु निर्माण क्रम में गिलहरी की सहायता का प्राचीनतम उल्लेख आल्वार विप्र-नारायण (९ श०ई०) की रचना में मिलता है।[7]

---

१. मानस-१/८४/१
२. मानस-१/३७/४
३. मानस-२/३७(ख)/१
४. मानस-३/४३/२
२. मानस-१/६५
५. मानस-१/७३/४
४. ग्स० वैयापुरी पिल्ले, हिष्ट्री ऑफ तमिल लेग्विज एण्ड लिटरेचर (मद्रास-१९५६), पृ०-१२१

रङ्गनाथ रामायण[1] तथा कृत्तिवास[2] रामायणादि में चर्चा हुई है। ....

डब्लू० क्रूक ने भी इस कथन की पुष्टि अपनी पुस्तक में की है। वैसे ही रामचरितमानस की कथा के सभी पात्र सप्रयोजन हैं। मैंने प्रायः उपेक्षित पात्रों (उपेक्षित नहीं कहकर अस्वीकृत कहना चाहूँगा) की ओर आगामी अध्येताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिए उन सारे पात्रों की गहराई से छानबीन की है और सृष्टि का सर्वाधिक श्रेष्ठ प्राणी (मानव) होने के कारण मानवेतर सृष्टि के साथ आत्मीयता स्थापित करना मैंने अपना धर्म समझा है; क्योंकि 'जब मानव, मानवेतर सृष्टि का जहाँ तक सम्भव हो पालन-पोषण करेगा, मानवेतर सृष्टि के साथ ही आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करेगा तभी वह सारी सृष्टि में श्रेष्ठ सिद्ध करेगा'।[3]

सब प्राणियों में व्याप्त मूलतत्त्व को जानना मेरे लिए कठिन है, क्योंकि—

ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।[4]

और जिसकी प्रतिमा या उपमान भी नहीं हो सकता—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद यशः।[5]

इस अनन्त विश्व-प्रपञ्च-निर्माता के अगणित गुणों का मान कौन कर सकता है—

महीरस्य भ्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः।
नास्य क्षीयन्त ऊतयः।।[6]

अमृत तत्त्व-प्राप्ति हेतु सर्वत्र ओत-प्रोत महान देवाधिदेव, जो हमारे अज्ञानान्धकारवश हमसे छिपा हुआ है, को जानना आवश्यक है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादिव्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।[7]

अतः भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है कि हमारा मन शिव या शुभ मार्ग का ही अनुसरण करे— **भद्रं नो अपि वातय मनः।[8]**

तथा भगवान् हमारा कल्याण करें—

---

[1] रंगनाथ रामायण-६/२८
[2] कृत्तिवास रामायण-५/४७
[3] साने गुरु जी ३ भारतीय संस्कृति, अनुवादक : श्रीबाबू राव जोशी, एम०ए०, शीर्षक-मानवेतर सृष्टि से प्रेम का सम्बन्ध, पृ०-१९३
[4] यजुर्वेद-३२/८
[5] यजुर्वेद-३२/३
[6] ऋग्वेद-६/४५/३
[7] ऋग्वेद-३१/१८
[8] ऋग्वेद-१०/२०/१

भद्रं भद्रं न आभर।[१]

हमारे लक्ष्य हैं—

उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रासूर्यम गन्म ज्योतिरुत्तमम्।।[२]
परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु।[३]

× × ×

उदायुषा स्वायुषोद्स्थाम।[४]
एवं— **प्रतार्यायुः प्रतरं नवीयः।**[५]

× × ×

कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे।[६]

स्वर्गसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज का सान्निध्य एवं आशीर्वाद सतत प्राप्त हुआ, एतदर्थ, मैं उनके परम पद पद्मपराग पर प्रणत हूँ। प्रातः स्मरणीय, अनन्तश्री विभूषित, वीतराग विधायक, महात्मा-महामणि, सन्तशिरोमणि लोकोत्तर आप्तकाम एवं दयानिधान, पूज्यपाद स्वामी पशुपति नाथ बाबा एवं ऋतम्बरा प्रज्ञा पयोधि के ऋषेश्वरेश्वर देवरहवा बाबा के नयन-प्रनमनार्थ मुझ अबोध शिशु के पास वाणी कहाँ। फिर भी पुण्य श्लोकों को उधार लेकर उनके पूजनार्थ प्रस्तुत हूँ—

तपस्तेजोमयं दिव्यं सर्वत्र सुभदं परमं।
प्रणमामि सदाभक्त्या गुरुं पशुपति शिवम्।।

× × ×

नमः श्रीदेवरहवा गुरुपादाम्बुजन्मने।
सविलास महामोह ठाह ठासैक कर्मणा।।

मानस के मानवेतर चरित्रों के अध्ययन क्रम में मैंने बाल-बोध एवं सुबोध पुस्तकों (षष्ठ वर्ग तथा अष्टम वर्ग के जीवविज्ञान की पुस्तकों) का भी सहर्ष सहारा लिया है; क्योंकि—

युक्ति युक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्य तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना।।[७]

---

[१] ऋग्वेद-८/९३/२८
[२] यजुर्वेद-२०/२१
[३] अथर्ववेद-१८/३/६३
[४] यजुर्वेद-४/२८
[५] ऋग्वेद-१०/५९/१
[६] ऋग्वेद-१/३६/१४
[७] योगवासिष्ठ-२/१८/३

मैं मानस के मानवेतर चरित्रों का पुनः-पुनः पदवन्दन करता हूँ; क्योंकि मैंने पढ़ा है—

चारित्र्यं नरवृक्षस्य सुगन्धि कुसुमं शुभम्।
आकर्षणं तथैवात्र लोकानां रञ्जनं महत्।।[१]

मानस के मानवेतर चरित्रों के अध्ययनकाल में मैंने यदा-कदा 'मैं' शब्द का प्रयोग किया है और आगे भी करूँगा ही, चूँकि—

नहि कश्चित् सन्दिग्धे अहं वानाहंवेति।[२]

एतदर्थ, मैं गुरुगठा-समक्ष क्षमायाचक हूँ।

श्रीयुत् विविध विरुदावली विराजमान मानोन्नत, महामहिम मण्डली मण्डन एवं 'सारण-शर्दूल' शीतलपुर कोडी स्थिति (सारण जनपदान्तर्गत) श्री हरिवंश नारायण पाण्डेय जी (बबुआ जी) एवं उनकी धर्मपत्नी तथा ज्ञानमाता श्रीमती माधवी पाण्डेय का कृपा-कण पाकर में सनाथ हो गया।

अनन्य-अभिन्न-आत्मानन्द एवं हृदय सम्राट श्री नागेश्वर पाण्डेय जी बभनगवाँ (पटना जनपद) का मेरे हृदय में सदा पैठ-बैठ है, इसीलिए वैसे प्राणघट के विषय में कुछ भी कहना 'आत्मकथन' ही होगा। श्री देवेन्द्र प्रसाद सिंह (सारण) तथा श्री चन्द्रभूषण प्रसाद सिंह पोंझी परसा (सारण) के अनोखा उत्कर्ष और चोखा प्रभाव के कारण ही मैं मानस-मन्थन में प्रवृत्त हो सका। श्री भीमनाथ तिवारी, दिघवारा (सारण); श्री बिन्देश्वरी ठाकुर, दिघवारा (सारण) एवं श्री हरिश्चन्द्र सिंह, आमी (सारण) ने ससत् सहानुभूति प्रदान की।

सर्वश्री रामेश्वर प्रसाद सिंह, श्री सुनील कुमार शर्मा, श्री कामेश्वर झॉ, श्री अभिराम शर्मा, श्री शिवकुमार सिन्हा तथा श्री कुमार जीतेन्द्र (रामदयालु उच्च विद्यालय-परिवार गठेया (मुजफ्फरपुर) आदि ने मुझे सतत प्रोत्साहित किया। एतदर्थ, मैं उनका आभारी हूँ। डॉ० श्री नारायण सिंह ने सतत उत्प्रेरित किया, इसीलिए उनका भी आभारी हूँ।

अपने मित्र श्रीरवीन्द्र कुमार सिंह, वरिष्ठ उप-सम्पादक प्रदीप (पटना), श्री राम नाथ दूबे, सामुद्रिक अभियन्ता (मुजफ्फरपुर) तथा शोधप्रज्ञ प्रो० रमेश प्रसाद, व्याख्याता पदार्थ विज्ञान-विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर को मैं नहीं भूल सकता, जिन्होंने अपने सत्परामर्शों से मेरी सहायता की है। स्व० डॉ० फादर कामिल बुल्के, एस०जे०एम०ए० डी०फिल्०, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-

---

१. श्रीमठलदेव शास्त्री : अमृत-मन्थन-८/२

२. पं० वाचस्पति मिश्र : भामति/अध्याय

विभाग, सन्त जेवियर कॉलेज, राँची विश्वविद्यालय (राँची) का मैं ऋणी हूँ, जिनके ज्ञान दर्पण-रामकथा (उत्पत्ति और विकास) नामक ठान्थ् को पाकर मैंने अपने निरूपण को सद्रूप बनाने की भरपूर चेष्टा की है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की प्रसृत प्रस्तुति-क्रम में ज्ञात-अज्ञात जिन ठान्थों, पत्र-पत्रिकाओं, सुभाषितानि आर्ष-वाणियों, विद्वानों, ज्ञान-विज्ञानविभुओं, सुधीजनों, सन्तों तथा सन्तसेवकों की कृपा-किरणें मुझे प्राप्त हुई हैं, उनके प्रति मैं हृदय से नतमस्तक हूँ। मैं पूज्यवर डॉ० जगन्नाथन (निदेशक-केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नयी दिल्ली), डॉ० श्रीरञ्जन सुरिदेव, (सम्पादक-परिषद्-पत्रिका, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, सैदपुर, पटना-४), डॉ० राम प्यारे तिवारी, (रीडर, हिन्दी-विभाग, नौबतपुर, पटना) तथा पण्डित श्री राम किङ्कर उपाध्याय, (४/२७३, बलभद्र प्र० तिवारी कानपुर-२) के प्रति विशेष रूप से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ, जो मेरे प्रेरणा-प्राण हैं। श्री डी०एन० तिवारी, निदेशक-जन-जाति-विभाग, नई दिल्ली का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने मेरी चेतना को जगत् हितार्थ प्रोत्साहित किया।

ब्रह्मस्वरूप अपने स्वर्गीय नित्य लीलालीनपितृदेव श्री बिंदा राय शर्मा (जो मुझे मातृकुक्षि में ही छोड़कर इस संसार-सागर से कोमल वयस में ही पार उतर गये तथा जिन्होंने मुझे कभी नहीं देखा और न जिन्हें मैं अबोध शिशु-दृष्टि से भी देख सका) तथा दिवठता माता श्रीमती धरोहर कुँअर (जिन्होंने मेरे जीवन में जननी-जनक, दोनों की भूमिका निभाकर 'मसि', 'कागद' और 'कलम' मेरे हाथ में 'गहाया' और मुझे विश्वबन्धु के हाथों में समर्पित कर मुझे गुलदश्रु छोड़कर ही परलोक पधारी) का ऋणी जन्म-जन्मान्तर तक बना रहना चाहता हूँ, जिसके कारण उन्हें कभी नहीं 'बिसरा' सकूँ। यह मेरे लिए कदापि सम्भव नहीं कि—**जेहि तन दियो ताहि बिसराउँ।**

चाचा श्री साधु चरण राय शर्मा का मैं आज भी ऋणी हूँ, जिनके आशीष से शोधनिरत हो सका। अपनी धर्मप्राण प्रिया-जीवनसठिनी धर्मशीला, आत्मजा द्वय अपर्णा अंशुमाली एवं अर्पणां अंशुमाली तथा एक मात्र आत्मज आशुतोष अंशुमाली, युग्मज (अगाह) श्री उमेश चन्द्र राय शर्मा, श्री सुरेश चन्द्र राय शर्मा तथा श्री शिव चन्द्र राय शर्मा तो मेरे प्राणधन हैं, इन्हें कैसे भुला दूँ? कुसुम चन्द्र लेखा एवं गीता से भक्ति-शक्ति की आशा मिली। उन्हें कैसे भुला दूँ? धर्मनगपति शङ्कराचार्य-चतुष्टय के पद-पद्मपरागों का पान कर सबसे कृपा की आकाङ्क्षा रखता हूँ। एतदर्थ—

देव-दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गन्धर्व।
बंदउ किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व।।[१]

---

[१] मानस-१/७ (घ)

अर्थात् जगत् के सभी साहित्यकारों की अर्चना वन्दना करना मैं अपना परम पावन कर्त्तव्य समझता हूँ।

गुरुवर डॉ० कामेश्वर शर्मा, गुरुवर डॉ० सुरेन्द्र मोहन प्रसाद एवं गुरुवर डॉ० प्रमोद कुमार सिन्हा, गुरुवर आचार्य श्री जानकी वल्लभ शास्त्री, गुरुवर डॉ० बमशम्भु दत्त झॉ०, प्राचार्य समस्तीपुर महाविद्यालय (समस्तीपुर) तथा बिहार विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागीय गुरुवरों का शुभाशीर्वाद प्राप्त कर ही यह गुरुतर कार्य सम्पादित कर पाया हूँ।

पुत्र-पिता समीप प्रेम तथा विश्वासवश जाता है। वह जानता है कि पितृ-हृदय में उसके प्रति अगाध स्नेह है। मैं भी उसी भाववश गुरुदेव डॉ० श्यामनन्दन किशोर, भूतपूर्व कुलपति, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर तथा सम्प्रति शिक्षा संस्कृति-सलाहकार, बिहार सरकार, पटना का सान्निध्य लाभ प्राप्त कर शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ। अत: यह शोधप्रबन्ध उनके आशीर्वाद का ही प्रतिफल है।

मैंने पढ़ा है—

य आतृणत्त्यवितथेन कर्णाव दुःखं कुर्वन्नमृतं सं प्रयच्छन्।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न दुह्येत्कतमच्चनाह।।
अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा।
यथैव ते न गुरौ भोंजनीयास्तथैन तान्न भुनक्तिश्रुतं तत्।।[1]

इसी कारण मैं माता-पिता सदृश अपने निर्देशक गुरु ब्रह्म डॉ० रमेश 'किरण' जी का शरणापन्न हुआ तथा गुरु-कृपा-किरण प्राप्त कर निहाल हो उठा और प्रस्तुत शोधप्रबन्ध उनके विद्वतापूर्ण सफल मार्गनिर्देशन का ही अमृतफल है। मेरे 'हिय' के विमल विलोच को उबारने वाले मेरे निर्देशक महोदय ने अपना बहुमूल्य समय देने में कभी सङ्कोच नहीं किया और प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के प्रत्येक अंश को यथा सम्भव परिपूर्ण बनाने के लिए अनेक सुझाव एवं निर्देश दिये हैं। अत: उनकी मेरे प्रति की गई अहैतुकी असीम अनुकम्पा के कारणवश मेरा रोम-रोम उनका ऋणी है और मेरी चाह भी यही है कि मैं उनका जन्मजन्मान्तर तक ऋणी बना रहूँ; क्योंकि-

एकाक्षरमपिगुरुः, यस्तु शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं, यद् दत्वा ह्यनृणी भवेत्।।

यह अध्ययन मेरी अत्यल्पज्ञता के बावजूद मेरी निष्ठापूर्ण तपस्या और भक्ति-साधना का फल है। इस अध्ययन क्रम में चिन्तन-मनन-स्वाध्याय तथा अन्त:स्फूर्जनाओं

---

[1] निरुक्त (यास्कप्रणीत)-२/४

के हेतु काशी, प्रयाग, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावनादि महत्त्वपूर्ण धामों में सतत निरत (भ्रमणशील) रहा। सचमुच 'मानस' रूपी पावन प्रसाद मेरे हेतु गुरु प्रसाद ही है।

इस श्रम श्रान्त उपलब्धि का श्रेय मेरे गुरुजनों एवं विद्वज्जनों का है तथा यत्किञ्चित् त्रुटियाँ मात्र मेरी हैं। यद्यपि सत्साहित्य निर्दोष होता है, फिर भी, चलने वाले भूलवश गिरते ही हैं— **गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।**

और 'भूल करना मानव-स्वभाव है' आदि सिद्धान्तों के आधार पर केवल हंस-न्याय-वश गुण ग्राह्य तथा दोषक्षम्य होते हैं— ***'गुणाः ग्राह्याः दोषाः क्षम्याः'।*** अत: आशा ही नहीं, पूर्ण आस्था भी है कि प्रजाप्रभु मेरी त्रुटियों को अपने हृदयकुञ्ज में स्थान नहीं देंगे। सूर के शब्दों में—

प्रभु मेरे, औगुन चित्त न धरौ। तथा—

अबकी बेरि मोहि पार उतारो, नहिं पन जात टरो।

इस कठिन-कराल-कलि-काल में रामभक्ति क्षेत्र निस्सीम है। अत: मैं अन्तिम शब्द कहने का अधिकारी हो भी नहीं सकता; क्योंकि—

I have, alas! Philosophy,
Medicine, Jurisprudence too,
And to my cost Theology,
With ardent lahour studied though.
And here I stand, with all my love,
Poor fool, no wiser than before
...................and learn
That we in truth can nothing know.[1]

अत: ब्याज रूप में मानवेतर चरित्रों के माध्यम से सबमें व्याप्त उस परम तत्त्व-'हरि व्यापक सर्वत्र समाना'[2] का कृपाण, मात्र भी मुझे प्राप्त हो सका है या नहीं, अकथनीय है। स्वाति की वह एक बूँद ही मेरे चातक-मन के लिए अमित है।

गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में मेरा पुन:-पुन: अशेष आत्मनिवेदन है-बंदउ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।

महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।

× × ×

बंदउ संत समान चित्त हित अनहित नहिं कोइ।

---

१. Faust, Part I, Page-15

२. मानस-१/१८४/५ प्रथम अर्द्धावली

अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सुम सुगंध कर दोइ।।

× × ×

जड़ चेतन जग जीव जल सकल राममय जानि।
बंदउ सब के पद-कमल सदा जोरि जुग पानि।।

मैंने मानस के मानवेतर चरित्रों के अध्ययन-क्रम में शिशुवत् वस्तुतन्त्रीय ताटस्थ्य दृष्टि भाव सर्वत्र रखा है, इसीलिए—

कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु कृपाल।।

अब मैं इतना ही कहना 'अलम्' समझूँगा कि—

छमिअहि सज्जन मोरि ढिठाई।
सुनिहहिं बाल बचन मन लाई।।

—दण्डी स्वामी
(डॉ0) महेश्वरानन्द सरस्वती
बी03/175 राजगुरु मठ,
शिवाला घाट, वाराणसी।

विषय-सूची

विषय	पृ० सं०
प्रथम अध्याय : रामकथा का उद्गम एवं विकास	१-२६
द्वितीय अध्याय : रामचरितमानस का पौराणिक आधार एवं आधार-ग्रन्थों का काल-निर्णय	२७-४४
तृतीय अध्याय : रामचरितमानस के पुरावृत्त	४५-६८
चतुर्थ अध्याय : विशिष्ट मानवेतर पात्रों के प्रतीक रूपों का विश्लेषण तथा मानस की अन्तर्कथाएँ	६९-१००
पंचम अध्याय : मानवेतर पात्रों का विवेचन एवं वर्गीकरण— सामान्य परिचय तथा विश्लेषण	१०१-२३१
षष्ठ अध्याय : राम-कथा-प्रसंगों का संश्लिष्ट आकलन	२३२-२९४
सप्तम अध्याय : राम कथा के वानर पात्रों के वैशिष्ट्य एवं सम्बद्ध कथा प्रसंगों के सन्दर्भ	२९५-३३९
अष्टम अध्याय : चरित्र तथा चारित्र्य का परिप्रेक्ष्य	३४०-३७३
नवम अध्याय : उपसंहार	३७४-३७७

--oooo--

१.

रामकथा का उद्‌गम एवं विकास

रामकथा का उद्‌गम

महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि माना गया है; किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार वाल्मीकि ने दो-तीन स्वतन्त्र आख्यानों को मिलाकर रामकथा का प्रणयन किया। वैदिक साहित्य में रामकथा के अभाव के कारण विद्वानों द्वारा रामकथा के उद्‌गम सम्बन्धी अनुमान स्वाभाविक ही हैं।

डॉ० बेवर के अनुमान के अनुसार रामकथा का मूल स्रोत बौद्ध ग्रन्थ 'दशरथ जातक' में उपलब्ध है। इस कथा में सीताहरण तथा रावणयुद्ध का एकदम अभाव है। डॉ० बेवर का अनुमान है कि सीताहरण की कथा का मूल स्रोत सम्भवत: होमर में वर्णित पैरिस द्वारा हेलेन का अपहरण है और लङ्का में रावण-युद्ध सम्भवत: सेना द्वारा त्रास का अवरोध है।[१] लेकिन वाल्मीकि की रामायण पर होमर का ईषत् मात्र भी प्रभाव नहीं है। होमर के काव्य में नावों की प्रमुखता है। यदि वाल्मीकि होमर से अवगत होते तो समुद्र पार करने के लिए सेतु के बदले निश्चितरूपेण नौका सन्तरण का अवलम्बन करते। होमर तथा वाल्मीकि में स्त्रीहरण एवं धनुष सन्धान के चलते जो भावसाम्य दीखता है, वह कोई ऐसा विशिष्ट साम्य नहीं है, जिस पर विशेष बल दिया जा सके।[२]

दशरथ जातक रामकथा का एक आधार है, इससे अब तक कई विद्वान् सहमत हैं, लेकिन होमर के काव्य को रामायण अथवा रामकथा का एक आधार मानने के लिए डॉ० बेवर को छोड़कर कोई भी तैयार नहीं है।[३] फादर कामिल बुल्के ने यह सिद्ध कर दिया है कि दशरथ जातक की रामकथा वाल्मीकीय रामकथा का विकृत रूप है और उसके पूर्व रामकथा प्रचलित हो चुकी थी।[४] इसलिए दशरथ जातक तथा होमर के काव्य

---

[१] आन दि रामायण : ए० बेवर, पृ०-११

[२] रामकथा : फादर कामिल बुल्के, पृ०-१०३

[३] के०टी० तेलांग : रामायण कॉपीड फ्राम होमर, बम्बई, १८७३;
एम० मोनियर विलियम्स : इण्डियन विजडम, पृ०-३१६टि०।
एच० याकोबी : वही, पृ०-९४ आदि।
ए०ए० मैकडॉनल : संस्कृत लिटरेचर, पृ०-३०८

[४] रामकथा : फादर कामिल बुल्के, पृ०-७५-१०१

को रामायण का मूल स्रोत नहीं माना जा सकता। डॉ० बेवर के समान डॉ० एच० याकोबी के अनुसार भी रामकथा के दो प्रमुख आधार हैं। इनकी दृष्टि में रामायण की रामकथा दो स्वतन्त्र भागों के मिलन से उद्भूत हुई है। प्रथम भाग अयोध्या की घटनाओं से जुड़ा हुआ है और दूसरा भाग दण्डकारण्य एवं रावणवध सम्बन्धी कथा से। डॉ० याकोबी की नजर में अयोध्याकाण्ड की घटनाएँ ऐतिहासिक तथा दण्डकारण्य एवं रावण वध की कथा वैदिक है और वेदों की देवकथाएँ इसका मूल स्रोत हैं। आज भी अधिकांश विद्वान् इस मत के प्रबल पक्षधर हैं।[1] डॉ० याकोबी के अनुसार रामायण की सीता तथा वैदिक सीता अभिन्न हैं। इनकी दृष्टि में वैदिक काल के देवता 'इन्द्र' रामायणकाल में परिवर्तित होकर 'राम' बन गये हैं, किन्तु राम तथा इन्द्र की अभिन्नता अतिशय विचारणीय है।

वैदिक काल के अन्त में सीता एक बार 'पर्जन्यपत्नी' और एक बार 'इन्द्रपत्नी' कही गयी है, लेकिन इस कारण इन्द्र और राम का मूल रूप एक मानना नितान्त अनावश्यक है।[2] वैदिक काल में न रामायण थी और न रामकथा सम्बन्धी गाथाएँ ही प्रचलित थीं। डॉ० याकोबी भी इस तथ्य को अस्वीकार करते हैं। याकोबी ने जो अयोध्याकाण्ड की घटनाओं को ऐतिहासिक माना है, उसकी प्रमाणिकता अक्षुण्ण है। रामकथा के जिन कतिपय पात्रों के नाम वेदों में उपलब्ध हैं, वे सचमुच रामकथा के पात्र हैं या नहीं, यह विषय विवादास्पद होते हुए भी रामकथा ऐतिहासिक घटनाओं पर आधृत है, यह मेरी सुनिश्चित धारणा है। अयोध्या, पञ्चवटी, चित्रकूट तथा रामेश्वरम् अनन्त काल से रामकथा से संयुक्त माने जाते रहे हैं। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि दाशरथीराम सचमुच जन्म लिए थे तथा उनके चरित्र पर ही वाल्मीकि ने अपनी रामायण बनायी?[3]

ई०डब्लू० हॉटिक्स महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित रामकथा से डॉ० याकोबी के विचार को पुष्ट करते हैं। हॉर्टिक्स के अनुसार इस कथा में राम का जो चरित्र मिलता है, वह किसी प्राचीन देवतासम्बन्धी आख्यान पर आधारित होगा। बाद में इससे सीता, कृषि की अधिष्ठात्री देवी की कथा जोड़ दी गयी और अन्त में वाल्मीकि ने रावण,

---

[1] वैदिक साहित्य में रामकथा का बीज, चन्द्रभान, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष-५५, पृ०-३०१-३०५

[2] डी० रलिगियोन डेस वेद, पृ०-५७ टि०-एच० ओल्डेनवर्ग।

[3] विवेना अरियेण्टल जर्नल, भाग-१६, पृ०-२२६
वही, भाग-१, पृ०-५१६ : एम० विण्टरनित्स।

हनुमान, लङ्का आदि के वृत्तान्त लेकर उसे और बढ़ाया है।[१] किन्तु हार्टिक्स का याकोबी की भाँति राम को किसी प्राचीन देवता (इन्द्र) का विकसित रूप मानना आकासकुसुम प्रतीत होता है। डॉ० वान नेगेलेन भी कहते हैं कि रामकथा वैदिक सांहित्य की सामग्री से निःसृत हुई है। नेगेलेन के अनुसार पुरुरवा-उर्वशी (ऋग्वेद-१०.९५) में मनुष्य के साथ अप्सरा के विवाह में रामकथा का बीज निहित है। सीता का सौन्दर्य तथा दिव्यता उनके अप्सरा होने का बोधक है। नेगेलेन का यह मत विद्वानों की दृष्टि में कपोल कल्पना मात्र है तथा इस मत का व्यापक निरूपण भी विद्वानों के अनुसार अनावश्यक है।[२] डॉ० याकोबी के अनुमान के अनुसार इरानी राम हुवास्त्र तथा भारतीय इन्द्र राम का मूल स्रोत एक ही है; परन्तु याकोबी स्वयं इस तथ्य से इन्कार नहीं करते कि 'अवेस्ता' के देवताओं के अस्पष्ट और धुँधले व्यक्तित्व के कारण इस प्रश्न का निर्णय असम्भव है।[३] राम-हुवास्त्र (ह्वास्त्र) का उल्लेख 'जेंद अवेस्ता' में अधिकतर वायु और मित्र के साथ होता है।[४] राम का अर्थ है–शान्ति, 'मित्र'।

विश्राम और हुवास्त्र का अर्थ चारागाह है। रामहुवास्त्र का अर्थ है—चारागाह में विश्राम। हीब्रू में 'राम' धातु का अर्थ श्रेष्ठ है। बाइबिल में इस धातु से अनेक नगरों के नाम तथा दो-तीन व्यक्तियों के नाम भी मिलते हैं।[५]

प्रारम्भ में वायु तथा मित्र से रामहुवास्त्र (चारागाह में विश्राम) के लिए प्रार्थना की जाती थी, किन्तु बाद में राम हुवास्त्र स्वयं देवता बन गया। इस देवता की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए बुल्के साहब ने स्पष्ट कहा है कि ईरानीय राम हुवास्त्र और भारतीय राम-दाशरथी का कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक असिरियन देवता 'रम्मन' अथवा 'रम्मानु' हैं। हिब्र के अनुसार इसका नाम रिमोन और सिरियन में हदाद है । 'रमानु' धातु का अर्थ मेघगर्जन है तथा वह वज्रपात, आँधी तथा वृष्टि का देवता माना जाता था।[६] श्री दिनेश चन्द्र सेन भी डॉ० बेवर तथा डॉ० याकोबी के ही स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए रामकथा के दो प्रधान

---

१. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर, पृ०-८२

२. ज०अ०आ०सी०, भाग-५०, पृ०-८५ आदि : ई०डब्लू० हॉर्टिकं

३. डस रामायण : एच० याकोबी, पृ०-१३६।

४. सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, भाग-२३ और ३१।

५. दि कसियोनेर द ला बिबल, पेरिस : एफ० विगुरु।

६. बेबी लोनियन–एसिरियन डिक्शनरी : ए० उंगनड आर० डुसो : ले दे कुवेर्ट द रास शकार (पेरिस १९४१) और ले रलिजियो द वैबिलोनी ए दासिरी (पेरिस १९४५, पृ०-९८

मूल स्रोत मानते हैं।[१] उनकी दृष्टि में प्रथम दशरथजातक और दूसरा रावण सम्बन्धी आख्यान। इन दोनों आख्यानों के मणिकाञ्चन संयोग से रामकथा की उत्पत्ति हुई। एक तीसरा गौण आधार है—हनुमान सम्बन्धी सामग्री, जिसमें प्राचीन वानरपूजा द्रष्टव्य है।

जैन साहित्य में रावण-सम्बन्धी कथा स्वतन्त्र रूप से नहीं मिलती और जैन-रामकथा पूर्ण रूप से वाल्मीकि की रामकथा पर आधारित है। इस प्रकार जैन-साहित्य में रामकथा का आधार ढूँढ़ना व्यर्थ और बेमानी है।[२] रामायण की रामकथा के दो भागों में अन्तर स्वाभाविक ही था। रामायण के द्वितीय भाग का वर्ण्य-विषय है—स्त्रीहरण तथा एतद्विषयक भयङ्कर युद्ध। इन स्थलों के काव्यात्मक वर्णन में अतिशयोक्ति का होना अनिवार्य था। अत एव रामकथा के दो सर्वथा भिन्न भाग मानने का कोई औचित्य नहीं दीखता।[३] दरअसल, कोई भी तर्क भारतीयों के इस विश्वास को डिगा नहीं सकता कि रामकथा ऐतिहासिक सत्य है, कल्पित आख्यान नहीं।[४]

उपर्युक्त-दृष्टि निक्षेपण के उपरान्त यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि रामायण पूर्व राम-कथा-सम्बन्धी आख्यानों का प्रचलन मानना अनुपयुक्त है। इन मतों के कारण ही वाल्मीकि का जीवन-काल आगे मान लिया जाता है। डॉ० बुल्के के अनुसार वाल्मीकि रामायण बुद्ध के पहले या ५०० ई० पूर्व की रचना है। रामकथा के पूर्ण विकसित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राम के जीवन-काल के उत्तरार्द्ध में ही शायद वाल्मीकि ने इसकी रचना की। रामायण से प्रक्षिप्तांश को अलग कर दिया जाय तो इसका वैदिक रङ्ग स्पष्टत: उभरता है। अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि रामायण की रचना वेदों के बाद और ५०० ई०पू० बहुत पहले हुई होगी। अत एव उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यही कहना इत्यलम् होगा कि वाल्मीकि-रामायण ही रामकथा का मूल उद्गम स्थल है; क्योंकि यही रामकथा सम्बन्धी उपलब्ध प्रथम कृति है।[५]

रामकथा का वैदिक स्रोत

वेदों में रामकथा के कतिपय पात्रों के नाम मिलते हैं, जिसके आधार पर वैदिक युग में प्रचलित रामकथा का प्रश्न उठाया जा सकता है। ऋग्वेद में इक्ष्वाकु की एक बार

---

[१] दि बंगाली रामायन्स, पृ०-३, ७, २६-४१, ५९; दिनेश चन्द्र सेन।

[२] वही, पृ०-१००, बुल्के : रामकथा।

[३] रामकथा, पृ०-११२, बुल्के।

[४] हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन, पृ०-४३; डॉ० परम लाल गुप्त।

[५] वही, पृ०-४३।

चर्चा हुई है (१०.६०.४); परन्तु इस सूक्त से मात्र इतना ही ज्ञात होता है कि वह कोई धनवान् तथा प्रतापवान् राजा थे। अथर्ववेद में भी एक बार इक्ष्वाकु का नामोल्लेख हुआ है— *'त्वावेद पूर्व इक्ष्वाकोयं'* (१९. ३९.९), इससे भी इतना ज्ञात होता है कि इस मन्त्र के रचनाकाल में इक्ष्वाकु एक प्राचीन ऐश्वर्यवान् राजा माने जाते थे।

वैदिक साहित्य में एक बार दशरथ की चर्चा हुई है— *'चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति'* (१.१२६.४), अर्थात् दशरथ के चालीस भूरे रंग के घोड़े एक हजार घोड़ों के दल का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इसके अलावा इक्ष्वाकु की भाँति ही दशरथ का कोई विशेष परिचय नहीं मिलता है।

मध्य एशिया की एक अर्थजाति-मितन्नि में दशरथ नामक एक प्रसिद्ध राजा का शासन काल १४०० ई०पू० के लगभग माना जाता है।[1]

इसी तरह वैदिक साहित्य में अनेक राम की चर्चा हुई है। तैत्तिरीय आरण्यक (५.८.१३) में राम शब्द का प्रयोग पुत्र के रूप में हुआ है। सायण के अनुसार 'राम' का अर्थ है– *'रमणीय पुत्र'।* कालक्रमानुसार वैदिक साहित्य के अनेक रामों का परिचय मिलता है—

(अ) ऋग्वेद का राजा–राम

ऋग्वेद में 'राम' के नाम का एक बार ही प्रयोग हुआ है—

प्रतद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाव पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्।।[2]

अर्थात् मैंने दुःशीम पृथवान, वैन और राम (१०.९३.१४) (असुर २) इन यजमानों के लिए यह (सूक्त) गाया है। इन्होंने पाँच सौ (घोड़े अथवा रथ) जुतवाए (जिससे) उनका मुझ पर अनुग्रह चारों ओर फैल गया।

(आ) भार्गवेय राम

ऐतरेयब्राह्मण (७.२७-३४) में राम भार्गवेय एवं जनमेजय की एक कथा आयी

---

१. दि बंगाली रामायन्स : दिनेश चन्द्र सेन, पृ०-३९

२. डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री : भाषा-विज्ञान, पृ०-१११ (असुर एक स्वतन्त्र शब्द है। वैदिक साहित्य में यह प्रायः प्रयोग में आता है। पीछे से इसके प्रारम्भ के 'अ' को निषेधात्मक मानकर जो 'सुर' नहीं है, वह असुर है, इस प्रकार भ्रान्त व्युत्पत्ति के आधार पर एक नया सुर शब्द चल पड़ा। वास्तव में सुर शब्द का प्रयोग प्राचीन वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है।)

है, किन्तु रामायण से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। सायण 'भार्गवेय' की व्युत्पत्ति 'भृगु' से बतलाते हैं, और बेवर इसका सम्बन्ध भार्गव ('मनु की एक जाति' १०.१६) से जोड़ते हैं।

(इ) औपतस्विनि राम

शतपथब्राह्मण में 'असंग्रह' नामक यज्ञ के तत्त्व पर विचार-विमर्श की क्रोड़ में अन्य आचार्यों के मत के साथ औपतस्विनि राम के मत का भी उल्लेख हुआ है (४.६.१.७)। इससे यह सिद्ध होता है कि वे उपतस्विन् के पुत्र तथा याज्ञवल्क्य के सकमालीन थे।

(ई) क्रातुजातेय राम

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण के दो प्रसङ्गों में राम के क्रातुजातेय वैयाघ्रपद्य की चर्चा मिलती है। दोनों स्थलों (जै०उप०ब्रा० ३.७.३.२ तथा ४.९.१.१) में वह शंग शात्यायनि आत्रेय का शिष्य है तथा शंख वाभ्रव्य का शिक्षक।

इन अनेकशः रामों से यह स्पष्ट होता है कि भार्गवेय राम ब्राह्मण हैं, औपतस्विन राम आचार्य हैं तथा एक अन्य क्रातुजातेय राम भी आचार्य ही हैं। सिद्ध है कि इनमें से कोई राम दाशरथि नहीं है और न कोई ईश्वर के रूप में आता है।[१] हाँ, यह सही है कि प्राचीनतम वैदिक काल में ही 'राम' का नाम राजाओं तथा ब्राह्मणों–दोनों में प्रचलित था। अश्वपति की चर्चा छान्दोग्योपनिषद् ५.११.४ तथा शतपथब्राह्मण १०.६.१.२ में हुई है। आत्मा और ब्रह्म के विषय में तत्त्वविवेचन ही दोनों ग्रन्थों का वर्ण्य है। एक स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार अश्वपति कैकेय ब्राह्मण को 'वैश्वानर' के तत्त्वों का विवेचन करते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में 'जनक वैदेह' का भी प्रसङ्ग आया है, इससे यह स्पष्ट होता है कि अश्वपति और जनक समकालीन विद्वान् राजा थे।[२] रामायण के इतर पात्रों से किसी सम्बन्ध की सूचना नहीं उपलब्ध होती है।

जनक से प्रथम भेंट हमें कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयब्राह्मण में होती है। सावित्राग्नि-यज्ञ का फल बतलाने के लिए आख्यान दिया गया है, जिसमें जनक वैदेह देवताओं से मिलते हैं। देवता इस यज्ञ के विविध परिणामों का वर्णन करते हैं (३.१०.९)।

कालक्रमानुसार शतपथब्राह्मण में 'जनक वैदेह' तथा याज्ञवल्क्य का उल्लेख चार स्थलों पर आया है। जनक विद्वान् तत्वज्ञ के रूप में याज्ञवल्क्य को भी शिक्षा देते हैं तथा स्वयं ब्राह्मण बन जाते हैं।

---

[१] हिन्दी-साहित्य : धीरेन्द्र वर्मा, पृ०-३००.

[२] रामकथा–डॉ० कामिल बुल्के, पृ०-४.

शतपथब्राह्मण का प्रथम प्रसङ्ग (११.३.१.२-४) जैमिनीब्राह्मण में भी द्रष्टव्य है (१.१९)। यहाँ एक जनक वैदेह अग्निहोत्र के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछते हैं तथा समुचित उत्तर मिलने पर उनको १०० गायों से पुरस्कृत करते हैं।

शतपथब्राह्मण के द्वितीय प्रसङ्ग (११.४.३.२०) में जनक याज्ञवल्क्य में मित्र विंद को पाकर उनको एक सहस्र गायों से पुरस्कृत करते हैं। शतपथब्राह्मण के तृतीय प्रसङ्ग (११.६.२.१.१०) में जनक ब्राह्मण के रूप में उपस्थित हुए हैं।

शतपथब्राह्मण के चतुर्थ प्रसङ्ग (११.६.३.१ आदि) जैमिनी ब्राह्मण (२.७६-७७), वृहदारण्यकोपनिषद् (३.१.१-२) आदि में प्राप्य है। इस प्रसङ्ग के अनुसार जनक अमित दक्षिणा प्रदान कर एक यज्ञ का आयोजन करते हैं, तथा सर्वश्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण को १००० गायों का पुरस्कार देने की प्रतिज्ञा करते हैं।

वृहदारण्यक (४.१.१ से ४.४.७ तक) के एक अन्य प्रसङ्गानुसार जनक और याज्ञवल्क्य से सम्बन्धित एक पृथक् वृत्तान्त मिलता है जिसमें याज्ञवल्क्य जनक को शिक्षा देते हैं। वृहदारण्यक के दो अन्य स्थलों (५.१४.८) और (२.१.१) में भी जनक की चर्चा हुई है। इसमें दूसरा स्थल महत्त्वपूर्ण है। यहाँ गार्ग्य, बालाकि तथा अजातशत्रु का वार्त्तालाप है, जो ईषत् उलट-फेर के साथ कौषीतकी उपनिषद् (४.१) और शाङ्खायन आरण्यक (६.१) में भी प्राप्य है। गार्ग्य, बालाकि, अजातशत्रु[1] काशीनरेश के यहाँ जाकर कहते हैं कि 'क्या मैं ब्रह्म के विषय में कथन करुँ?... अजातशत्रु के उत्तर में जनक से ईर्ष्या झलकती है—'इस वचन के लिए मैं एक सहस्र दूँगा; क्योंकि सबके सब... 'जनक (वैदेह)' जनक (पिता, संरक्षक) ही हैं। 'कहकर उनके यहाँ दौड़कर जाते हैं''।

उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है कि रामायण के अन्य पात्रों की भाँति जनक की चर्चा वैदिक साहित्य में अधिक हुई है, लेकिन वैदिक साहित्य में कही भी इसका उल्लेख नहीं मिलता कि सीता जनक की पुत्री या राम उनके जमाता हैं।

वैदिक सीता के दो रूप हैं। प्रथमतः सीता कृषि अधिष्ठात्री देवी हैं, जिसका उल्लेख ऋग्वेद से लेकर सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर हुआ है। द्वितीय सीता का परिचय हमें तैत्तिरीयब्राह्मण में मिलता है, जिसमें सीता सावित्री, सूर्यपुत्री तथा सोम राजा का उपाख्यान कुछ विस्तार सहित दिया गया है। सीता सावित्री की कथा कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीयब्राह्मण (२.३.१०) में मिलती है, लेकिन सीता सावित्री की कथा से रामकथा का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ता।

---

[1] यह अजातशत्रु काशी के राजा हैं तथा मगध के राजा (४९१ ई०पू०) से पृथक् हैं।

कामिल बुल्के महोदय यह सम्भावना व्यक्त करते हैं कि अनुसूया के अंगराग का वृत्तान्त उससे प्रभावित हो सकता है।[१]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि रामकथा की विनिर्मित्ति में वैदिक सामग्रियाँ अत्यन्त सहायता करती हैं। इसलिए रामकथा के स्रोत के रूप में वैदिक साहित्य अतिशय महत्त्वपूर्ण है।

लोकगाथात्मक स्रोत

'प्रभावशाली प्राकृतिक दृश्यों और शक्तियों में देवताओं की कल्पना कर ली गई है।[२] कार्यक्षेत्रानुसार ये देवता तीन प्रकार के हैं— द्युलोक, आकाश और पृथ्वी के देवता। फिर भी सूर्य, द्यौ, वायु, उषा, वरुण, मित्र, पर्जन्यादि देवताओं का उल्लेख है।[३] इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के देवताओं की भी कल्पना की गयी, जिनमें क्षेत्रयतिवस्तोष्पति (घर का देवता) सीता तथा उर्वरा (उपजाऊ भूमि) प्रमुख है। यद्यपि धार्मिक चेतना में इनका स्थान गौण था। सीता, क्षेत्रपति आदि कृषि सम्बन्धी देवताओं के गौण महत्त्व का कारण प्रारम्भ में कृषि की अपेक्षा पशुपालन का प्राधान्य रहा होगा।[४]

वैदिक साहित्य की अपेक्षा गृह्यसूत्र में सीता सम्बन्धी सामग्री पर्याप्त मात्रा में मिलती है। काठक गृह्य सूत्र के शब्दों में दो सीताएँ खींची जाती हैं तथा 'सीए भुञ्जति' मन्त्र पढ़कर सीता में भी डाला जाता है।[५] 'लागंलयोजनम्' का वर्णन चारों वेदों के गृह्यसूत्रों में देखा जा सकता है। मानव गृह्यसूत्र के अनुसार अन्य सभी त्योहारों में उन्हीं देवताओं की पूजा होनी चाहिए।[६] इनमें सीता प्रमुख हैं। ऋग्वेद के सूक्तों (१.४.५७) में क्षेत्रपति, शुनासीर, शुन तथा सीता का वर्णन है। कौशिक सूक्त के तेरहवें अध्याय में भी अपशकुन के शमनार्थ सीता की वन्दना की गयी है। 'सीता-यज्ञ' का विस्तृत वर्णन पारस्कर गृह्यसूत्र (८ देवता) में भी द्रष्टव्य है। अत: वाल्मीकि रामायण पर भी सीता, कृषि की अधिष्ठात्री देवी का प्रभाव पड़ा है।[१] आदिकाल के प्रथम सर्ग से, (जिसे मूल रामायण भी कहते हैं) यह सिद्ध है कि वाल्मीकि द्वारा आदि काव्य रामायण लिखे जाने

---

१. रामकथा, पृ०-१२, डॉ० कामिल बुल्के।
२. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ०-४१, बेनी प्रसाद।
३. रामकथा, पृ०-११, बुल्के।
४. रामकथा, पृ०-१२, बुल्के।
५. काठक गृह्य सूत्र ७१.१-६ (दयानन्द महाविद्यालय, संस्कृत ग्रन्थमाला-९)
६. भाष्यकार देवपाल के अनुसार यह पूजा कृषकों के लिए है—'कृषिवृत्ति जीवनै:'।
७. रामकथा, पृ०-२३, बुल्के।

के पूर्व रामकथा पर कोई छोटा-मोटा लोक-काव्य अवश्य था, वही लोक-काव्य वाल्मीकि की रामायण का आधार बना।[१]

फादर कामिल बुल्के ने भी समहति प्रकट करते हुए कहा है कि वाल्मीकि के पूर्व रामकथा सम्बन्धी गाथाएँ प्रचलित हो चुकी थीं।[२] इसका प्रमाण हमें बौद्ध त्रिपिटक में मिलता है।[३]

यद्यपि त्रिपिटक के ५४७ जातकों में टक्खस, बन्दर, दानव की बहुत-सी कहानियाँ मिलती हैं, लेकिन रावण और हनुमान की कहीं चर्चा नहीं मिलती। हरिवंश-पुराण के एक श्लोक में रामकथा के स्रोत का उल्लेख मिलता है—

गाथा अप्यत्र गायति ये पुराण विदो जनाः।
रामे निबद्ध तत्वार्था महात्म्यं तस्य धीमतः।।[४]

वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ के प्रसङ्गानुसार नारद से कथा सुनने के उपरान्त वाल्मीकि ने इसका अन्वेषण किया—*'व्यक्त मन्वेषते भूयो यद् वृत्तम्'* (१.३०.१)। अन्य पाठों (गो०रा० १.२ और प०रा० १.४.१) में भी तत्सम्बन्धी श्लोक लोकगाथा की ओर इशारा करते हैं—

श्रुत्वापूर्वं काव्य बीजं देवर्षेनारिदादुषिः
लोकादन्विष्य भुयश्च चरितं चरितव्रतः।

भान होता है कि राम सम्बन्धी गाथा-साहित्य का उद्भव इक्ष्वाकुवंश में हुआ था—

दक्ष्वाकुणामिदं तेषां राजावंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्।।[५]

गाथा की काठक संहिता (१४.५) में 'गाथा नृतं नारांशंसी' कहा गया है। इसके रचयिता तथा संरक्षक राजदरवार के सूत थे। कुशोलव जन-साधारण के बीच इन गीतों का प्रचार करते थे।[६] वाल्मीकि की आदि रामायण के बालकाण्ड के चतुर्थ सर्ग से स्पष्ट होता है कि वाल्मीकि का आदि रामायण सूतों की सम्पत्ति न बनकर काव्योपजीवी कुशोलवों द्वारा पहले जनता में लोकप्रियता प्राप्त करने लगी और कालान्तर में दरवारों

---

[१] तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य, पृ०-१२, डॉ० रामलखन पाण्डेय।
[२] रामकथा, पृ०-१३३, डॉ० कामिल बुल्के।
[३] हि०ई०लि०, भाग-१, पृ०-३१४, ए०एम० विण्टरनित्स।
[४] हरिवंशपुराण-१, अध्याय ४१-१४९।
[५] वाल्मीकि रामायण १.५.३।
[६] रामकथा टिप्पणी, पृ०-१३४।

में प्रवेश कर सकी।[१] दशरथ जातक को 'पौराणिक पण्डित' शब्द भी यही सिद्ध करता है। महाभारत के द्रोणपर्व और शान्तिपर्व का सङ्क्षिप्त रामचरितमानस प्राचीन गाथा पर आधारित प्रतीत होता है। महाभारत में रामकथा का प्रवेश यह सिद्ध करता है कि राम सम्बन्धी आख्यान-काव्य कोसल प्रदेश तक ही सीमित नहीं था, अपितु सुदूर पश्चिम की ओर भी फैलने लगा था। पालि त्रिपिटक के रचनाकाल (चौथी शताब्दी ई०पू०) तक रामकथात्मक आख्यान पूर्णत: पल्लवित-पुष्पित हो चुका था, किन्तु रामायण की रचना उस समय तक नहीं हुई थी।

वैस्सन्तर जातक की कथावस्तु रामायण के वृत्तान्त से मिलती-जुलती है। राम जातक का वृत्तान्त दशरथ द्वारा अन्ध मुनि पुत्र-वध की कथा को आधार माना जा सकता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि वैदिक काल के पश्चात् तथा चौथी शताब्दी ई०पू० के पूर्व सम्भवत: छठी शताब्दी में इस रामकथा सम्बन्धी आख्यानकाव्य की उत्पत्ति हुई होगी। किसी पुष्ट प्रमाण के बिना इसके रचनाकाल का समय निर्धारण निश्चित नहीं किया जा सकता, फिर भी हम देखते हैं कि शुरु से ही दान स्तुति-स्वरूप 'नाराशंसी' गाथाओं की चर्चा ऋग्वेद (१०.८५.६) में हुई है। इसलिए इसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता।

यह जनमानस का एक प्रमुख अङ्ग है। धार्मिक संस्कारों तथा यज्ञादि के अवसरों पर यह प्राचीन काल से ही सुनाया और गाया जाता रहा है।[२]

ऐतिहासिक स्रोत

डॉ० याकोबी के अनुसार अयोध्याकाण्ड की घटनाएँ ऐतिहासिक हैं, लेकिन वाल्मीकीय रामायण के प्रक्षिप्तांशों को छोड़कर उनके मूल रूप को ऐतिहासिक मानने में उन्हें कोई बाधा नहीं दिखाई देती।[३] बुल्के साहब के भी मतानुसार अयोध्याकाण्ड तथा रामायण के अन्य काण्डों के कथानक में कोई मौलिक अन्तर मानने की आवश्यकता नहीं है;[४] परन्तु डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी को इस पर गम्भीर आपत्ति है कि राम की ऐतिहासिकता प्राचीन भारत के किसी भी गम्भीर विद्यार्थी को स्वीकार्य नहीं है।[५] किन्तु रामायण के आदि पर्व में वाल्मीकि के पूछने पर नारद ने जिस

---

१. रामकथा, पृ०-९८, बुल्के।

२. शतपथब्राह्मण १३.४.३; शाङ्खायनगृह्यसूत्र १.२२.११ आदि।

३. हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन, पृ०-४२, डॉ० परम लाल गुप्त।

४. रामकथा, पृ०-११३, डॉ० कामिल बुल्के।

५. ज०ए०सो० बं० भाग-१६ (१९५०), पृ०-७६।

महापुरुष (राम) का गुण गायन किया है, इससे रामकथा की ऐतिहासिकता की पुष्टि हो जाती है।[१]

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर राम की ऐतिहासिकता स्वयं सिद्ध है। उन्होंने अपने दिव्य तथा अलौकिक व्यक्तित्व के बल पर जन-चेतना को आलोड़ित किया और वे काव्य-पुरुष बन गये। कवि कल्पना ने इसमें अभूतपूर्व परविर्तन-परिमार्जन किया, फिर भी इस तथ्य से मुख मोड़ा नहीं जा सकता कि बौद्ध तथा जैन पुराण-ग्रन्थों एवं विदेशी साहित्य की रामकथा में जो अवान्तर भेद है, उनमें राम की ऐतिहासिकता के कारण मूलभूत समानता भी है। यह मौलिक समानता सीताहरण तथा रावण-वध की है।[२]

दिनकर जी के शब्दों में—

'रामकथा के जिन पात्रों के नाम वेदों में मिलते हैं, वे निश्चित रूप से रामकथा के पात्र हैं या नहीं, इस विषय में सन्देह रखते हुए भी यह मानने में कोई बड़ी बाधा नहीं दिखती कि रामकथा ऐतिहासिक घटना पर आधारित है'।[३]

डॉ० बेवर की दृष्टि में रामायण रूपक काव्य है तथा सीता ऐतिहासिक पात्रा न होकर खेत की सीता (लाङ्गल पद्धति) की प्रतीक है और उर्मिला का अर्थ है–लहराता हुआ खेत। भवभूति ने भी 'उत्तररामचरित' में सीता के पिता जनक को 'सीरध्वज' की संज्ञा से अभिहित किया है जिसका सम्बन्ध कृषि से है। डॉ० बेलवलकर के अनुसार कुश एक घास है और लव का अर्थ लुनना है।[४] बेवर ने राम दाशरथि और बलराम (हलभृत) को अभिन्न सिद्ध किया है और राम वनवास को उन्होंने हेमन्त ऋतु का बोधक माना है, किन्तु इनका मत अवैज्ञानिक है। राम की दक्षिण यात्रा के फलस्वरूप दक्षिण की सभ्यता या कृषि में कोई युगान्तकारी परिवर्तन हुआ हो, यह रामायण में कहीं उल्लिखित नहीं है।[५] सचमुच, रामकथा का कृषि से कोई विशेष लगाव नहीं प्रतीत होता।

जे०टी० ह्वीलर के अनुसार रामकथा के प्रसूति का कारण ब्राह्मण तथा बौद्धधर्म का पारस्परिक संघर्ष ही है। दिनेश चन्द्र सेन का अनुमान है कि वाल्मीकि ने बौद्ध भिक्षुओं की प्रतिक्रिया स्वरूप गार्हस्थ्य जीवन का आदर्श स्थापित करने हेतु ही रामायण की रचना की। आदि रामायण में बुद्ध तथा बौद्ध दर्शन का कहीं सङ्केत नहीं मिलता।

---

१. वा०रा०, बालकाण्ड १.७.८

२. तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम-साहित्य, पृ०-११, डॉ० रामलखन पाण्डेय।

३. संस्कृति के चार अध्याय, पृ०-८२, दिनकर।

४. उत्तररामचरित, भूमिका, पृ०-५९।

५. ए०ए० मैक्डानल, उत्तररामचरित, पृ०-३११।

शङ्कराचार्य ने 'आत्मबोध' में रामकथा विषयक रूपक का आभास दिया है—

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वारागद्वेषांश्च राक्षसान् ।
शान्ति सीता समायुक्त आत्म रामो विराजते ।।१५०।।

आनन्द रामायण के विलास काण्ड के देह रामायण नामक तृतीय सर्ग में रामकथा की सम्पूर्ण घटनाओं का प्रतीकात्मक अर्थ प्रतिपादित किया गया है। वेदा तोरे सुब्ब राव के अनुसार रामायण का अर्थ दार्शनिक है।[1] रामायण के भौगोलिक स्थान स्वयमेव योगशास्त्र के चक्र हैं। ई० मूर भी रामकथा में एक दार्शनिक शास्त्र का प्रतिपादन करते हैं।[2] तुलसी साहब ने अपने घट-रामायण में रामकथा को अपने शरीर के भीतर ही अवतीर्ण किया है—

घट में रावन राम जो लेखा । भरत शत्रुघ्न दसरथ पेखा ।।[3]

ऐतिहासिकता के साथ कवि ने पात्रों के आदर्शवाद का पल्लवन किया है। मात्र यही कारण है कि राम नैतिकता तथा रावण अनैतिकता के प्रतीक स्तम्भ बन गये हैं, मगर इसी कारण समस्त कथा में रूपक या प्रतीक का अन्वेषण करना भोलापन है।

रामकथा की ऐतिहासिकता पर विश्वास करते हुए भी एम० वेङ्कटरत्नम् का कथन है कि रामकथा वास्तव में मिस्र देश के रेमसेस नामक राजा का इतिहास है।[4] मिस्र देश की पुरातन पौराणिक कथाओं के अनुसार नू (आकाश) तथा गेब (पृथ्वी) के संयोग से रा अथवा रे (सूर्य) उत्पन्न हुआ।[5]

रैमेस का अर्थ है—'रा ने उसे जन्माया' (मस धातु का अर्थ है जन्म लेना)।[6] रैमेन्स (१२९८-१२३२) मिश्र का महान सम्राट् था। उसने अपने शासन काल के पूर्वार्द्ध में हिटैट संघ के विरुद्ध युद्ध कर विजयश्री का वरण किया और हिटैट की राज्यकन्या से विवाह किया, तदुपरान्त १२३२ ई०पू० तक एक विशाल राज्य का शान्तिपूर्वक शासन किया।[7]

---

[1] दे० क्वार्टर्ली जर्नल मिथिक सोसाइटी, भाग-२२, पृ०-५१४।

[2] दे०ई० मूर : द हिन्दू पन्थेयान, पृ०-३२९टि०।

[3] घट रामायण, पृ०-११; तुलसीसाहब।

[4] दे० वेङ्कटरत्नम् : एम दि ग्रेटेस्ट फेरो ऑफ ईजिप्ट-१९३४।

[5] जे० वान्डिवे : ला रलिजियाँ एजिपशियेन पेरिस-१९४४।

[6] दे० एटुडस : भाग १७३ (१९२२), पृ०-१४७।

[7] ए० मोरे : हिस्टवार दि लोरियन, पेरिस, १९३६, भाग-२, पृ०-५४७ आदि।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अनुशीलन-परिशीलन के उपरान्त मेरी सुनिश्चित स्थापना है कि रामकथा ऐतिहासिक सत्य पर आरुढ़ है। राम एक ऐतिहासिक पुरुष थे। उनकी जीवनगाथा पहले जन-जीवन में गेय बनी, तत्पश्चात् काव्य का वर्ण्य-विषय बनी। इसके बाद रामकथा कल्पना, अनुमान, दर्शन, चिन्तन तथा प्रतीकादि के सम्मिश्रण से नित्य नूतन होता गया और राम क्रमशः पुरुषोत्तम से ईश्वर के रूप में पूजित होने लगे।

रामकथा का विकास

महाभारत में वाल्मीकि का प्रसङ्ग आया है। इससे सिद्ध होता है कि महाभारत के रचनाकाल में ही वाल्मीकीय रामायण का प्रचार-प्रसार हो चुका था। रामायण में महाभारत का उल्लेख नहीं आया है। लेकिन महाभारत में रामायण की प्रासङ्गिक चर्चा आयी है। डॉ० बुल्के का मत है कि भारत और महाभारत की पृथक्-पृथक् रचनाओं के बीच रामायण की रचना हुई। श्लेगेल ने रामायण का रचना-काल ११-१२वीं शताब्दी ई०पू० माना है। याकोबी के अनुसार रामायण का रचना-काल हम पाँचवीं ई०पू०, छठी तथा आठवीं ई०पू० के बीच मानते हैं।[१] वाल्मीकि ने राम को एक महापुरुष के रूप में चित्रित किया था, उस समय तक अवतारवाद की कल्पना नहीं की गयी थी। वाल्मीकि के राम कर्त्तव्य परायण, धार्मिक तथा चारित्रिक दुर्बलताओं के पुतला हैं। वाल्मीकि रामायण में घटनाओं का प्राकृत रूप उपस्थित है। सभी पात्र लौकिक हैं। राम कहीं भी अपने आपको अलौकिक नहीं कहते। काव्य कला की दृष्टि से अगर यह एक ओर परवर्ती साहित्य को प्रभावित करता है, तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति पर भी इसका पुष्कल प्रभाव दृष्टिगत है। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में मिलन-विरह की अप्रतिम विवृत्ति की है। राम सङ्गीत तथा विलास क्रीड़ाओं में प्रवीण है। महाकाव्य की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण खरा उतरती है, मैं तो स्पष्ट शब्दों में कहना चाहूँगा कि प्रचलित रामकथा के प्रवर्तक वाल्मीकि ही हैं।

संस्कृत-साहित्य

ईसा की पहली शताब्दी में ही राम को ईश्वर की उपाधि मिलने लगी थी। रामायण के प्रक्षिप्तांश इसके प्रबल प्रमाण हैं। कालान्तर से राम को पूर्ण ब्रह्म मानकर उनकी वन्दना शुरु हो गयी और विपुल धर्मग्रन्थों का प्रणयन का श्रीगणेश हुआ—पुराणों की रचना हुई।

उपनिषद्—राम तापनीयोपनिषद्, रामोत्तर तापनीयोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्, सीतोपनिषद्, मैथिली महोपनिषद् आदि में राम तथा सीता के ईश्वरत्व का प्रतिपादन

---

[१] एच० योकोबी : डस रामायण, पृ०-१०१ आदि।

किया गया है। इनका रचना-काल ग्यारहवीं शताब्दी है।

संहिता—हनुमत्संहिता (सं० १५१५ वि०) हस्तलिखित प्राप्य है। इसमें राम को रास-लीला और जलक्रीड़ा का वर्णन है।[1] शिवसंहिता में रामसीता प्रेम प्रसङ्ग है। वृहद् ब्रह्म संहिता में राधाकृष्ण के साथ ही साथ सीताराम की युगल उपासना का विधान परिलक्षित है। अगस्त्यसंहिता में राम मन्त्र वर्णित है।

'शुकसंहिता' के रासप्रसङ्ग में राम शरीर में प्रविष्ट होकर माधुरी कुञ्ज में जानकी के साथ रमण करते हैं। 'वसिष्ठसंहिता' में दिव्य अयोध्या का चित्रण किया गया है। 'उमा-शिवसंहिता' में सीताराम की ध्यान-विधि वर्णित है। ब्रह्मसंहिता तथा हिरण्यगर्भ-संहिता में राम को पूर्ण अवतार तथा पूर्ण ब्रह्म माना गया है। 'महासदाशिवसंहिता' और 'महाप्रभुसंहिता' में राम को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। वृद्धराघव, कालिराघव तथा राघवीय रामाख्यान पर ही आधारित है।

स्तवराज और गीति—'सनत्कुमार संहिता' से सङ्कलित श्रीराम स्तवराज में राम की देवता, सीता को बीज और हनुमान को शक्ति रूप माना गया है। इसमें राम परम पूज्य माने गये हैं। 'अगस्त्य संहिता' से सङ्कलित श्रीजानकी स्तवराज में सीता के आपादमस्तक ध्यान तथा अङ्गाङ्गों का मधुर रूप उपस्थित किया गया है।

'श्रीजानकी गीति' में चन्द्रकला द्वारा वनशोभा तथा सखियों के साथ राम की क्रीड़ा का वृत्तान्त सुनकर सीताजी प्रणयपीड़िता हो जाती हैं। इसके अनन्तर राम द्वारा मनुहार, मानलीलाशमन और केलि की चर्चा है। 'श्री सहस्रगीति' में भागवतमहात्म्य का विवेचन है। इसका रचना-काल सातवीं शताब्दी है।

साम्प्रदायिक रामायण—योगवसिष्ठ (आठवीं शताब्दी)—योगवसिष्ठ का रचना-काल आठवीं शताब्दी या उसके पूर्व माना गया है।[2] इसका प्रमुख प्रतिपाद्य है–वसिष्ठ-राम संवाद। इसमें वसिष्ठ ने राम को मोक्ष प्राप्ति पर उपदेश दिया है। इसमें योग, भक्ति तथा कर्म की उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है।

अध्यात्म रामायण (१४वीं-१५वीं शताब्दी) एक नाथ ने (१६वीं शताब्दी) इसे एक आधुनिक रचना कहा है। अतः इसकी प्राचीनता में काफी सन्देह है।[3] रामानन्द को इसका रचयिता सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें राम को ब्रह्म कहा गया है—

---

[1] हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य, अनुशीलन, गुप्त, पृ०-४६।

[2] कल्याण, सङ्क्षिप्त योगवासिष्ठ अङ्क, जानकी नाथ शर्मा, पृ०-५-६

[3] कलकत्ता संस्कृत सीरीज, भाग-११, भूमिका।

विश्वोद्भाव स्थिति लयविषु हेतुमेकं मायात्रयं विगतमायम चिन्त्यमूर्त्तिम्।
आनन्द सान्द्रेममलं निजशोध रूपं सीतापतिं विदित तत्वमहं नमामि।[१]

राम दशरथपुत्र बनकर महिभार उतारते हैं। तुलसी ने आध्यात्म रामायण से प्रभविष्णुता प्राप्त कर ही रामचरितमानस की रचना की। अद्भुत रामायण आध्यात्म रामायण के बाद की रचना है।[२] इसमें (सर्ग २-८) रामावतार के कारण, वाल्मीकीय रामचरित (सर्ग ९-१६) तथा सीता द्वारा दैवी रूप में सहस्र मुख रावण के वध (सर्ग १७-२७) पर प्रकाश डाला गया है।

आनन्द रामायण—(अनुमानतः १५वीं शताब्दी) आनन्द रामायण की रचना अध्यात्म रामायण के बाद तथा एक नाथ (१६वीं शताब्दी) के पहले की बतायी जाती है।[४] अनेक स्थलों पर इसमें अध्यात्म रामायण के उद्धरण मिलते हैं।[५] इस रामायण में राम की उत्तरार्द्ध-जीवनगाथा का सविस्तर वर्णन मिलता है। तत्त्व-संग्रह-रामायण (१७वीं शताब्दी) रामकथा के तत्त्व (ब्रह्मवाद) पर विवेचित हुई है।

काल निर्णय रामायण—इसमें रामकथा की प्रमुख घटनाओं की तिथियों का उल्लेख है।

गौण रामायण—इसके भीतर रामायणों की गणना की जाती है।

महारामायण—श्री जानकी जीवन दास ने सं० १९८५ ई० में की थी।

मन्त्र रामायण—इसका मूलोद्देश्य है–रामायण के वेद मूल तत्त्व का प्रतिपादन।

वेदान्त रामायण—इसमें परशुराम का चरितचित्रण हुआ है।

अन्य धार्मिक साहित्य—जैमिनी भारत-रचना काल १३वीं शताब्दी ईसा पूर्व है।

सत्योपाख्यान (धर्मखण्ड) हनुमतसंहिता, तुलसीदास के जीवन-काल में ही इसकी रचना हुई थी।

ललित साहित्य—महाकाव्य

---

१. दि आथर शिप ऑफ दि अध्यात्म रामायण, जर्नल, गङ्गानाथ झॉ रिसर्च इन्स्टीट्यूट, भाग-१, पृ०-२१५-३९।
२. आध्यात्म रामायण-१.१.२।
३. ग्रियर्सन : ऑन दि अद्भुत रामायण, बुलेटिन स्कूल ओरयन्टल स्टडिज, भाग-४, पृ०-११।
४. गोपाल नारायण (बम्बई) का संस्करण।
५. गोपाल नारायण : श्री रामायण समालोचना, भाग-२, पृ०-४२५।

रघुवंश (कालिदासकृत) रचना ४०० ई० के लगभग।
रावणवध अथवा सेतुबन्ध (५५०-६०० ई०)
जानकीहरण (४०० ई०) प्रणेता कुमारदास,
अभिनन्दकृत रामचरित (९वीं शताब्दी)।

काश्मीरनिवासी क्षेमेन्द्र ने १०३७ ई० में रामायण मञ्जरी की रचना की तथा दशावतारचरितम् नामक ग्रन्थ की रचना १०६६ ई० में की। उदार राधव (१४वीं शताब्दी के बीच) साकल्य मल्ल नामक कवि द्वारा रचित है।

उत्तर कालीन महाकाव्य—रघुनाथचरित–वामन भट्ट बाण (अभिनव बाणभट्ट) द्वारा रचित १५वीं शताब्दी की रचना है।

स्फुट काव्य—विश्वनाथकृत राघव विलास, मुद्गलभट्टकृत रामार्याशतक, कृष्णेन्द्र कृत आर्यारामायण में भी रामकथा मिलती है।

श्लेष काव्य—(१) रामचरित (सन्ध्याकर नन्दि) रचनाकाल १२वीं शताब्दी
(२) राघव पाण्डवीय (माधव भट्ट) १२वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध।
(३) राघव पाण्डेय यादवीय (चिदम्बर)–१६०० ई के लगभग।
(४) राघव नैषधीय (हरिदत्त सूरि)–राम तथा नल चरित्र।
(५) राघव पाण्डवीय (दिगम्बर जैन धनञ्जय) १२वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध।

विलोम काव्य—रामकृष्ण विलोम काव्य, सूर्यदेव–१५४० ई०।

चित्रकाव्य—रामलीलामृत (चित्रबन्ध रामायण), आंन्ध्रवासी वेङ्कटेश।

नीतिकाव्य—सन्नीति रामायण (१५वीं शताब्दी) रचयिता राम-कवि।

नाटक—प्रतिमानाटक, अभिषेक नाटक भासकृत। महावीरचरित–रामकथा के सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ८वीं शती ईव के पूर्वार्द्ध में हुए थे।

उत्तररामचरित (८वीं शती ई०पू०) भवभूति।
उदात्तराघव की रचना अनंग हर्ष मायुराज (मात्र राज) ने ८वीं शती में की।
कुन्दमाला के रचयिता–छिङ्नाग हैं।
अनर्घराघव (मुरारि) रचना–काल ९०० ई० है।
बालरामायण (राजेश्वर) १०वीं शताब्दी।
हनुमन्नाटक (हनुमान) १०वीं शताब्दी।
शक्तिभद्रकृत आश्चर्यचूड़ामणि, रामसम्बन्धी प्राचीन अप्राप्य नाटक

नाटक—क्षेमेन्द्रकृत कनक जानकी, क्षीरस्वामीकृत अभिनव राघव (१०वीं

शताब्दी), रामचन्द्र (हेमचन्द्र के शिष्य) के दो नाटक अप्राप्य हैं—रघुविलास और राघवाभ्युदय–१२वीं शताब्दी।

यशोवर्मन का रामाभ्युदय (८वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध)। रामानन्द की रचना सन् ९०० के पूर्व हुई। छलित राम (९वीं शताब्दी) कृत्यारावण की रचना सम्भवतः ९वीं शती पूर्वार्द्ध में हुई।

मायापुष्पक—१०वीं शताब्दी से भी पूर्व की रचना है। स्वप्न दशानन के रचयिता भीमट हैं। रचनाकाल १०वीं शताब्दी पूर्व। मारीच वञ्चित, रामविक्रम राघवानन्द (रचनाकाल १०वीं शताब्दी)। अभिजात जानकी का तृतीय अङ्क सेतु निर्माण से सम्बद्ध है। जयदेवकृत प्रसन्न राघव–महादेव पुत्र जयदेव ने १२वीं या १३वीं शताब्दी में प्रसन्नराघव की रचना की। उल्लाषराघव—गुजरात निवासी सोमेश्वर ने उल्लाष राघव की रचना १३वीं शती ई० पूर्वार्द्ध में की थी। जैन कवि हस्तिमल्ल ने मैथिली कल्याण (१२९० ई० के लगभग) की रचना की। सुभट्टकृत दूतांगद (१३वीं शताब्दी) भाष्कार भट्ट—उन्मत्तराघव (१४वीं शताब्दी)। रामाभ्युदय (व्यासमित्र देव) रचनाकाल १५वीं शती का पूर्वार्द्ध है। विस्माक्षकृत उन्मत्तराघव (१५वीं शती) व्यास मिश्र देवकृत रामाभ्युदय (१५वीं शताब्दी)।

शृङ्गारिक खण्ड-काव्य

हंससन्देश अथवा हंसदूत के रचयिता के कई नाम आये हैं—वेङ्कटदेशिक, वेङ्कटनाथ, वेदान्ताचार्य तथा श्री वेदान्तदेशिक (रचनाकाल १३वीं शती ई०)।

कथा-साहित्य—विद्वानों के मतानुसार रामकथा की सर्वाधिक प्राचीन कृति गुणादय कृत वृहत्कथा है (रचनाकाल प्रथम शती ई० पूर्व है)। गुणाढ्य की कृति को क्षेमेन्द्र नेगी ने सङ्क्षिप्त किया है तथा क्षेमेन्द्र ने वृहत्कथामञ्जरी में रामकथा अतिसङ्क्षिप्त रूप में वर्णित किया है।

कथासरित्सागर (सोमदेव)—रचनाकाल ११वीं शताब्दी।

चम्पूसाहित्य—१५वीं शताब्दी के बाद चम्पूसाहित्य का प्रणयन हुआ। इसका अधिकांश भाग अप्रकाशित है। सर्वाधिक प्राचीन और सर्वाधिक प्रचलित राम सम्बन्धी चम्पू की रचना ११वीं शताब्दी में विदर्भ राजा भोज द्वारा हुई थी। दिवाकर कृत अमोघ राघव चम्पू का रचनाकाल १३वीं शताब्दी ई०।

जैन परम्परा में रामकथा

संस्कृत जैनियों में रामकथा दो रूपों में प्रचलित है—पहला विमलसूरि की रामकथा तथा दूसरा गुणभद्र की रामकथा। विमलसूरि का 'पद्मचरित' चौथी शताब्दी की

रचना है। इसका संस्कृत उत्था रवि वेणाचार्य ने ६६० ई० में किया। इसके आधार पर जैन रामायण हेमचन्द्र (१२वीं शती), रामपुराण-जिन दास (१५वीं शती), रामचरित परमदेव विजय गणि (१६वीं शती), रामचरित-सोमसेन (१६वीं शती) की कृतियाँ हैं। गुणभद्र ने 'उत्तर पुराण की रचना ८९७ ई० में की। पुष्पदन (१०वीं शताब्दी) ने श्वेताम्बर मतावलम्बी गुणभद्र के 'उत्तरपुराण' में चर्चित रामकथा का अनुकरण किया है।

प्राकृत—पउमचरिखं–विमलसूरि कृत यह ग्रन्थ जैन परम्परा के रामसाहित्य में सर्वाधिक पुरातन तथा पृथुल है। यह तीसरी चौथी शताब्दी की रचना है।

वसुदेव हिंडी–पाँचवीं शती में संघदास ने रामकथा का जैन रूपान्तर प्रस्तुत किया है।

चउपण्णम हापुरिसचरिय (९वीं शताब्दी) इसमें शीलाचार्य ने 'राम-लक्खण चरियं' का वर्णन किया है। कहावली (भद्रेश्वर) रचनाकाल ११वीं शताब्दी १ सीया चरियं (भुवन तुंगसूरि) प्राकृत की रचना है। भुवनतुंगसूरिकृत 'रामलक्खण चरियं' नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध है।

अपभ्रंस—पउम चरिउ (पद्मचरित) स्वयं भूदेव कृत इस कृति का रंचनाकाल ८वीं शताब्दी है। वर्तमान 'पउम-चरिउ' स्वयंभू तथा उसके पुत्र त्रिभुवन की सम्मिलित कृति है। इस कृति में घटना और कवित्व दोनों की प्रचुरता है।[1] स्वयंभू को अपभ्रंश का वाल्मीकि कहा गया है। पद्मपुराण अथवा बलभद्र पुराण (रहप् अथवा रचप्) यह १५वीं शताब्दी की रचना है।[2]

बौद्ध-परम्परा—पालि त्रिपिटक जातकट्ठवण्णना (५वीं शताब्दी) की सिंहली पुस्तक का पालि अनुवाद है। 'दशरथ–जातक' में रामकथा पायी जाती है। यह पुस्तक बौद्ध-परम्परा के अनुरूप है। यह कथा प्रियजनों की मृत्यु पर शोक न करने के उदाहरण स्वरूप उपस्थापित है।

जय दिव्स जातक, वेस्सेतरजातक, सामजातक संबुला जातक आदि में भी रामकथा से मिलती-जुलती रहती है। 'जनामकं जातकं' में रामकथा का सङ्केत मिलता है। इसका मूल भारतीय पाठ अलभ्य है। तीसरी शताब्दी के चीनी अनुवाद 'लियेउ-तृत्सीकिंग' नामक ग्रन्थ में यह सुरक्षित है 'दशरथ कथानक' चीनी त्रिपिटक के भीतर 'त्सा-पोत्संग किंग' में उपलब्ध है। बौद्ध सार हित्य में रामकथा का विकास न के बराबर ही हुआ, सिर्फ पुरानी गाथाओं में उसके सङ्केत मिलते हैं।

---

१. अपभ्रंश-साहित्य–प्रो० हरिवंश कोछड़, पृ०-११६।

२. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य-रामसिंह तोमर, पृ०-१५४।

हिन्दी-रामकथा परम्परा

तुलसी-पूर्व हिन्दी रामकाव्य धारा

(१) जैन रामकाव्य धारा—मुनि लावण्यकृत 'रावण मन्दोदरी संवाद' पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में लिखित है। डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इसका रचना काल सं० १५०० वि० ठहराया है। ब्रह्म जिनदास के 'राम-चरित' या राम-रास तथा 'हनुमन्त रास' नामक दो ग्रन्थ सोलहवीं शताब्दी की कृति है। ब्रह्म रायमल्ल की हनुतंगामी कथा भी इसके काल की उपज है।

(२) वीर गाथात्मक रामकाव्यधारा—चन्द्रवरदाई के महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में रामकथा का उल्लेख दूसरे प्रस्ताव में आया है। इसमें दशावतार का वर्णन हुआ है। इसमें रामावतार मात्र ३८ छन्दों में उल्लिखित है। राम सम्बन्धी दूसरे वृत्त प्रथम ४ छन्दों में समाप्त करके बाकी ३४ छन्दों में राम रावण युद्ध, रावण वध तथा सीतोद्धार की विवृत्ति हुई है। इसमें काव्य प्रवृत्ति के अनुरूप ही उत्साह की व्यञ्जना है और युद्ध-वर्णन अत्यन्त मार्मिक है।[1]

(३) मधुर-उपासनात्मक रामकाव्यधारा—हिन्दी में मधुर उपासना की शुरुआत अग्रस्वामी या अग्रदास 'अग्रअली' से माना जाता है। इनका समय तुलसीदास के आविर्भाव से पूर्व शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। 'अष्टयाम' संस्कृत में परै ध्यानमञ्जरी 'हिन्दी' में लिखी गयी है। तुलसीदास के समकालीन भक्तमाल में नाभादास ने मधुर भाव की उपासना की है। इनका 'समाष्ट याम' व्रजभाषा पद्य-गद्य से रचित है। मधुरोपासना की वह बेलि दिनानुदिन बर्द्धमान होती गयी।

भक्तिपरक रामकथापरम्परा

रामानन्दकृत 'रामरक्षास्तोत्र' भक्ति प्रचार के लिए महत्त्वपूर्ण है। ईश्वर दास का 'भरतमिलाप' तथा 'अङ्गदपैज' का नाम भी रामभक्ति की परम्परा में वर्णित है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भूपतिकृत 'रामचरित रामायण' का उल्लेख किया है, जिसकी रचना सन् १२८५ ई० में हुई थी।[2] सुन्दरदास ने 'हनुमानचरित' की रचना सन् १५५९ ई० में की। कबीर यद्यपि अवतारवाद की धारणा को अमान्य कर राम को ब्रह्म रूप में ही भक्ति करते थे, तथापि उनके काव्य में रामकथा के कुछ सूत्र मिले हैं।

---

[1] पृथ्वीराज रासो–२.२८५।

[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०-२४५, डॉ० राम कुमार वर्मा।

भक्तिकाल

तुलसीदास—रामभक्ति का वह परम विशद् साहित्यिक सन्दर्भ इन्हीं भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी-काव्य की प्रौढ़ता का युग आरम्भ हुआ।[१]

रामचरितमानस—'रामचरितमानस' का शरीर तो महाकाव्यों जैसा है; परन्तु इसकी आत्मा पूर्णत: पुराणों जैसी है।...[२]

संवत् सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।[३]

महाकाव्य एक कथा प्रबन्ध युक्त ऐसी रचना होती है, जिसका वस्तुसङ्गठन व्यवस्थित होता है, जिसमें महान व्यापारों और महान चरित्रों का सन्निवेश होता है, जिसकी शैली अपने कथानक की महानता के अनुरूप ही गरिमापूर्ण होती है, जिसका कथानक अपने उपर्युक्त प्रकार के चरित्रों और व्यापारों के आदर्शों की प्राप्ति कराता हुआ अपने वर्ण्य विषय की घटनाओं तथा वर्णन विस्तारों के द्वारा आदि से अन्त तक उच्च बनाये रखता और उसका प्रसाधन करता है।

The true epic, wherever oreated, will be narrative poem organic in structure, dealing with great actions and great characters in a style commensurate with herdltness of its them, which tends to idealize these character and action and to sustain embellish it subject by means of episode and simplifications.

'प्राचीन और आधुनिक प्राय: समस्त महाकाव्यों का परिचय इन शब्दों में दिया जा सकता है। महाकाव्य किसी ऐसी महिमा मण्डित कथानक या व्यापार के गरिमापूर्ण कथा प्रबन्ध की वह सात्त्विक अभिव्यक्ति है जो (कथानक या व्यापार) किन्हीं वीर पात्रों और अति प्राकृत शक्तियों द्वारा सर्वाधिष्ठात्री नियति के नियन्त्रण में घटित होता है। महाकाव्य के कथानक में किसी राष्ट्र अथवा समस्त मानवता की राजनैतिक अथवा धार्मिक भावनाओं का सन्निवेश होता है। वह लौकिक अनुश्रुतियों अथवा अनुवृतियों से बद्ध विचारों के कारण समादर प्राप्त करता है और पाठक के मन में रहस्य भयानक और दिव्य की अनुभूति जागृत करता है। वह अशक्त मानवता को विनाशकारिणी परिस्थितियों में से निकालते हुए उसकी अशान्ति को दूर करता, उसे ऊँचा उठाता और शान्ति प्रदान करता है।[४]

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : शुक्ल, पृ०-१२४
२. मानस-दर्शन, पृ०-१४७, डॉ० श्रीकृष्ण लाल।
३. मानस/बालकाण्ड/दो ३३/चौ०४-५/पृ०-२४।
४. Principals of Poetry, Page-९४-९६

रामचरितमानस के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में पौराणिक कथाओं का बाहुल्य है। गङ्गावतरण, समुद्र-मन्थन, उमा-शिव-विवाह तथा अहल्योद्धार की कथा एवं नारद-मोहादि पौराणिक कथाएँ ही हैं।

रामचरितमानस का कथा-विकास

किसी भी कथा, कहानी अथवा नाटकादि की क्रमबद्ध घटनावली का नाम ही कथा-विधान है। सती-मोह तथा नारद-अभिमान आख्यायिकाएँ हैं। रामचरितमानस की कथा भारत वर्ष के परमोदय की कथा है। दक्षिण में राक्षसों का आतंक बढ़ गया है। राक्षसों का राजा रावण की राजधानी लङ्का है। उसने सम्पूर्ण भूमण्डल को जीत लिया है—

भुजबल बिस्व वस्य करि, राखेसि कोऊ न स्वतंत्र ।
मंडलीकमणिरावन राज करइ निज मंत्र ।।

गन्धर्वों के राजा कुबेर को हराकर उसने उनसे पुष्पक-विमान छीन लिया है। शिवजी की राजधानी कैलास तक उसके प्रभावक्षेत्र में आ जाता है। हिमाद्रि से उत्तर कुरु तक देवों पर, गन्धमादन के काश्यप-सरोवर तक नागों पर, कैलास से गन्धमादन तक गन्धर्वों पर तथा कन्याकुमारी से हिमालय तक मानवों पर उसका आधिपत्य हो गया है। देव, दनुज, नर, नाग, गन्धर्व तथा यज्ञादि सभी उसे 'कर' देते हैं। ऋषि-मुनि, त्यागी-तपस्वी, सबको 'कर' के रूप में खून देना पड़ता है। सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में जातियों तथा राष्ट्रों का परस्पर विचार-विनिमय उसने रोक दिया है। प्रजा 'कर' देते-देते परेशान है।

रावण म्हापण्डित है, तपस्वी है, शैव है, प्रबल पराक्रमी है; परन्तु पद के मद से उन्मत्त रावण अशिष्ट तथा उद्दण्ड है। साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के कारण उसने विवेक खो दिया है। उसकी नीति है—

छुधाछीन बलहीन सुर सहजहिं मिलिहहिं आई।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं, भलिभाँति अपनाई।।[१]

उसने सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में अपने जासूस का जाल बिछा दिया है।

भारतवर्ष गृहकलह का अड्डा है। क्षत्रिय तथा ब्राह्मण आपास में लड़ रहे हैं। परशुराम उदण्ड क्षत्रियकुल के द्रोही-ब्राह्मण हैं। उनके प्रहार से क्षत्रिय कायर बन गये हैं। रावण ने 'घरफोड़' नीति के बल पर रघु, अर्जुन तथा बालि से परीक्षोपरान्त मित्रता कर ली है। वह अवध राजाओं तथा इन्द्र से बराबर मित्रता रखता है। कोसल राज्य देवों तथा राक्षसों के बीच तटस्थ है।

---

[१] मानस–१/१८१

देवतागण रावण की पराजय के लिए चिन्तित हैं। एकबार असुरों से युद्ध छिड़ने पर दशरथ ने इन्द्र की सहायता की। राजा दशरथ से राक्षस हार गये। उसी लड़ाई में कैकेयी ने राजा की सहायता की है। उसी समय प्रसन्न होकर दशरथ ने कैकेयी को दो वर दिये हैं। राजा दशरथ रावण से लड़ने के लिए वातावरण तैयार करने लगे हैं। परशुराम जी उस मार्ग में काँटे बने हुए हैं। फिर भी देवतागण अपने जासूस तथा सैनिक दक्षिण भारत के राज्यों में भेज दिये तथा वहाँ के वानरों से मित्रता स्थापित किए।

बालकाण्ड—शृङ्गी ऋषि के पुत्रेष्टियज्ञ कराने से दशरथसुत राम चारों भाई उत्पन्न होते हैं। कौसल्या से राम, कैकेयी से भरत तथा सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए। पालन-पोषण राजसी वातावरण में हुआ। राम गुरु वसिष्ठ से अल्पकाल में ही सारी विद्याएँ प्राप्त कर लिये। तथा—

प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषई मन राजा।।[१]

इसी बीच बक्सर से गाधितनय (विश्वामित्र) अयोध्या आये और राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण माँगकर पुन: बक्सर लौट गये। राम ने विश्वामित्र की यज्ञरक्षा की तथा ताड़का, खर-दूषण आदि का वध किया। मारीच को मार भगाया और सुबाहु का नाश किया। उपलदेहधारिणी अभिशप्ता गौतम तिय को अपने चरण रज के स्पर्श से उद्धार किया। तदुपरान्त गुरु विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण मणिमढ़ित सुभग धवलधाम–जनकपुरी में पहुँचते हैं। सीता स्वयंवर में भाग लेकर शङ्करचाप का भञ्जन करते हैं और सीता-रामविवाह सम्पन्न होता है। राम परशुराम का तेजभञ्जन करते हैं।

अयोध्याकाण्ड—राम-लक्ष्मणादि चारों भाई विवाहोपरान्त अयोध्या आते हैं। नित्य नवनूतन मङ्गल मोद में इन राजकुमारों के शहद सम सुघड़ दिन बीतने लगे। राम रूप गुणशील स्वभाव से सबविध सब पुरजन प्रमुदित होने लगे।

रामराज्याभिषेक की तैयारी शुरू हो गयी, किन्तु राजा दशरथ कैकेयी से विवाह होते समय यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि कैकेयीपुत्र ही युवराज होगा। जब राज्याभिषेक का अवसर निकट आया, तो उन्होंने चातुर्यवश भरत-शत्रुघ्न को ननिहाल भेज दिया और कुछ दिन बाद कैकेयी से बिना मन्त्रणा लिये ही दशरथ ने युवराज का पद रामचन्द्र को देने का निर्णय किया। देवताओं ने सुन्दर अवसर देख स्वहित-साधनार्थ सरस्वती की सहायता से मन्थरा को उकसाया। मन्थरा कैकेयी को समझा-बुझाकर राजी कर ली। कैकेयी राजा दशरथ को वचनवद्ध करके दो वर माँगी—

---

[१] मानस-१/२०४/७-८

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहिं टीका।।
माँगऊँ दूसर वर कर जोरी। पुरबहुँ नाथ मनोरथ मोरी।।[१]

स्वयं राम राज्यकाज छोड़कर राजनीतिक कार्य हेतु दक्षिण जाना चाहते थे। अन्त में देवताओं का षडयन्त्र सम्पन्न हुआ। परिवार आन्तरिक कलहाग्नि में भस्म होने लगा। राम वनवास गये, साथ में सीता लक्ष्मण भी गये। प्रेमी केवट ने अपनी नौका पर चढ़ाकर इन्हें गङ्गा पर किया। दशरथ स्वर्ग सिधारे। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल से आये और पितृ-श्राद्ध के उपरान्त भरत जी चित्रकूट आये। राम ने भारद्वाज तथा वाल्मीकि आदि ऋषियों का दर्शन किया। चित्रकूट में निवास किये। राम-भरत मिलन हुआ।

अरण्यकाण्ड—एक बार सुन्दर कुसुमों को चुनकर राम ने अपने करों से भूषण बनाया। यथा—

सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।[२]

इसी बीच सुरपतिसुत जयन्त वापस वेष बनाकर आया और सीता-चरण को हतकर भाग चला। रुधिरस्रोत देखकर राम ने 'सीक धनुष शायक संधाना और आतुर समय पदापन्न जयन्त को 'एक नयन' कर ('प्रभु छाड़ेउ करि छोह, को कृपाल रघुवीर सम'।) छोड़ दिया। सुतीक्ष्ण जी आदि ऋषियों से भेंट की। पञ्चवटी-निवास के क्रम में राम के लघु भ्राता लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक काट ली। चौदह हजार सेना सहित खर-दूषण लड़ने आया। राम-लक्ष्मण ने सबका नाश कर दिया। उसके बाद शूर्पणखा अपने भाई रावण के यहाँ गयी। रावण ने अपने मातुल मारीच को 'कनक-मृग' बनकर राम को लुभाने के लिए कहा। मारीच कनक मृग बनकर पञ्चवटी में आया। सीता ने अलङ्कार प्रियता वश राम से कनक मृग मारकर लाने के लिए कहा। राम कनक मृग के पीछे चले। माया मृग का अनुसरण करते हुए राम सुदूर चले गये। अति विलम्ब जानकर सीता ने लक्ष्मण को कहा कि जरा देखिए, वे अभी तक नहीं लौटे हैं। लक्ष्मण-राम की खोज में निकले। सीता को अकेला देख रावण साधु-वेष में सीता का हरण किया। राम-लक्ष्मण जब शिकारोपरान्त आये तो आश्रम जानकीहीन देखकर विलाप करने लगे और सीतान्वेषण में लग गये। आगे पड़ा गीधपति जटायू को राम ने देखा और 'कर सरोज सिर परसैं' कृपासिंधु रधुवीर' ने उनकी सारी पीड़ा हर ली। तब गीधपति ने सारा वृत्तान्त सुनाया। पुन: सीता की खोज करते हुए दोनों भाई आगे बढ़े। दुर्वासा ऋषि के शाप से सन्तप्त कबन्ध को मुक्ति दी। तदुपरान्त शबरी के आश्रम में जाकर उनका आतिथ्य-

---

१. मानस–१/२८/१२
२. मानस–३/सो०/चौ०-४

सत्कार स्वीकार कर राम ने अछूतोद्धार करने का जगत् सन्देश दिया।

किष्किन्धाकाण्ड—ऋष्यमूक पवर्त पर सचिव सहित सुग्रीव रहते थे, उन्होंने 'बल रूप निधाना' राम लक्ष्मण को आते देखा। उन्होंने हनुमान को भेद लेने के लिए भेजा। हनुमान ने समीप जाकर पूछा—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहुवन बीरा।।[१]

राम ने कहा—

कोसलेस दशरथ के जाए। हम पितु बचन मान्हि बन आए।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।।
इहां हरी निसिचर वैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।।[२]

यह सुनते ही हनुमान राम के चरणकमलों पर लोटने लगे। तब राम ने हनुमान को उठाकर कंठ लगा लिया। हनुमान ने अनुकूल अवसर पाकर राम से सुग्रीव की रामकहानी कही और कहा—

तेहि सन नाथ मयत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजे।।[३]

वे सीता की खोज करायेंगे। समान परिस्थिति वालों में सहानुभूति होती है। राम को साथ लेकर हनुमान जी ऋष्यमूक पर्वत पर गये और राम-सुग्रीव की मित्रता को अग्निसाक्षी देकर दृढ़ कराया। राम ने सुग्रीव के द्रोही बालि का वध किया। सुग्रीव ने वानरी सेना को यह कहकर आदेश दिया कि—

राम काजु अस मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुं ओरा।।
जनक सुता कहुँ खोजहुं जाई। मास दिवस महँ आएहु भाई।।[४]

* * * *

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मति धीर सुजाना।।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछहु सब काहु।।
मनक्रम वचन सो जतन विचारेहु। रामचन्द्र कर काजु संवारेहु।।[५]

सभी बन्दर सीता को खोजने लगे। समुद्र संतरणार्थ जाम्बवन्त ने हनुमान को ललकारा।

---

१. मानस–४/सो०/चौ०-७
२. मानस–४/१/१-३
३. मानस–४/३/१३
४. मानस–४/२१/६-८
५. मानस–४/२२/१-३

सुन्दरकाण्ड—सिन्धु तीर एक सुन्दर कूधर पर कौतुक वश हनुमान चढ़ गये और वाणवेग से लङ्का की ओर प्रस्थान किये। इसी बीच देवताओं ने सुरसा माता को भेजकर हनुमान के बुद्धि तथा बल की परीक्षा की। हनुमान बल तथा बुद्धि में सफल हुए। सुरसा से आशीर्वाद प्राप्त कर हनुमान आगे बढ़े। सिन्धु की निशिचरी ने हनुमान से छल किया। मतिधीर हनुमार निशिचरी का नाशकर वारिधि पार गये। गिरि पर चढ़कर अति उतंग जल-निधि से घिरे कनक कोट विचित्र मणिकृत स्वर्ण लङ्का के अति दुर्ग विशेषों को हनुमान ने देखा। मसक रूप धारण कर लङ्का में प्रवेश करते समय लङ्किनी नामक राक्षसी ने उन्हें रोका। हनुमान ने एक ही मुष्टि में उस राक्षसी को मार दिया और अति लघुरूप धारण कर हनुमान लङ्का के घर-घर में प्रवेश किये, किन्तु सीता नहीं मिलीं।

आगे बढ़ने पर विभीषण का भवन मिला। हनुमान को देखते ही विभिषण ने प्रणाम किया और कुशल पूछा। हनुमान ने सारी कथा सुनायी, विभीषण जी ने जनक सुता के बारे में हनुमान को युक्तिपूर्ण सूचना दी। पवनसुत सीता के समक्ष उपस्थित हुए और सीता से आशीर्वादात्मक आदेश प्राप्त कर मधुवन के मधुर फल खाने लगे। मधुवन के प्रहरी सहित रावण के पुत्र अक्षय कुमार को वृक्षों से मार-मारकर हनुमान ने ढेर कर दिया। तब रावण ने मेघनाद बलवान को भेजा। उसके ब्रह्मास्त्र में फँसकर हनुमान रावण के दरवार में आये और रावण को मुँहतोड़ उत्तर देने लगे। रावण ने हनुमान के पूँछ में आग लगवा दी। नगर के वसन घृत तेल समाप्त हो गये। तब हनुमान ने उलट-पलट कर लङ्का को जला दिया और पूँछ बुझाकर जनकसुता के आगे करबद्ध खड़ा हो गये। सीता से प्रतीक रूप में चूड़ामणि प्राप्त कर हनुमान पुनः राम के पास सकुशल वापस आये। तब वानरों के सहित राम ने लङ्का के लिए प्रस्थान किया।

लङ्काकाण्ड—समुद्र राह नहीं दे रहा था। राम ने बाण सन्धान द्वारा अपने पौरुष से समुद्र को अभिभूत किया और सागर ने राह दे दी। नल-नील नामक जो दो बन्दर थे उनकी अभियन्ता की सहायता से सागर पर सेतु बाँधा गया और रामेश्वर लिंग की राम ने वहीं स्थापना की तथा शिव की विधिवत् पूजा की। सेना सहित राम सुबेल शैल पर आसन डाल दिये। समुद्र-बन्धन सुनकर रावण को भी अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मन्दोदरी सहित अन्य ने रावण को समझाया, लेकिन घमण्डी रावण एक नहीं माना। रावण दरवार में रामदूत अङ्गद ने आकर रावण से कहा—सीताजी को रामचन्द्र जी को सौंप कर उनकी शरणागत हो जाइए, आपका कल्याण हो जाएगा। भक्त वत्सल राम आप के सब अपराध को भूलाकर आपको अपना लेंगे, किन्तु रावण ने उल्टे दुर्वाद कहकर ललकारना शुरू किया। अङ्गद ने मुँहतोड़ उत्तर दिया और वे युद्ध का डंका

बजाकर राम के पास आ गये।

बस क्या था? राम-रावण-युद्ध का श्रीगणेश हुआ। मेघनाद ने लक्ष्मण को शक्तिबाण मारा। लक्ष्मण अचेत हो गये। हनुमान धौलागिरि पर्वत पर से भोर होते ही सञ्जीवनीबूटी ले आये और सुषेण वैद्य द्वारा बतलायी हुई इस औषधि का पान करते ही लक्ष्मण पुन: चेतना सम्पन्न हो गये। धमासान युद्ध हुआ। कुम्भकर्ण-वध एवं मेघनाथ वध के बाद राम-रावण-युद्ध हुआ। राक्षस कुल सहित रावण का अन्त हुआ। सुवर्णमयी लङ्का की श्री बिखर गयी। राम ने सीता की अग्निपरीक्षा ली, सीता परीक्षा में सफल हुईं। तदुपरान्त राम ने अपनी सेना सहित अवध के लिए प्रस्थान किया।

उत्तरकाण्ड—भरत और हनुमान के बीच गिलन हुआ। राम-भरत-मिलाप हुआ। राम का राज्याभिषेक हुआ। राम ने प्रजा को धार्मिकोपदेश दिया और वे सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

मानस की निम्न चौपाइयों में रामकथा की चर्चा तुलसी ने की है—

बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभञ्जनि।।
रामकथा कलि पंनग भरनी। पुनि विवेक पावक कहं अरनी।।
रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई।।[१]

दोहा— रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।।[२]
रामकथा के मिति जगनाहीं।
असि प्रतीति तिन्ह के मन माहिं।।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि रामकथा का उद्गम और विकास वरेण्य है।

—000—

---

[१] मानस/बालकाण्ड/दोहा-३०(ख)/५-७

[२] मानस/बालकाण्ड/दोहा-३१

[३] मानस/बालकाण्ड/दोहा-३२(ख)/चौ०-७

२.

रामचरितमानस का पौराणिक आधार एवं आधार-ग्रन्थों का काल-निर्णय

पुराण

वैदिक तथा औपनिषदिक साहित्य में चरित्र तो मिलते हैं, किन्तु उनके जीवन-वृत्त का व्यापक वर्णन नहीं मिलता। लोक-कथा के नायक उदात्त तथा आदर्श नहीं रहे हैं, जिनके द्वारा शाश्वत जीवनमूल्य स्थापित किये जा सकें। जायसी की 'पद्मावत' के राजा रत्नसेन का उल्लेख आवश्यक है, जो हीरामन तोता से पद्मावती के अलौकिक सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर पागल हो उठता है और माँ, पत्नी, परिवार सब को त्याग कर उसकी खोज में निकल पड़ता है। यही कारण है कि 'पद्मावत' के रत्नसेन का चरित्र जन-जीवन को किञ्चित् मात्र भी प्रभावित नहीं कर सका।

परन्तु 'रामचरितमानस' के राम का व्यक्तित्व सम्पूर्ण भारत के जन-जीवन को सैकड़ों वर्षों से अनुप्राणित करता आ रहा है। इसलिए ऐसी स्थिति में प्रबन्ध काव्यों की कथा प्रेरणा के रूप में पौराणिक साहित्य का स्वीकार किया जाना एकदम स्वाभाविक है। हमारे यहाँ के लक्षणकारों ने प्रबन्धकाव्य के कथा का 'इतिहास-कथोद्भूतमितर द्वासदाश्रयम्' होना आवश्यक बतलाया है।

पुराणों का महत्त्व—'पुराणों ने न केवल संस्कृत साहित्य को प्रभावित किया है, अपितु समग्र भारतीय साहित्य को प्रभावित, अनुप्राणित[१] किया है।

हिन्दू-संस्कृति के आधार-महत् चरित्रों का जीवन-वृत्त विस्तृत रूप से पुराणों में ही मिलता है। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने पुराणों की इस देन का उल्लेख निम्न शब्दों में किया है—'वेद में ज़ो कागज पर खिंची हुई रेखाएँ हैं, वे पुराणों के पृष्ठों में जीते-जागते मनुष्य बन जाते हैं'।[२]

---

[१] विश्वसाहित्य की रूपरेखा : श्री भगवतशरण उपाध्याय, पृ०-४८०.

[२] हिन्दू-देव परिवार का विकास : डॉ० सम्पूर्णानन्द, पृ०-१२०.

विश्वामित्र, पुरुरवा, शुनःशेप और सुदास–जैसे चरित्रों के नाम वेदों में तो मिलते हैं, लेकिन उनके इतिवृत्त अनुपलब्ध हैं। पुराणों में राम-कृष्ण से लेकर पुरुरवा तक का चरित्र मिलता है। अतः प्रबन्ध काव्यों की सामग्री के सन्दर्भ में पुराण-साहित्य का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। भारतीय काव्य परम्परा में पौराणिक तत्त्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है।[1]

'कवि आलोचक यज्ञेय' शीर्षक में निम्नलिखित विचार अज्ञेय द्वारा व्यक्त किये गये हैं—'इतिवृत्त काव्य अधिकार जातीय उत्कर्ष के ऐतिहासिक अथवा पौराणिक युगों से प्रेरणा लेता था, आत्म प्रतिष्ठान के लिए अतीत गौरव का स्मरण और उसके प्रमाण से भावी उत्कर्ष की सम्भावना करना स्वाभाविक था।'[2] हिन्दी के आधुनिक प्रबन्ध काव्यों की सृजन-प्रेरणा के रूप में पौराणिक भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

पुराणों का स्वरूप—'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति पर पाणिनि, यास्क एवं स्वयं पुराण का उल्लेख अपरिहार्य है। 'सायं चिरं प्रह्वे-प्रणेडव्ययेभ्यष्टयुट युलौ तुट च' सूत्र सो 'पुरा' शब्द से 'ट्यु' प्रत्यय करने तथा 'तुट' के आगमन होने पर 'पुरातन' शब्द की व्युत्पत्ति होती है, जिसका अर्थ प्राचीन काल में होने वाला अथवा प्राचीन है। यास्क के 'निरुक्त' में पुराण की व्युत्पत्ति—'पुरानवं भवति' है, जिसका अर्थ है–'जो पुराण होकर भी नया होता है। वायुपुराण में पुराण की व्युत्पत्ति 'पुरा अनति' है, अर्थात् जो प्राचीन काल में जीवित था'। पद्मपुराण के अनुसार—'पुरा परम्परां वष्टि कामयते'। दूसरे शब्दों में 'जो प्राचीनता अथवा परम्परा की कामना करता है, वह पुराण है। इससे अलग 'ब्रह्माण्डपुराण' की व्युत्पत्ति है—'पुरास्ततू अभूत' जिसका प्रयोग 'प्राचीन काल में ऐसा हुआ' के अर्थ में हुआ है। इससे स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि पुराणों का प्रतिपाद्य प्राचीन काल से सम्बन्धित विषय रहा है।

पुराणों के लक्षण

मत्स्यपुराण के अनुसार—

सर्गश्च प्रति सर्गश्च, वंशोमन्वतराणि च।
वंशानुचरितं चैव, पुराण पञ्चलक्षणम्।।[3]

भागवतपुराण—

राज्ञां ब्रह्म प्रसूतां वंश स्त्रैकालिकोऽन्वयः।[4]

---

(१) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प : डॉ० कैलाश वाजपेयी, पृ०-९७.
(२) हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य : श्री अज्ञेय, पृ०-५३.
(३) मत्स्यपुराण–५३/६४.
(४) भागवतपुराण–१२/७/१६.

विष्णु, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, वाराह, स्कन्द, कूर्म, गरुड़, ब्रह्माण्ड तथा शिवपुराण में किञ्चित अन्तरसहित इन्हीं पाँच लक्षणों की विवेचना हुई है।

'पाँच लक्षणा' शब्द पुराणों में इस तरह जुड़ा हुआ है कि 'अमरकोश' में पारिभाषिक शब्द के रूप में बिना व्याख्या के ही इसका प्रयोग किया गया है।

अत: पुराणों के वर्ण्यविषय के रूप में इन लक्षणों का निर्वाह अधिकांश पुराणों ने किया है।

(१) सर्ग—जगत तथा उसे विविध पदार्थों की उत्पत्ति 'सर्ग' है। मूल प्रकृति में लीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब 'महत् तत्त्व' उत्पन्न होता है जिससे तामस, राजस तथा सात्विक के 'अहङ्कार' की उत्पत्ति होती है। त्रिविध अलङ्कार से पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय तथा पञ्चभूतों की उत्पत्ति क्रम को 'सर्ग' कहा जाता है।

(२) प्रतिसर्ग—सृष्टि का विलोम प्रलय है। पुराणों में नैमित्तिक, प्राकृतिक नित्य तथा आत्यन्तिक प्रलय का वर्णन हुआ है। ब्रह्मा से लेकर जड़-चेतन, सभी प्राणी, पदार्थ प्रतिपल उत्पन्न होते हैं तथा नष्ट होते हैं। यह परिवर्तन सूक्ष्म तथा दुर्बोध है, जिसके कारण मानवीय दृष्टि के परे हैं। यही मेरी समझ में–नित्य प्रलय है।

आत्यन्तिक—इसकी निश्चित काल सीमा नहीं है। यह पल में भी नष्ट हो सकता है और कभी करोड़ों वर्षों के बाद भी नष्ट नहीं हो सकना ही 'आत्यन्तिक प्रलय' है।

(३) वंशानुचरितम्—***वंश***-भागवतकार ब्रह्मा जी द्वारा जितने राजाओं की सृष्टि हुई है, उनकी त्रिकालीन सन्तानपरम्परा को 'वंश' नाम से अभिहित किया जाता है, लेकिन वंश के अन्तर्गत अन्य पुराणों ने ऋषियों के वंश को भी ग्रहण किया है।

(४) मन्वन्तर—सृष्टि के विभिन्न कालमान का परिचायक है। मन्वतर १४ हैं। प्रत्येक का स्वामी एक मनु हैं। 'मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि तथा भगवान् के अंशावतार से युक्त को 'मन्वन्तर' कहकर पुकारा गया है। पुराणों में इन्हीं १४ मन्वन्तर का वर्णन है—

मन्वन्तर मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
कृषयो शाश्वतराश्च हरेः षडविधमुह्यते।।[1]

इस प्रकार पुराण के निम्नस्थ दस लक्षणों की विवृत्ति हुई है—

(१) सर्ग (२) विसर्ग (३) वृत्ति (४) रक्षा (५) अन्तराणि (६) वंश (७) वंशानुचरितम् (८) संस्था (९) हेतु तथा (१०) अपाश्रय।

---

(१) भागवत–१२/७/१५

पुराणों में रागी, विरागी, यती, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, स्त्री तथा शूद्र के धर्मों का निरूपण किया गया है। देवी भागवत में अद्यक्षर के द्वारा अष्टादश पुराणों के नाम गिनाये गये हैं—

मद्वयं भद्वयं चैव, ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापद लिंग-कू-स्कानि, पुराणानि पृथक्-पृथक्।।

रोजर गोरोंडी—'दूसरे हैं मिथक, जो हमें अपने सृजन केन्द्रों तक पहुँचाते हैं, जो लगातार नये क्षितिजों का उद्‌घाटन करते हैं और अपनी ही सीमाओं को पार करने में हमारी सहायता करते हैं। कुछ बन्द 'मिथक' होते हैं और कुछ खुले मिथक। इनमें से दूसरे ही सही मायने में असली मिथक होते हैं।[1]

भारत का पौराणिक साहित्य विश्व के किसी भी देश के पौराणिक साहित्य से अधिक समृद्ध तथा श्रेष्ठ है। पौराणिक साहित्य ने सम्पूर्ण भारतीय काव्य को अपनी उदात्त तथा जीवन्त प्रेरणा से न केवल उपजीव्य अथवा काव्यवस्तु प्रदान की है, अपितु जीवनगत महत संदेश में तथा अपनी मनोरम कल्पनापूर्ण विविध शैलियों से अनुप्राणित किया है।

श्रीमद्भागवत को सर्वाधिक श्रेष्ठ मानने वालों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी अग्रणी हैं। इनके शब्दों में 'श्रीमद्भागवत' समस्त पुराणों में अधिक प्रसिद्ध तथा सारे भारत में समादृत है। इसमें जो कवित्व वह बहुत ही ऊँचे दर्जे का है। रामायण और महाभारत की भाँति इसने भी भारतीय साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।[2]

महाकवि तुलसीदास जी के रामचरितमानस पर इसका प्रभाव स्पष्टत: दिखलायी पड़ता है। श्रीमद्भागवत धर्मग्रन्थ के साथ-साथ गद्यकोटि की कविता के सौन्दर्य से परिपूर्ण एक सुन्दर काव्यकृति है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में—श्रीमद्भागवत की कविता में अद्भुत चमत्कार है, जो सैकड़ों वर्षों से सहृदय पाठकों को अपनी शब्दमाधुरी तथा अर्थचातुरी से हठात् आकृष्ट करता जा रहा है। नवीन साहित्यिक परिस्थिति के उदय ने भी इस आकर्षण में किसी प्रकार की न्यूनता उत्पन्न नहीं की है। भागवत रस तथा माधुर्य का अगाध स्तोत्र है।[3]

श्री रामलाल वर्मा के शब्दों में—भारतीय साहित्य में पुराण अपना विशिष्ट स्थान

---

(१) वाम साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र–अलख नारायण का लेख, पहल, पृ०-१०-११.
(२) हिन्दी-साहित्य की भूमिका : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०-६०.
(३) पुराण-विमर्श : आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ०-६०३.

रखते हैं। भारतीय संस्कृति और परम्परा को रोचक और सरल भाषा में जन-साधारण तक पहुँचाने का श्रेय इसी साहित्य को है। यह साहित्य भारतीय संस्कृति का प्राण, हिन्दू धर्म का मूलाधार तथा इतिहास का अमूल्य कोष है।[१]

इस सम्बन्ध में सर्वसम्मत मत यह है कि उनके अवैज्ञानिक वर्णनों के सूक्ष्म विश्लेषण से प्रकृति के अनेक रहस्यात्मक तथ्यों का उद्‌घाटन सम्भव है। प्रो० बलदेव कृष्ण जी के शब्दों में—'इस साहित्य में बहुत-सी ऐसी बातों का समावेश है जो आधुनिक वैज्ञानिक युग के व्यक्ति के लिए निस्सार एवं उपहासास्पद भी है; परन्तु उन कल्पित एवं अवैज्ञानिक वर्णनों के गम्भीर विश्लेषण से कई प्राकृतिक पदार्थों व व्यापारों का सङ्केत ग्रहण किया जा सकता है। इन वृत्तों को रूपक स्वीकार करके प्राकृतिक विज्ञान की सामग्री सञ्चित की जा सकती है। इन्हें निस्सार कहकर उपेक्षित करना इनके निर्माताओं के प्रति अन्याय करना है।[२] श्रीकृष्ण चैतन्य ने पुराणों में प्राप्त वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का उल्लेख किया है।[३]

मेरी दृष्टि में प्रबन्ध काव्यों की प्रेरक शक्ति के रूप में पुराण साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। कथा तथा चरित्र की दृष्टि में अधिकांश प्रबन्ध-काव्यों के रचनाकारों ने पौराणिक साहित्य से ही अपने काव्य के लिए उपजीव्य ग्रहण किया है। यही कारण है कि प्रबन्धकाव्यों के कथानक, चरित्र तथा शिल्प पर पुराणों का विवेचन करते हुए मौलिक उद्भावनाओं का आकलन प्रस्तुत करना परमावश्यक है।

पुराणों की शैलियों की विशेषताएँ—

(१) श्रोता-वक्ता-शैली,

(२) संवाद रूप में उपदेश वर्णन की शैली,

(३) दृष्टान्त, रूपक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनशैली तथा

(४) अवान्तर कथाशैली (प्रासङ्गिक कथाशैली)।

मध्यकालीन प्रबन्ध काव्यों में रामचरितमानस पर संवाद रूप में उपदेश वर्णन की शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ के अनुसार वर्णन, तत्त्व, विचार और अवान्तर प्रसङ्गों से कथा-प्रवाह भले ही पद-पद पर स्खलित हो जाय, पर

---

(१) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग : रामलाल वर्मा भूमिका, पृ०-१.

(२) 'Remarkable scientific insights are also found buried in these very butrogeneous literary miacellanics',—A New History of Sanskrit Nterature.

(३) भारतीय संस्कृति : प्रो० बलदेव कृष्ण (एम०ए०), पृ०-५२.

प्रशान्त भारत कभी अधीर नहीं दिखाई पड़ा।[१] पण्डित श्रीराम शर्मा के अनुसार 'पुराणों को प्राय: आख्यान, उपाख्यान, दृष्टान्त, रूपक, कहानी आदि सुगम और सरल शैली में लिखा गया है, जिससे सब प्रकार के व्यक्ति उनको प्रेम से सुन सकें और उनसे अपनी बुद्धि तथा स्थिति के अनुकूल लाभ उठा सकें।[२]

साहित्य चिर नवीन है तथा चिर प्राचीन भी।[३]

कवि डब्ल्यू०एच० आडेन के 'Eunger sllows no choice' में अपना औचित्य मैं नहीं ढूँढना चाहता हूँ। 'Yet historic poetry is one whether of East or the North or South, its blood and temperere the same....[४]'

मानस का पौराणिक आधार

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के 'बालकाण्ड' के शुरु में संस्कृत पद्यात्मक मङ्गलाचरण दिया है, जिसके सातवें श्लोक में उन्होंने 'रामचरितमानस' नामक महाकाव्य के मूलस्तोत्र पर प्रकाश डाला है—

नाना पुराण निगमानगम सम्मतं यद्रामावणे निगदितं क्वचिदन्वतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसीरघुनाथ गाथा भाषानिबन्धमति मञ्जुल मतानोति।।[१]

अर्थात् नाना पुराणों, वेदों और शास्त्रनुकूल जो कुछ वाल्मीकीय रामायण तथा अन्यान्य ग्रन्थों में लिखा है, उसी के आधार पर मैं तुलसीदास अपने अन्त:करण के सुख हेतु रामचन्द्र जी की सुन्दर कथा का विस्तार बोलचाल की भाषा में करता हूँ।

इससे स्पष्ट होता है कि मानस की रचना के क्रम में महाकवि तुलसी ने पूर्व-काल के प्राय: सभी रचनाकारों की कृतियों का सहारा लिया है, जिन्होंने रामकथा पर अपनी तूलिका सम्भाली है। यथा—

(१) वाल्मीकीय रामायण, (२) अध्यात्मरामायण, (३) महारामायण, (४) हनुमन्नाटक, (५) प्रसन्नराघव, (६) श्रीमद्भागवत, (७) शिवपुराण, (८) वाराहपुराण, (९) उत्तररामचरित, (१०) योगवासिष्ठ, (११) कुमारसम्भव, (१२) भुशंडी रामायण, (१३) चाणक्य-नीति, (१४) हितोपदेश, (१५) मेघदूत, (१६) कठोपनिषद्, (१७) भगवद्गीता।

---

(१) प्राचीन साहित्य : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हिन्दी अनुवाद, तृतीय संस्करण, पृ०-७०.
(२) मार्कण्डेय पुराण, भूमिका, पण्डित श्री राम शर्मा, पृ०-४.
(३) काव्यविमर्श : डॉ० गुलाब राय, पृ०-२८७.
(४) English epic and heroic poetry : M. Dixow, Page-२१.
(५) रामचरितमानस–१/७

अपने से पूर्व कवियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता इस प्रकार ज्ञापित करते हैं—

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई।।[1]

दो०— अति अपार जे सरित बर ज्‍ों नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं।।[2]

विविध काव्यकुसुम-सररसिक तुलसी-चञ्चरीक ने नानाविध साहित्यिक पुष्पों के मधुर एवं सौरभमय रसों का 'मानस' के माध्यम से अर्थ न कर दिव्य अमृतोपम मधुमन्दाकिनी को निःसृत किया है—

(१) वाल्मीकीय रामायण—

त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो, लङ्कानां हितकाम्यया।
राज्ञो दशरथस्यत्वमयोध्याधिपतेर्विभो।।१९।।
धर्मज्ञस्य वदान्यस, महर्षि समतेजसः।
अस्य भार्य्यासुतिसृषु, ह्वी श्री कीर्त्युपमासुच।।२०।।
विष्णो पुत्रत्व मागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम्।
तत्रत्वं मानषो भूत्वा, प्रवृद्धं लोककंटकम्।।२१।।[3]

'अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणमन्' से सिद्ध होता है कि तुलसी ने वाल्मीकि से प्रभावित होकर ही राम को विष्णु का अंशावतार माना है।

(२) अध्यात्म रामायण—यह सम्पूर्ण रामायण 'उमा-महेश्वर-संवाद' रूप में है, जिसे शिव ने पार्वती के रामचन्द्रविषयक शङ्का निवारणार्थ कही है। इसी संवाद विषय में मानसकार तुलसी ने लिखा है—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।।[4]

पुनः—

(१) प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च।
पौर कार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः ।।
बन्धु भिस्सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्।
धर्मशास्त्र रहस्यानि शृणोति व्याकरोति च।।

---

(१) रामचरितमानस–१/१२/१०
(२) रामचरितमानस–१/१३
(३) वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग-१५, श्लोक-९.२०-२१
(४) रामचरितमानस–१/२४/११

रामचरितमानस—

प्रात काल उठि कै रघुनाथा। माता पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मांगि करहिं पुरकाजा। देखि चरित हरषहिं मन राजा।।
वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजहिं समुझाई।।
जेहि विधि सुखी होहि पुरलोगा। करहिं कृपानिधि सोई संयोगा।।

(२) गोप्यं यदत्यन्तमनव्य वाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावा:।

मानस— गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहिं।आरत अधिकारी जहँ पावहिं।।

(३) क्षालयामि तव पादपङ्कजम्। नाथ दारु दृषदो: किमन्तरम्।।
मानुषी करणरेणुरस्ति ते। पादयोरिति कथा प्रथीयसी।।

मानस— चरन कमल रज कहँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।

(४) ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्या: पराभव:।।

मानस— नैहर जन्म भरब बरुजाई। जियत न करब सवति सेवकाई।।

अध्यात्मरामायण की तरह ही तुलसीदास ने 'मानस' में 'कलियुगवर्णन, रावण द्वारा असली सीता की प्रतिनिधि–भूतमाया–सीता का हरण और राम द्वारा 'रामेश्वर' की स्थापना करायी है।

(३) महारामायण—

(क) निर्वाणं रामनामिदं केवलं च स्वरादिकम्। सर्वेषां मुकुटं छत्रं, मकारो रेफ व्यञ्जनम्।।

मानस— एक छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोउ।।

(ख) मुग्धे शृणुष्व मनुजे पि सहस्र मध्ये, धर्म्मव्रती भवति सर्वसमान शील:।
तेष्वेव कोटिषु भवेद्विषये विरक्त:, सद्वासको भवति कोटि विरक्तमध्ये।।१।।
ज्ञानीषु कोटिषु नृ जीवन कोऽपिमुक्त:, कश्चित् सहस्र नर जीवन मुक्त मध्ये।
विज्ञान रूप विमलोऽप्यथ ब्रह्ममलीन, स्तेष्वेव कोटिषु सकृत खलु रामभक्त:।।२।।

मानस— नर सहस्रमहं सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रत धारी।।
धर्म सील कोटिकमहँ कोई। विषय बिमुख बिराग रत होई।।
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई।।
ज्ञानवन्त कोटिक महं कोऊ। जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ।।
तिन्ह सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी।।
धर्म्म सील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवन मुक्ता ब्रह्म पर प्रानी।।

सब ते सो दुर्लभ सुर राया। राम जगति रत गत मद माया।।

(४) हनुमन्नाटक—

(क) लक्ष्मण: रामे सज्यं धनु कुर्वीति सति। पृथ्वादीनि भुवनान्यधौ यास्यन्ति इति।।

मानस— लखन लखेउ रघुवंश मनि, ताकेउ हर कोदण्ड।

(२) यद्बभञ्ज जन कात्मजाकृते राघव: पशुपतेर्महद्धनु:।
तद्धनुर्गुणरोपितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनि:।।

मानस— तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा।।

(३) पदकमलरजोभिर्मुक्त पाषाणदेहमलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम्।

मानस— बिन्ध के बासी उठासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।

(४) या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शङ्करात्।
दर्शनात् रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे।।

मानस— जो सम्पति सिव रावनहिं, दीन्ह दिये दस माथ।
सो सम्पदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ।।

(५) राम: स्त्रीविरहेण हारित वपु: तच्चिन्तया लक्ष्मण:।
सुग्रीवोङ्गदशल्य भेदकतया निर्मुल कूलद्रुम:।।

मानस— तव प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना।।

(५) श्रीमद्भागवत—

(१) निशामुखेषु छगोतास्तमसा भान्ति न ग्रहा:।
यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदा: कलो युगे।।

मानस—निति तम धन यतीत बिराजा। जनु दंभिन कर जुरा समाजा।।

(२) न वै शूरा विकत्थन्ते, दर्शन्त्येव पौरुषम्।

मानस— सूर कठिन करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।

(३) पाण्डित्ये चापलं वच:।

मानस—पंडित सोइ जो गाल बजाता।

(४) मल्लानाम शनि नृणां नरवरो स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान।

मानस— रंगुनि आये दोउ भाई।

(५) अस सुधि सब पुरवासिन्ह पाई।।

(६) प्रसन्नराघव (नाटक)—

(१) कामातुरस्यवचसामिव संविधानेरभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्।
मानस— डगह न शंभु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे।।

(२) अलमिति क्षीर कण्ठे कठोरकोपतया।
मानस— नाथ करिय बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिय न कोहू।।

(३) आः किमुच्यते क्षीर कण्ठ इति। विषकण्ठः खल्वसो।।
मानस— कालकूट मुख पय मुख नाहीं।।

(४) यदि खधोतभासापिसमुन्मीलांत पद्मिनी।
मानस— ..... कहैंति बैरेही। सुनु दसमुख खधोत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा?

(७) गीता— या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
मानस— एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपञ्च वियोगी।।

(१) संभावितस्य चाकीतिर्मरणादतिरिच्यते।
मानस— संभावित कहं अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।।

(३) ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठन्ति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढ़ानिमायया।।
मानस— उमा दारुजोषित की नाई। सबहिं नचावत राम गुसाईं।।

(८) अगस्त्य-रामायण—

(१) यो जनः स्वच्छ हृदयः स मां प्राप्नोति नापरः।
मह्यं कपट दंभानि न रोचन्ते कपीश्वर।।
मानस— निरमल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्रन भावा।।

(९) अग्निवेश-रामायण— एतेषा गणना नवद्वयमहापद्मावधिर्वर्णिता।
मानस— अस मैं स्रवन सुना दसकन्धर। पदुम अठारह जुथम बन्दर।।

(१०) आनन्द-रामायण—

सीताराम प्रेमपीयूषपूर्णं जन्म स्यान्नो केकयीनन्दनस्य।
चेत्कः कुर्याद् दुर्गमान् वै मुनीनां योगान् राजन् भारतेऽस्मिन् पवित्रे।।
दारिद्रय दम्भदाहानां दुःखदूषणयोस्तथा।
कीर्तिव्याजेन को नाशं कुर्यात्कलियुगे हठात्।।
शठान्नो कोऽपि राजेन्द्र कः कुर्याद्रामसम्मुखे।

मानस— सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि मन अगम यम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को।।
दुखं दारु दारिद्र दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।।

(११) उत्तररामचरित—

(१) लौकिकानां हि साधूनांमर्थवागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यनां वाचमर्थोऽनुधावति।।
मानस— राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार।।

(१२) कुमारसम्भवम्—

(१) शाम्येत्प्रत्सुभकारेण नोपकारेण दुर्जनः।
मानस— विनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पै नव नीच।।

(१३) गर्गसंहिता—

(१) दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टश्च पटहाः स्त्रियः।
मानस— ढोल गँवार सूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।

(१४) गालवसंहिता—

मित्रस्य दुःखेन जना दुःखिता नो भवन्ति ये।
तेषां दर्शनमात्रेण पातकं बहुलं भवेत्।।
मानस— जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।।

(१५) चम्पूरामायण—

(१) एवं निशम्य कुपितः पिशिताशनेन्द्र प्राणानंमुष्य हरतेति भटान वादीत्।
आजन्म शुद्धमतिरत्र विभीषणस्तं दतो न वध्य इति शास्त्रीगिरारुरोध।।

मानस—

सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना। बेगि न हरहु मूँढ़ कर प्राना।।
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन्ह सहित विभीषण आये।।
नाइ सीस करि विनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता।।

(१६) चाणक्य-नीति—

(१) परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।

मानस— आगे कह मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहि गति समभाई। अस कुमित्र परिहरे भलाई।।

(१७) देवी भागवत—

(१) उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम्।
प्रपच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः।।

मानस— नाना विधि बिनति करि प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि।।

(१८) पञ्चतन्त्र—

(१) उद्यमेन विना राजन् न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः।
कातरा इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति।।

मानस— कायर मन कहँ एक अधारा। दैव-दैव आलसी पुकारा।।

(१९) पद्मपुराण—

(१) यत्र-तत्र ययौ काकः शरणार्थी स वायसः।
तत्र-तत्र तदस्त्रं तु प्रविवेश भयावहम्।।

मानस— जिमि-जिमि भाजत सक्रसुत, व्याकुल अति दुख-दीन।
मिमि-तिमि धावत राम सर, पाछे परम प्रबीन।।

(२०) पराशर-संहिता—

न व्रतेनोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति केवलं पतिपूजनात्।।

मानस— बिनु स्रम नारि परम गतिलहईं। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई।।।

(२१) भट्टिकाव्य-

(१) ज्ञात्वा मासमति क्रान्तं व्यथामवलम्बिरे।
अकृत्वा नृपतेः कार्यं पूजां लप्स्यामहे कथम्।।

मानस— इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं।।
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता। बिनु सुधि लये करब का भ्राता।।

(२२) प्रस्ताव-रत्नाकर—

अविधेया भृत्यजनाः शठानि मित्राण्यदायकः स्वामी।
अविनयवती भार्या मस्तक शूलानि चत्वारि।।

मानस— सेवक सठ नृप कृपनि कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।

(२३) वसिष्ठ-रामायण–

ये धारयन्ति गुस्मादरज: स्वशीर्षे।
ते कौ विभूतिमखिलां वशयन्ति नूनम्।।

मानस— जे गुरुचरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं।।

(२४) ब्रह्मरामायण—

मुक्तेर्जन्मधरा काशी ज्ञानखान्यधनाशिनी।
सोम: शंभुर्वसत्यत्र सदा सेव्या जनैरियम्।।

मानस— मुक्ति जनम महि जानि, ग्यानसानि अधहानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो कामी सोइय कस न।।

(२५) ब्रह्मवैवर्तपुराण—

इन्द्रोपेन्द्रविरच्याये यत्कृपालंध्यते सुरै:।

मानस— जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ वादी।।

(२६) वाल्मीकीय-रामायण–

क्व ते रामेण संसर्ग: कथं जानासि लक्षणम्।
वानराणं नराणां च कथमासीत्समागम:।।

मानस— नर—बानरहि संग कहु कैसे। कहीं कथा भइ संगति जैसे।।

(२७) विष्णुपुराण—

ऊहूरुन्मार्गगामीनि निम्नगाम्भांसि सर्वत:।
मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मी नवामिव।।

मानस— छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहू धन खल इतराई।।

(२८) भर्तृहरिशतक—

कान्ताकटाक्षविशिषान लुनन्तियस्य चित्तं न निर्दहति कोपकृशानु ताप:।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैर्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीर:।।

मानस— नारि नयन सर जाहिन लागा। घोर क्रोध तम निसि जो लागा।।
लोभ पास जेहि गए न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।।

(२९) भोजप्रबन्ध—

सर्वस्य द्वे सुमति कुमति सम्पदापत्ति हेतू।

मानस— सुमति कुमति सबके उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।

(३०) मातृकाविलास—

जानीयान्संगरे भृत्यान् बाँधवान् व्यवसागमे।
भार्यां क्षीणेषु वितेषु युद्धेशूरं धने शुचिम्।।
मानस— धीरजु धरम मित्र अरु नारी। आपत काल परखियहिं चारी।।

(३१) याज्ञवल्क्य-रामायण—

कोमलं वचनं श्रृत्वा कुमतिर्ज्वलिता सती।
अब्रबीत कैकयी ताञ्च माया नैव चलिष्यति।।
मानस— सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई।।
करहुँ कहै किन कोटि उपाया। इहाँ न लागहि राउरि माया।।

(३२) रघुवंश—

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्ततामिति।
कैकेयी शंकयेवाह पलितच्छद्‌मना जरा।।
मानस— स्रवन समीप भए सितकेसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा।।
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाभ किन लेहू।।

(३३) शुक्रनीति—

शास्त्रं सुचिन्तितमथोपरिचिन्तनीयमाराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः।
क्रोड़े कृतापि युवती परिरक्षणीया शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्।।
मानस— शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय। भूप सुसेवित पुनि-पुनि लेखिय।।
खाखिय नादि जदपि उर माहीं। जुवति सास्त्र नृपति बस नाहीं।।

(३४) हितोपदेश—

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदिवा सुतम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं-सत्वं हि नारद।।
मानस— भ्राता पिता पुत्र अरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।।
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहिं बिलोकी।।

(३५) सुभाषित त्रिंशती—

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सुतो लालनात्।
पुत्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।।
हीमद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रया-
न्मैत्रीचाप्रणयात्समृद्धिरनयाच्यागात् प्रमादाद्धनम्।।

मानस— संग ते जती कुमन्त्र से राजा। मान ते ग्यान पान ते लाजा।।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस धुनी।।

(३६) पद्मपुराण—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्थं वसुन्धरा भागवती च धन्या।
स्वर्गे स्थिता ये वियरोऽपि धन्या येषां कुले वैष्णव नामधेयम्।।

मानस— सो कुल धन्य उमा सुनु जगत् पूज्य सु पुनीत।
श्री रघुबीर परायन जेहि नर उपज विनीत।।

(३७) सुभाषित-रत्न-भांडागार—

सज्जनस्य हृदयं नवनीतं यद्दन्ति कवयस्तद्लीकम्।
अन्यदेहविलसत्परितापात् सज्जनोद्रवति नो नवनीतम्।।

मानस— संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पे कहइ न जाना।।
निज परिताप दहै नवनीता। पर-दुख द्रवहिं सुसंत पुनीता।।

(३८) प्राचीन श्लोक—

ये रामभक्ति ममलां सुविहाय रम्यां ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्ट मार्गे।
आरान्महेन्द्रसुरभीं परिहृत्य मूर्खाः अर्कं भजन्ति सुभगे सुख दृग्ध हेतुम्।।

मानस— जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं।।
से जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजतु आकु फिरहि पय लागी।।

(३९) शिवपुराण—

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं या न सेवते।।

मानस— मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।।
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।

(४०) गरुड़पुराण—

वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे। नरकात्क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्तते।।

मानस— बरु भल बास नरक कर साता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।।

(४१) कठबल्ली—

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
यो वेत्ति सर्वं न हि तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुषं पुराणम्।।

मानस— बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करई बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयनं बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।

इसके अतिरिक्त मानस के पौराणिक आधर-ग्रन्थ निम्नस्थ हैं—

(१) अग्निपुराण
(२) अद्भुत रामायण
(३) अभिज्ञान
(४) शाकुन्तल
(५) आनन्द-वृन्दावन
(६) कथासरित्सागर
(७) कामन्दकीय-नीति-सार
(८) किरातार्जुनीय
(९) गीत-गोविन्द
(१०) नलचम्पू
(११) नारद-पञ्चरत्न
(१२) नैषध
(१३) पराशर-स्मृति
(१४) पुरुष-सूक्त
(१५) वाराहपुराण
(१६) वशिष्ठसंहिता
(१६) ब्रह्माण्ड-पुराण
(१८) बाल-रामायण
(१९) विदग्ध-मुख-मण्डन
(२०) मत्स्य-पुराण
(२१) महानिर्वाण तत्त्व
(२२) महावीरचरित
(२३) महिम्न-स्तोत्र
(२४) याज्ञवल्क्य-स्मृति
(२५) रुद्र यामल
(२६) वामन-पुराण
(२७) शिव-पुराण
(२८) शिशुपाल-वध
(२९) स्कन्ध-पुराण
(३०) श्रुत बोध
(३१) हरिवंश-पुराण
(३२) हारीत-स्मृति इत्यादि।

रामचरितमानस के पौराणिक आधार ग्रन्थों का काल-निर्णय—

(१) हरिवंश—हरिवंश का रचना-काल ४०० ई० के लगभग माना जाता है।[1]

(२) ब्रह्माण्ड तथा मत्स्यपुराण में राम का नाम लिया गया है।[2] ब्रह्माण्डपुराण का काल चौथी शताब्दी ई० माना जाता है।

(३) विष्णुपुराण—चौथी शताब्दी ई०।

(४) वायुपुराण—पाँचवीं श०ई०।

(५) भागवतपुराण—छठीं अथवा सातवीं श०ई०।

---

(१) श्री आर०सी० हजरा : इण्डियन कलचर भाग-२, पृ०-२३७ और न्यू इण्डियन एंटिक्वेरी, भाग-१, पृ०-५२२.

(२) श्री आर०सी० हजरा : इण्डिन कल्चर, भाग-३, पृ०-४७७.

(६) कूर्मपुराण—सातवीं श०ई०।

(७) वाराहपुराण—लगभग ८०० ई०।

(८) अग्निपुराण—८०० ई० के बाद हुई है।

(९) लिङ्गपुराण—दशवीं शताब्दी-पूर्व।

(१०) नारदीय महापुराण—प्राचीन नारदीयपुराण अप्राप्य है, प्रचलित नारदीय महापुराण दसवीं श०ई० का माना जाता है, लेकिन बाद में इसमें बहुत से प्रक्षेप जोड़ दिए गए हैं।

(११) गरुड़पुराण—दशवीं शताब्दी ई०। गरुड़पुराण का रचनाकाल सम्भवत: दसवीं शताब्दी ई० है, लेकिन इसमें जो रामायण, महाभारत तथा हरिवंश का वर्णन किया गया है, उसे बहुत अर्वाचीन प्रक्षेप मानना चाहिए।[१]

(१२) स्कन्दपुराण—आठवीं शताब्दी के पश्चात्।

(१३) पद्मपुराण—बारहवीं शताब्दी।

(१४) ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—७०० ई०, वर्त्तमान रूप सोलहवीं शताब्दी ई०।

(१५) विष्णुधर्मोत्तरपुराण—पाँचवीं शताब्दी।

(१६) नृसिंहपुराण—४००-५०० ई०।

(१७) वह्निपुराण—सं० १६४६ की एक हस्तलिपि लन्दन में सुरक्षित है।[२]

(१८) शिव महापुराण की रुद्रसंहिता—(१४वीं श०)।

(१९) महाभागवत पुराण—१०वीं शताब्दी-११वीं श०।

(२०) वृहद्धर्मपुराण—१३वीं श०ई०।

(२१) सौरपुराण—९५०-१०५० ई०।

(२२) कालिकापुराण—१०वीं-१०वीं श०ई०।

(२३) आदिपुराण—१३वीं और १६वीं शताब्दी क बीच।

(२४) अध्यात्म-रामायण—एक नाथ ने (१६वीं श०ई०) अध्यात्म-रामायण को एक

---

(१) श्री आर०सी० हजरा : इण्डिन कल्चर, पुरानिक रेकार्ड्स, पृ०-१४४ और एनल्स भं०ओ०रि०इ०, भाग-१९, पृ०-६८-७५.

(२) इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी कैटालॉग, पृ०-१२९४, डॉ० हाजरा के अनुसार यह प्रामाणिक आग्नेय पुराण है, जिसका वर्तमान वैष्णव रूप पाँचवीं श०ई० का है। ज०आ०ई०, भाग-५, पृ०-४११-१६.

आधुनिक रचना कहा है। अतः इसकी प्राचीनता में बहुत सन्देह है।[१] रामानन्द को भी इसके रचयिता सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।[२] सबसे अधिक सम्भव यह है कि इसकी रचना १४वीं अथवा १५वीं शताब्दी में हुई थी।

(२५) **अद्भुत-रामायण**—ऐसा प्रतीत होता है कि अद्भुत-रामायण अथवा अद्भुतोत्तर-काण्ड की रचना अध्यात्म-रामायण के कुछ काल बाद हुई।[३]

(२६) आनन्द-रामायण की रचना अध्यात्म-रामायण के बाद तथा एकना (१६वीं श०ई०) के पूर्व हुई थी।[४] पौराणिक भूगोल के नाम भी मानस में व्याप्त हैं। जैसे–सुमेरू, सरस्वती, भोगवती, सप्तदीप, अमरावती, मंदर, मैनाक।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक ग्रन्थों में 'रामचरितमानस' के अधिकांश दोहों, सोरठों, छन्दों तथा चौपाइयों के मूल प्राप्य है। 'संस्कृत-नन्दन-कानन' में विचरण करके तुलसीदास रूपी मधुप ने समस्त फूलों का रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू जाति को दान किया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं की जा सकती। जैसे मधु अनेक शारीरिक व्याधियों को नाश करने में औषधियों को सहायता पहुँचाता है, वैसे ही 'रामचरितमानस' रूपी मधु अनेक मानसिक व्याधियों का नाश करने में सहायक होता है।[५] इसके अतिरिक्त मानसकार तुलसी ने पौराणिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उनका रूपान्तर किया है और 'मानस' ने विकीर्ण कर दिया है।

कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से अनुगृहीत हैं तो उसके आगे की चौपाई के भाव किसी अन्य पुराण के हैं।

—ooo—

---

(१) कलकत्ता संस्कृत सीरीज, भाग-११, भूमिका।

(२) दि आयरशिप ऑव दि अध्यात्म रामायण, जर्नल गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, भाग-१, पृ०-२१५-३९।

(३) वी० राघवन : म्युसिक इन दि अद्भुत रामायण, पृ०-६६.

(४) गोपाल नारायण (बम्बई) का संस्करण।

(५) राम नरेश त्रिपाठी : तुलसीदास और उनका काव्य, तृतीय संस्कारण, पृ०-१३४.

३.

रामचरितमानस के पुरावृत्त

अरस्तू ने इसे 'पोएटिक्स' (काव्यशास्त्र) में कथानक, कथाबन्ध तथा गल्पकथा कहा है। इसका विलोम, किन्तु पूरक शब्द 'लोगस' (तर्क) है। 'मिथ' आख्यानात्मक एवं अन्तःप्रज्ञा से पुष्ट एस्कलीज की त्रासदी होता है।

इसके अन्तर्गत लोक-साहित्य, धर्म, मानव-विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाएँ, सब आ जाती हैं।

१७वीं तथा १८वीं शताब्दी के बुद्धिवादियों ने 'मिथ' को 'हास' के रूप में लिया और इसे ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से कपोल कल्पना माना जाता था। लेकिन वाइसो ने अपने नव विज्ञान में इसका अर्थ बदल दिया, जिसकी मान्यता जर्मन स्वच्छन्दतावादी, नीत्से तथा कोलरिज आदि ने दी। इन लोगों के अनुसार 'मिथ' कविता की भाँति सत्य या सत्य का प्रतिरूप है।

'ऐतिहासिक दृष्टि से 'मिथ' शब्द धार्मिक अनुष्ठान से पैदा हुआ है और उससे जुड़ा हुआ है, यह धार्मिक अनुष्ठान का उच्चरित अंश है। वह कथा जिसको धार्मिक अनुष्ठान में कार्यान्वित किया जाता है।[१]

'मिथ' प्रकृति तथा पुरुष की नियति के विषय में शिक्षणीय बिम्बों को प्रोद्भासित करता है।

यह गुमनाम, किन्तु सामाजिक होता है। मेरी दृष्टि में जब-जब आधुनिक पुरातन अनुभव पर आश्रित जीवनरीतियों का विलोप करता है, तब-तब जन-मन तड़प उठता है। मानव मूर्त्त सङ्कल्पनाओं का आग्रही होता है। कल्पनाभोगी लेखक समाज के समक्ष अपने कलाकार को जीवन्त रखने के लिए ही 'मिथ' का सहारा लेता है। धार्मिक मिथ (पुराण-कथाएँ) कविकृत रूपक की महान् स्वीकृति है।

---

(१) मूल लेखक रेने वेलेक : आस्टिर वारेन अनुवादक बी०एस० पालीवाल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ०-२४९.

'मिथ' का पौराणिक कथाओं से समवाय सम्बन्ध है। यह साहित्य की प्रयोजन-सिद्धि का आधार है। यह 'रूप' और 'वस्तु' के बीच सेतु का काम करता है।

यह व्यक्तित्व को बाह्य वस्तु जगत पर आरोपित करता है, प्रकृति में आध्यात्मिकता को सम्पुटित करती है तथा इसे सजीव बनाता है। यह कविता की संरचना का एक नियामक तत्त्व है।

कैकेयी का दोष-निवारण—'कैकेयी का दोष निवारण' पुरावृत्त का बहुत सुन्दर उदाहरण है। मानसकार तुलसी ने कैकेयी की कुटिलता का स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है—

होत प्रातु मुनिवेष धरि जैं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन मांहि।।
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढी।।[१]

तुलसी ने राम-वनगमन को देवों के द्वारा सुनियोजित षडयन्त्र कहा है—

सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली।।[२]
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं।।[३]

राम का निर्वासन सर्वहितार्थ हुआ। इसमें कैकेयी दोषी नहीं। दशरथ के शब्दों में—

मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर।।[४]

देवताओं ने सरस्तवती के माध्यम से राम वन-गमन हेतु कैकेयी को प्रेरित करवाया। इस प्रकार 'राम वन-गमन' के लिए दोषी सरस्वती हैं—

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कविमोरी।।
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुख दाई।।
नामु मंथरा मंद मति चेरी कैकई, केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरामति फेरि।।[५]

---

(१) मानस (अयोध्याकाण्ड), दो०-३३/१.
(२) मानस (अयोध्याकाण्ड), दो०-१०/६.
(३) मानस–२/१०/८
(४) मानस–२/३५/×
(५) मानस–२/११/७-८/दो०-१२/×

संसार ईश्वराधीन है। अत: किसी को दोष नहीं देना चाहिए—

फेरी रघुवर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु ।
अंब ईश आधीन जगु, काहुन देइअ दोषु ।।[१]

बोले उचित बचन रघुनंदू । दिनकर कुल कैरव बन चंदू ।।
तात जायँ जियँ करहू गलानी । ईस अधीन जीव गति जानी ।।[२]
दोसु देहिं जननिहि जड तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसकार तुलसी ने कैकेयी के दोष का निवारण किया है।

मन्थरा—मन्थरा कैकेयी की चेरी थी । उसके बारे में तुलसी ने कहा है—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि ।।[३]

मन्थरा ने कैकेयी से कहा—

करि कुल बिधि परवस कीन्हा। बवासो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ।।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ।।
जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ।।
तातें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ।।

सुरमायावश मन्थरा ने कहा था—

गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि ।
सुरमाया बस बैरि निहि सुहृद जानि पतिआनि ।।

मन्थरा ने कैकेयी से दो वरदान माँगने हेतु कहा था—

दुइ वरदान भूप सन थाती । मागहु आजु जुड़ावहु छाती ।।[४]

उसने केवल इतनी ही सम्मति दी थी कि—

सुतहि राजु रामहि बनबासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ।।[५]

तापस वेश और विशेष उदासीनता के साथ चौदह वर्ष का वनवास स्वयं कैकेयी ने ही माँगा था ।

---

(१) मानस–२/२४४.
(२) मानस–२/२६२/४-५.
(३) मानस–२/१४.
(४) मानस–२/१५/५-८
(५) मानस–२/२१/५
(६) मानस–२/२१/६

'सुरमाया बस' से स्पष्ट होता है कि गिरा (सरस्वती) द्वारा मन्थरा बुद्धि का बदला जाना है। पुनश्च: श्री भरद्वाज ऋषि ने स्पष्टत: भरत जी से कहा है कि—

तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु कर तूति।
तात कैकइहि दोसु नाहिं गिरा मति धूति।।[१]

इससे स्पष्ट होता है कि मानसकार तुलसी ने मन्थरा और कैकेयी को दोषयुक्त सिद्ध किया है।

आधिकारिक कथावस्तु की दृष्टि से ही विशिष्ट पुरावृत्तों की मैंने चर्चा की जिनमें निम्नस्थ है—

(१) अहल्या-उद्धार

अहल्योत्पत्ति—वैदिक साहित्य के अनुसार इन्द्र गौतम कहलाते थे—**कौशिक ब्राह्मण गौतम ब्रुवाणेति।**[२]

षड्विंश ब्राह्मण के वाक्यांश—***'कौशिको हि स्मैनां ब्राह्मण उपन्यैति'*** के अनुसार भी थे। अहल्या भूमि (जिसमें हल नहीं चलाया गया हो) और वर्षा के देवता इन्द्र का सम्बन्ध सहज मालूम पड़ता है। वैदिक साहित्य की टीकाओं के अनुसार अहल्या की कथा 'रूपक' बनकर ही रह गयी है, किन्तु महाभारत के अनुसार गौतम को अहल्या का पति माना गया है।

अहल्या की वंशावली—हरिवंशपुराण (१, ३२, २८-३२) के अनुसार मुद्गल, मौद्गल, इन्द्रसेन तथा बदुयश्व में क्रमशः पिता-पुत्र का रिश्ता था। बद्यश्व और मेनका की दो सन्तान थीं—दिवोदास और अहल्या। अहल्या और गौतम से एक पुत्र शतानन्द हुए।

पिता—विष्णुपुराण (४/१९/६१) में वृहदश्व, भागवतपुराण (९/२१/३४) में मुद्गल तथा मत्स्यपुराण (५०/६) में विन्ध्याश्व कहा गया है। वाल्मीकीय उत्तरकाण्ड में सर्वप्रथम अहल्या की उत्पत्ति और गौतम-अहल्या के विवाह की कथा मिलती है, जिसका विकसित रूप ब्रह्मपुराण के अध्याय ८७ में मिलता है। इस वृत्तान्त का सङ्केत आनन्द रामायण में भी मिलता है—

ब्रह्मणा निर्मिताऽहल्या द्विमुखी गोः परिक्रमात दत्ता पुरा गौतममाय।[३]

---

(१) मानस–२/२०६
(२) शतपथब्राह्मण–३/३/४/१८.
(३) आनन्द रामायण–१/३/१८.

सन्तति—महावीरचरित नामक राम-नाटक तथा वाल्मीकीय रामायण के अनुसार जनक के पुरोहित शतानन्द गौतम और अहल्या के पुत्र माने गये हैं।

अहल्या का अपराध और शाप-अङ्गीकार—स्कन्दपुराण के अनुसार 'गौतम-पत्नी का अपराध यह है कि वह अपने स्त्री-स्वभाव के अनुसार कौशिकी के तट पर बलि नामक राजा की ओर देखती रही।[1] किन्तु महाभारत के अनुसार इन्द्र गौतमवेश में उसके पास गये थे, इसीलिए गौतम ने सोचा कि मेरे आश्रम में ब्राह्मणवेष में आये हुए अतिथि का सत्कार अहल्या ने किया। बाद में इन्द्र ने जो दुराचार किया। उसमें मेरी स्त्री का कोई दोष नहीं था— **अत्र च कुशले जाते स्त्रिया नास्ति व्यतिक्रमः।**[2]

महाभारत के विभिन्न स्थलों पर इन्द्र के प्रति गौतम के शाप की चर्चा है, लेकिन अहल्या को महाभारत में सर्वत्र निर्दोष ही माना गया है। ब्रह्मपुराण के वृत्तान्तानुसार गौतम की अनुपस्थिति में इन्द्र गौतम का रूप बनाकर अहल्या के समीप आते थे, किन्तु अहल्या उन्हें गौतम ही समझती थी—**न बुबोध स्वहल्या तंजारं मेने सु गौतम।**[3]

ब्रह्म वैवर्त्तपुराण के कृष्ण-जन्म-खण्ड, अध्याय ४७ और ६१ के अनुसार अहल्या निर्दोष है, किन्तु इसी कृति में गौतम के दो अन्य शापों का भी वर्णन है— 'हपूर्ण वर्ष च सततं योनिगंधे त्वमाप्नुहिं और 'भ्रष्टश्रीभव'।[4]

निम्नलिखित ग्रन्थ अहल्या को अभिशप्त/सिद्ध करते हैं—

(१) नृसिंह पुराण (अध्याय ४७).
(२) स्कन्दपुराण (देवा खण्ड, अ० १३६, नागर खण्ड, अ० २०८).
(३) जानकीलहर (६, १४).
(४) कथासरित्सागर (३, १७).
(५) महानाटक (३, १७).
(६) वह्निपुराण (पृ०-१८२).
(७) ब्रह्मवैवर्त्तपुराण
(८) गणेशपुराण[5]
(९) पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, अ० २६९ तथा गौडीय पाताल खण्ड, अ०-१६).

---

(१) स्कन्दपुराण/माहेश्वर खण्ड/कौमार खण्ड/अध्याय-६/श्लोक-१०८.
(२) महाभारत-२५८/४६.
(३) ब्रह्मपुराण/अध्याय ८७/श्लोक ४४.
(४) ब्रह्मवैवर्त्तपुराण/अध्याय ४७/३१-३२.
(५) सातवलेकर, श्रीरामायण महाकाव्य का बालकाण्ड १९४३, पृ०-५५०.

(१०) तोरवे-रामायण (१,१२). (११) आनन्दरामायण (१,३,१६).
(१२) उद्धारराघव (३,२९). (१३) कण्वरामायण (१,९).
(१४) रंगनाथ रामायण (१,२९). (१५) कृत्तिवास रामायण (१,५९).
(१६) बाल्मीकीय रामायण।

वाल्मीकीय रामायण में राम के द्वारा अहल्या-उद्धार का पुरातन रूप मिलता है। उत्तरकाण्ड के अनुसार गौतम ऋषि ने अहल्या को कहा कि विष्णु-अवतार राम के दर्शनमात्र से ही वह पावन हो जायेगी—**तं द्रक्ष्यति यदान्द्रे ततः पूता भविष्यसि।**[१]

गौतम ऋषि ने अहल्या से कहा कि तुम तपस्या करो और राम का आतिथ्य-सत्कार करने के बाद मेरे पास लौटो। राम के पधारने तक वह शापवश अदृश्य बनकर तपस्या में लीन रहती है। विश्वामित्र से यह कथाश्रवण कर राम-लक्ष्मण आश्रम पर जाते हैं। उसी समय गौतम-शाप की अवधि समाप्त हो जाती है। राम अहल्या को देखते हैं और ऋषि-पत्नी का चरण-स्पर्श करते हैं—**राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुस्तदा।**[२]

राम-लक्ष्मण का आतिथ्य-सत्कार करने के बाद अहल्या अपने पति के पास लौट जाती है—**पाद्य मध्यं तथातिथ्यं चकार सुसमाहिता।**[३]

आनन्दरामायण (१/३/२०), महानाटक (३/१७) और ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के अनुसार अहल्या सचमुच पाषाण बन गई थीं। राम ने अपने चरण स्पर्श से पुनरुज्जीवित किया। अहल्या राम के चरणों पर लोट पड़ी और स्तुति में द्वारा राम के ब्रह्म स्वल्प का वर्णन करने लगी। अनन्तर भक्ति का वरदान माँगी।

रामचरितमानस में अहल्योद्धार की कथा मनोरञ्जक ढंग से तुलसी ने उपस्थित की है। विश्वामित्र ने राम से कहा—

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिउ जाई।।[४]

धनुष यज्ञ सुनकर राम हर्षित हुए और विश्वामित्र के साथ यज्ञ देखने जनकपुर चले। मिथिला की राह में ही एक आश्रम दिखाई पड़ा, जहाँ कोई जीव-जन्तु नहीं था—

आश्रम एक दीख मगमाहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ माहीं।।[५]

राम ने 'शिला' देखकर मुनि जी से उसके बारे में पूछा। मुनि ने सारा वृत्तान्त सविस्तार कहा—

---

(१) वाल्मीकीय रामायण–सर्ग ३०/४३.
(२) वही, बालकाण्ड–सर्ग ४९/श्लोक १७. (३) वही, बालकाण्ड–सर्ग ४९.
(४) मानस–१/२०९/९ (५) मानस–१/२०९/११

पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी.। सकल कथा मूनि कहा विसेषी ।।[१]
और कहा— गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ।
चरनकमल रज चाहति कृपा करहु रघुवीर ।।[२]

राम ने अपना पदपङ्कज अहिल्या के सिर पर ज्योंहि रखा कि—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तपपुंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुख दायक सनमुख होइ कर जोरि रही ।।[३]

'अति प्रेम अधीरा' अहल्या का तन पुलकित हो उठा। वह मुख से बोल नहीं सकी और राम के चरणों में युगलनयन जलधार बहाकर बिछ गयी। वह मन को ढूढ़कर प्रभु को पहचान गयीं और रघुपति की कृपा से उनकी भक्ति को पा गयीं, फलस्वरूप अति निर्मल वाणी से 'ग्यान-गम्य रघुराई' की स्तुति ठानी—

मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई ।
राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ।।
मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखउँ भरि लोचन हरि भव मोचन रहइ लाभ संकर जाना ।।[४]

उसने प्रभु से एक ही वर माँगा—

विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथन मागउं बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।।[५]

इसी भाँति, गौतम नारी बार-बार प्रभु-चरणों में परकर राम से मनोनुकूल वर प्राप्त कर अपने पति लोक को सानन्द सिधारी।

(२) कैकेयी का दोष-निवारण

कैकेयी को सर्वप्रथम वाल्मीकि ने अपनी रामायण में निर्दोष सिद्ध किया है। भारतद्वाज राम से कहते हैं कि कैकेयी निर्दोष है; क्योंकि राम का वन-गमन सर्वहितकारी सिद्ध होगा—

देवानां दानवानाञ्च ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
हितमेव भविष्यद्धि राम प्रव्राजनादिह ।।[६]

चित्रकूट में जब भरत कैकेयी की निन्दा करते हैं, तब राम भरत को याद दिलाते

---

(१) मानस–१/२०९/१२ (२) मानस–१/२१०.
(३) मानस–१/१२०/छन्द. (४) मानस–१/२१०/छन्द ४-५.
(५) मानस–१/२१०/छन्द-६. (६) वाल्मीकीय रामायण–सर्ग ९२/दो०-३१.

हैं कि दशरथ ने विवाह के समय कैकेयी सुमन को राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुदवहन ।
माता महे समाश्रोषीद्राज्य शुल्कमनुत्तमेम ।।[१]

दशरथ की इस प्रतिज्ञा के आधार पर कैकेयी निर्दोष सावित होती है। गौरीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में ब्राह्मण शाप की चर्चा हुई है, जिसके अनुसार कैकेयी ने किसी ब्राह्मण की भर्त्सना की थी, जिसके कारण ब्राह्मण शाप से कैकेयी अभिशप्त हुई और 'शाप दोष मोहिता' कैकेयी मन्थरा के जटिल-कुटिल जाल में फँस गयी थी। इस शाप का वर्णन बलराम दास की रामायण, कृत्ति वास रामायण तथा रामायण मञ्जरी में भी मिलता है। वसुदेवहिण्डि तथा धर्मखण्ड के ३८वाँ अध्याय के अनुशीलन से भी ज्ञात होता है कि कैकेयी ने पश्चात्ताप किया।

देवकृते कोऽपराधः । त्वं मे मातृ समा देवि त्वयि मे नास्ति दुर्मनः ।[२]

कैकेयी के दोष के कारण ही राक्षसकुल का नाश हुआ था—

यस्या दोषोदपि भुवनत्रयस्य रक्षोभयनाशाय होतुर्बभूव ।[३]

इसीलिए जानकी हरण में कैकेयी की भूरिशः प्राशस्ति की गई है।

प्रतिमानाटक के अनुसार ऋषि शाप वश पुत्र विरह के कारण दशरथ-मरण अनिवार्य समझ कर कैकेयी ने उस शाप की सार्थकता हेतु तथा राम को किसी अन्य भयङ्कर विपत्ति से निवारणार्थ वसिष्ठ, वामदेवादि से परामर्श करने के बाद, राम को वन भेजवाया था।

भवभूति अपने महावीरचरित और मुरारि ने अनर्घराघव में कैकेयी के किसी भी दोष की चर्चा नहीं की है।

अध्यात्मरामायण (२/२/४४-४६) में मन्थरा और कैकेयी दोनों को मोहित करने हेतु सरस्वती को अयोध्या भेजने की चर्चा हुई है। आनन्दरामायण में (८/२/५६) कैकेयी के दोष का कारण सरस्वती मानी गयी है। रामचरितमानस में तुलसी ने विभिन्न स्थलों पर कैकेयी के दोष का कारण देवताओं को माना है। राम के राज्याभिषेक की उमंग-उछाह से तैयारियाँ हो रही है। सभी कल की प्रतीक्षा उत्सुक होकर कर रहे हैं और देवता विघ्न मना रहे हैं—

---

(१) वाल्मीकीय रामायण/२/१०७/दो०-३.
(२) तत्त्वसंग्रह रामायण–२/११.
(३) जानकीहरण–१/४२.

सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ।।[१]

सरस्वती को बुलाकर देवताओं ने विनय किया और बार-बार उनके पैरों पर गिरकर कहा—

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातुकरिअ सोइ आजु ।
राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ।।[२]

देवता का विनय सुनते ही सरस्वती खड़ा होकर पश्चात्ताप करने लगीं—

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती । भइउँ सरोज बिपिन हिमरासी ।।[३]

देवताओं ने सरस्वती को खड़ा-पश्चाताप करते देखकर पुनः निहोरा किया—

देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ।।[४]

और कहा—

जीव करम बस सुख दुख भागी । जाइअ अवध देवहित लागी ।।[५]

बार-बार देवताओं ने सरस्वती के चरणों को पकड़ कर देव-हितार्थ अवध जाने की विनती की—

बार-बार गहि चरन सङ्कोची । चली बिचारि बिबुध मति पोची ।।[६]

देव विनय मानकर सरस्वती दशरथपुर आयीं और कैकेयी की दासिन मन्थरा की बुद्धि-भ्रष्ट कर दीं, जिसके कारण मन्थरा की कुटिल मन्त्रणा मानकर कैकेयी ने दशरथ से दो वरदान माँग लिया—

(१) भरत को अवध की राजगद्दी और

(२) चौदह वर्ष का राम को तपसी वेष में विशेष उदास रहकर वनवास।

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का । देहु एक वर भरत ही टीका ।।
मागउँ दूसर बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ।।
तापस वेष विसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनवासी ।।[७]

कैकेयी के मर्म वचन को सुनकर दशरथ ने कहा—

मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ।।[८]

---

(१) मानस–२/१०/६
(२) मानस–२/११
(३) मानस–११/१
(४) मानस–२/११/२
(५) मानस–२/११/४
(६) मानस–२/११/५
(७) मानस–२/२८/१-३.
(८) मानस–२/३५.

पश्चात्ताप—आनन्दरामायण, अध्यात्मरामायण, तोरवे रामायण, राम लिङ्गामृत में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि राम के अयोध्या वापस आने पर कैकेयी ने पश्चात्ताप किया था और क्षमा माँगी थी।

रामचरितमानस में तुलसी दास ने कैकेयी के पश्चात्ताप का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकेई हृदयँ बहुत सकुचानि।।

लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ।
कैकेई कहँ पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ।।[1]

पुनश्च— **प्रभु जानी कैकेई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी।।**[2]

(३) मन्थरा

महाभारत के रामोपाख्यान (३/२६०/१०) में गन्धर्वी दुन्दभी का मन्थरा के रूप में उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है। पद्मपुराण, आनन्दरामायण, कृत्तिवासरामायण तथा वसुदेवकृत रामकथा में भी इसकी ओर सङ्केत किया गया है। तोरवे-रामायण के अनुसार मन्थरा विष्णुमाया का अवतार मानी गई है।

बलराम दास ने मन्थरा को गोमाता सुरभि माना है, जिसे देवताओं ने धरती पर भेजा था। आनन्द रामायण (१/६/४१), अध्यात्म रामायण, कश्मीरी रामायणादि के वृत्तान्तों के अनुसार मन्थरा को मोहित करने के लिए ही देवता ने सरस्वती को भेजा था। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार राम के निर्वासन के कारण शत्रुघ्न मन्थरा को पीटते हैं।

राम द्वारा मन्थरा का उत्पीड़न ही राम के वनवास का कारण बतलाया गया है—

पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता साऽपराधतः।
तेन वेरेण सा रामं वनवासं च कांक्षति।।[3]

वाल्मीकीय रामायण के उदीच्य पाठ की कतिपय हस्तलिपियों के अवलोकन से भी राम के साथ मन्थरा का पूर्व वैर सिद्ध होता है—

रामे सा निश्चिता पापा पूर्ववैर मनुस्मरन।
कस्मिंश्चिदपराधे हि क्षिप्ता रामेण सा पुरा।

---

(१) मानस–७/६ (क) तथा ६ (ख). (२) मानस–७/९ (ख)/१
(३) अग्निपुराण–अध्याय ५/श्लोक ८.

चरणेन क्षितिं प्राप्ता तस्माद्वैरमनुत्तमम् ।।[१]

रामायण मञ्जरी के अनुसार भी राम के प्रति मन्थरा का वैर स्पष्ट परिलक्षित होता है—

शैशवे किल रामेण पुरा प्रणय कोपतः ।
चरणेनाहता तत्र चिरं कोपमुवाह सा ।।[२]

बलराम दास अपनी रामायण में कहते हैं कि मन्थरा ने विवाह के समय राम का उपहास किया था, जिसके कारण राम ने उसे पीटा था। कम्ब-रामायण के अनुसार बचपन में राम ने मिट्टी के ढेलों को अपने धनुष पर चढ़ाकर मन्थरा के कूबर पर मारा था।

तेलुगु रंगनाथ रामायण की दृष्टि में राम ने लड़कपन में मन्थरा की एक टांग तोड़ दी थी। राम कियेन तथा सेरी राम के अनुसार राम ने मन्थरा के कूबर में बाण चलाया था। तेलुगु भास्कर रामायण में लिखा है कि राम ने मन्थरा को लात मारी थी।

'सत्योपाख्यान' के अनुसार मन्थरा ने पूर्व जन्म के वैरवश राम को वनवास दिखाया था। तुलसीदास ने रामचरितमानस में केवल इतना ही उल्लेख किया है कि सुरकार्यसिद्धि हेतु देवताओं ने सरस्वती को भेजकर मन्थरा को मोहित किया—

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ।।[३]

फलस्वरूप मन्थरा ने गूढ़-कपट प्रिय वाणी से कैकेयी को वशीभूत कर लिया—

गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर बुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।।[४]

इस प्रसंग में महाकवि तुलसीदास ने 'भावी' को ही राम वन-गमन का आधार माना है—

तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी ।।[५]
तथा— भावी बस प्रतीति उर आई। पूछ रानि पुनि सपथ देवाई ।।[६]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' नामक ग्रन्थ में मन्थरा को 'सर्वथा निर्दोष' सिद्ध किया है।

---

(१) बाल्मीकीय रामायण–अयोध्याकाण्ड/सर्ग ७,९ की पाद-टिप्पणी, बड़ौदा-संस्करण।

(२) रामायणमञ्जरी–१/६६७

(३) रामचरितमानस–अयोध्याकाण्ड/१२

(४) रामचरितमानस–२/१६.

(५) रामचरितमानस–२/१६/२

(६) रामचरितमानस–२/१८/१.

कनक मृग—कनक मृग की कथा तिब्बत, खीतान, स्याम, बर्मा और हिन्देशिया आदि देशों में प्रचलित है। भारतीय पुराणों में कनक मृग पर पर्याप्त क़थानक आये हैं। महानाटक (दामोदर ३/२७) के अनुसार राम-लक्ष्मण कनक-मृग का आखेट करने पर साथ ही जाते हैं। उदात्तराघव के अनुसार लक्ष्मण ही कनक मृग को मारने जाते हैं। सेरी राम के अनुसार रावण गागकनासिर के दो पुत्रों को मृग बनने का आदेश देता है—'एक सुवर्ण और एक रजत। सेरी राम में एक जगह रावण स्वयं कनकमृग बन जाता है।

ब्रह्मचक्र की एक प्राप्त हस्तलिपि, जिसकी कथानक का सार सन् १९५७ ई० में पी०बी० लाफों, पोम्मचक, ई०एफ०ई०ओ० ने प्रकाशित करवाया। इसके अनुसार शुर्पणखा लङ्का जाती है और स्वयं मृग बनकर सीताहरण में रावण की सहायता करती है। बर्मा में गाम्बी (शूर्पणखा) कनक मृग का रूप धारण कर लेती है। सी० कोलमैन के अनुसार 'रावण स्वयं कनक मृग बनाया'।[१]

भासकृत प्रतिमानाटक में मारीच को ही कनक मृग के रूप में चित्रित किया गया है। कृत्या रावण में सीताहरण के प्रसङ्ग में मरीच को ही कनक मृग माना गया है। प्रचलित वाल्मीकीय रामायण में कनक मृग का जो वृत्तान्त आया है, सम्भवत: तुलसी दास ने उसी का अनुकरण किया है।

(४) कनक मृग का वृत्तान्त

विरुपित शूर्पणखा से खर-दूषण वध का समाचार तथा सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा श्रवण कर रावण मारीच के पास जाता है—

दस मुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वास्थ रत नीचा।।[२]

मारीच उसकी पूजाकर आगमन का कारण पूछता है। रावण सारी कथा कहता है तथा सीताहरण में सहायक बनने हेतु 'कपट मृग' बनने का निवेदन करता है—

होइ कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि विधि हरि आनों नृप नारी।।[३]

मारीच राम के पराक्रम को निम्न शब्दों में व्यक्त करता है—

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फट सर रघुपति मोहि मारा।।
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं।।
भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउ दोउ भाई।।[४]

उसने स्पष्टत: कहा—

---

(१) सी० कोलमैन : दि मिथालॉजी ऑफ दि हिन्दूज, पृ०-२४

(२) रामचरितमानस-३/२३/६. (३) रामचरितमानस-३/२४/२.

(४) रामचरितमानस-३/२४/५-७.

जौ न तात तदपि अति सूरा। तिन्हिहि बिरोधि न आइहि पूरा।।[१]

इसीलिए—**जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। बस-सुनत जरा दीन्हिसि बहू गारी।।**[२]

रावण उसका सत्परामर्श ठुकरा कर धमकी देता है—'यदि तुम स्वीकार नहीं करोगे, तो मैं तुम्हारा वध करूँगा'। मारीच ने सोचा—

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकिसि रघुनायक तरना।।
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागें।।[३]
अनेन कृत कृत्यो स्मि म्रिये चाप्यरिणाहतः।[४]

तदुपरान्त मारीच रावण के रथ पर आरुढ़ होकर पञ्चवटी–वन में आया और 'कनक मृग' का रूप बना लेता है। कनक मृग के बारे में तुलसीदास ने मानस में लिखा है—

अति विचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई।।[५]

अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुमनोहर वेषों से सुसज्जित परम रुचिर मृग को देखकर सीता राम को बुलाकर कनक मृग को दिखाती है और उसे प्राप्त करने के लिए अनुरोध करती है—

सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुन्दर दाला।।
सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही।।[६]

राम-सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर मृग का शिकार करने जाते हैं—

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी।।[७]

माया मृग ने अपनी माया का विस्तार किया—

कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई।।
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी।।[८]

अन्ततोगत्वा राम ने कठिन सर का प्रहार किया। मरण-काल में उसने पहले लक्ष्मण का नाम लिया, पीछे मन में राम का स्मरण किया और प्राणान्त के समय वह अपना मूल रूप धारण कर लेता है और पूर्व-निर्धारित योजनानुसार राम की वाणी की अनुकृति करता हुआ चिल्लाता है—'हा सीते, हा लक्ष्मण'। राम मायावी राक्षस को मरा जानकर तुरन्त आश्रम में लौटते हैं।

---

(१) रामचरितमानस–३/२४/८. (२) रामचरितमानस–३/२५/१.
(३) रामचरितमानस–३/२५/५-६. (४) बाल्मीकीय रामायण–३/४१/१७.
(५) रामचरितमानस–३/२६/२. (६) रामचरितमानस–३/२६/४-५.
(७) रामचरितमानस–३/२६/१०. (८) रामचरितमानस–३/२६/१२-१३.

उधर सीता मारीच की आर्त-पुकार को सुनकर तथा राम को सङ्कटाकीर्ण जानकर लक्ष्मण से भाई की सहायता करने के लिए अनुरोध करने लगी। लक्ष्मण पहले अस्वीकार करते हैं, किन्तु सीता के मर्म वचन को सुनते ही वे चले गये। इसी बीच रावण यती के वेष में सीता के समक्ष उपस्थित होता है और नानाविध कथा कहता है। सर्वविध राजनीति तथा भय-प्रीति दिखलाता है, किन्तु सीता उसके प्रस्ताव को हर तरह से ठुकरा देती है और कटूक्ति कहती है तब रावण अपने राक्षस रूप में प्रकट होकर अपना नाम बतलाता है और अपने रथ में बैठाकर लङ्का की ओर प्रस्थान करता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि मारीच राक्षस कुल का होता हुआ भी राम का परम स्नेही था। मानसकार तुलसी ने मारीच के मन का बड़ा सुन्दर चित्र उपस्थित किया है—

छन्द— निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पदमन लइहौं।।
निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अब सहि बस करी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुख सागर हरी।।[१]

तथा— मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सन आन।।[२]

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ कि मारीच निश्चित रूप से मायावी राक्षस होता हुआ भी 'कनक-मृग' के रूप में 'राम भक्त' ही है। वह आर्त्तवश 'कनक मृग' बना था, स्वेच्छा से नहीं।

अत: कनक मृग मारीच को रामचरितमानत में दास ने एक निर्दोष राम स्नेही तथा उनका 'परमप्रीतम' सिद्ध किया है।

(५) सेतुबन्ध

कथानक—राम ने तीन दिनों तक सागर का विनय किया, किन्तु समुद्र ने उन्हें लङ्का जाने के लिए रास्ता नहीं दिया। राम क्रुद्ध होकर समुद्र को अपने बाणों से बिद्ध करने के लिए उद्यत हो गये। सागर विप्र रूप में प्रकट होकर विश्वकर्मा के पुत्र नल द्वारा सेतु-निर्माण का राम को सुझाव दिया। राम ने वानर सेना का आह्वान किया। नल-नील दोनों भाइयों ने पत्थरों को स्पर्श करना शुरु किया और वानर उन पत्थरों को सागर में फेंकने लगे। इस प्रकार सागर में सेतु निर्मित हो गया। राम वानर-सेना सहित उसी

---

(१) रामचरितमानस–३/२५/५ (छन्द).

(२) रामचरितमानस–३/२६

सेतु पर चढ़कर लङ्का पहुँच गये। 'अनामकं जातकम्' के अनुसार इन्द्र लघु वानर के रूप में प्रकट होकर सेतुबन्ध का परामर्श देते हैं। इसकी कथाओं के अनुसार क्रमशः नल तथा हनुमान ने सेतुबन्ध के कार्यों को सम्पादित किया था।

सत्त्वसंग्रह रामायण में सेतुबंन्ध के पहले सागर की पुत्री कन्या कुमारी ने राम के पास आकर विवाह का प्रस्ताव किया, किन्तु राम ने युद्ध का बहाना बनाकर उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और सागर पर सेतु बनवाने की अनुमति माँगी। माधव कंदली रामायण में माधव देव ने कहा है कि नल को यह आश्वासन मिला था कि तुम्हारे स्पर्श से पत्थर नहीं डूबेंगे। रङ्गनाथ रामायण के अनुसार पशुकराव नामक मुनि ने यह वरदान दिया कि यह बालक जो कुछ समुद्र में प्रवाहित कर देगा, वह जल पर ही तैरता रहेगा।

कृत्तिवास रामायण के अनुसार ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर नल को वरदान दिया कि तुम्हारे स्पर्श से पत्थर भी जल पर तैरते रहेंगे। तुलसीदास में नल और नील की वर प्राप्ति की चर्चा रामचरितमानस में की है—

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई।।
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।[1]

वाल्मीकीय रामायण में सागर नल-द्वारा प्राप्त किए हुए वर का वर्णन करता है—**पित्रा दत्त वरः।**[2] नल ने राम से कहा कि मुझे अपने पिता विश्वकर्मा की शक्ति प्राप्त है, इसलिए में समुद्र में सेतु बाँध सकता हूँ। विश्वकर्मा ने अपनी पत्नी को यह कहकर वर दिया है कि तुम्हारा पुत्र मेरे समान ही होगा—**मयातु सदृशः पुत्रस्तव देवि भविष्यति।**[3]

आनन्द रामायण, काश्मीरी रामायण, भावार्थ रामायण तथा खोतानी रामायण में नल के वरदान के स्थान पर शाप का वर्णन मिलता है। आनन्द रामायण की कथा के अनुसार नल ने किसी ब्राह्मण का शालिग्राम गङ्गा में फेंक दिया था, जिसके कारण ब्राह्मण ने उसे यह शाप दिया कि तेरे स्पर्श से पत्थरादि पानी पर तैरते रहेंगे—**पाषाणादि तरिष्यति त्वद्धस्तात्।**[4]

काश्मीरी रामायण के अनुसार एक ऋषि ने नल नामक वानर को शाप दिया कि जो कुछ नल पानी में फेंकेगा, वह नाव के सदृश पानी पर तैरता रहेगा। खोतानी रामायण के अनुसार नन्द नामक वानर को एक ब्राह्मण ने शाप दिया था कि तुम पानी

---

(१) रामचरितमानस–५/५९/१-२.
(२) बाल्मीकीय रामायण–६/२२/४१.
(३) वाल्मीकीय रामायण–सर्ग ६/२.२/४७.
(४) आनन्द रामायण–१/१०/६७.

में मर जाओगे, किन्तु अन्य ब्राह्मणों के आग्रह करने पर उसने अपना इस प्रकार परिवर्त्तित कर दिया—'जो कुछ तुम पानी में फेंकोगे, वह नहीं डूबेगा और तुम भी नहीं'।

हनुमान को अहल्या का उद्धार याद था। इसीलिए वे राम के राज्य से पत्थर लाए और बन्दरों ने अपने नखों से उन पर राम-नाम अङ्कित कर दिया। राम-नाम के प्रभाव से पत्थर नहीं डूब सके। ई० मूर की रचनाओं भी राम नामाङ्कित शिलाओं का उल्लेख है।[१] सेतु बन्ध के क्रम में गिलहरी की सहायता का उल्लेख आल्वार विप्र-नारायण (९ श०ई०) की रचना में मिलता है।[२] रङ्गनाथ, कृत्तिवास और बलराम दास के रामायणों में भी गिलहरी का वृत्तान्त आया है। 'पंजाब में गिलहरी रामचन्द्र की भक्तिन मानी जाती है। सेतुबन्ध के समय उसने अपनी पूँछ हिलाकर बालू के कण सेतु पर फेंक दिए और राम ने पुरस्कार-स्वरूप उसकी पीठ पर तीन रेखाएँ खींची।[३]

सेतुबन्ध की बाधाएँ—बाल रामायण (८/५२), जानकी हरण (१४/४६), रङ्गनाथ रामायण (६/२५) और तोरवे रामायण (६/५) में सेतु पर मछलियों के आक्रमण की चर्चा की गयी है।

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में गोलमटोल ढंग से कहा है—

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा।।
मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला।।[४]

'राम जातक' के अनुसार नाग-कन्याएँ सेतु को नष्ट कर देती हैं। भावार्थ रामायण के अनुसार वानरों ने राम को उठाकर सेतु के उस पार पहुँचाया। उन्हें भय था कि राम के पद स्पर्श से कहीं सेतु में पत्थर सुन्दरियाँ न बन जायँ। सेरी राम की कथा के अनुसार हनुमान ने उस समय सहस्र स्कन्ध सिंह बनकर राम को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया और उनको सेतु पार कर दिया।

सेतुभंग—स्कन्दपुराण का सेतु महात्म्य (अध्याय ३०), रङ्गनाथ रामायण (६/१६१), तोरवे रामायण (६/५४), आनन्द रामायण (१/१२/४८), तत्त्वसंग्रह रामायण (६/३५), कृत्तिवास रामायण, पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड (अध्याय ३५/१३५) तथा 'अलबनी का भारत' (अंग्रेजी संस्करण १/३०) नामक रामकथाओं में सेतुभंग की चर्चा हुई है।

---

(१) हि हिन्दू पैंथेयॉन, लन्दन १९१०, पृ०-१९३.

(२) एस० वैयापुरी पिल्लै : हिस्टरी ऑव तमिल लेंग्विज एण्ड लिटरेचर, मद्रास १९५६, पृ०-१३१.

(३) रामचरितमानस–६/३/४-५. (४) रामचरितमानस–६/३/४-५.

सेतुबन्ध की बाधाओं का वर्णन जानकीहरण (१४/४६), बालरामायण (८/५२), रङ्गनाथ रामायण (६/२५), तोरवे रामायण (६/५) तथा मराठी रामविजय में मछलियों के आक्रमण पर प्रकाश डाला गया है। मछलियों का वजन साधारण पुल नहीं सह सकता। नीले ह्वेल की लम्बाई ३३ मीटर तथा वजन १०० टन से भी अधिक होता है।[1] उसे ताजी हवा लेने हेतु १०-१५ मिनट पर पानी के ऊपर आना पड़ता है।

इससे स्पष्ट है कि मछलियों में ह्वेल मछलियाँ रही होंगी, जो १०-१५ मिनट पर शुद्ध हवा प्राप्त्यर्थ सेतु पर आती रही होंगी। फलतः सेतु टूट गया होगा।

(६) नागपाश

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार लङ्का को वानर कटक से आवृत्त जानकर रावण ने उसका सामना करने हेतु राक्षस-सेना को प्रेषित किया। इस प्रथम तुमुल-युद्ध को सर्वाधिक द्वन्द्वयुद्ध है—इन्द्रजित और लक्ष्मण युद्ध और इस युद्ध की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है—इन्द्रजित के नागपाश में राम-लक्ष्मण का बँध जाना। ब्रह्मा के द्वारा प्राप्त वर से अदृश्य बनकर इन्द्रलित ने महामहायोद्धाओं को नागमय शरों से आहत किया। अन्त में राम-लक्ष्मण को भी नागपाश में वह बाँध लिया। राम-लक्ष्मण असहाय होकर रणभूमि में पड़ रहे। इन्द्रजित ने दोनों को निष्प्राण समझकर रावण की ओर इङ्गित किया। सीता यह देखकर विलाप करने लगीं, किन्तु त्रिजटा ने सप्रमाण तर्क दिया कि राम-लक्ष्मण जीवित है। बाद में राम की संज्ञा लौटती है और वे लक्ष्मण को देखते ही करुण विलाप करने लगते हैं। तब सुखेन राम से कहते हैं कि औषधि-आनयन हेतु हनुमान को द्रोणाचल भेजा जाय। तदुपरान्त देव ऋषि नारद वहाँ पर पहुँचकर उनको उनके नारायणत्व की याद दिलाते हैं और गरुड़ को बुलाने की राय देते हैं तब गरुड़ का रण भूमि में आगमन होता है और वे नागपाश से राम-लक्ष्मण को मुक्त करते हैं।

महाभारत के रामोपाख्यान के अनुसार विभीषण प्रज्ञास्त्र द्वारा राम-लक्ष्मण को शरपाश से मुक्त करते हैं।[2] गोविन्द रामायण में कहा गया है कि सीता ने नागमन्त्र पढ़कर नागपाश काटा था—

पढ़ नाग मन्त्र संघरी पाश। पति भ्रात जिवइ चित भा हुलास ॥[3]

पउमचरिखं के अनुसार भुजङ्गपाश ने लक्ष्मण की पताका पर गरुड़ को देखा और

---

(१) लेखक द्वय श्री सुबोध बिहारी सहाय तथा श्री जनार्दन सिंह : जीवविज्ञान, भाग-२, बिहार स्टेट टेक्स्ट बुक पब्लिशिंग कारपोरेशन लिमिटेड, शीर्षक जलीय-स्तनधारी, पृ०-१४०, संशोधित संस्करण-१९८१.

(२) महाभारत (रामोपाख्यान)-३/२७३.

(३) गोविन्द रामायण, पृ०-३/१३७.

तुरन्त भाग गया। इस कृति में कहा गया है कि इन्द्रजित सुग्रीव-भामण्डल को भुजङ्ग पाश में बाँध लेता है। कम्ब रामायण में केवल लक्ष्मण ही नागपाश में बँधते हैं और गरुड़ उनका बन्धन काटते हैं।[१] राम कियेन के अनुसार वानरों के साथ लक्ष्मण नागपाश में बाँधते हैं। राम विभीषण की मन्त्रणा मानकर गरुड़ को बुलाते हैं और गरुड़ के आते ही सभी सचेतन हो जाते हैं।[२]

रामचरितमानस के अनुसार मेघनाद मायामय रथ पर आरुढ़ होकर आकाश में चला गया और घनघोर गर्जन कर शक्ति, शूल, तलवार और कृपानादि नाना अस्त्र-शस्त्रों से लड़ाई करने लगा—

सक्ति सूल तलवारि कृपाना। अस्त्र-शस्त्र कुलि सा युध नाना।।
डारइ परस परिघ पाषाना। लागेउ वृषि करै बहु वाना।।[३]

वह अदृश होकर वानर सेना के सभी बलशीलों को विकल कर दिया और पुनः राम से जुझते हुए उन्हें भी सर से बेधने लगा—

पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छँड़इ होइ लागहि नागा।।[४]

अन्त में इन्द्रजित ने अपने नागपाश में राम को बाँध लिया—

व्यालपास बस भए खरारी। स्वबस अनंत अविकारी।।[५]

यह सुनते ही देवर्षि नारद ने गरुड़ को समरभूमि में भेज दिया—

इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो।।[६]

खगपति गरुड़ सभी माया नाग बस्न्थ को पकड़ कर खा गये और राम को नागपाश से मुक्त कर दिये।

इस प्रकार नाना ग्रन्थों के अवलोकनोपरान्त यह सिद्ध होता है कि नाग पाश मेघनाद का एक उद्भुतास्त्र था, जिसके बल पर उसने वानर सेनासहित राम को रणभूमि में हततेज कर दिया था।

(७) हनुमान की हिमालय-यात्राएँ

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार तीन अवसरों पर हनुमान को हिमालय भेजने की चर्चा है—

(१) नाग-पाश के सन्दर्भ में हिमालय-यात्रा का प्रस्ताव मात्र किया गया है।

(२) कुम्भकर्ण-वध के बाद इन्द्रजित पुनः समरभूमि में युद्ध करता है और रामदल

---

(१) कम्ब रामायण–६/१८. (२) रामकियेन, अध्याय–२९.
(३) मानस–६/७२/१-२. (४) मानस–६/७२/१०.
(५) रामचरितमानस–६/७२/११. (६) रामचरितमानस–६/७३/१०.

के प्राय: सभी वानर सैनिकों को ब्रह्मास्त्र द्वारा पराजित करता है। जाम्बवान के आदेशानुसार हनुमान रात्रि में हिमालय जाते हैं और औषधि-पर्वत को ही उठाकर ले जाते हैं। औषधि की सुगन्ध से ही सभी वानर योद्धा नीरोग हो गये।

हनुमान द्वारा हिमालय की यह प्रथम यात्रा है।

आनन्द रामायण के अनुसार वानर सेना की भलाई के लिए ही हनुमान को हिमालय भेजा गया था। सेरी राम के अनुसार हनुमान एक पहाड़ हिमालय से किष्किन्धा लाते हैं।

(३) हनुमान दूसरी बार हिमालय-यात्रा तब करते हैं, जब रावण की शक्ति से लक्ष्मण आहत होते हैं।

इस यात्रा में भी हनुमान औषधि-पर्वत ही ले आते हैं और तब सुषेण औषधि पीसकर लक्ष्मण को सूँघने के लिए देते हैं। इस यात्रा में हनुमान कालनेमि तथा ग्राहीं का वध करते हैं। पुन: हिमालय के गन्धर्वों का वध करते हैं। औषधि-पर्वत को वापस ले जाने के क्रम में राक्षसों के आक्रमण को विफल करते हैं। इस प्रसङ्ग में भारत अनुमान के बीच रोचक संवाद हुआ है।

अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, तोरवे रामायण, रंगना रामायण, कृत्तिवास रामायण, माधव कंदली रामायण, बलराम दास रामायण, भावार्थ रामायण तथा सेरी राम में भी इसी प्रकार की कथाएँ मिलती हैं।

रामचरितमानस में तुलसी दास जी ने हनुमान द्वारा मकरी और कालनेमि के वध की क्रमश: कथा कही है—

सर पैठत कपि पट [illegible] मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान।।[१]

और—कह कवि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछें हमहि मन्त्र तुम्ह देहू।।
सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरनी वारा।।
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउं हनुमाना।।[२]

हनुमान-भरत संवाद

आनन्द रामायण, बलराम दास रामायण, वाल्मीकीय रामायण तथा गीतावली आदि ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्टत: पता चलता है कि भरत ने अनुमान पर बाण चलाकर हनुमान को धराशायी किया था।

---

(१) मानस–६/५७ (२) मानस–६/५७/४-६

रामचरितमानस में तुलसी दास जी ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मनु अनुमानि ।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि ।।[१]

बाण लगते ही हनुमान मूर्च्छित होकर धरती पर गिर जाते हैं—

परेउ मुरुछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ।।[२]

कपि की मधुर वाणी सुनते ही अति आतुर भरत दौड़ पड़ते हैं और विकल विलोक कर कीश को हृदय लगाते हैं तथा कहते हैं—

जौं मेरें मन बच अरु काया । प्रीति राम पद कमल अमाया ।।
तौ कपि होउ विगत श्रम सूला । जौं मों पर रघुपति अनुकूला ।।[३]

यह सुनते ही जय जयति कोशलाधीश कहकर कपीश उठ बैठते हैं।

पुनः भरत हनुमान को कंठ लगाते हैं और सुख निधान सहित अनुज अरु माता जानकी का कुसल पूछते हैं। कपि द्वारा संक्षिप्त समाचार सुनकर दु:खी हो जाते हैं और मनः ताप करने लगते हैं—

अहह दैव मैं कत जग जायउँ । प्रभु के एकहु काज न आयऊँ ।।[४]

कुसमय जानकर धैर्य धारण करते हुए कपि से कहते हैं—

तात गहरु होइहि तोहि जाता । काजु नसाइहि होत प्रभाता ।।
चढ़ु मम सायक सैल समेता । पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता ।।[५]

यह सुनते ही हनुमान के मन में अभिमान उत्पन्न हो गया। सोचा—**मोरें भार चलिहि किमि बाना ।**[६]

पुनः राम-प्रभाव का विचारकर हनुमान ने भरत के चरणों की वन्दना की और करबद्ध कहा—

तब प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत ।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत ।।
भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार ।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पावन कुमार ।।[७]

ऊपर वर्णित तथ्यों के आलोक में स्पष्ट है कि हनुमान ने हिमालय की दो बार

---

(१) रामचरितमानस–६/५८ (२) रामचरितमानस–६/५८/१
(३) रामचरितमानस–६/५८/६-७ (४) रामचरितमानस–६/५९/३
(५) रामचरितमानस–६/५९/५-६ (६) रामचरितमानस–६/५९/७
(७) रामचरितमानस–६/६०/(क), ६० (ख)।

यात्राएँ की थीं, जिन यात्राओं के क्रम में उन्हें अनेकशः विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ा, किन्तु सभी विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुए हनुमान अपने सेवा पथ पर सदा सर्वदा अग्रसर होते रहे।

(८) अग्नि-परीक्षा

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा की कथा निम्नस्थ है—

रावण वध और विभीषण की राजगद्दी के बाद राम ने हनुमान द्वारा सीता के पास अपनी जीत का संवाद भेज दिया। हनुमान सीता का यह सन्देश लेकर वापस आये—

दृष्टुमिच्छामि भर्त्तारं भक्तवत्सलम्।[१]

राम विभीषण को आदेश देते हैं कि सीता को मेरे पास ले आओ। विभीषण सीता को राम की आज्ञा का पालन करते हुए चलने का अनुरोध करते हैं। स्नानोपरान्त सीता आभूषणों से सुसज्जित होकर शिविका में बैठकर राम से मिलने आती है। राम सीता को सामने खड़ी हुई देखकर कहते हैं कि मैं अपने शत्रु के अपमान का विरोध कर चुका हूँ। अब मुझे तुम्हारे प्रति कोई आकर्षण नहीं है। उन्होंने कहा—तुम्हारा चरित्र संदिग्ध है। जिस स्त्री ने पराये घर में निवास किया है उसे कोई पुरुष ग्रहण नहीं कर सकता। तुम जहाँ चाहो, चली जाओ। राम की कठोर वाणी को सुनकर वह अपने पातिव्रत्य की सौगन्ध खाई और लक्ष्मण के द्वारा तैयार की हुई चिता में समा गई। बाद में अग्नि देवता ने सीता के सतीत्व का साक्ष्य देकर राम से विनय किया कि वे सीता को अङ्गीकार करें। उत्तर में राम ने कहा कि मुझे सीता के चरित्र में अविश्वास नहीं था; परन्तु राक्षस रावण के यहाँ से सीता आई हैं, इसलिए अग्नि परीक्षा आवश्यक थी और दूसरा, लौकिक कलङ्क से बचने के लिए भी अग्नि-परीक्षा अनिवार्य थी।

कृत्तिवास रामायण के अनुसार मन्दोदरी के शाप के कारण ही सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। रामायण मसीही में राम ही सीता को अग्नि में प्रवेश कराते हैं। सेरी राम के अनुसार हनुमान द्वारा बनायी हुई चिता में सीता प्रविष्ट होती है। ब्रह्म चक्र की कथानुसार सीता के अग्नि प्रवेश करते हीं आग बुझ जाती है। रामचरितमानस की कथा वाल्मीकीय रामायण से प्रायः मिलती-जुलती है। रावण मरण और विभीषण के तिलक के उपरान्त राम हनुमान से कहते हैं—लङ्का जाकर तुम मेरा सब समाचार जानकी को सुनाओ और उसका कुशल लेकर तुम मेरे पास आओ। यह सुनकर हनुमान जाते हैं और राम का समाचार जानकी को सुनाते हैं तथा जानकी का कुशल राम तक पहुँचाते हैं। इस विभीषण, अंगद और हनुमान को सीता के आनयन हेतु भेज देते हैं—

---

(१) वाल्मीकीय रामायण–११३/४७

रामचरितमानस में तुलसी दास जी ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मनु अनुमानि ।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि ।।[१]

बाण लगते ही हनुमान मूर्च्छित होकर धरती पर गिर जाते हैं—

परेउ मुरुछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ।।[२]

कपि की मधुर वाणी सुनते ही अति आतुर भरत दौड़ पड़ते हैं और विकल विलोक कर कीश को हृदय लगाते हैं तथा कहते हैं—

जौं मेरें मन बच अरु काया । प्रीति राम पद कमल अमाया ।।
तौ कपि होउ विगत श्रम सूला । जौं मों पर रघुपति अनुकूला ।।[३]

यह सुनते ही जय जयति कोशलाधीश कहकर कपीश उठ बैठते हैं।

पुनः भरत हनुमान को कंठ लगाते हैं और सुख निधान सहित अनुज अरु माता जानकी का कुसल पूछते हैं। कपि द्वारा संक्षिप्त समाचार सुनकर दुःखी हो जाते हैं और मनः ताप करने लगते हैं—

अहह दैव मैं कत जग जायउँ । प्रभु के एकहु काज न आयऊँ ।।[४]

कुसमय जानकर धैर्य धारण करते हुए कपि से कहते हैं—

तात गहरु होइहि तोहि जाता । काजु नसाइहि होत प्रभाता ।।
चढु मम सायक सैल समेता । पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता ।।[५]

यह सुनते ही हनुमान के मन में अभिमान उत्पन्न हो गया। सोचा—**मोरें भार चलिहि किमि बाना ।**[६]

पुनः राम-प्रभाव का विचारकर हनुमान ने भरत के चरणों की वन्दना की और करबद्ध कहा—

तब प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत ।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत ।।
भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार ।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पावन कुमार ।।[७]

ऊपर वर्णित तथ्यों के आलोक में स्पष्ट है कि हनुमान ने हिमालय की दो बार

---

(१) रामचरितमानस–६/५८
(२) रामचरितमानस–६/५८/१
(३) रामचरितमानस–६/५८/६-७
(४) रामचरितमानस–६/५९/३
(५) रामचरितमानस–६/५९/५-६
(६) रामचरितमानस–६/५९/७
(७) रामचरितमानस–६/६०/(क), ६० (ख)।

यात्राएँ की थीं, जिन यात्राओं के क्रम में उन्हें अनेकश: विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ा, किन्तु सभी विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुए हनुमान अपने सेवा पथ पर सदा सर्वदा अग्रसर होते रहे ।

(८) अग्नि-परीक्षा

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा की कथा निम्नस्थ है—

रावण वध और विभीषण की राजगद्दी के बाद राम ने हनुमान द्वारा सीता के पास अपनी जीत का संवाद भेज दिया । हनुमान सीता का यह सन्देश लेकर वापस आये—
दृष्टुमिच्छामि भर्त्तारं भक्तवत्सलम् ।[१]

राम विभीषण को आदेश देते हैं कि सीता को मेरे पास ले आओ । विभीषण सीता को राम की आज्ञा का पालन करते हुए चलने का अनुरोध करते हैं । स्नानोपरान्त सीता आभूषणों से सुसज्जित होकर शिविका में बैठकर राम से मिलने आती है । राम सीता को सामने खड़ी हुई देखकर कहते हैं कि मैं अपने शत्रु के अपमान का विरोध कर चुका हूँ । अब मुझे तुम्हारे प्रति कोई आकर्षण नहीं है । उन्होंने कहा—तुम्हारा चरित्र संदिग्ध है । जिस स्त्री ने पराये घर में निवास किया है उसे कोई पुरुष ग्रहण नहीं कर सकता । तुम जहाँ चाहो, चली जाओ । राम की कठोर वाणी को सुनकर वह अपने पातिव्रत्य की सौगन्ध खाई और लक्ष्मण के द्वारा तैयार की हुई चिता में समा गई । बाद में अग्नि देवता ने सीता के सतीत्व का साक्ष्य देकर राम से विनय किया कि वे सीता को अङ्गीकार करें । उत्तर में राम ने कहा कि मुझे सीता के चरित्र में अविश्वास नहीं था; परन्तु राक्षस रावण के यहाँ से सीता आई हैं, इसलिए अग्नि परीक्षा आवश्यक थी और दूसरा, लौकिक कलङ्क से बचने के लिए भी अग्नि-परीक्षा अनिवार्य थी ।

कृत्तिवास रामायण के अनुसार मन्दोदरी के शाप के कारण ही सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है । रामायण मसीही में राम ही सीता को अग्नि में प्रवेश कराते हैं । सेरी राम के अनुसार हनुमान द्वारा बनायी हुई चिता में सीता प्रविष्ट होती है । ब्रह्म चक्र की कथानुसार सीता के अग्नि प्रवेश करते ही आग बुझ जाती है । रामचरितमानस की कथा वाल्मीकीय रामायण से प्राय: मिलती-जुलती है । रावण मरण और विभीषण के तिलक के उपरान्त राम हनुमान से कहते हैं—लङ्का जाकर तुम मेरा सब समाचार जानकी को सुनाओ और उसका कुशल लेकर तुम मेरे पास आओ । यह सुनकर हनुमान जाते हैं और राम का समाचार जानकी को सुनाते हैं तथा जानकी का कुशल राम तक पहुँचाते हैं । इस विभीषण, अंगद और हनुमान को सीता के आनयन हेतु भेज देते हैं—

---

(१) वाल्मीकीय रामायण–११३/४७

सुनि संदेसु भानुकूल भूषण। बोलि लिए जुबराज विभीषण।।
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनक सुतहि लै आवहु।।[१]

तुरन्त सभी सीता के पास गये। सीता स्नान कर अलङ्कृत हुई और 'पालकी पर चढ़कर राम के समक्ष उपस्थित हो गईं। राम ने सीता को कुछ दुर्वाद कहा—

तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्वाद।
सुनत जातु धानीं सब लागी करैं विषाद।।[२]

राम की आज्ञा शिरोधार्य कर सीता लक्ष्मण से कहती है—

लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।।[३]

लक्ष्मण रामरुख देखकर काठ लाते हैं और उसमें पावक प्रकट करते हैं। सीता यह कहकर अग्नि में प्रवेश कर जाती है—

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुवीर आन गति नाहीं।।
तै कृशानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्री खंड समाना।।[४]

सीता का प्रतिबिम्ब तथा लौकिक कलङ्क ध्वस्त हो गया। तब मानव रूप में अग्नि देवता राम के सम्मुख उपस्थित होकर सीता की पवित्रता की साक्ष़ी देते हुए उन्हें रख लेने का आग्रह करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सीता अग्नि परीक्षा में सफल होती हैं। विशिष्ट पुरावृत्तों के अतिरिक्त भी कतिपय पुरावृत्त हैं, जिनका नामोल्लेख नीचे किया जा रहा है—

(१) वाराहावतार की कथा
(२) नरसिंहावतार की कथा
(३) विष्णु-अवतार की कथा
(४) परशुराम-अवतार की कथा
(५) रामावतार की कथा
(६) विश्वामित्र के पूर्वजों की कथा
(७) हिमालय-पुत्रियों की कथा
(८) गंगा– स्वर्गारोहण कथा
(९) सती के मोह की कथा
(१०) शिव-पार्वती-विवाह की कथा
(११) कार्तिकेय के जन्म की कथा
(१२) सगर–पुत्रों का पाताल में भस्म होने की कथा
(१३) भागीरथी गंगा की कथा
(१४) जह्नु के द्वारा गंगा के पीने की कथा, पुनः मुक्त होकर भगीरथ का अनुमन करते हुए पाताल पहुँच कर सगर पुत्रों की उद्धारकथा
(१५) सागर–मन्थन की कथा
(१६) गौतम द्वारा इन्द्र और अहल्या को अभिशप्त होने की कथा

---

(१) रामचरितमानस–६/१०७/३-७ (२) रामचरितमानस–६/१०८
(३) रामचरितमानस–६/१०८/२ (४) रामचरितमानस–६/१०८/७-८

(१७) विश्वामित्र की विभिन्न कथाएँ
(१८) त्रिशंकु की कथा
(१९) शिव पार्वती-विवाह की कथा
(२०) नारद के अभिमान की कथा
(२१) मनु-शतरूपा की कथा
(२२) भानुप्रताप की कथा
(२३) धनुष-भंग-कथा
(२४) परशुराम क्री कथा

अयोध्याकाण्ड

(२५) राव-वन-गमन की कथा
(२६) दशरथ के द्वारा अन्धमुनि-पुत्र-वध की कथा
(२७) जबालि की कथा

अरण्यकाण्ड

(२८) राम के मुख से अगस्त्य द्वारा इल्वल और वातापि के वध की कथा
(२९) जटायु की कथा
(३०) शूर्पनखा की कथा
(३१) कबंध की कथा
(३२) शबरी की कथा
(३३) विराध की कथा
(३४) अलोमुखी वृत्तान्त
(३५) माया-सीता का वृत्तान्त
(३६) जयन्त की कथा
(३७) अनसूया की कथा

किष्किन्धाकाण्ड

(३८) सुग्रीव की कथा
(३९) वालि-वध-वृत्तान्त
(४०) स्वयंप्रभा की कथा
(४१) ऋषि निशाकर और सम्पाति की कथा
(४२) जाम्बवान द्वारा हनुमान-कथा
(४३) हनुमान की जन्म कथा
(४४) दुन्दुभि की कथा
(४५) मतंग-शाप की कथा

सुन्दरकाण्ड

(४६) सुरसा की कथा
(४७) निशिचरी सिंहिका की कथा
(४८) लङ्किनी की कथा
(४९) त्रिजटा की कथा और सरमा की कथा
(५०) अक्षय कुमार की कथा
(५१) मेघनाद की कथा
(५२) अशोकवाटिका की कथा
(५३) हनुमान द्वारा रामकथा का वर्णन
(५४) मुद्रिका और चूड़ामणि की कथा
(५५) ब्रह्मास्त्र की कथा
(५६) लङ्कादहन की कथा
(५७) मधुवन की कथा

लङ्काकाण्ड

(५८) शुकसारण-शार्दूल की कथा
(५९) राम के मायामय सिरकी कथा
(६०) सुषेण की कथा
(६१) गरुड़ की कथा
(६२) मेघनाद-वध की कथा
(६३) कुम्भकर्ण की कथा

(६४) रावण-वध की कथा (६५) कालनेमिवृत्तान्त तथा मकरीवृत्तान्त
(६६) विभीषण की कैलास यात्रा-वृत्तान्त (६७) निकषावृत्तान्त
(६८) पुष्पक में अयोध्या की यात्रा का वृत्तान्त
(६९) नल-नील की वरप्राप्ति का वृत्तान्त
(७०) रामेश्वरमवृत्तान्त

उत्तरकाण्ड

(७१) रावण को नन्दी-शाप (७२) रावण को वेदवती का शाप
(७३) नलकूबर का शाप (७४) देवों द्वारा मेघनाद को वरदान
(७५) अर्जुन, कार्त्तवीर्य तथा बालि द्वारा रावण-पराजय की कथा
(७६) हनुमत्कथा (७७) सीतात्याग की कथा
(७८) नृग, निमि तथा ययाति की कथाएँ (७९) शम्बूक-वध की कथा
(८०) अश्वमेध-यज्ञ की कथा और (७१) सौदास की कथादि।

उपर्युक्त उदाहरणों के अनुसार हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि प्रायः सभी रामायणों में पौराणिक कथाओं की चर्चा निश्चित रूप से मिताधित हुई ही है, किन्तु मेरी दृष्टि में वाल्मीकीय रामायण तथा रामचरितमानस के बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड की सर्वोत्तम विशेषता यही है कि इन काण्डों को क्रमशः महान आदि कवि वाल्मीकि जी तथा महाकवि तुलसीदास जी ने पौराणिक कथाओं के पारिजात पुष्पों से परिपुष्पित कर इनका अभिनव संस्कार किया है, जो अपूर्व है।

—ooo—

४.

विशिष्ट मानवेतर पात्रों के प्रतीक रूपों का विश्लेषण तथा मानस की अन्तर्कथाएँ

प्रतीक—प्रतीक शब्द का प्रयोग गणित, अर्थशास्त्र, प्रमाण-मीमांसा, तर्कशास्त्र, रोगलक्षण विज्ञान, धर्मशास्त्र, ललितकला तथा कविता के इतिहास में प्रयुक्त प्रयोगों में सर्वनिष्ठ तत्त्व यही है कि प्रतीक चिह्न और इससे व्यक्त चीजों के बीच सादृश्य की धारणा मूलत: विद्यमान रहती है। ग्रीक क्रिया से सिम्बल (प्रतीक) शब्द निष्पन्न हुआ है। तर्कशास्त्र तथा गणितीय प्रतीक रुढ़ तथा सर्वमान्य चिह्न होते हैं, जबकि धार्मिक प्रतीक 'निर्देशक' और 'निर्देश्य' के बीच किसी प्रकार के मेटोनिमी (लक्षणा) या रूपक विषयक आन्तरिक लगाव पर आधृत हैं। प्रतीक भाषा का वैभव, बल तथा विशेष उपलब्धि है। यह भाषा, संस्कृति, धर्म, दर्शन, पुरावृत्त तथा मानवीय सत्य भास्वर स्वरूप प्रदान करता है। साहित्य में प्रतीक की बानगी तथा विचारों का अप्रस्तुत विधान गुम्फित रहता है।

प्रतीकात्मक कृतियाँ द्वयार्थक होती है—अन्त: तथा बाह्यार्थक। प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ मानव-स्वभाव का परिचय देती है। 'पैगेट' ने भी शब्दों को अन्तत: प्रतीकात्मक ही माना है। ये प्रतीक चरित्रों के कलेवरों को चित्रात्मक लाक्षणिकता तथा प्रभविष्णु ऊर्जा से सम्पन्न करने के लिए व्यञ्जित होते हैं। चरित्रों के संगुम्फित तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म (अमूर्त्त) भाव प्रतीकों के माध्यम से मूर्त्त तथा बोधगम्य होते हैं। प्रतीक धार्मिक दिशा में दार्शनिक तत्त्वों को मानवेत्तर व्यक्तित्व से आवेष्ठित करता है।

प्रतीक साहित्यिक क्षेत्र में अभिव्यक्ति को अलङ्कारिक बनाता है। 'प्रतीक-योजना की सहायता बहुधा ऐसे अवसरों पर ली जाती है, जब हमारी भाषा पंगु और अशक्त-सी बनकर मौन धारण करने लगती है और जब अनुभवकर्त्ता के विविध भाव, शिला से चतुर्दिक टकराने वाले स्रोतों की भाँति, फूट निकलने के लिए मचलने से लग जाते हैं और जिस किसी को भी उपयुक्त पाते हैं, उसका प्रयोग कर उसके मार्ग द्वारा अपनी भावधारा को प्रवाहित कर देते हैं'।[१]

---

[१] कबीर-साहित्य की परख : परशुराम चतुर्वेदी, पृ०-१४२

प्रतीक का सम्बन्ध कल्पना और अनुभूति से है। ये दोनों तत्त्व शब्दार्थ बोधक हैं। 'प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (गोचर) वस्तु के लिंए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है। अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर से समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है'।[१] प्रतीक की नींव पर ही भारतीय पौराणिक, ऐतिहासिकता तथा काव्यात्मकता की अट्टालिकाएँ खड़ी हैं।

देवासुर-संग्रामादि के द्वारा पुण्य-पाप के द्वन्द्व का बोध होता है। मृत्यु विनाश का प्रतीक है। सृष्टि-संहार की कथा सतत प्रतीकात्मक होती है। प्रतीक के माध्यम से आकर्षण तथा चमत्कार उत्पन्न होता है। संघनित प्रतीकों में धार्मिक कृत्य, स्वप्नमय तथा मनोवैज्ञानिक विवशताओं की प्रक्रियाएँ आती हैं। सम्पूर्ण मानव-जीवन प्रतीकमय है। यह मानव मनीषा को मधुमय बनाता है। मानस की द्वन्द्वात्मक प्रवृत्तियाँ प्रतीकात्मक होती हैं। यह कलाकार के मनोवेगों की प्रेषणीय शक्ति को जगाता है। यह मध्यस्थ व्यापार का प्रतिनिधि होता है। यह सन्दर्भीय उर्वराशक्ति तथा अभिव्यक्ति की 'रसना' है। विश्वजनीन प्रतीकात्मक कला प्रयोजन की दृष्टि से वैभवशालिनी होती है।

'प्रतीक हमें उच्चतम भावलोकों की यात्रा कराता है तथा लौकिकता से अलौकिक सिद्धि कलासिद्धि बन जाती है'।[२] अवचेतन द्वारा साहित्य हमारी दुर्बलताओं को वाणी देता है और चेतना द्वारा सबलता को'।[३]

प्रतीक के भेद—

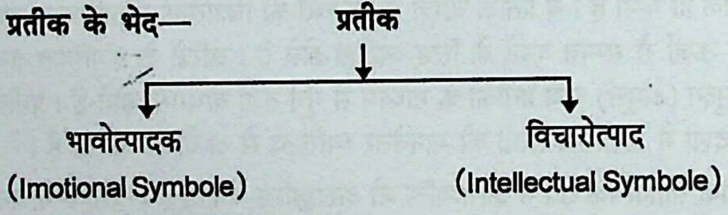

---

(१) हिन्दी-साहित्य-कोश

(२) The binding of the man's true world the living world of truth and beauty is the Function of art/....... our emotions are the gastric juices which transform this world of appearance into the more intimate world of sentiments-Science of Emotions: Bhagwan Das, Page-42

(३) The true symbol should be under stood as the expression of an in fugitive perception which can as yet, neither be apprehended better nor expressed differently Jung: Contribution of Analytical Psychology, Page-232.

'गुलाब' कहने से सौन्दर्य का भाव टपकता है और 'पत्थर' कहने से कठोरता से अधिक विचार ही उद्‌बुद्ध होता है।

नानारंगी प्रतीक—देश-काल, परिवेश, सभ्यता तथा संस्कृति के अनुसार प्रतीक भी बदलते रहते हैं।

फारस में 'शराब' के प्रतीक से प्रणय का बोध होता है। वैदिक साहित्य सोमरस से सिञ्चित है। भारतीय काव्यकारों ने 'सोमरस' तथा सुरा के बदले सुधा को काव्य का प्रतीक बनाया। काव्य में स्पष्ट, स्वीकृत तथा निश्चित की ही पूजा होती है। सच्चा साहित्यकार अस्पष्ट, अस्वीकृत तथा अनिश्चित के बदले रहस्य, गुह्य तथा परम सत्ता को अपनाता है।[१]

प्रतीकों की विशेषताएँ—प्रतीक गोचर तथा अगोचर दोनों होते हैं। ये प्रतीक भावों या विचारों को जगाते हैं। सीताराम गोतीत हैं, फिर भी उनके नाम स्मरण से ही हमारे मन में उनकी स्वरूपात्मक विशेषताएँ साकार हो उठती हैं। अक्षयवट और कल्पवृक्ष का अस्तित्व अद्यावधि अप्रमाणित है, पर हमारी धार्मिक संस्कृति से सम्बन्धित होने के कारण हमारी आँखों के समक्ष सर्वस्वदायक वृक्षों की तस्वीरें कौंध जाती हैं।

गोचर प्रतीक काव्य के विशेष प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। पतंग, शशि, दिनकर, सागर, अमृत, विष, रत्न तथा हंसादि हमारे मन में अनोखी भावनाओं को जन्म देते हैं। शशि से स्निग्धता, दिनकर से प्रखर प्रकाश का तथा हंस से विवेक, निष्पक्षता का तथा पतंग से लग्न एवं एकान्तनिष्ठ का बोध होता है।

मानस के प्रतीकात्मक पात्र

शङ्कर—शङ्कर भारतीय एकता के प्रतीक हैं। इन्हें भारत के आर्य-अनार्य सभी समान रूप से अपना इष्टदेव मानकर पूजते हैं। ये त्याग, संयम, निस्पृह जीवन तथा कठोर साधना के प्रतीक हैं। उनका ध्यान-योग शान्ति, प्रसन्नता, सन्तोष तथा एकाग्रता का प्रतीक है। वे कामजीत हैं। वे सर्वज्ञ, कला, गुण, योग, ज्ञान तथा वैराग्य की निधि हैं। वे 'कल्पतरु' के प्रतीक हैं—

---

[१] Art does not omit the mysterious, but the vague, not the secret, but the obscure. An artist, especially one who is a mystic, has a dislike for the vague. He hates the obscure, he hates the indefinite, and he loves the mysterious, the secret and the indefinite.-Symbolism: A Psychological Study: Dr. Padma Artwal, Page-146.

प्रभु समरथ सर्वग्य सिव सकल कला गुन धाम ।
जोग ग्यान बैराग निधि, प्रनत कलपतरु नाम ।।[1]

शिव के 'डमरू' में 'अ इ उ' की ध्वनि निकलती है। इनका डमरू ज्ञान, कला, साहित्य तथा विजय का प्रतीक है। भारत के बारह ज्योतिर्लिङ्ग राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं।

त्रिशूल—सत्, रज और तम के प्रतीक हैं। 'शेते असौ शिव'–सोते रहने वाले को ही 'शिव' कहा गया है। शिव उस अवस्था के प्रतीक हैं, जो प्रकृति की निष्क्रिय शान्ति की ओर हमारी ध्यान उन्मुख करते हैं।

श्वेत वर्ण—यह शान्त अवस्था का प्रतीक है। यही शिव का रंग है। वृषभ शक्ति का प्रतीक है। वृषभ का अर्थ है–वीर्य की वर्षा, महाप्राण की वर्षा। जो शक्ति विश्व में अपने महाप्राण को बिखेरे हुए है, वही 'शिव' है। जो शक्ति अपने महाप्राणों द्वारा सृष्टि की उपत्ति का कारण बनती है। उसी को 'शिव' कहा जाता है। वेदानुसार वृषभ के चार पैर–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रतीक हैं। इस चतुष्पाद वृषभ पर चढ़कर तुरीयावस्था को प्राप्त करना ही 'वृषभ वाहन' का अभिप्राय है।

डमरू त्रिकोण प्रकृति का प्रतीक है। यह त्रिगुणात्मक प्रकृति से मुक्त करने का आश्वासन देता है तथा उद्घोषित करता है कि ब्रह्म की शक्ति से उसका आच्छादन किया जा सकता है।

मानस में तुलसी जी ने भवानी को श्रद्धा तथा शङ्कर को विश्वास का प्रतीक माना है—***'भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ'।***[2] शिव 'आत्मविश्वास' के प्रतीक हैं। राम ने लङ्का पर चढ़ाई के पूर्व रामेश्वर में शिव-लिङ्ग की स्थापना कर अपने आत्मविश्वास को प्रबोधित किया—

लिङ्ग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ।।[3]

तदुपरान्त वे लङ्का विजय में अग्रसर हुए।

(१) **माण्डूकोपनिषद्** के अनुसार **'शिव'** का अर्थ है—'जो भीतर-बाहर प्रज्ञा वाला नहीं है, जो दोनों ओर भी प्रज्ञा वाला नहीं है, जो न जानने वाला है और न अज्ञान है, जो अदृश्य, अव्यवहार्य और अग्राह्य है, जो लक्षणाहित एवं प्रधान धन है, जो न बतलाने में आ सकता है और न चिन्तन में, एकाग्रता ही जिसका सार है, जो प्रपञ्च रहित, कल्याणकारी, अद्वैत, सर्वथा शान्त है, उसे ब्रह्म का चतुर्थ चरण

---

१. रामचरितमानस–१/१०७ २. रामचरितमानस–१/श्लो० २

३. रामचरितमानस–६/१/६

कहा गया है, वही शिव है, उसे जानना चाहिए'।

(२) **त्रिशिरवब्राह्मणोपनिषद्** के अनुसार—'वहाँ अन्नमय कोश के भीतर प्राणमयकोश रहते हैं। जैसे–जैसे कोश है, वैसे ही जीव है और जैसा जीव है, वैसा ही शिव (परमात्मा) हैं। अन्तर इतना ही है कि जीव विकारसहित है और शिव विकारों से रहित हैं। इस प्रकार 'शिव' शब्द 'विकार-रहितता' का प्रतीक है'।

(३) **कोटिरुद्रसंहिता** के अनुसार—'आज्ञा चक्र में ज्ञानु-चक्षु स्थिर है, यहीं शिव निवास करते हैं। जटाएँ वायुमण्डल की प्रतीक हैं। शङ्कर का संहारक रूप 'उग्रता' का निवास मस्तिष्क में है, वहीं गंगा बहती हैं। गंगा 'शान्ति' की प्रतीक हैं। चन्द्रमा 'मन' का प्रतीक है। उनका मन विमल है। शिव चन्द्र की शीतलता की प्रतिमा हैं। शिव का 'पति नाम औषधिसूचक है—'औषधि यो वै पशु पतिः शिव तमोगुण के संहारक हैं। उनका ताण्डव नृत्य पुरुष-प्रकृति के दिव्य मिलन का प्रतीक है। त्रिशूल दैहिक दैविक तथा भौतिक ताप का शामक है। पिनाक उनकी अस्त्रशक्ति का प्रतीक है। निरुक्त में 'पिनाक' शब्द का अर्थ है— ***'रम्भ पिनाकमितिदण्डस्या'।***[1] पिनाक मेरुदण्ड को भी कहा गया है। इसकी दो कोटियाँ हैं—नीची कोटि मूलाधार चक्र में है, वहाँ जो कुण्डलिनी है, उसी को पिनाक की प्रत्यञ्चा कल्पित करके उसके दूसरे सिरे को शिव आज्ञा चक्र में ले जाते हैं। यही धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाना या अवततधन्वा होता है। जो पुरुष धनुष पर चिल्ला (डोरी) चढ़ा सकता है, वही उस धनुष का स्वामी माना जाता है। पिनाक को सबसे पहले शिव ने अधिजय किया। इसीलिए वे ही उस धनुष के स्वामी हैं।

भस्म—नाश का प्रतीक है। प्रलयकाल में भस्म ही बच जाता है। मानव शरीर जलने पर भस्म बन जाता है। यह संसार की निस्सारता का प्रतीक है। वेदों में अग्नि को रुद्र कहा गया है। अग्नि का काम जलाकर भस्म करना है। इसीलिए भस्म शिव का प्रतीक बना है।

मुण्ड—मृतावस्था का प्रतीक है। शिव काल (मृत्यु) को जीत चुके हैं। इसीलिए उन्हें 'मृत्युञ्जय' कहा गया है।

रुद्राक्षमाला—संसार के सभी जड़-चेतन मालावत हैं। इसीलिए उनमें एकरूपता होनी चाहिए। इस प्रकार रुद्राक्ष माला ऐक्य-भाव का प्रतीक है।

चर्माम्बर—शिव हाथी का चर्म धारण करते हैं। अभिमान ही हाथी है। शङ्कर अभिमान रूपी हाथी वश में किये हुए हैं।

---

[1] निरुक्त : नेगमकाण्ड–३/४

व्याघ्रचर्म—शिव व्याघ्र चर्म ओढ़े हुए हैं। आसुरी शक्ति ही व्याघ्र है। व्याघ्र चर्म ओढ़े हुए शङ्कर आसुरी शक्ति के जेता है। व्याघ्र संहार करता है और शिव उसका चर्म धारण करते हैं। अतः शङ्कर आसुरी शक्ति के संहारक हैं। व्याघ्र काम का भी प्रतीक है। इस प्रकार शिव कामजयी हैं। शिव के चार हाथों में मृग, परशु, वर तथा अभय है।

मृग—यह वय की चञ्चला का प्रतीक है। मन ही मृग है। उन्होंने मन को वश में किया है। उसे मृग मुद्रा कहते हैं।

परशु—यह उनका प्रिय आयुध है। अतः परशु आसुरी विपत्तियों का संहारक है।

वर—शिव योग्य तथा सुपात्र को वर देते हैं। वर धर्ममय है।

अभय—शिव अपनी अभय भुजा से पकड़ कर सब का कल्याण करते हैं। अभय से मोक्ष लाभ होता है।

गले के सर्प—गले के सर्प उन्हें 'क्रोध जीत' सिद्ध करते हैं।

अर्द्धचन्द्र—शङ्कर के मस्तक पर विराजमान अर्द्धचन्द्र विवेक, शान्ति एवं सन्तुलन का परिचायक है।

राम—राम-वन-गमन एक राष्ट्र हितकारी योजना थी। अतः राम-राज्य एक आदर्श राज्य का प्रतीक था—

बरना श्रम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।[१]

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।[२]

जिन नित्यानन्द-स्वरूप चिन्मय तथा अनन्त ब्रह्म में योगी जन लीन रहते हैं, वे राम हैं—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासौ परं ब्राह्ममभिधीयते।।

जो सन्तजनों की सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं तथा जो आसुरी शक्ति के पराभव हेतु सतत सन्नद्ध रहते हैं, वे 'राम' हैं।

रमन्ते सर्वभूतेषु स्थावरेषुचरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्चरामेति कथ्य ते।।

के अनुसार—'जो सब जीकें में' चल-अचल में अन्तर्यामी रूप में व्याप्त है, वही

---

[१] रामचरितमानस–७/२०

[२] रामचरितमानस–७/२०/८

'राम' है। मानसकार के अनुसार राम भारतीय एकता के प्रतीक हैं। राम के (चेतनात्मा) वन प्रस्थान करने पर (शरीर से निकलने पर) दशरथ का प्राण निकल जाता है।

रामोपासना—रामोपासना के तीन लक्षण हैं—

प्रीति राम सों नीतिपथ चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै भगति की रीति।।

इस प्रकार रामोपासना प्रीति, नीति तथा रागरसजीत की प्रतीक है। राम चेतनात्मा के प्रतीक हैं।

दशरथ—दश इन्द्रियों से युक्त शरीर ही दशरथ है। इन्द्रियाँ रथ की प्रतीक हैं।

भरत—मानसिक चेतना के प्रतीक हैं। उनमें सात्त्विकता का प्रावल्य है। राम की चरणपादुका आत्मा की प्रेरणा की प्रतीक है। आत्मा की सद्प्रेरणा से ही मन ऊर्ध्वगामी होता है तथा उसका उत्तरोत्तर विकास होता है।

नन्दीग्राम—नन्दीग्राम में भरत को कर्त्तव्य बोध होता है—

सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा।।
ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुखीथि बिकासी।।
राम प्रभ बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा।।
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल विभूती।।[१]

इस प्रकार राम गुणों के संगठित रूप के प्रतीक हैं।

उर्मिला—सीता की बहन 'उर्मिला' लहराते हुए खेत की प्रतीक है। आदिवासी रावण से आर्यकृषि की प्रतीक सीता की रक्षा राम के द्वारा हुई।

राम वनवास—राम का वनवास हेमन्त ऋतु का प्रतीक है। मानस में रामराज्य का वर्णन करते हुए मानसकार ने कृषि की असाधारण प्रगति की ओर सङ्केत दिया है।

सीता—आर्य कृषि की अधिष्ठात्री सीता सात्विकता, सच्चरित्रता तथा कष्ट-सहिष्णुता की प्रतीक हैं।

सीतोपनिषद् के अनुसार सीता शक्तिरूपिणी हैं। मूल प्रकृति होने से वे ही प्रकृति कही जाती है। प्रणव की प्रकृति रूपा होने से भी उन्हें प्रकृति का प्रतीक माना जा सकता है। 'स' कार सत्य, अमृत, सिद्धि, चन्द्र तथा प्राप्ति वाचक है। दीर्घ आकार युक्त 'त' कार विस्तार करने वाला एवं महालक्ष्मी रम वाला कहा गया है। ईकार वाली अव्यक्त महामाया अपने अमृतमय अवयवों तथा दिव्याभूषणों से विभूषित रूप से व्यक्त होती है।

---

[१] रामचरितमानस–२/३२४/४-७

सीता की अग्नि परीक्षा भी मेरी दृष्टि में एक रहस्यमय प्रतीक उद्बोधक है। वैज्ञानिकों ने युद्धवस्त्र बनाया है। यंह वस्त्र एक वृक्ष की छाल से तैयार किया जाता है। यंह पेड़ 'न्यू गिनी' में उपलब्ध होता है।

मेरा अनुमान है कि सीता को विभीषण ने सम्भवत: अग्निरक्षक वस्त्र पहना दिया था, जिससे सीता राम द्वारा ली गई अग्निपरीक्षा में सफल हुईं। राम ने सीता से कहा कि हे सीते! जब तक मैं निशाचरों का नाश करूँगा, तब तक तुम पावक में निवास करो—

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियं अनल समानी।।[1]

यम—मनुस्मृति के अनुसार[2] यम परमात्मा का वाचक है। यम का प्रतीकार्थ है—'समय के सदुपयोग की चेतावनी'। वस्तुत: समय (यम) निरन्तर चेतावनी देता रहता है कि समय का सदुपयोग करो तथा एक क्षण भी व्यर्थ के कार्यों में न गँवाओ।

इन्द्र—अनार्यों के विरुद्ध जीवनपर्यन्त सङ्घर्ष करने वाले इन्द्र संसार के उपद्रवियों का नाश करने वाले हैं। वे अन्याय तथा अत्याचार से लड़ने की प्रेरणा देते हैं। वस्तुत: आसुरी शक्ति, जो हमारे भीतर शत्रुरूप में अवस्थित है, से हमें सतत लड़ना है और उस पर विजय प्राप्त करनी है। अत: इन्द्र 'विजय' के प्रतीक हैं।

असुर—'सृ' धातु के आगे 'असुर' प्रत्यय लगाने से 'सरस' पद बनता है। 'सृ' धातु का अर्थ है—गति, प्रसारण। अत: असुर गति तथा प्रसारण के प्रतीक हैं। पदार्थ विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है— "Either is darkness and eather is medium of light". गति से प्रकाश बनता है। जहाँ गति का अवरोध हुआ, वहीं 'अन्धकार' तथा सङ्कोच आता है, वहीं ज्ञानधन का अभाव हो जाता है। अत: निरन्तर गति से ही ज्ञान धन सम्भव है। राम-रावण-युद्ध देवत्व तथा असुरत्व का प्रतीक है।

सरस्वती

वर्ण—श्वेत वर्ण मोक्ष (ज्ञान) का प्रतीक है। ज्ञान सात्विकता से ही अर्जित होता है और ज्ञान प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है। श्वेत रंग ईश्वर का प्रतीक है। यही प्राणी का अन्तिम लक्ष्य है। यह वर्ण अद्वैत के लिए प्रेरित करता है। अद्वैतज्ञान के प्रकाश का ही प्रतीक श्वेत वर्ण है। सरस्वती का शुक्लाम्बर अद्वैत ज्ञान के प्रकाश का प्रतीक

---

[1] रामचरितमानस–३/२३/२-३

[2] मनुस्मृति–९/९२

है। उनका वाहन है–मोर।

मोर—विद्या, कला, संस्कृति, विवेक तथा सौन्दर्य का प्रतीक है।

वीणा—वीणा संगीत का प्रतीक है।

पुस्तक ज्ञान का प्रतीक है। इस प्रकार सरस्वती विद्या, ज्ञान, बुद्धि तथा विवेक की दिव्य शक्ति की प्रतीक हैं।

पार्वती—भारतीय गृहलक्ष्मी की प्रतीक हैं।

हनुमान—शक्ति, शौर्य, संयम, पुरुषार्थ, निर्भयता, एकनिष्ठ सेवा, ब्रह्मचर्य तथा अनन्यता-एकाग्रता के प्रतीक हैं।

गणेश—शिवपुराण के अनुसार पार्वती ने स्नान करते समय अपने शरीर के मैल से गणेश की रचना की थी तथा शङ्कर ने काट डाला था। गणेश गणों के ईश हैं। गणेश का सिरच्छेन 'अहङ्कार नाश' का प्रतीक है। हाथी का सिर लगाना 'संयोजक, समन्वय-कारण तथा संश्लेषक बुद्धि का प्रतीक है। गणेश का एक दाँत उनकी अद्वैत प्रियता का प्रतीक है। मोदक-प्रिय का अर्थ है मोद (आनन्द) प्रिय। अत: मोदकप्रियता उनकी आनन्द प्रियता का प्रतीक है। 'गण' का अर्थ संख्या है और 'इश' का अर्थ 'स्वामी' है। यजुर्वेद में आया है—

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियापतिꣳहवामहे निधीना त्वां निधिपति ꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानिगर्भधमात्मजा सि गर्भधम।[1]

चूहा—यह कुतर्क, विवेचन, विभाजन, विस्तार तथा विश्लेषण का प्रतीक है। वैज्ञानिकों के अनुसार चूहे अहङ्कारी होते हैं। वे वस्त्रादि को काटते रहते हैं। गणेश चूहा पर सवार हैं। अत: गणेश अहङ्कार पर सवार हैं और वे अहङ्कार पर अङ्कुश रखते हैं। कुतर्क रूपी चूहे पर गणेशरूपी ब्रह्मा निरन्तर सवार होकर उसको नतमस्तक बनाये रहते हैं। चूहे को प्लेग बहुत पकड़ता है। तर्क भी एक रोग है। यह शीघ्र सन्देह उत्पन्न करता है।

आध्यात्मिक जगत् में आशङ्का के लिए अवकाश कहाँ ? आशङ्का के विकास से मुक्त होने के लिए हीं गणेश चूहे पर सवार हैं। अत: गणेश का वाहन चूहा आत्मदोषों के संशोधन का प्रतीक है। आसुरी वृत्तियों का शमन आवश्यक है। आत्मोत्थानहेतु तर्क कालकूट है। अत: गणेश का वाहन चूहा प्रतीकबोध कराता है। गणेश 'गणतन्त्रपद्धति की प्रतिष्ठा के संस्थापक' के प्रतीक हैं।

हरित मुख का क्रमश: क्षीण शुण्डा दण्ड क्रमश: शब्द तन्मात्रा से लेकर गंत तं

---

[1] यजुर्वेद–२६/१९

मात्रा तक अर्थशक्ति के विभिन्न परिणामों का परिचायक है। अतः मेरी दृष्टि में शब्दतन्मात्रा की अपेक्षा स्पर्शतन्मात्रा अल्पतन्मात्रा से लेकर गंधतन्मात्रा तक सभी तन्मात्राएँ गणेश के प्रतीक हैं; क्योंकि ये भूतों के आधार हैं।

आज भी महाराष्ट्र में वृक्षादि की मुख्य जड़ को 'गणेश-मूल' कहते हैं। हाथी के सिर में ही अंडकोश होता है। वह बहुत बुद्धिमान् होता है। गणेश भी बुद्धि के देवता हैं। हाथी का सिर इसका बोधक है कि हमें अपने सिर पर अविवेकपूर्ण कार्यों का बोझ नहीं डालना चाहिए। आसुरी तत्त्व से दूर रहें। सिर पर द्वितीया के चन्द्रमा का चिह्न-शान्ति का प्रतीक है। मस्तिष्क में शान्ति आवश्यक है। सिर पर दूब चढ़ायी जाती है। यह प्रथा भावी सन्तान की समृद्धि का बोधक है। हाथी की छोटी आँखे यह सिद्ध करती है कि गणेश दूसरों को यथार्थ से भी बड़ा समझते हैं। अर्थात् दूसरों में वे गुण ही देखते हैं, अवगुण नहीं। वे लघु को भी महान् समझते हैं। हाथी कान से कूड़ा-कर्कट साफ करता है। गणेश भी हाथी की तरह ही बुरे विचारों के कूड़ा-कर्कट को साफ करते हैं।

हाथी-नाक—हाथी की नाक लम्बी होती है। लम्बी नाक गणेश की महत्तम प्रतिष्ठा के प्रतीक है। **हाथी-दाँत**—कहावत है–'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और'। यह कहावत भी प्रतीकात्मक ही है। मन की बात सब जगह नहीं खोलने का प्रतीक ही 'हाथी-दाँत' है। **हाथी की जीभ**—हाथी की जीभ दाँत से कंठ की ओर लपलपाती है। यह आत्मपरीक्षण का प्रतीक है। **त्रिशूल**—त्रितापनाशक का प्रतीक है। **बड़ापेट**—हाथी का पेट बड़ा होता है। हरेक को गम्भीर होना चाहिए। हाथी का बड़ा पेट गम्भीरता का प्रतीक है। **हस्तीपेट पर सर्पचिह्न**—हस्तीपेट पर सर्प चिह्न ॐ (अ उ म) ब्रह्मा विष्णु और शङ्कर का प्रतीक है। सर्प का शरीर शीतल होता है। अतः सर्प शान्ति का प्रतीक है। **ॐ**—अ उ म (अकार उकार तथा मकार) सत रज तम—तीनों प्रकृति रखते हुए भी अन्तिम ध्येय पृथ्वीपरिधि से परे बिन्दुरूप परम ब्रह्म परमात्मा की ओर ही लक्ष्य होने का प्रतीक है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार गणेश कल्याण एवं हर्ष रूपात्मक हैं। वाराहपुराण में आकाश को 'गणपति' कहा गया है। 'गणस्यविघ्ननाशिनी' नामक तान्त्रिक सिद्धान्त के अनुसार किसी देवता की गजमुखता विघ्ननाशिनी शक्ति का प्रतीक है। आर्यशक्ति का सूचक गज-मुख है। भावनोपनिषद् का कथन है कि सुमति तथा कुमति नामक दो दन्त गणेश के हैं, जिनमें से सुमति नामक एक ही दन्त को गणेश ने सुरक्षित रखा है। कुमति रूपी दाँत को उखाड़ फेंका है। अतः एक दन्त उनकी सुमति का प्रतीक है।

कामक्रोधादि गुण आकाश के ही परिणाम हैं। आकाश गणाधिपति है। इस प्रकार देवता मनुष्य की बहुमुखी प्रगति के कल्पना चित्र का ही प्रतीक हैं। देवता का श्वेत वर्ण

उज्ज्वलता, निष्कलुषता तथा सौन्दर्य का प्रतीक है। देवता का अर्थ होता है–'देने वाला'। अतः देवस्व भाव है—दूसरों को समुन्नत एवं सुसंस्कृत देखना और सद्वृत्तियों के संवर्द्धन में निरत रहना। विवेक सम्पन्न उदार, सेवापरायण तथा परार्थी मानव देवता का प्रतीक है। 'जिनकी आत्मिक विभूतियाँ और भौतिक सम्पत्तियाँ उत्कृष्टता की समर्थक आदर्शवादिता में सहयोग रत हों, उन्हें दैव प्रकृति का कहा जा सकता है।[१] मनुष्य का सम्पूर्ण विकास देवता के रूप में होता है। देवता मनुष्य के उत्कर्ष की चरम सीमा है। देवत्व एक वैभव है जिसकी परिणति अनेकानेक ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में प्रकट होती है। मेरी दृष्टि में–देवत्व अमृत, पारस, कल्पवृक्ष तथा ब्रह्मास्त्र है।

सरस्वती—अमरकोश ने 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' कहकर सरस्वती को ब्राह्मी भारती तथा वाणी का प्रतीक माना है। सरस्वती-रहस्योपनिषद् के अनुसार भी सरस्वती 'वाणी' की ही प्रतीक हैं—

चत्वारिवाक् परिमिता पदानितानि बिदुर्ब्राह्मणाये मनीषिणः।
गुहात्रीणि निहिता नैङ्गयन्तितुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।

अहल्या का पत्थर होना जड़ बुद्धि का प्रतीक है। राक्षसों के द्वारा किया गया मांसाहार भी प्रतीकात्मक है। भैरवयामक के अनुसार काम क्रोधादि पशु हैं। अतः इस पशु का संहार करना कामक्रोधादि के शमन का प्रतीक है। इस प्रकार मेरी दृष्टि में राक्षस भी कामक्रोधादि पशु का ही वध करते थे।

काम क्रोध सुलोभ मोह पशु कांच्छित्वा विवेकासना।
मांस निर्विषयंपरावत सुखद भञ्जन्ति तेषां बुधाः।।

राक्षसों का काला वर्ण कालिमा तथा कलुष का प्रतीक है। अथर्ववेद में रक्षस तथा राक्षस की चर्चा हुई है। रक्षस अनिष्ट, अमङ्गल, हिंसा तथा पाप का प्रतीक हैं। आदि कवि बाल्मीकि तथा मानसकार तुलसी के सभी राक्षस प्रतीकात्मक है—रावण, कुम्भकर्ण, दशग्रीव, मेघनाद, विभीषण, प्रहस्त, शूर्पणखा, अक्षय कुमार, खर, दूषण–तिशिरा, जलन्धर आदि।

रावण घमण्ड है—

तव रावन मयसुता उठाई। कहे लाग खल निज प्रभुताई।।
सुनु ते प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना।।[२]

---

[१] अखण्ड ज्योति : प्रगति और पूर्णता का लक्ष्य विन्दु दैवत्व, पृ०-९, सितम्बर-१९८१.

[२] रामचरितमानस–६/७/१-२

मेघनाद हठयोग है, कुम्भकर्ण मदादि है, खर बुद्धिहीनता, कर्त्तव्यज्ञान–हीनता तथा अविवेक है। दूषण अवगुण त्रिसिस काम क्रोध और लोभ, ताड़का क्रोध विभीषण भक्ति तथा मारीच कञ्चन का प्रतीक है। जयन्त मूढ़मन्दमति का प्रतीक है—

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा।।
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंद मति कारन कागा।।[१]

शूर्पणखा राक्षसी माया है—

रुचिर रूप धरि प्रभुपहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।[२]

और—**तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई।।**[३]

मायायुद्ध—

छन्द—महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।[४]

मायाकौतुक—खरदूषण त्रिशिरा सहित १४००० मायावी राक्षसों को राम ने अति कौतुकवश मोहनास्त्र से मार दिया। क्षण भर में १४००० हजार राक्षसों को मारना भी माया ही है—

सुर मुनि समय प्रभु देखि मायापति अति कौतुक करयो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो।।
करि उपाय रिपु मारे छन मँह कृपानिधान।।

मायासीता—'इहाँ राम जसि जुगुति बनाई'[५], 'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा', 'प्रभु पद धरि हिय अनल समानी तथा 'निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता' आदि रावन को ठगने के लिए किया गया। **पुनि माया सीता कर हरना।**

माया का मृग—

होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनों नृपनारी।।[६]

माया का संन्यासी रूप—अकेली सीता को देखकर रावण समीप आया।

सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती कें बेषा।।[७]

मायाविरह शोक—कञ्चन मृग मारकर राम वापस आये, तो देखा कि आश्रम में जानकी नहीं है। राम ने विलाप शुरु कर दिया—

आश्रम देखि जानकी हीना। भये विकल जस प्राकृत दीना।।[८]

---

[१] रामचरितमानस–३/सो०/५, ७
[२] रामचरितमानस–३/१७/७
[३] रामचरितमानस–३/१७/१९
[४] रामचरितमानस–३/२/१९(क) की अन्तिम अर्द्धाली।
[५] रामचरितमानस–३/२३/७
[६] रामचरितमानस–३/२४/२
[७] रामचरितमानस–३/२७/७
[८] रामचरितमानस–३/२९ (ख)/६

मायाकबन्ध—कबन्ध गन्धर्व था। वह शापवश राक्षस बन गया। 'इस कारण इसे भी माया कबन्ध कह सकते हैं' ।[१]

मायानारी—नारी माया ही है—

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह के धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ।।[२]

मोक्षदायिका सप्तपुरियों में तीसरी पुरी 'माया' है और श्रीरामचरितमानस के सप्त सोपानों में से अरण्यकाण्ड भी तीसरा ही काण्ड है।[३] महाकवि शेखर ने इस तीसरे काण्ड में यत्र-तत्र माया का दर्शन कराकर इसे 'मायापुरी' कहा है। 'मोक्षदायिका' पुरियाँ भी सात ही हैं। अतः सात श्लोक देकर स्पष्ट किया गया है कि सातों काण्ड जीवों की मुक्ति देने के हेतु सप्तपुरियों के सदृश हैं। इनका श्रवण, मनन, निदिध्यासन ही पुरी का निवास है।[४] इस माया से मुक्त्यर्थ साधन है—

दीपसिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ।।

तीर्थ— तरति अनेन इति तीर्थः ।[५] तारने वाला ही 'तीर्थ' का प्रतीक है। 'तरना' सत्कर्मों, सद्भावनाओं तथा सद्विकारों का प्रतीक है। गुह-निषाद अहङ्कार है, मन व्याधा है, बुद्धि गणिका है।

नाग-प्रतीक पर विचार—विष्णु शेषनाग के गेंडुराये शरीर पर शयन कर रहे हैं। यह अनेक फणीनिमग्न विष्णु का ही पशुवत प्रतिरूप है। उसका नाम 'अनन्त' है। 'अनन्त का अर्थ है—जिसकी सीमा न हो'।

शेष—समस्त सृष्टि के प्रलय के बावजूद यह नाग शेष रहता है। तीनों लोक जल में तैर रहे हैं और वे शेष फणपर सन्तुलित हैं। शेष इस पृथ्वी के सभी सर्पों का आदि जीव माना गया है। 'नाग' को मानव से उच्चतम स्थान प्रदान किया गया है। वे नदियों, झीलों तथा समुद्र के तल में रहते हैं तथा उन स्थानों में भी जहाँ हीरे-जवाहरात तथा रत्न होते हैं। वे सोतों, कुओं और सरोवरों में एकचित जीवन शक्ति की रखवाली करते हैं। गहरे समुद्रों में रत्न भण्डार के अभिभावक कहे गये हैं। उनके सिर में एक बेसकीमती मणि होती है, ऐसा समझा जाता है' ।[६]

---

[१] मानस-पीयूष, पृ०-७
[२] रामचरितमानस-३/४३
[३] मानस-पीयूष खण्ड, पृ०-०-७
[४] मानस-पीयूष खण्ड, पृ०-४८
[५] मानस-३/४६ (ख)
[६] विष्णु और बुद्ध के संरक्षक-सर्प, सर्वश्रेष्ठ, पृ०-५५ (पौराणिक कथा) माया, कहानी मासिक, जनवरी ७०

नागद्वारपाल होते हैं। हिन्दू तथा बौद्ध मन्दिरों के प्रवेश-द्वार पर इनके चित्र दृष्टिगत होते हैं। पुराणों के अनुसार वे भगवान् विष्णु की भक्ति में लीन रहते हैं। मेरी दृष्टि में नाग मनुष्य के प्रतीक हैं। नालन्दा की खुदाई में से निकली हुई एक मूर्त्ति (नाग मूर्त्ति) मनुष्याकृति में भक्तिमुद्रा में दृष्टिगत है।

हनुमान के प्रतीकात्मक नाम

वानर—'वने भवं वानम्, वानं राति इति वानरः'। 'वन नामक ब्रह्म में जो आनन्दरस है, उसका नाम 'वन' है। 'वान' को प्रदान, ग्रहण या आस्वादन करने वाले 'वानर' हैं।

हनुमान—परमभागवत श्रीराम के अनन्य भक्त महावीर हनुमान के सभी नाम अपने में अनेक रहस्यपूर्ण सङ्केत ओढ़े हुए हैं। ये हनुमान के पृथक्-पृथक् रूपों (परसानॉलिटी) के प्रतीक हैं। हनुमान—यह हनुमान का स्व-स्वरूप निर्देशक मुख्य नाम है। हनुमान के ही शब्दों में—

अहं सुग्रीवस्य सचिवो हनुमान नाम वानरः।[१]
हनुमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा।[२]
अहं सुग्रीवसचिवो वायुपुत्रो महामते।
हनुमान नाम विख्यातो ह्याञ्जनीगर्भसम्भवः।[३]

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में वे भरत को इसी रूप में अपना परिचय देते हैं—

मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना।।[४]

इस प्रकार 'हनुमान' में सम्पूर्ण व्यक्तित्व, गुण और चरित्र, पौरुष और प्रभाव बीज रूप में निहित है। 'हनुमान' शब्द हिंसा तथा गति अर्थवाली 'हन्' धातु में 'उ' प्रत्यय और तद्धितीय 'मतुप्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—हनू (दाढ़) वाला। 'हनू' शब्द के अनेक अर्थ हैं—वेश्या, मृत्यु, अस्त्र, रोग एवं दोनों कपोलाङ्ग है। (मेदिनीकोश के अनुसार) पुञ्जिकस्थला का अर्थ दिशा या अभिसेना है। ***पुञ्जिकस्थल च क्रतु स्थला चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेतिहस्माह माहिस्थिः सेना च तु तै समितिश्च (अग्ने)।***[५] 'हन्' धातु का अर्थ 'अस्त्र' और 'मृत्यु' है। इस शब्द का धात्वर्थ है—क्षेपण और दूरीकरण। अतः 'हनू' के इन दोनों अर्थों को 'मतुप्' प्रत्यय के अर्थ से संयुक्त करने पर 'हनुमान' का अर्थ होता है—अस्त्रवान और मृत्युमान्। ये

---

[१] वाल्मीकीय रामायण–५/३४/८३
[२] वाल्मीकीय रामायण–५/५५/८३
[३] आनन्द रामायण–४/१/२३-२४
[४] मानस–७/१/४
[५] शतपथब्राह्मण–८/६/१/१६

दोनों अर्थ हनुमान को प्रक्षेपण प्रहार और संहार की प्रचण्ड शक्ति समन्वित निर्दिष्ट करते हैं। 'हन्' धातु का दूसरा अर्थ है–गति। वैयाकरणों के अनुसार—'गति'–ज्ञान, गमन तथा प्राप्ति का प्रतीक है। मतुबर्थ (तदस्य अस्ति–वह इसका है) से संयुक्त करने पर 'हनुमान' का ज्ञानवान, गतिवान तथा प्राप्ति वाला का प्रतीक है। हनुमान में प्राप्ति गुण की प्रचुरता है। भौतिक-आध्यात्मिक भोग, यौगिक शक्ति सिद्धि और भक्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति सहज ही उपलब्ध है। हनुमान 'भग्न ठुड्डी वाला' का प्रतीक है।

दिशाएँ अनन्ता की प्रतीक है—***अपरिमिता हि दिशः*** ।[1] दिशाओं का देवता वायु है। वह उन सब में आविष्ट है।[2] दिशाएँ स्वर्गलोक या ऋतु की वाचक भी है।[3] रामायण के अनुसार अप्सराएँ 'अप्' (जल) में मन्थन करने से उसके रस से उत्पन्न हुई थी।[4] इस प्रकार 'अप्सरा' शब्द उत्कृष्ट घनीभूत सौन्दर्य का सङ्केतक है—

अप्सु निर्मथनादेव रसात् भस्माद् वस्त्रियः ।
उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन् ।।[5]

'कपि' शब्द 'कप्' धातु के अनुसार गति का प्रतीक है। वायु विश्व का प्राण है और सबका उत्पादक तथा सम्पूर्ण कर्म का कारक होने से 'विश्वकर्मा' है—

यो वै प्राणः स वातः ।।[6]
अयं वै वायुविश्वकर्माऽयोयं पवत उष ही दंसर्व करोति ।[7]
वायु प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ।।[8]

अञ्जना और वायु के संस्पर्श में स्वर्ग रूपी दिक् (दिव्य चेतना, दिव्य प्रकाश) एवं वायु का, सत्यरूपी दिक् एवं पवमान का, देवी प्रकृति एवं विश्वप्राण का योग सम्यक् रूपेण सुघटित होता है। इन दोनों दिव्य शक्तियों के संयोग का फल है—

---

१. शतपथब्राह्मण–६/५/२/७
२. सर्वा वा वास्येतद्देवता ।। (मैं २/३/७/२३)
ता (दिशः) अयं वायुः पवमान आविष्ट इति वाजसनेयिनः। (जै० २/२२५)
३. दिशो वै सर्गो लोकः। (मैं ४/४/५/९)
सर्गो हि लोको दिशः। (शतपथब्राह्मण–८/१/२/४)
दिशो वै ऋतस्य सत्यम् ।। (शतपथब्राह्मण–८/१/२/४)
४. वा०रा०–४१/४५/३३
५. वा०रा०–१/४५/३३
६. शतपथब्राह्मण–५/२/४/९
७. शतपथब्राह्मण–८/१/१/७
८. वाल्मीकीय रामायण–७/३५/६१

स्वर्गीय बल, प्रकाश एवं सत्य की चेतना से आविल हनुमान का दिव्य जन्म। हनुमान के बाल्यकाल में कतिपय दोषों द्वारा दिये गये वरदान भी यही सङ्केत करते हैं कि हनुमान देवताओं की शक्ति के पूँजीभूत रूप थे।

पुञ्जिकस्थला अप्सरा का द्वितीय अर्थ–'अग्नि सेना (अग्नि देव की शक्ति) भी हनुमज्जन्म के विषय में भली-भाँति सुघटित होती है। दिशा शब्द अग्नि वाचक भी है—*दिशोऽग्निः*।[1] वायु अग्निसखा है। वायु में सबको मिलाने का गुण है—*'यदिदं सर्वं युङ्क्तेतस्माद् वायुः'*।[2] अग्नि शक्ति एवं विश्वप्राण शक्ति वायु के मिश्रण का प्रतीक है—हनुमान, जिनमें अग्नि का तेज और संहारक शक्ति तथा वायु का प्रबल वेग और पराक्रम विद्यमान है। अग्नि के अंश से उत्पन्न होने के कारण ही उनका वर्ण उद्यत्कोटि सूर्य समान है। अग्नि देवों की सेनानी है— *'एषोऽग्निदेवानां सेनानी'*[3]। हनुमान कपि यूथप हैं। विश्व प्राण अग्नि की तरह हनुमान भी राम सेना के जीवन है। आञ्जनेय की वन्दना का यह श्लोक भी उनके अग्नि गर्भ सम्भूत होने का सन्देश देता है—

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्का नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्।।

पुञ्जिकस्थला, अञ्जना एवं वायु के वाच्यार्थ पर विचार

पुञ्जिकस्थला पूञ्जीभूत भूमि का प्रतीक है। सम्पूर्ण बिखरी हुई भौतिक चेतना को एकत्र-सङ्घटित करके समन्वयात्मक व्यक्तित्व के रूप में प्रकट एकतानता एवं एकत्व को प्राप्त हुई भौतिक चेतना सत्ता। 'अञ्जना' शब्द 'अञ्ज' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है–व्यक्ति (विवेचन), (म्रक्षणं), (स्निग्धता), कान्ति और गति।

इस प्रकार अञ्जना सौन्दर्य प्रसाधन-संहिता कान्ति और गति से अभिव्यक्त होती हैं। अञ्जना सौन्दर्य की चेतना में देवत्व को अभिव्यक्त करने वाली सक्रिय और गतिशील भौतिक चेतना की शक्ति की प्रतीक है।

सुमेरु शिखर पर अञ्जना का वायु से संस्पर्श हुआ था, सुमेरु दिव्य चेतना की शिखराग्र भूमि का प्रतीक है, जहाँ ब्रह्मादि देव निवास करते हैं। साधक की व्यष्टि भौतिक चेतना पुंजीभूत एवं एकाग्र होकर देवत्व प्राप्ति हेतु ऊर्ध्वमुखी होती हुई दैवी-चेतना के उच्चतम शिखरों का स्पर्श करती है, जिससे भगवान की सक्रिय वायुरूपा दिव्य शक्ति साधक की चेतना में दैवी-चेतना के अंश को उतारकर हनुमान सम भागवत मन्त्र के रूप में दैवी कार्य को सम्पन्न करने दिव्य भागवत योद्धा को जन्म देती है।

---

[1] शतपथब्राह्मण–६/२/२/३४ [2] जै०–२/५९ [3] काठ०–३६/८

साधक की भौतिक चेतना में दिव्य स्पर्श लाभ के बाद साधक भगवान का यन्त्र एवं जगत् में भगवान के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला 'भगवदेक शरणाश्रितः' परम दिव्य योद्धा तथा महान कर्मी वन जाता है।

पवन पुत्र—हनुमान वायुदेवता के मानस (औरस) पुत्र हैं– *'मारुतस्योरसः पुत्रः'*[१]। 'वा' धातुमूलक 'वातजात' या 'वायु पुत्र' शब्दों के प्रयोग में गति, पराक्रम, विद्या, शोकापनोदन, भक्ति आदि गुणों की प्रधानता है। 'प' (पवित्र करना) धातुमूलक 'पवनतनय' आदि नामों में पवित्रता, पावनता, दोषों के दूरीकरण तथा पवित्रीकरण की भावना प्रमुख है। 'मृ' मरणार्थक धातु से 'मरुत्' शब्द बना है। वायु बिना या वायु के प्रबल वेग से प्राणियों का मरण होता है, इसीलिए 'वायु' का नाम 'मरुत्' है। अत एव 'मारुति' शब्द प्रक्षोभकारक या संहार शक्ति का प्रतीक है। श्री अनिरुद्धाचार्य वेङ्कटाचार्य के शब्दों में–वेदों में आग्नेय प्राण 'शिव' और सौम्य प्राण शक्ति शब्द से अभिहित होता है। इन दोनों के संयोग से उत्पन्न सप्तविध प्राण ही 'मरुद्गण' हैं। *'मारुतो रुद्रपुत्रासः'* के अनुसार मरुद्गण रुद्र के पुत्र हैं। ये मरुद्गण भौतिक वायु के जनक हैं। अतः वायु 'मारुत' नाम से पुकारा जाता है। पुराण-विज्ञान के अनुसार अदिति (सूर्य संयुक्ता पृथ्वी) से मरुद्गण की उत्पत्ति हुई। इन्द्र ने अदिति के गर्भ में प्रविष्ट होकर पहले उस गर्भ को सात भाग किये। पुनः एक-एक भाग के सात-सात खण्ड किये। इस प्रकार मरुतों की संख्या ४९ हुई। ये पृथ्वी से लेकर द्युलोक पर्यन्त बहने वाली वायु के ४९ प्रकार हैं। इनमें से पृथ्वी में स्थित धन भावापन्न सर्वादिमरुत्प्राण गणपति हैं। विरल भावापन्न सूर्य में स्थित सर्वान्त मरुत्प्राण महावीर (हनुमान) हैं। मरुद्गण के अन्तर्गत होने से ये रुद्रपुत्र हैं।

केशरीनन्दन—'के' ब्रह्मणि स्मरणशीलः 'का' पुत्र। 'केसरी' ब्रह्म का आनन्द-सामर्थ्य है। हनुमान उसी से उत्पन्न हुए। जे०टी० ह्वीलर के अनुसार रामकथा ब्राह्म और बौद्धधर्म दोनों के संघर्ष का प्रतीक है। राम तथा गार्हस्थाश्रम का प्रतीक है। राग-द्वेष राक्षस, शान्ति सीता और आत्मा राम की प्रतीक है—

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषांश्च राक्षसान्।
शान्तिसीतासमायुक्त आत्मरामो विराजते॥[२]

दशेन्द्रियाँ रजनीचर और विवेक शर का प्रतीक है—

दशेन्द्रियाननं घोरं यो मनोरजनीचरम्।
विवेक शरजालेन शमं नयति योगिनाम्॥[३]

---

[१] वाल्मीकीय रामायण–४/६६/३७ [२] शङ्कराचार्यः आत्मबोध–५०

[३] सत्वत संहिता, अ०-१२/१५१

दर्पोदग्रदशेन्द्रियान न मनो नक्तं चराधिष्ठिते ।
देहेऽस्मिन्भवसिन्धुनां परिगते दीनान्दशामास्थितः ।।
अद्यत्वेहनुमत्समेन गुरुणा प्रख्यापितार्थः पुमान् ।
लङ्कारुद्धविदेहराजतनयान्यायेन लालप्यते ।।[1]

आनन्दरामायण के विलाख काण्ड के देह-रामायण नामक तृतीय सर्ग में रामकथा की सभी घटनाओं का प्रतीकात्मक अर्थ प्रतिपादित किया गया है—मनोदुर्वृत्तिघातश्च ताटिकाया वधोऽत्रसः, मनोवेगस्य यो भंगः स धनुर्भंग उच्यते, अविवेकवधः प्राक्तत्वात्र वालिवधस्त्वया, अज्ञानतरणोपायः सेतुबंधो महादधो, मदस्य निग्रहस्तत्र कुम्भकर्णवधस्त्वया, तत्राहङ्कारघातश्च रावणस्य वधस्त्वया, हृदयाकाशगमनम् अयोध्यागमनं पुनः ।

मानस की अन्तर्कथाएँ

(क) मानस की अन्तर्कथाओं की सूची—पौराणिक अन्तर्कथाएँ हमारी ऐतिहासिक परम्पराओं की प्रतीक हैं तथा हमारी सभ्यता-संस्कृति की अक्षयनिधि रामकथा की अन्तर्कथाओं में सन्निहित है। रामचरितमानस में मुख्य रूप से निम्नलिखित अन्तर्कथाएँ आधिकारिक कथाओं के बीच-बीच में प्रसङ्गानुकूल आयी हैं—

(१) दक्ष प्रजापति की अन्तर्कथा,
(२) ब्रह्म-सभा में दक्ष प्रजापति का क्रोध,
(३) गणेश-जन्माख्यान,
(४) पार्वती का राम-नाम पर विश्वास,
(५) चन्द्रमा और बुध,
(६) शिव का हलाहल-पान,
(७) प्रह्लाद और नृसिंहावतार,
(८) कश्यप और अदिति, वामन तथा बलि-प्रसङ्ग,
(९) ध्रुव की ग्लानि एवं तपस्या,
(१०) बेनु-कथा,
(११) पृथुराज-आख्यान,
(१२) चित्रकेतु-प्रसङ्ग,
(१३) गजोद्धार,
(१४) दण्ड-शाप-विमोचन,
(१५) सुरनाथ-विवेचन,
(१६) दधीची-उत्सर्ग,
(१७) नहुष-कथा,
(१८) राजा ययाति की यौवन-प्राप्ति,
(१९) इन्द्र, अहल्या और गौतम,
(२०) सगर और भागीरथ,
(२१) अम्बरीष तथा दुर्वासा,
(२२) राजा रन्तिदेव का त्याग,
(२३) वसिष्ठ तथा विश्वामित्र-संघर्ष,
(२४) विश्वामित्र और गालव-प्रसङ्ग,
(२५)गालव और ययाति की कथा,
(२६) त्रिशङ्कु का द्वन्द्व,
(२७) विश्वामित्र द्वारा राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा,

---

[1] सङ्कल्प सूर्योदय, अ०-१/१२

(२८) शिवि का त्याग, (२९) वाल्मीकि-आख्यान,
(३०) नारद-प्रसङ्ग, (३१) घटयोनि अगस्त्य ऋषि,
(३२) अगस्त्य और समुद्र, (३३) परशुराम का क्षत्रिय द्रोह,
(३४) सहस्रार्जुन और परशुराम, (३५) सहस्रार्जुन और रावण,
(३६) रावण और कैलांस, (३७) रावण और बालि,
(३८) गरुड़ और भुशुण्डि, (३९) ताड़का को वरदान,
(४०) कैकेयी द्वारा युद्ध में दशरथ की सहायता,
(४१) सीता को नारद का आशीर्वाद, (४२) दशरथ द्वारा सरवन-वध,
(४३) शबरी को मुनि का आशीर्वाद, (४४) बालि, दुन्दुभि और ताल,
(४५) हेमा और स्वयंप्रभा, (४६) नारद का कुम्भकर्ण को उपदेश,
(४७) नल-नील को आशीर्वाद, (४८) सीता-वनवास,
(४९) गणिका-उद्धार, (५०) अजामिल-भक्ति,
(५१) अन्ध-तापस-प्रसङ्ग, (५२) कद्रू की कथा,
(५३) शृङ्गी ऋषि-आख्यान।

विशिष्ट अन्तर्कथाओं के उद्धरण

(१) दक्ष प्रजापति की अन्तर्कथा—

भै जग बिदित दच्छगति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई।।[१]

(२) ब्रह्मसभा में दक्ष प्रजापति का क्रोध—

ब्रह्म सभा हम सन दुख माना। तेहि तें आहुँ करहिं अपमाना।।[२]

(३) गणेश-जन्माख्यान—

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ।।[३]

(४) पार्वती का राम-नाम पर विश्वास—

सहस नाम सम सुनि सिव वानी। जपि जेईं पिय संग भवानी।।[४]

(५) शिव का हलाहल-पान—

नाम प्रभाउ जानि सिव नीवेग। कालकूट फल दीन्ह अभी को।।[५]
असुर सुरा, विष संकरहिं, आपु रमा मनि चारु।[६]

(६) प्रह्लाद और नृसिंहावतार—

---

१. मानस–१/६४/३ २. मानस–१/६१/३
३. मानस–१/१८/४ ४. मानस–१/१८/६
४. मानस–१/१८/८; १/१३६ ५. मानस–१/२५/४

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि मे प्रह्लादू।।[1]

(७) ध्रुव की ग्लानि एवं तपस्या—

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।।[2]

(१) नारद-प्रसङ्ग—

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू।।[3]

(२) अजामिल, गज तथा गणिका की मुक्ति—

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।।[4]

(३) कश्यप और अदिति—

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्हकहुँ मैं पूरब बर दीन्हा।।[5]

(४) वाल्मीकि, नारद तथा घटयोनि की जन्म-कथा—

वाल्मीक नारद घट जोनी। निज-निज-मुख निकही निज होनी।।[6]

(५) राकेश-राहु की कथा—

हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।।[7]

(६) पृथुराज-आख्यान—

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना।।[8]

(७) शक्राख्यान—

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही।।[9]

(१) चित्रकेतु तथा कनक कशिपु—

चित्रकूट कर धरु इन थाला। कनक कसिपु कर पुनि अस हाला।।[10]

(२) दण्ड-शाप-विमोचन—

दंडक बन पुनित प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कइ हरहू।।[11]

(३) शिवि तथा दधीचि का उत्सर्ग—

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा।।[12]

(४) इन्द्र, अहल्या तथा गौतम—

पूछा मुनिहि सिला प्राभु देषी। सकल कथा मुनि कहि बिसेषी।।[13]

---

[1] मानस–१/२५/५

[3] मानस–१/२५/३

[4] मानस–१/२५/७

[5] मानस–१/१८६/३

[6] मानस–१/२/३

[7] मानस–१/३/(ख)/३

[8] मानस–१/३/(ख)/९

[9] मानस–१/३/(ख)/१०

[10] मानस–१/७८/२

[11] मानस–३/१२/१६

[12] मानस–२/९४/३

[13] मानस–१/२०९/१२

(५) गङ्गावतरण—

गाधि सुअन सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ।।[१]

(६) अम्बरीष और दुर्वासा—

लोकहु बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहि दुरबासा ।।[२]

(७) राजा रन्तिदेव तथा राजा बलि की धर्म-परीक्षा—

रन्तिदेव बलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि संकट नाना ।।[३]

(१) राजा ययाति की पदच्युति—

लह असासु साँच एहि भाँति । सुरपुर ते जनु खँसेउ जजाति ।।[४]

(२) घटयोनि का सागर-पान—

कह कुंभज कहँ सिन्धु अपारा । सोखेउ सुजन सकल संसारा ।।[५]

(३) परशुराम पर गुरु-ऋण—

माता पितहि ऊरिन भए नीकें । गुरु रिनु रहा सोचु बड़ जीकें ।।[६]

(१) बलि और रावण—

बलिहि जितन एक गयउ पताला । राखेउ बोधि सिसुन्ह हयसाला ।।
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ।।[७]

(२) सहस्रभुज और रावण—

एक बहुकेरि सहस्रभुज देखा । धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा ।।
कौतुक लागि भवन ले आवा । सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ।।[८]

(३) बालि और रावण—

एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काख ।
इन्ह महुँ रावन तें कवन सत्य बदहि तजि माख ।।[९]

(१) रावण और कैलास—

सुनु सठ सोई रावन बललीला । हरगिरि जान जासु भुज लीला ।।[१०]

(२) रावण और दिक्पाल—

भुज बिक्रम जानहिं दिग्पाला । सठ अहूँ जिन्ह कें ऊर साला ।।[११]

---

[१] मानस–१/२११/२
[२] मानस–२/२१७/६
[३] मानस–२/९४/४
[४] मानस–२/१४७/६
[५] मानस–१/२५५/७
[६] मानस–१/२७५/२
[७] मानस–६/२३ (च) १३-१४
[८] मानस–६/२३ (च) १५-१६
[९] मानस–६/२४
[१०] मानस–६/२४/१
[११] मानस–६/२४/४

(३) गरुड़ का अभिमान—

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना।।[१]

(४) ताड़का को वरदान—

रिषिहित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी।।[२]

(१) कैकेयी द्वारा युद्ध में दशरथ की सहायता—

दुइ बरदान भूपसन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती।।[३]

(२) सीता को नारद का आशीर्वाद—

सुमिरि सिय नारद बचन, उपजी प्रीत पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत।।[४]

(३) श्रवण कुमार के माता-पिता द्वारा दशरथ को शाप दान—

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई।।[५]

(४) शबरी को मुनि का आशीर्वाद—

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए।।[६]

(१) बालि, दुंदुभि और ताल—

इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं।।[७]

दुंदुभि अस्थिताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।।[८]

(२) नारद मुनि का कुम्भकर्ण को उपदेश—

नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा।।[९]

(३) नल-नील को वर प्राप्ति—

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई।।[१०]

(१) सीता वनवास—

सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए।।[११]

(२) व्याध-ग्राह्यादि-मोक्ष—

पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल गीध व्याघ गजादि खल तारेउ घना।।[१२]

---

[१] मानस—७/६१/८
[२] मानस—१/२३/४
[३] मानस—२/२१/५
[४] मानस—१/२२९
[५] मानस—२/१५४/४
[६] मानस—३/३३/६
[७] मानस—४/५/१३
[८] मानस—४/६/१२
[९] मानस—६/६२/६
[१०] मानस—५/५९/७
[११] मानस—१/१५/३
[१२] मानस—७/२९/८/१

(३) कद्रू-बिनता की कथा—

कद्रूँ बिनतहि-दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिला देब ।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब ।।[३]

(४) गालब और नहुष का हठ—

गुर-श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे गाल नहुष नरेस ।।[४]

कतिपय महत्त्वपूर्ण अन्तर्कथाएँ, यथा—

(१) अगस्त्य,
(२) अजामिल,
(३) अदिति,
(४) अम्बरीष,
(५) अन्ध तापस,
(६) कद्रू,
(७) कश्यप,
(८) कैकेयी,
(९) गज,
(१०) गणिका,
(११) गरुड़,
(१२) चन्द्रमा,
(१३) तपस्विनी,
(१४) दण्डक,
(१५) दुन्दुभि,
(१६) ध्रुव,
(१७) नल-नील,
(१८) परशुराम,
(१९) प्रह्लाद,
(२०) पृथुराज,
(२१) बलि,
(२२) रन्तिदेव,
(२३) रावण,
(२४) वाल्मीकि,
(२५) विश्वामित्र
(२६) सीता को नारद का आशीर्वाद,
(२७) सुरनाथ (इन्द्र),
(२८) हरिश्चन्द्र ।

रामचरितमानस की कतिपय विशिष्ट अन्तर्कथाओं का सङ्क्षिप्त वर्णन

अगस्त्य—अगस्त्य की उत्पत्ति एक घड़े से बतायी गयी है । मित्रवरुण की सन्तान अगस्त्य सूर्य के मार्ग को बढ़कर रोकने वाले बिन्ध्य पर्वत के सामने गये । बिन्ध्य पर्वत ने झुककर उन्हें प्रमाण किया । अगस्त्य ने आदेश दिया—'मैं जब तक नहीं आऊँ, तब तक तुम ऐसे ही रहो' । यह कहते हुए वे दक्षिणदिशा में चले गये और पुन: वापस नहीं आये । इसीलिए उनका नाम अगस्त्य पड़ा ।

इन्द्र द्वारा वृत्रासुर-वध के बाद असुर देवों के भय से सागर में जा छिपे । वे निशिचर बनकर मुनियों और ब्राह्मणों को सताने लगे । देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की कि आप सागर का जल पी जाइए, तब हम दैत्यों का नाश कर देंगे । मुनि सागर के जल को पी गये । उसके बाद देवताओं ने राक्षसों को जान से मार डाला ।

---

१. मानस-२/१९

२. मानस-२/६१

अजामिल—अजामिल विद्वान, माता-पिता का अनन्य सेवक तथा ईश्वर भक्त था। एक दिन वह जङ्गल में एक वेश्या पर आसक्त हो गया और उसको घर लाकर उसके साथ मांस-मदिरा खा-पीकर जीवन व्यतीत करने लगा। मरण काल उपस्थित होते ही उसने अपने छोटे पुत्र नारायण को बार-बार पुकारना शुरू किया। यमदूत और विष्णु दूतों में अजामिल हेतु दीर्घकालीन विवाद हुआ। अन्त में यमदूत परास्त होकर यमराज के पास लौट गये। अजामिल विष्णु पार्षदों से कुछ पूछना ही चाहता था कि वे लुप्त हो गये। उसके बाद अजामिल जीवन पर्यन्त भगवद्-भक्ति में लीन रहा और अन्त में वैकुण्ठ गया।

अदिति—कश्यप प्रजापति अपनी पत्नी अदिति के साथ जङ्गल में जाकर घनघोर तपस्या किये। भगवान ने प्रसन्न होकर कहा—'वर माँगो'! दम्पति ने कहा कि आप हमारे पुत्र हों। भगवान ने यह वरदान दिया कि तुम दोनों त्रेता में अयोध्या के राजा-रानी बनोगे, तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। इसीलिए अदिति कौसल्या के रूप में त्रेता में अवधेश की रानी हुई और राम ने इनके गर्भ से अवतार लिया।

अम्बरीष—सूर्यवंशी नृप नाभाग सुमन अम्बरीष ऋषि एक समय द्वादशी के दिन अट्ठासी हजार ऋषियों के साथ लेकर अम्बरीष के पास गये। राजा से भोजन माँगा। अम्बरीष राजा ने स्वागत कर भोजन हेतु उन्हें आमन्त्रित किया। दुर्वासा ने कहा—'हम स्नान करके आते हैं, तब भोजन करेंगे। ऋषियों के साथ वे स्नान करने चले गये। वहीं इन्हें बहुत देर हो गयी, तब ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर राजा अम्बरीष ने जल-ग्रहण किया। इतने में दुर्वासा आ गये और यह देखकर अपनी जटा से एक बाल ऊखाड़ कर पृथ्वी पर पटक दिये, उससे एक स्त्री कृत्या पैदा हुई और ऋषि की आज्ञा पाकर राजा पर आक्रमण कर दी।

भगवान ने निरपराध भक्त की सहायता में सुदर्शन चक्र को भेजा। सुदर्शन चक्र ने दुर्वासा की जान लेने के लिए उनका पीछा किया। ब्रह्मलोक तथा शिवलोक में भी ऋषि को सुरक्षा नहीं मिली, तब 'त्राहि माम' 'त्राहि माम' कहकर विष्णु के चरणों पर लोटने लगे। विष्णु ने कहा—तुम अम्बरीष के पास जाओ, वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं। दुर्वासा राजा अम्बरीष के पास गये। दयाद्रचित राजा ने उनको सादर भोजन कराया। दुर्वासा राजा अम्बरीष की प्रशंसा करते हुए अपने आश्रम को सिधारे।

अन्ध तापस—अयोध्या के समीप सरयूतट पर एक अन्धा तपस्वी अपनी प्रिया तथा पुत्र श्रवण कुमार के साथ रहता था। एक दिन प्यासे माता-पिता के लिए श्रवण कुमार सरयू नदी में पानी भरने लगा कि सहसा दशरथ के बाण से बिद्ध हो गया और घायल होकर कहा—'हाय! मुझ निरपराध को किसने मारा? हाय! मेरे माता-पिता का

कोई सहारा नहीं है। वे तड़प-तड़प कर मर जायेंगे'। यह सुनते ही राजा घटनास्थल पर पहुँचा और श्रवण के मर्म-स्थल से बाण निकाल कर उससे क्षमा माँगी। उसने कहा—'हे महाराज! आपने अज्ञानवश यह कर्म किया है। अत: शीघ्र जाइये और मेरे प्यासे माता-पिता को जल पिलाइए और उनसे क्षमा की याचना कीजिए, अन्यथा वे शाप दे देंगे'। इतना कहकर वह स्वर्गारोहन किया और दशरथ ने अन्ध तापस के समीप आकर सारा वृत्तान्त कह दिया तथा क्षमा माँगी। मुनि ने कहा—'हे महाराज! हमें श्रवण के पास ले चलिये, ताकि हमलोग अपने पुत्र का अन्तिम दर्शन कर लें और चूँकि आपने अज्ञानतावश यह कुकृत्य किया है, इसीलिए आपको ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगेगा, किन्तु जिस प्रकार पुत्र-वियोग में हम मर रहे हैं, उसी प्रकार आप भी पुत्र-वियोग में तड़प-तड़प कर मरेंगे'। इतना कहकर दम्पति चल बसे। महराज दशरथ घर वापस आये। इसीलिए महाराज दशरथ को भी पुत्र-वियोग में शरीर त्यागना पड़ा।

कद्रू—कश्यप मुनि की प्रथम पत्नी कद्रू ने उनकी दूसरी पत्नी विनता से पूछा—हे विनते! सूर्य के घोड़े सफेद हैं या काले? विनता ने कहा—मुझे तो सफेद मालूम पड़ता है। पर कद्रू ने कहा—'काले'। दोनों ने तय किया कि यदि काले हों, तो विनता कद्रू की दासी बने और यदि श्वेत हों, तो कद्रू विनता की। कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों से कहा—हे पुत्र! जाओ सूर्य के अश्वों की पूँछ में लिपट जाओ, जिससे विनता मेरी दासी बने। 'पर सर्प ने अस्वीकार किया, तब कद्रू ने शाप दिया कि जन्मेजय के राज्य में तुम्हारा नाश हो जायेगा। इसी बीच करकोटक नामक साँप ने घबराकर कहा—हे माता! मैं जाकर घोड़ों से लिपट जाता हूँ और तुम और विनता देखने जाओ। कद्रू और विनता घोड़ों को देखने गई। वहाँ उन्हें घोड़ों की पूँछें काली दिखायी पड़ी। इसलिए पूर्व निर्णयानुसार विनता कद्रू की दासी बनी।

कश्यप—कश्यप ब्रह्मा के पौत्र तथा मरीचि के पुत्र थे। कश्यप प्रजापति बने। तत्पश्चात् अपनी भार्या अदिति सहित तपस्या करने वन में निकल पड़े। इनकी कठोर तपश्चर्या से भगवान विष्णु ने प्रसन्न होकर कहा—'वरं ब्रूहि'। कश्यप ने कहा—'आप ही मेरे पुत्र हों'। विष्णु ने कहा—'एवमस्तु'। मैं त्रेतायुग में अवतरित होऊँगा। आपलोग दशरथ और कौसल्या बनेंगे और मैं आपके यहाँ प्रकट होऊँगा। इसी कारण कश्यप दशरथ के नाम से अवधेश हुए।

कैकेयी—राजा दशरथ की सर्वाधिक प्रिय रानी कैकेयी ने इन्द्र की सहायता में निमन्त्रित दशरथ का साथ 'देवासुर-संग्राम' के समय दिया, जब उनके रथ का पहिया टूट गया था। उसने रथ की धुरी की जगह अपना हाथ डाल दिया था। महाराज दशरथ यह देखकर प्रसन्न हुए और बोले—मैं तुम्हें दो वरदान देना चाहता हूँ, जो चाहो,

माँग लो— **कैकेयी भव तन अनुरागे । पाँवर प्रान अथाहिंअ भागे ।।**

उसने कहा—'मेरे दोनों वरदान आप धरोहर के रूप में रखें, जब मेरी इच्छा होगी, माँग लूँगी । वही दोनों वरदान कैकेयी ने राजा दशरथ से माँगा था, जो राम-वन-गमन का कारण हुआ ।

गज—पुरातन काल में इन्द्रद्युम्न नामक राजा शापवश गज हो गया । क्षीर सागर तटस्थ त्रिकूट गिरि पर अवस्थित सरोवर में यह मत्त हस्तिनियों के साथ जल क्रीड़ा किया करता था । एक दिन वह ग्राह (जो प्राचीन काल में हूहा नामक गन्धर्व था और शापवश मगर हो गया था) जल में आकर गज का पैर पकड़ लिया । दोनों में एक हजार वर्ष तक घमासान युद्ध हुआ । अन्त में गजेन्द्र हारकर गोविन्द की स्तुति करने लगा । भगवान ने आकर ग्राह को मार दिया और गज को बचा लिया । ग्राह स्वलोक गमन किया और गजेन्द्र नारायण का पार्षद हो गया ।

गणिका—दमे की बीमारी के कारण जवानी में ही सतयुगी परशुनामक वैश्य मर गया । तत्पश्चात् उसकी विधवा पत्नी जीविन्ती एक सुग्गा पालकर उसे रामनाम पढ़ाया करती थी और वैश्यावृत्ति भी करती थी, किन्तु रामनाम महात्म्यवश दुस्तर भव वारिधि से उसका महान् सन्तरण हुआ ।

गणिका अजामिल गीध ब्याध गजादि तारेउ घना ।

गरुड़— **होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना । सो सोवइ चह कृपानिधाना ।।**

विनतागर्भोद्भूत, कश्यप पुत्र तथा विष्णु-वाहन काकभुशुण्डि जी एक बार मोहवश राम के हाथ से रोटी का टुकड़ा छीन लिये और वहाँ से आशुपलायित हुए । विष्णु के स्मरणमात्रेण गरुड़ पहुँच गये । दोनों में विकराल युद्ध हुआ । अन्ततोगत्वा भुशुण्डि हार गये और भगवान की शरण में आ गये । शरणागत भुशुण्डि की भगवान ने रक्षा की, तभी से गरुड़ के मन में अभिमान का अङ्कुर जमने लगा था ।

चन्द्रमा—एक बार त्रिलोकजयी चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया, जिसमें उन्हें अभिमान हो गया । उसने बल प्रयोग द्वारा गुरु वृहस्पति की पत्नी तारा को अधीनस्थ कर लिया और सम्भोग किया । अन्त में ब्रह्मा की मध्यस्था के के कारण चन्द्रमा ने वृहस्पति की स्त्री तारा को उन्हें लौटा दिया । तारा की कुक्षि से उत्पन्न बुध नामक पुत्र को ब्रह्मा ने चन्द्रमा को दिला दिया ।

ससि गुरु तिय गामी नहुष चढेउ भूमि सुर यान ।

तपस्विनी—जब विश्वकर्मा की कन्या हेमा ने अपने नृत्य से महादेव को प्रसन्न कर लिया, तब उसे दिव्य स्थान प्राप्त हुआ । वह दिव्य नामक गन्धर्व कन्या स्वयं प्रभा

के साथ रहा करती थी। जब वह ब्रह्मलोक में जा रही थी, तब उसने स्वयं प्रभा से कहा—'जब त्रेतायुग में राम के दूत यहाँ आयेंगे, तब तुम उनका सत्कार करना और राम का दर्शन करना। इससे तुम्हें परम पद मिलेगा।

तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं जब जाव जहाँ रघुराई।।

दण्डक—राजा मनु के पौत्र तथा इक्ष्वाकु के पुत्र दण्ड बड़ा उदण्ड था, इसलिए महाराज ने उसे विन्ध्याचल तथा नीलगिरि के मध्य प्रान्त का राज्य सौंपा। उसकी राजधानी का नाम मधुदत्ता था। वसन्त ऋतु में एक दिन भ्रमण के क्रम में अपने गुरु भार्गव (शुक्राचार्य) के आश्रम में दण्ड पहुँचा और उनकी पुत्री 'अरजा' को देखकर उन पर मोहित हो गया और जबरदस्ती उसके साथ बलात्कार किया। कुमारी अरजा ने अपने पिता से राजा दण्ड का सारा वृत्तान्त सुनाया। शुक्राचार्य ने शाप दिया—हे दण्ड! जा, तू सात रात के भीतर पुत्र, सेना तथा वाहन सहित नष्ट हो जा और इन्द्र सौ योजन तक धूल की वर्षा कर तेरे राज्य को नष्ट कर दें तथा वहाँ के रहने वाले सभी स्थावर-जङ्गम जीव इस वृष्टि से नष्ट हो जायँ'। तदुपरान्त मुनि ने वहाँ के आश्रम वासियों को उस कानन से बाहर जाने की आज्ञा दी। सभी चले गये और वह वन 'दण्डकारण्य' के नाम से प्रख्यात हुआ। जब रामचन्द्र अत्रि आश्रम से आगे बढ़ कर दण्डक-वन आये, तब ऋषि-शाप से दण्ड का उद्धार हुआ।

दण्डक वन प्रभु पावन करहू। उग्र साप मुनिवर के हरहू।।

दुन्दुभि—दुन्दुभि नामक राजा को किष्किन्धा के राजा बालि ने मार दिया और ऋष्यमूक गिरि पर फेंक दिया। इसी गिरि पर मतंगाश्रम था। आश्रम पर रक्त कण देखकर क्रोधाभिभूत ऋषि ने शाप दिया कि यदि बालि यहाँ आयेगा, तो उसका सिर फट जायेगा और उसका प्राणान्त हो जायेगा। इसी शाप वश बालि ऋष्यमूक गिरि पर नहीं जाता था।

दुन्दुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये।।

ध्रुव—मनु पौत्र तथा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का जन्म सुनीति से हुआ था। राजा ध्रुव के विमाता सुरुचि को अधिक प्यार करते थे। एक दिन विमाता की कटु वाणी से दुःखी होकर वह अपनी माँ के पास आया और वस्तु स्थिति से माँ को अवगत करा दिया। माता ने कहा—'ध्रुव वन में जाकर तपस्या करो। भगवान ही तुम्हारे कष्ट का निवारण कर सकते हैं'।

ध्रुव वन में जाकर तपरत हुआ। विष्णु ने प्रसन्न होकर ध्रुव को मनोवांछित वरदान दिया। ध्रुव वन से वापस आया और माता-पिता से राज्य प्राप्त कर छत्तीस हजार वर्षों

तक राज करता रहा और अन्त में वह परमपद को प्राप्त किया।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनुपम ठाउँ।।

नल-नील—

नाथ नील नल कपि दो भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई।।

एक बार मुनिगण सागर तट पर शालिग्राम की मूर्तिपूजा करके नयन मूँद लिये और ध्यानावस्थित हुए तब नल-नील ने शालिग्राम को उठाकर सागर में प्रवाहित कर दिया। यह देखकर ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारे छुए हुए पत्थर पानी में नहीं डूबेंगे। इसी से नल-नील सागर पर सेतु-निर्माण में सक्षम हो पाये थे।

परशुराम—

परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोग सब साखी।।

जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम की माँ रेणुका थी। एक दिन उनकी माँ गङ्गा तट पर जल लाने गई। वहाँ वह स्त्री के साथ जलकेलि करते हुए चित्ररथ का अवलोन करते ही उस पर मुग्ध हो गयी और देर से घर वापस आयी। इस स्थिति को जानकर ऋषि ने पुत्रों को आदेश दिया कि अपनी माता को जान से मार दो। प्रेमवश किसी अन्य पुत्र की हिम्मत नहीं हुई, तब परशुराम ने पिता आज्ञा का पालन कर अपनी माता का वध कर दिया। प्रसन्न पिता ने वर माँगने के लिए परशुराम से कहा। परशुराम ने कहा—'हे पिताजि! वरदान में मेरी माँ को जिला दीजिए तथा मुझे दीर्घायु और अजेय बनने का वरदान दीजिए। पिता ने कहा—'तथास्तु'।

एक दिन कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने आकर उनके पिता के यज्ञ में विघ्न डाला। परशुराम ने उसकी सहस्र भुजाओं को काट दिया। पूर्वाग्रह वश उसके नौकर ने जमदग्नि की जान ले ली। फलतः परशुराम ने क्षत्रिय-नाश की प्रतिज्ञा की और वसुधा को क्षत्रिय रहित बनाकर एक अश्वमेध यज्ञ किया तथा विजित धरती कश्यप आदि को सौंप कर क्षत्रियों के रक्षार्थ वे दक्षिणी सागर की ओर प्रस्थान किये।

प्रह्लाद—

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमणि भे प्रह्लादू।।

हिरण्यकश्यप का सबसे छोटा पुत्र प्रह्लाद था। जब वह पाँच वर्ष का हुआ, तब पाठशाला जाने लगा। वहाँ वह लड़कों को भगवद् भक्ति का उपदेश देने लगा। उसके गुरु शुक्राचार्य ने उसे बहुत समझाया, किन्तु वह नहीं माना। तब गुरु ने उसके पिता से उसके सम्बन्ध में शिकायत की। पिता ने बहुत समझाया, किन्तु प्रह्लाद नहीं माना और वह अपने पिता को ही समझाना शुरू किया। इस पर उसका पिता क्रोधित हो गया और उसने बालक प्रह्लाद को कठोर यातनाएँ देना शुरू किया, किन्तु प्रह्लाद राम नाम

की माला फेरता ही रहा। ऊब कर राजा ने अपनी बहन होलिका से कहा—'इसे गोद में लेकर अग्नि प्रवेश कर जाओ, जिससे प्रह्लाद जल जाय'। होलिका ने ऐसा ही किया, जिसके कारण होलिका-दहन हुआ और प्रह्लाद बच गया। अन्त में क्रोधित पिता ने स्वयं उसे तलवार लेकर मारना चाहा, किन्तु भगवान नृसिंह ने सायंकाल दहलीज के ऊपर अपनी जाँघ पर हिरण्यकशिपु को रखकर नख से उसका पेट फाड़ दिया। हिरण्यकशिपु मर गया और प्रह्लाद की भगवान ने रक्षा की।

पृथुराज—

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना।।

जिस समय बेनु पुत्र पृथुराज राजा बना, उस समय देश अराजकता की दौर से गुजर रहा था। वह धर्मात्मा तथा भक्त था। उसका राज्य धन-धान्य से सम्पन्न था। सम्पूर्ण विश्व में उसका प्रभाव फैल गया। भारत का यह सार्वभौम प्रजातन्त्र-राज्य सर्वप्रथम इसी के ही राष्ट्रपतित्व में हुआ। इसी से वसुन्धरा का नाम पृथ्वी पड़ा। उसने ईश्वर से यह वरदान माँगा कि आपके चरित तथा सुयश श्रवणार्थ मेरे कानों दस हजार कानों की शक्ति हो जाय।

बलि—प्रह्लाद पौत्र बलि सत्यार्थी, धर्मात्मा और विश्रुत दानी था। उसने तपबल से स्वर्ग को जीत लिया था। देवमाता अदिति ने व्रतादि के बल पर विष्णु को प्रसन्न किया। उन्हीं के पुत्र वामन हुए। जब उनका यज्ञोपवीत संस्कार होने लगा, तब बलि ने सौ अश्वमेध यज्ञ करना शुरू किया, इसलिए वे मण्डप में आये। बलि उनके तेज पर मोहित होकर उनसे वर माँगने के लिए कहा। वामन ने तीन कदम पृथ्वी दान में माँगी। बलि ने तीन कदम धरती दान में वामन को दे दी। वामन ने विराट रूप धारण कर एक पैर से पृथ्वी नाप लिया और दूसरे पैर से स्वर्गादि लोक नाप लिया और तीसरे पैर से बलि का शरीर न्राप लिया। इससे वामन भवान प्रसन्न हो गये और और उसे सुतललोक का राज्य देकर वहाँ से विदा किये तथा स्वर्ग-लोक देवताओं को सौंप दिये।

रन्तिदेव—

रन्तिदेव बलि भूप सुजाना। सहेउ धरम धरि संकट नाना।।

दानी नृप रन्तिदेव को एक बार ४९वें दिन घृत-खीर और जल प्राप्त हुआ। राजा भोजन करने बैठे ही थे कि इसी बीच एक ब्राह्मण, एक शूद्र कुत्ता सहित एक अतिथि और अन्त में एक चाण्डाल क्रमशः आ गया। सबको उन्होंने भोजन तथा जल से तृप्त किया और वे स्वतः निराहार निर्जल रह गये। उनके त्याग से प्रसन्न होकर ब्रह्मा और विष्णु आदि देवता (जो उपर्युक्त रूपों में आये थे) प्रकट हो गए। राजा ने सभी देवताओं

को सभक्ति प्रणाम किया तथा भगवान ने उसे मोक्ष दे दिया।

रावण—

सुनु सठ सोय रावण बल सीला। हरगिरि जानु जासु भुजलीला।।

रावण अपने भाई कुबेर से पुष्पक विमान छीनकर उस पर सवार हुआ और कैलास के कानन में घुस गय। आगे बढ़कर विमान सहसा रुक गया। इसी बीच विकराल वानर मूर्त्ति शिव के मुख्य गण श्री नन्दीश्वर रावण के पास आकर कहने लगा—'हे दशानन! यहाँ शिवजी क्रीड़ा कर रहे हैं, तू यहाँ से चला जा'। रावण ने उसका रूप देखकर उसका और शिव का अपमान किया। नन्दीश्वर ने शाप दिया कि 'अरे दशग्रीव! तृ मेरे वानर रूप पर हँस रहा है, इसलिए वानरों के द्वारा ही तुम्हारे कुल का नाश होगा। 'इस शाप से तनिक भी रावण विचलित नहीं हुआ और क्रोधाग्नि वश उसने अपनी भुजाओं को पर्वत के नीचे घुसकर उसे उठा लिया। यह देखकर शिव-गण भयाक्रान्त हो गये और पार्वती भी शिव की काया में लिपट गईं, तब शिव ने अपने पाद अङ्गुष्ठ से पर्वत को दबा दिया, जिससे रावण की भुजाएँ दब गई। इससे क्षुब्ध रावण भयङ्कर नाद किया, तीनों लोक उसके स्वराघात से प्रकम्पित हो उठा। हारकर रावण सामवेद से शङ्कर की स्तुति करने में प्रवृत्त हुआ। हजारों वर्ष व्यतीत होने के बाद भगवान शङ्कर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी भुजाओं को दाब से मुक्त किया तथा उसे 'रावण' की उपाधि दिया और चन्द्रहास नामक खड्ग वरदान स्वरूप दिया।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लड़ाई।।

एक बार रावण हैह्यवंशीय नृप सहस्रार्जुन से युद्ध करने लगा। राजा ने उसे बाँध दिया। तब पुलस्त्य मुनि के कथनानुसार राजा ने रावण को बन्धन मुक्त किया।

एक कहत मोहिं सकुच अति, रहा बालि की काँख।

एक बार रावण बालि-वध हेतु किष्किन्धा गया। बालि ने उसे अपनी काँख में दबोच कर, चारों ओर सागरों पर घुमा-फिरा कर उसे छोड़ दिया। इसीलिए रावण ने बालि से हारकर मित्रता कर ली।

वाल्मीकि—

वाल्मीकि नारद घट जोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।।

अध्यात्म रामायण के अनुसार जब राम वाल्मीकि आश्रम गये, तब उन्होंने उनके नाम की प्रशंसा की। उन्होंने राम से अपना जीवन वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया—'हे राम! मैं एक ब्राह्मण पुत्र था किन्तु अपने भ्रष्टाचार वश एक दिन पथिक के रूप में जाते हुए सप्तर्षियों को लूटने के लिए धेर लिया। उन्होंने कहा—रे-रे मूर्ख द्विजाधम। तू हमारे

पास क्यों आते हो? मैंने कहा—हे मुनिवरों! मैं अपने कुटुम्ब के पोषणार्थ आपलोगों को लूटना चाहता हूँ' । उन लोगों ने कहा—अच्छा, पहले तू जाकर अपने पुत्रों और भार्या से पूछ कि वे मेरे पाप में हिस्सेदार होंगे । जब तक तू लौटकर नहीं आओगे, तब तक हमलोग यहीं खड़े रहेंगे' । मैंने जाकर अपने पुत्रों और भार्या से पूछा । उन्होंने कहा—'हमलोग पाप भागी नहीं होंगे, केवल धन ही में हिस्सा लेंगे' । यह सुनकर मुझे आत्मज्ञान हुआ और मैंने वहाँ पहुँचकर सप्तर्षियों के चरणों पर सिर झुका दिया । उन्होंने 'राम-नाम' जपने का उपदेश दिया, पर पाप वश वह शुद्ध नामो-च्चार नहीं कर सका और 'मरा-मरा' करने लगा । मैं एक हजार वर्ष तक आसनस्थ होकर तपस्या करता रहा । मेरे ऊपर बॉबी जम गई । पुन: वही ऋषि वापस आये और मुझसे कहने लगे—'हे ब्रह्मर्षि! बाहर निकल आओ' । यह सुनकर मैं उठ खड़ा हुआ और उन्होने मेरा नाम वाल्मीकि रख दिया; क्योंकि मेरा पुनर्जन्म वाल्मीक से हुआ था । तभी से मुझे ब्रह्मर्षि की उपाधि मिली । 'इन्हीं ब्रह्मर्षि-वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी जिसे वाल्मीकीय रामायण के रूप में जाना जाता है ।

विश्वामित्र—गाधितनय विश्वामित्र एक बार वसिष्ठाश्रम पर मेहमान बनकर गये । वसिष्ठ द्वारा उनका अभूतपूर्व सत्कार हुआ । यह देखकर उन्हें घोर आश्चर्य हुआ । बाद में उन्हें मालूम हुआ कि वसिष्ठ के पास कामधुनु है, तब उन्होंने कामधेनु की याचना की । वसिष्ठ ऋषि ने उन्हें 'कामधेनु' नहीं दिया । यह देखकर विश्वामित्र को क्रोध हुआ और उन्होंने वसिष्ठ मुनि से कठिन संग्राम किया, किन्तु वसिष्ठ के ब्रह्म-बल के कारण वे परास्त होकर तपस्या में लीन हो गयें उनकी तपस्या पर रीझकर ब्रह्मा ने कहा—'वरदान माँगो' । विश्वामित्र ने यह वरदान माँगा कि वसिष्ठ मुनि मुझे ब्रह्मर्षि कहें । ब्रह्मा ने कहा—'तथास्तु' । एक दिन विश्वामित्र वसिष्ठ से मिलने गये । उसी समय अरुन्धती ने वसिष्ठ से पूछा—'हे भगवान! आजकल राजर्षि विश्वामित्र के तप की बड़ी प्रशंसा है' । वसिष्ठ ने कहा—'हे देवा! वे अब राजर्षि नहीं, ब्रह्मर्षि हो गए हैं; क्योंकि ब्रह्मा ने उन्हें ब्रह्मर्षि होने का ही वरदान दिया है' । यह सुनते ही विश्वामित्र वसिष्ठ के गले से लिपट गये और उनका मनोमालिन्य धुल गया ।

सीता को नारद का आशीर्वाद—

सुमिरि सिय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।

जब गिरिजा पूजनार्थ सीता जा रही थीं, तब रास्ते में नारद मिल गये । सीता के प्रणाम करने पर उन्होंने आशीर्वाद दिया कि इसी बगीचे में तुम सर्वप्रथम पति दर्शन पाओगी । सीता ने पूछा—'मैं कैसे पहचानूँगी?' तब नारद मुनि ने कहा—'जिसे देखकर तुम्हारा मन लुभा जाय, वही तुम्हारा पति होगा' ।

सुरनाथ (इन्द्र)—

सहस्र बाहु सुदनाथ त्रिसंकू । केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ।।

एक बार की बात है कि वृहस्पति जब इन्द्र सभा में गये, तब इन्द्र ने उनका निरादर किया । गुरु वृहस्पति चुपचाप घर चले आए । इन्द्र को पता चल गया कि उसने अपराध किया है, तब वे उनके पास क्षमा याचनार्थ गये, किन्तु वृहस्पति अदृश्य बन गए । इधर शुक्राचार्य की मन्त्रणानुसार दैत्यों ने इन्द्र पर धावा बोल दिया । तदुपरान्त ब्रह्मा के आदेश से इन्द्र ने त्वष्टाप् तपस्वी विश्वरूप से प्रार्थना की और उन्हें अपना पुरोहित बनाया, तत्पश्चात् इन्द्र का राज्य वापस हुआ ।

हरिश्चन्द्र—

सिविदधीचि हरिश्चन्द नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।।

अयोध्या के सूर्यवंशी दानी राजा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा यत्र-तत्र सर्वत्र फैल गयी थी । एक दिन नारद मुनि ने हरिश्चन्द्र की प्रशंसा इन्द्र के सामने की । ईर्ष्यालु इन्द्र को भय हुआ कि कहीं राजा हरिश्चन्द्र हमारी गद्दी न ले लें । इसलिए इन्द्र ने विश्वामित्र को उनकी परीक्षा लेने के लिए भेजा । ऋषि ने आकर राजा हरिश्चन्द्र से दान में सम्पूर्ण पृथ्वी माँग लिया किन्तु राजा हरिश्चन्द्र दक्षिणा में उनके द्वारा माँगी हुई एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ नहीं दे सके । फलतः वे सपरिवार आये और अपनी पत्नी और एक मात्र पुत्र रोहिताश्व को एक ब्राह्मण के हाथ बेचकर विश्वामित्र को आधी दक्षिणा दे दी और शेष दक्षिणा हेतु उन्होंने अपने को डोम के हाथ बेच दिया और विश्वामित्र की दक्षिणा चुका दी ।

अब, राजा हरिश्चन्द्र डोम के मरघट की रखवाली करने लगे । एक दिन रोहिताश्व सर्पदंश से मर गया । उसकी लाश लेकर उनकी पत्नी शेव्या अन्त्येष्टि क्रिया के लिए श्मशान घाट आई । हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्नी और एक मात्र पुत्र रोहिताश्व की लाश को पहचान लिया, फिर भी, कफन कर माँगा । शेव्या रोने लगीं, किन्तु हरिश्चन्द्र अपनी माँग पर अटल रहे । अन्ततोगत्वा शेव्या ने अपना आँचल फाड़कर 'कफन कर' चुकाना ही चाहा कि नारायण प्रकट हुए और उन्होंने शेव्या का हाथ पकड़ लिया । राजा हरिश्चन्द्र अपने कुटुम्ब सहित भगवान के चरणों में लिपट गये । तब, प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें 'निजधाम' भेज दिया ।

इस प्रकार रामचरितमानस की मूल-कथा के अन्तर्गत आने वाली सभी प्रासङ्गिक कथाएँ 'सुवर्ण में सुगन्धि' की कहावत को चरितार्थ करती है ।

—०००—

५.

मानवेतर पात्रों का विवेचन एवं वर्गीकरण– सामान्य परिचय तथा विश्लेषण

मानस के मानवेतर पात्र एवं पात्राओं के वर्गीकरण की तालिका परिशिष्ट-१ में दी गयी है, जिसके अनुसर दिव्य–वनचर, राक्षस, नभचर, जलचर, उभयचर तथा अन्यान्य पात्र एवं दिव्या–वनचरी, राक्षसी, नभचरी, जलचरी तथा अन्य पात्राओं के रूप में पात्र-पात्राओं तथा चरित्रों का विभाजन किया गया है।

उक्त विभाजन के आधार पर सभी पात्र-पात्राओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का उपक्रम किया गया है। इस क्रम में इन चरित्रों के स्रोत एवं चारित्र्य के विवेचन-विश्लेषण को वरीयता दी गयी है।

(क) दिव्य पात्र

दशरथ—इक्ष्वाकु-वंशावली के निरूपणक्रम में मुझे घोर आश्चर्य होता है। पौराणिक साहित्यों के अनुसार इक्ष्वाकु से राम तक ६३ राजा हुए, किन्तु रामायण में इनकी संख्या मात्र ३६ है। इसके अलावा रामायण के छत्तीस नामों में से अट्ठारह नाम दोनों वंशावली में प्राप्त होते हैं। मेरे अनुसार रामायण में मात्र उन्हीं राजाओं की चर्चा हुई है, जिनका राज्याभिषेक हुआ था। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार तेइसवाँ नाम दिलीप का है, छब्बीसवाँ रघु, अड़तीसवाँ अज और उनतालीसवाँ दशरथ।

रामचरितमानस की कथा के अनुसार दशरथ अपने पूर्व जन्म में कश्यप[१] और स्वयंभू[२] मनु थे।

जन्म-स्थान—दशरथ का जन्म-स्थान अवध है।

विवाह—वाल्मीकीय रामायण तथा मानस के अनुसार दशरथ के तीन विवाह हुए। उनकी तीन पटरानियाँ थीं—(१) कौसल्या, (२) सुमित्रा और (३) कैकेयी।

---

[१] मानस–१/१८६/३-४

[२] मानस–१/१४१/१

सन्तति—वाल्मीकिरामायण के अनुसार दशरथ के चार पुत्र हुए, जिनमें से लक्ष्मण और शत्रुघ्न युग्म माने जाते हैं। उनकी एक पुत्री शान्ता भी हुई, किन्तु मानस के अनुसार दशरथ को एक भी पुत्र नहीं था, इसलिए पुत्र-प्राप्ति हेतु उन्होंने यज्ञ किया।

यज्ञ—धर्म, धुरन्धर, गुणनिधि, ज्ञानी एवं ईश्वरभक्त दशरथ को पुत्रहीन होने के कारण ग्लानि हुई। वे तुरन्त गुरु-गृह चले गये—

निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि बसष्ठि बहु बिधि समुझायउ।।[1]

गुरु वसिष्ठ ने आशीर्वाद दिया—

धरहु धीर होइहहिं सुतचारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी।।[2]

वसिष्ठ ने शृङ्गी ऋषि को बुलवाया और शृङ्गी ऋषि के द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ करवाया गया। भक्तिसहित मुनि ने आहुति दी, जिसके कारण अग्नि से 'चाह' पैदा हुआ। शृङ्गी ऋषि ने दशरथ से कहा—

यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जया जोड़ा जेहि भाग बनाई।।[3]

राजा अपने भवन में आये और 'हबि' का बँटवारा निम्नाङ्कित रूपों में किया—

अर्धभाग कोसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर लीन्हा।।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रहयो सो उभय भाग पुनि भयऊ।।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।।
एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी। भई हृदय हरषित सुखभारी।।[4]

एक दिन योग, लग्न, ग्रह, बार तथा तिथि सभी अनुकूल हो गये, बस—

नौमि तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता।।
मध्य दिवस अति सीतल धामा। पावन काल लोक बिश्रामा।।
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरसित सुर संतन मन चाऊ।।
बन कुसुमित गिरिगन मरिआरा। श्रवहिं सकल सरिता मृत धारा।।[5]

पुत्र-जन्म—इसी मञ्जुल, मधुर, मन्दिर गंधिल मङ्गलमय मुहूर्त्त में दशरथ को चार पुत्र हुए—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।

पुत्रों का नामकरण—वसिष्ठ मुनि ने गुणानुसार सभी भाइयों का नाम रखा—

जो आनन्द सिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी।।

---

१. रा०च०मा०–१/१८८/३
२. रा०च०मा०–१/१८८/४
३. रा०च०मा०–१/१८८/८
४. रा०च०मा०–१/१८९/२-५
५. रा०च०मा०–१/१९०/१-४

सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥
बिस्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

लच्छनधाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥[1]

चूड़ाकरण—राम सहित चारों भाइयों का गुरु वसिष्ठ ने चूड़ाकरण किया।

बाल-चरित—अपने पुत्र के 'बाल-चरित' को देख-देख कर राजा नित्य मग्न रहा करते थे।

विश्वामित्र का अयोध्या आगमन—अवधेश दशरथ के यहाँ राम-लक्ष्मण के याचक महामुनि विश्वामित्र आये। दशरथ ने परार्थ हेतु राम-लक्ष्मण को मुनि विश्वामित्र को सौंप दिया। राम जब जनकपुर जाकर धनुष-भङ्ग किये, तब उनका पाणि-ग्रहण सीता से हुआ। जनकद्वारा एतद्विषयक सूचना पाकर दशरथ बड़ी धूमधाम के साथ बारात लेकर जनकपुर पहुँचे। वहाँ से बारात अयोध्या वापस आयी।

रामराज्याभिषेक की तैयारी—वसिष्ठ के विमर्शानुसार रामराज्याभिषेक की दशरथ ने तैयारी शुरु की। इसी बीच कैकेयी ने भूप से दो वरदान (जो 'थाती' थी) माँग लिये—**पहला वरदान** भरत को राजगद्दी और **दूसरा वरदान** तपस्वीवेष में राम को चौदह वर्ष का विशेष उदासपूर्ण वनवास। रघुकुलरीतिवश दशरथ ने अपनी प्रिया को मनचाहा वरदान दे दिया, किन्तु—

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु व्याकुल ब्यालू॥[2]

के कारण सुमन्त्र से दशरथ राम-विरह के कारण पूछने लगे—

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहुँ राम कृपालू॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥[3]

तापस अन्ध-शाप यादकर कौसल्या से सब कथा कहने लगे—

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥[4]

सोचा—सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥[5]

पुत्रहेतु विलाप—दशरथ ने विलाप शुरू किया—

हा रघुनंदन प्रानपिरीते। तुम्ह बिनु जिवत बहुत दिन बीते॥

---

[1] रा०च०मा०–१/१९६/५-८
[2] मानस–२/१५३/१
[3] मानस–२/१५४/१-२
[4] मानस–२/१५४/४-५
[5] मानस–२/१५४/६

हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर ॥[१]

मृत्यु—इस प्रकार पुत्र रघुवीर-विरह में राजा दशरथ सुरधाम चले गये—

राम-राम कहि राम कहि रामराम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबीर बिरह राउ गयउ सुरधाम ॥[२]

इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि राजा दशरथ पत्नी भक्त तथा पुत्रमोहाबद्ध सामान्य चरित्र है।

दशरथ का सत्य-प्रेम—अयोध्यापति महाराज दशरथ के पिता का नाम अज तथा माता का नाम इन्दुमती था। इनका रथ दस दिशाओं में निर्बन्ध गति से गमन करता था, इसीलिए मेरी दृष्टि में इन्हें दशरथ कहा गया। ये इन्द्र की सहायता स्वर्ग में जाकर भी किया करते थे। इनकी प्रजा तन-मन-धनापन्न थी। इनकी तीन रानियाँ थीं—(१) कौसल्या, (२) कैकेयी और (३) सुमित्रा। वे न्यायी, धर्मात्मा, प्रजावत्सल तथा सत्यवादी थे। चौथेपन में उनके चार पुत्र हुए कौसल्या के राम, कैकेयी के भरत, और सुमित्रा के दो पुत्र हुए–लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न। चारों भाई दशरथ के नयन के तारा थे, विशेषतः राम उनकी नयनज्योति ही थे।

महर्षि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए सोलह वर्षीय राम तथा उनके अनुज लक्ष्मण को माँगने के लिए दशरथ के पास पहुँच गये, तब प्राणाधिक प्रियतम राम को विश्वामित्र के हाथ समर्पित कर दशरथ ने कमाल कर दिया। यज्ञरक्षोपरान्त चारों भाईयों का जनकपुर में विवाह सम्पन्न हुआ। राजा दशरथ ने राम को सर्वश्रेष्ठ मानकर गुरुजन तथा प्रजा की सम्मति से उनके राज्याभिषेक का श्री-गणेश कर दिया। कुटिल दासी मन्थरा के बहकावे में आकर कैकेयी ने राजा से उनके द्वारा पूर्व प्रदत्त दो वरदानों को माँग लिया—**प्रथम वरदान** था—चौदह वर्ष राम का वनवास और **द्वितीय वर** था—भरत का राज्याभिषेक।

'राम-वनवास' सुनते ही राजा के प्राण सूख गये। वे राम-वियोग की कल्पनामात्र से ही अधमरे से हो गये। भूलुंठित दशरथ ने अप्रतिहत रूप से रट लगाना शुरू किया—'राम! हा राम'!!

राम, लक्ष्मण तथा सीता वन-गमन हेतु दशरथ ने सारथि सुमन्त्र को यह समझाकर रथ पर उन्हें कानन ले जाने को प्रेषित किया था कि दो-चार दिन वन दिखाकर उन लोगों को लौटा लाना; परन्तु सुमन्त्र के प्रत्यागमन के पश्चात् पुत्र-वियोगी दशरथ के जीवन की सन्ध्या शनैः-शनैः यामिनी में परिणत होने लगी और अन्ततोगत्वा—

---

१. मानस–२/१५४/७-३ २. मानस–२/१५५

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरह राउ गएउ सुरधाम ।।[१]

चरित्रधनी दशरथ की सत्यवादिता के विषय में मानस आकल्प शृङ्गी-निनाद करता रहेगा—

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण जाहिं पर बचन न जाई ।।[२]

× × × ×

जिअन मरन फलु दशरथ पावा । अउ अनेक अमल जसु छावा ।।
जिअत राम बिधु बदन निहारा । राम बिरह करि मरनु सँवारा ।।[३]

अन्त में महाकवि–कुल–कुमुद–कलाधर तुलसीदास जी के स्वर में स्वर मिलाकर इतना ही कहा जा सकता है—

बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद ।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ।।[४]

राम

जन्म—राजा का जन्म पुनीत मधुमास की नवमी तिथि और शुक्लपक्ष के मध्य दिवस (नातिशीतोष्ण) में अवधपुरी में हुआ ।

पिता—राजा दरशथ उनके पिता का नाम है और इनकी माता का नाम कौसल्या है ।

बाल-चरित—बालक राम कभी पलङ्ग पर, तो कभी नीचे उछल पड़ते हैं। माता कौसल्या यह देखकर बार-बार राम को दुलराती है—

लै उछंग कबहँक हलरावे । कबहुँ पालनें घालि झुलावै ।।[५]

चूड़ाकरण चारों भाईयों का मुनि द्वारा किया गया । नानाविध बालचरित कर राम ने दासों को खूब आनन्द दिया । चारों भाई राम का अपार चरित परम मनोहर है । राजा भोजन के समय बुलाते हैं, तब राम नहीं जाते हैं—

भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवत तजि बाल समाजा ।।[६]

कौसल्या के बुलाने पर भी राम भाग जाते हैं, किन्तु कौसल्या दौड़कर उन्हें पकड़ लेती हैं— कौसल्या जब बोलन जाई । ठुमुक-ठुमुक प्रभु चलहिं पराई ।।

---

१. मानस–२/१५५
२. मानस–२/२७/४
३. मानस–२/१५५/१-२
४. मानस–१/१६
५. मानस–१/१९९/८
६. मानस–१/२०२/६

निगम नेति सिव अन्त न पावा। ताहि धरे जननी हठि धावा।।[१]

धूल-धूसरित राम को भूपति विहंसकर गोद में बैठा लेते हैं—

धूसर धूरि, भरे तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए।।[२]

चञ्चल चित्त राम अवसर पाते ही दधि-ओदनमण्डित बदन सहसा चम्पत हो जाते हैं— **भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।**
भागि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाई।।[३]

जनेऊ—जब सभी भाई कुमार हो गये तब माता-पिता-गुरु ने उनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया है—**भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।।**[४]

गुरु-गृह-गमन—रामसहित सभी भाई गुरु वसिष्ठ के घर पढ़ने के लिए गये हैं और 'अल्प काल में ही सभी विधाओं में वे पारङ्गत हो गये—

गुरु गृह गए पठन रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई।।[५]

कोसलपुर प्रिय—राम को कोसलपुर के सभी नर-नारी तथा वृद्ध और बाल प्राणाधिक मानते हैं।

आखेट—राम अपने बन्धु-सखा-संग वन में शिकार करने जाते हैं और पावन मृगों को अपने बाणों से मारकर ले आते हैं तथा नित्य प्रति नृप दशरथ को दिखलाते हैं—**पावन मृग मारहिं जियँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी।।**[६]

माता-पिता के आज्ञाकारी—राम अपने अनुज सखा-संग भोजन करते हैं और माता-पिता की आज्ञा का अनुसरण करते हैं—

अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता अज्ञया अनुसरहीं।।[७]

अवधपुर के लोगों को इच्छानुसार सुख देते हैं—

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।।[८]

वेद-पुराण श्रवण एवं कथन—राम वेद-पुराण का श्रवण करते हैं और अपने कहकर अनुजों को उसका अर्थ समझाते हैं—

वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।।[९]

माता-पिता-गुरु के आज्ञाकारी—प्रात:काल उठकर रघुनाथ माता-पिता-गुरु

---

[१] मानस–१/२०२/८
[२] मानस–१/२०२/९
[३] मानस–१/२०३
[४] मानस–१/२०३/३
[५] मानस–१/२०३/४
[६] मानस–१/२०४/२
[७] मानस–१/२०४/४
[८] मानस–१/२०४/५
[९] मानस–१/२०४/६

के पैरों पर अपना सिर निवेदित कर देते हैं और उन लोगों की आज्ञा के अनुकूल ही 'पुरकार्य' करते हैं—

प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुरकाजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।[1]

विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा एवं निशिचरी तथा निशिचर वध—पिता के आज्ञानुसार राम-लक्ष्मण महाज्ञानी-महामुनि विश्वामित्र के साथ बक्सर जाते हैं और विश्वामित्र ज्यों हि ताड़का की ओर इशारा करते हैं कि एक ही बाण में ताड़का का राम प्राण हर लेते हैं—

ताड़का-वध—

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।।
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।[2]

(मानवास्त्र से) निशिचर मारीच को बिना फर के ही बाण मार कर राम शतयोजन सागर पार फेंक देते हैं और उसके भाई सुबाहु का ससैन्य संहार कर देते हैं—

सुबाहु-वध—

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु संघारा।।[3]

धनुष-यज्ञ-दर्शनार्थ जनकपुर-आगमन—मुनि के आदेशानुसार राम-लक्ष्मण धनुष-यज्ञ देखने हेतु जनकपुर के लिए प्रस्थान करते हैं। जनकपुर की राह में ही निर्जन स्थान में एक 'शिला' मिली, उसको देखकर राम ने मुनि से उसके बारे में पूछा। मुनि ने सारा वृत्तान्त कहकर सुना दिया और कहा—

अहल्योद्धार—

गौतम नारि श्रापबस उपलदेह धरि धीर।
चरनकमलरज चाहति कृपा करहु रघुवीर।।[4]

राम ज्यों ही अपने चरण से अहल्या का स्पर्श करते हैं कि वह (गौतमनारी) मानवीरूपधारण कर स्तुति करने लगती है। अन्त में राम अहल्या को उसकी रुचि के अनुसार ही वरदान देकर उसे पतिलोक भेज देते हैं। विदेहनगर में राम-लक्ष्मण गुरु विश्वामित्र के साथ पहुँच जाते हैं। यह समाचार मिलते ही मिथिला-पति जनक वहाँ पहुँचे और संसार के सबसे सुन्दर सदन, जो सुन्दर तथा सब काल में सुखद (वातानुकूलित

---

[1] मानस–१/२०४/८
[2] मानस–१/२०८/(ख)/५-६
[3] मानस–१/२०९/५
[4] मानस–१/२१०

सदन) में उन्हें वास देते हैं। ऋषि संग रघुवंशमणि एवं उनके अनुज भोजन कर रात्रि-विश्राम करते हैं।

पुष्पवाटिका-निरीक्षण—राम महामुनि विश्वामित्र से कहते हैं—

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं।।
जो राउर आयसु मैं पावों। नगर देखाइ तुरत ले आवों।।[1]

सुनते ही विश्वामित्र जी नगर-निरीक्षण का आदेश राम को दे देते हैं। राम लक्ष्मणसहित नगर देखने जाते हैं।

राम-सीता का पूर्वानुराग—राम पूर्वानुरागवश जनकपुर की वाटिका में जाते हैं। सीता-राम का साक्षात्कार एक स्थान पर हो जाता है। सीता को देखते ही राम—

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा।।[2]

उसके बाद— **हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई।।**[3]

धनुष-भङ्ग—मिथिला के सीता-स्वयंवर में शिव-धनुष को कोई नहीं तोड़ सका। रावण और वाणासुर जैसे प्रतापी भी धनुष को प्रणाम कर अपने आसन पर बैठ जाते हैं, तब अन्त में जनक की निराशा को देखते हुए विश्वामित्र के आदेश से राम शिवधनुष को तोड़ते हैं। धनुष-भञ्जन सुनकर परशुराम आते हैं, किन्तु राम के प्रबल पराक्रम के समक्ष वे नत होकर राम का विनय करते हैं और तपस्या हेतु वनगमन करते हैं।

सीता-राम-विवाह—धनुष के टूटते ही राम का विवाह सीता से होता है और तदुपरान्त लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न–सभी भाईयों का विवाह जनक की बेटियों–(उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, माण्डवी) से होता है। विवाहोपरान्त सभी अयोध्या वापस आते हैं।

राम-राज्याभिषेकमहोत्सव का श्री गणेश होता है—इसी बीच कैकेयी दशरथ से दो वरदान माँगती है—(१) भरत को राजगद्दी तथा (२) राम को चौदह वर्षों तक तपस्वी के रूप में विशेष उदास बनकर वन-वास।

वनवास—माता-पिता की आज्ञा मानकर राम वन जाने के लिए तैयार होते हैं, किन्तु उनके साथ लक्ष्मण और सीता भी वन जाने को तैयार हो जाते हैं। बहुत समझाने पर भी ये दोनों नहीं मानते हैं और राम के साथ वन-गमन करते हैं।

केवट से प्रेम—गङ्गा-पार उतारने वाले केवट से राम को प्रेम हो जाता है, तब उसे अपनी विमल भक्ति का वरदान देकर विदा करते हैं।

---

१. मानस–१/२१७/५-६
२. मानस–१/२२९/५
३. मानस–१/२३६/१

रामभरद्वाज-भेंट—राम प्रयाग पहुँचते ही सर्वप्रथम भरद्वाज-आश्रम में पहुँचते हैं और उनका आतिथ्य स्वीकार कर वाल्मीकि का दर्शन-लाभ प्राप्त करते हैं। पुनः चित्रकूट में निवास करते हैं। भरत दशरथ-मरणोपरान्त चित्रकूट आते हैं और पिता-मरण का समाचार देकर राम को राज्यग्रहण का अनुरोध करते हैं, किन्तु राम द्वारा प्रत्यागमन को अस्वीकृत किया जाता है और राम पितृ-शोक में विलाप करते हैं।

राम-अत्रि आश्रम में—चित्रकूट से चलकर राम अत्रि आश्रम आते हैं तथा उनका सत्कार अङ्गीकार कर दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं और विराध का वध करते हैं। तब शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण की कुटी और अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पधारते हैं। तदुपरान्त राम पञ्चवटी में कुछ काल निवास करते हैं। लक्ष्मण को आदेश देकार शूर्पणखा को विरुपित करवाते हैं। यह देखकर खर-दूषण १४००० राक्षसों की सेना लेकर राम से लड़ाई करने आता है। राम खर-दूषण और त्रिशिरा का वध कर दण्डकारण्य को ऋषियों-मुनियों के लिए 'अभयारण्य' बना देते हैं। इसी बीच मारीच कनक-मृग बनकर राम को आश्रम से दूर ले जाता है। सूना आश्रम देखकर रावण यती के वेष में आता है और सीता-हरण कर लङ्का ले जाता है। कनक-मृग मार कर राम अपने आश्रम में पहुँचते हैं।

राम प्रिया-विलाप शुरू कर देते हैं। सीतान्वेषण-क्रम में जटायु से मिलकर जटायु की दाहक्रिया अपने हाथ से करते हैं। उसके बाद कबन्ध का बाहुविच्छेद कर राम पम्पासर स्थित शबरी-आश्रम में पदार्पण करते हैं। शबरी को राम निजधाम भेज देते हैं।

किष्किन्धा-पदार्पण—राम-लक्ष्मण सीता की खोज करते हुए किष्किन्धा पहुँचते हैं। वहाँ राम को हनुमान से भेंट होती है। हनुमानद्वारा राम को सुग्रीव से मैत्री होती है। राम बालि का वध कर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाते हैं और अंगद को युवराज के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

प्रस्रवण गिरि पर वास—राम प्रस्रवण गिरि की गुफा में वर्षा-ऋतु में निवास करते हैं। वर्षा व्यतीत हो जाती है। शरदऋतु का आगमन होता है। सुग्रीव की कृतघ्नता पर क्रुद्ध होकर राम लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजते हैं। राम के पास सुग्रीव आते हैं और उनसे क्षमा-याचना करते हैं।

राम-हनुमान-संवाद—लङ्का-दहन कर हनुमान राम के पास आते हैं और सीता की सुधि राम को देते हैं। राम लङ्का के लिए ऋक्ष और वानर सहित प्रस्थान करते हैं। इसी समय विभीषण राम की शरण ग्रहण करते हैं। राम विभीषण को कण्ठ लगाकर अपना सखा बना लेते हैं। राम तीन दिनों तक सागर से पथ माँगते रह गये, किन्तु सागर ने रास्ता नहीं दिया, तब राम क्रोधानलवश ब्रह्मास्त्र लेकर समुद्र को सोख लेने

की धमकी देते हैं, तब सागर नरतनधारण कर राम के सम्मुख आते हैं और विशाल विनय कर उन्हें परामर्श देते हैं कि नल-नील नामक दोनों भाईयों के स्पर्श से पत्थर सागर में डूबेगा नहीं, अपितु तैरता रहेगा। अत:, नलनीलादि बानर-भालू के सहयोग से सेतु बँधाइए। राम को यह मत भा जाता है। नल-नील तथा ऋक्ष-वानरादि के सहयोग से राम सागर पर सेतु बँधवाते हैं और वानरी सेनासहित लङ्का में प्रवेश करते हैं। वानर-सेना और राक्षस-सेना में घटाटोप युद्ध होता है। भीषण संहार होता है। उसके बाद मेघनाद के शक्तिबाण से लक्ष्मण मूर्च्छित होकर रणभूमि पर गिर पड़ते हैं। अनुज की यह दशा देखते ही राम विलाप करने लगते है, किन्तु जामवन्त के आदेश से रामदूत हनुमान लङ्का जाकर सुषेण-वैद्य को ले आते हैं। सुषेण के बतलाने पर राम अपने महान् दूत हनुमान को धौलागिरि पर्वत मँगवाकर सञ्जीवनी बूटी का रस लक्ष्मण को पिलाकर स्वस्थ बना देते हैं।

नागपाश—एक बार राम को मेघनाद के नागपाश में बँध जाना पड़ता है, तब गरुड़ आते हैं और नागपाश काटते हैं, तदुपरान्त राम मेघनाद के नागपाश से मुक्त होते हैं। राम कुम्भकर्ण और रावण को लङ्का के संग्राम में वध कर देते हैं। सीता को अशोकवाटिका से बुलाकर उसकी अग्निपरीक्षा लेते हैं। उसके बाद अग्निपरीक्षोत्तीर्ण सीतासहित अयोध्या प्रस्थान करते हैं। उनके साथ निम्नलिखित अयोध्या जाते हैं—

(१) लङ्कापति विभीषण (२) कपीश (३) नल
(४) नील (५) जामवन्त (६) अङ्गद और हनुमानादि।

छ: महीना व्यतीत हो जाने के बाद राम अपने सभी सखा को बुलाते हैं और सबसे कहते हैं—

तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करों बड़ाई।।
ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मन हित लागि भवन सुख त्यागे।।
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही।।
सब मन प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना।।
सब के प्रिय सेवक यह नीति। मोरे अधिक दास पर प्रीति।।[१]

तथा— अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम।।[२]

यह कहते हुए भूषण-वसनादि मँगाते हैं और भरत के हाथ से बने हुए बसन को राम सर्वप्रथम सुग्रीव को पहनाते हैं। वे लक्ष्मण को सङ्केत देकर लङ्कापति को भूषण-

---

[१] मानस–७/१५/४-८ [२] मानस–७/१६

वसन पहनाते हैं। जामवन्त नलनीलादि को भी भूषण-वसनादि पहनाकर विदा कर देते हैं। उसके बाद अतिशय प्रेमी अङ्गद को राम अपने उर लगाकर राजीव सजल नयन हो जाते हैं—

निज उर माल बसन मनि बालि तनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान् तब बहु प्रकार समुझाइ।।[१]

भरत-अनुज सौमित्रि समेत राम सभी सखा को दूर तक 'पठवन' चलते हैं और अति आदर देकर अपने सखाओं को पहुँचाते हैं—

अति आदर सब कपि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत मुनि आए।।[२]

राम भरत से मिलते हैं। उसके बाद राम का राज्याभिषेक महामहोत्सव सम्पन्न होता है।

राम-राज्य—राम अब राजा बन जाते हैं। अवधपुरी सुखानन्द से पूर्ण हो जाती है— **राम राज बैठे त्रैनोका। हर्षित भए गए सब सोका।।**[३]

राजा राम प्रजा को उपदेश देते हैं और उनकी प्रजा उनके उपदेश को ग्रहण कर निहाल हो उठती है। राम एक महान् भारतीय आर्य हैं, जिन्होंने भारतीय आदिवासी ऋक्ष और वानरादि की सेना के बल पर सेतुबन्ध जैसा कठिन कार्य किया और सुवर्णमयी लङ्का के परम प्रिय सेवक हनुमान के द्वारा दग्ध करवा दिया। तदुपरान्त महान् पराक्रमी विदेशी अनार्य लङ्केश रावण को हरा दिया और अनार्य विदेशी आदि मानव-सभ्यता-संस्कृति पर भारतीय आर्यसंस्कृति की छापछोड़कर आर्य संस्कृति के परम सखा विभीषण को लङ्का का राजा बना दिया। इस प्रकार 'राम-जय, आर्य-जय' है तथा रावण-वध विदेशी अनार्यसंस्कृति की पराजय का प्रतीक माना जा सकता है।

(आ) सखाप्रेमी राम—मानवेतर समझे जाने वाले आदिवासी वानर-बन्धुओं को रामचन्द्र ने अपना सखा, सेवक तथा मन्त्री बनाकर उनके आचार-विचार तथा उनकी सभ्यता और संस्कृति को परिनिष्ठित किया। राम-सुग्रीव-मित्रता रामकथा की विशिष्ट उपलब्धि है। हनुमान-सा सेवक विश्व में पा सकना असम्भव है। सीताहरण के क्रम में हनुमान ने अग्नि प्रज्ज्वलित कर राम-सुग्रीव की मित्रता को शाश्वत बना दिया। इस मैत्री के कारण ही राम ने सखा सुग्रीव की सहायता के लिए बालि-वध की प्रतिज्ञा की—

प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव।
उपकारं फलं मित्रं विदितं मे महाकपे।।

---

[१] मानस–७/१८ (ख)/१
[२] मानस–७/१८ (ख)/६
[३] मानस–७/१९ (ग)/७

वालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ।
अमोघाः सूर्यसंकाशा ममेमे निशिताः शराः ।।[१]

और कहा—**सखा सोच त्यागहु बल मोरे । सब बिधि घटब काज मै तोरे ।।**[२]
तथा— **जो कछु कहेहु सत्य सब सोई । सखा वचन मम मृषा न होई ।।**[३]
फिर क्या कहना?—**तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रान प्रिया बिसराई ।**[४]
राम ने बालि-वध कर उसको परम पद प्रदान किया—

वाली रघूत्तमशरार्भिहतो विमृष्टो रामेण शीतलकरेण सुखाकरेण ।
सद्यो विमुच्य कपिदेहमनन्यलभ्यं प्राप्तं परं परमहंस गणेर्दुरापम् ।।[५]

सत्य है—**कबहुँ न कोउ रघुबीर सों नेह निबाह निहार ।**[६]

रामचन्द्र ने कर्त्तव्यशिथिल सुग्रीव को बुलवाकर उनको कर्त्तव्य का बोध कराया और लापरवाह सुग्रीव को क्षमा कर दिया । उसके बाद रामचन्द्र को प्रणाम कर सभी वानर सीतान्वेषणार्थ दक्षिण दिशि की ओर प्रस्थान किये। मन्त्री वानर तथा भालुओं से मन्त्रणा कर रामचन्द्र लङ्का पर धावा बोल दिये । उनके वानर अभियन्ता नल-नील ने सागर पर सेतु निर्माण कर दिया और वे सैन्यदल के साथ सेतुपार कर लङ्का पहुँच गये तथा वानर-भालू-सहित लङ्का को घेर लिये । वानर-भालुओं तथा राक्षसों के बीच घमासान युद्ध हुआ । अन्त में दलबलसहित रावण मारा गया । उसके वधोपरान्त राम ने वानर-भालुओं से कहा—

तुम्हरे बल मैं रावनु मार्‌यो । तिलक बिभीषण कहँ पुनि सार्‌यो ।।[७]

लङ्का से अयोध्या वापसी के समय रामचन्द्र गुरु वसिष्ठ से वानरों का परिचय देते हुए कहते हैं—

ए सब सुनहु मुनि मोरे । भए समर सागर कहँ बेरे ।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे । भरतहु ते मोहि अधिक पियारे ।।[८]

इनकी माता कौसल्या ने रामप्रेमी वानरों को रामसदृश प्रिय समझती हैं—

कौसल्या के वरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ।।[९]

---

[१] वाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धा काण्ड)–५/२४-२५

[२] तुलसी (मानस)–४/६/१०

[३] तुलसी (मानस)–४/६/२३

[४] तुलसी (मानस)–१६४/३

[५] आ०रा० (किष्किन्धा काण्ड)–२/७१

[६] विनयपत्रिका–१९०/४

[७] मानस–६/११७ (ख)/४

[८] मानस–७/७/८

[९] मानस–७/८ (क)

अयोध्या में राम ने पहले वानरों को स्नान करवाया, तब स्वतः स्नान किया—

राम कहा सेवकन्ह बुलाई । प्रथम सखन्ह अन्ह वावहु जाई ।।[1]

वानर-भालुओं की विदाई के समय का समाचार सुनिए—

तब प्रभु भूषन बसन मगाए । नाना रंग अनूप सुहाए ।।
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए । बसन भरत निज हाथ बनाए ।।
प्रभु प्रेरित लछुमन पहिराए । लंकापति रघुपति मन भाए ।।
अंगद बैठ रहा नहिं डोला । प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ।।[2]

तथा— **जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ ।**
हियँ धरि राम रूप सब चले नाह पद माथ ।।[3]

प्रेमाकुल अंगद विदाई के समय फूट-फूटकर रोने लगे, तब अकारण करुणा-वरुणालय प्रेमी रामचन्द्र की आँखों में भी अश्रुसागर उमड़ आया । बस, उन्होंने अंगद को छाती से लगा लिया और अपने हाथों से अपनी ग्रीवा का हार तथा अपना वसन उन्हें पहना दिया—

अंगद बचन विनीत सुनि रघुपति करुना सीव ।
प्रभु उठाइ उर लायउ सजल नयन राजीव ।।
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाई ।।[4]

इसके बाद रामचन्द्र ने सखाप्रेमवश भरतादि भाईयों के साथ वानरों को कुछ दूर तक पहुँचाया—**भतर अनुज सौमित्रि समेता । पठवन चले भगत कृत चेता ।।**[5]

और— **अति आदर सब कपि पहुँचाए । भाइन्ह सहित भतर पुनि आए ।।**[6]

केवट तथा वानर मित्रों की प्रशंसा करने में राम को बहुत सुख प्राप्त होता है—

केवट मीत कहें सुख मानत बानर बन्धु बड़ाई ।[7]

रावणवधोपरान्त राम ने उन्हें भी अपना भाई माना हैं—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
कियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ।।[8]

इससे सिद्ध होता है कि राम सचमुच मर्यादा पुरुषोत्तम हैं ।

---

[1] मानस–७/१० (ख)
[2] मानस (तुलसीदास)–७/१५/५-८
[3] मानस (तुलसीदास)–७/१७ (क)
[4] मानस (तुलसीदास)–७/१८ (क)-(ख)
[5] मानस (तुलसीदास)–७/१८ (ख)
[6] मानस (तुलसीदास)–७/१८ (ख)/६
[7] मानस (विनयपत्रिका)
[8] वाल्मीकीय रामायण–६/११/१००

रामराज्यादर्श—अनन्त गुणी–दयावतार मर्यादापुरुषोत्तम राम के गुण, रूप, प्रभाव, सदाचरण तथा नीलादि की महिमा वर्णनातीत है। उसके गुण तथा परमोत्तम चरित्र के 'चारु-चन्दन-चमन' की चपल चटोर चटक को चूम-चूमकर प्रजा चमक उठी। रामराज्यादर्श अद्वितीय था। सभी निज वर्णाश्रमानुकूल वेदमार्ग का अनुसरण कर सुखोपभोग करते थे—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बथ पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।[१]

त्रास, शोक, रोग और त्रिताप (दैहिक, दैविक तथा भौतिक) अतप्त राम की प्रजा नित्यानन्द एवं पराशक्ति की सुखद छाया में आराम-विराम करती थी—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।।[२]

उनके राज्य में रागाराग, कामक्रोध, लोभ-मोह, मिथ्या-कपट तथा प्रमादादि दुर्गुण का सर्वथा अभाव था। उनकी प्रजा परस्पर प्रेम करती थी तथा स्वधर्मपालन में दृढ़ थी—**सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।**[३]

धर्म के चारों चरण–सत्य, शौच, दया तथा दान से राज्य परिपूर्ण था। स्वप्न में भी पापाचार नहीं होता था—

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहूँ अघनाहीं।।[४]

राम भक्त नर-नारी परम गति के अधिकारी थे। प्रजा आकाल मृत्यु का शिकार कभी नहीं होती थी तथा किसी को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती थी। सभी लोग सुन्दर तथा स्वस्थ थे—

राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिठज सरीरा।।[५]

वहाँ दरिद्र, दुःखी, दीन तथा दलित कोई नहीं था—

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।[६]

सभी निरभिमानी, धर्मनिष्ठ, अहिंसक, पुण्यात्मा, चतुर, गुणज्ञ, गुणी का सम्मान करने वाले पण्डित, ज्ञानी, निष्कपट तथा ज्ञानी थे—

सब निर्दंभ धर्मस पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।[७]

---

[१] मानस–७/२०
[२] मानस–७/२०/१
[३] मानस–७/२०/२
[४] मानस–७/२०/३
[५] मानस–७/२०/४-५
[६] मानस–७/२०/६
[७] मानस–७/२०/७-८

× × ×

शुची नामेकबुद्धिनां सर्वेषांसम्प्रजानताम् ।
नासीद् पुरेवा राष्ट्रे वा मृषवादी नरः क्वचित् ।।
क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत् परदाररतिर्नरः ।
प्रशान्तं सर्वमेवासीद राष्ट्रं पुरवरं च तत् ।।[1]

सभी उदार, परोपकारी, तथा मन, वाणी और कर्म से एक पत्नीव्रतधारी थे । सभी स्त्रियाँ पतिव्रता थीं—

सब उदार सब परउपकारी । बिप्र चरन सेवक नर-नारी ।।
एक नारि ब्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ।।[2]
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः। मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्ष च इवामलाः।।[3]

रामराज्य में वनस्पतियाँ तथा गज-पञ्चानन और खग-मृगादि दिव्य गुणोपेत थे, तभी तो सभी ऋतुओं में कानन के तरु पल्लवित-पुष्पित तथा फलित रहते थे और प्राणियों में वैरभाव रञ्चमात्र भी नहीं था। सभी सुन्दर सुखद और अभय थे।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पञ्चानन ।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढाई ।।
कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा । अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा ।।[4]

वसुधा सतत हरी-भरी रहती थी । सूर्यचन्द्रादि देवता बिना माँगे आरामदायिनी वस्तुएँ प्रदान करते थे । शीतल सुरभि सिक्त समीर शनैः-शनै बहता था । पुष्पों पर भ्रमर गुञ्जन करते थे । लता-विटप मुँहमाँगा मधु देते थे । धेनु मनचाहा दूध देती थीं । धरणि सदा शशिसम्पन्न रहती थी । शैलों में माणिक्य का बाहुल्य था । सम्पूर्ण अवध में सुख-सम्पत्ति का साम्राज्य था । सरिताजल, सलिल अमल सुस्वादु तथा सुखकारी था । सागर अपनी मर्यादा का पालन कर अपने रत्नों को तट पर डाल देता था । पुष्करिणियाँ पद्मपुष्पमय थीं । रसा को चन्द्र अपने किरण रस के आप्यायन से रसिका बना दिया था तथा भानु आवश्यकता भर ही तपता था। राम-राज्य में कृषक अपनी इच्छा के अनुसार वारिद से वारि माँग लेता था—

सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ।।
लता पिटप मागें मधु चवहीं । मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भइ कृत जुग के करनी ।।
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । जगदात्मा भूप जग जानी ।।

---

[1] वाल्मीकीय रामायण–१/१४/१५   [2] मानस–७/२१/७-८
[3] वाल्मीकीय रामायण–१/६/९   [4] वाल्मीकीय रामायण–७/२२/१-३

सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।
सागर-निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हिं नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।।[1]
तथा— **बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेत नेहिकाज।**
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज।।[2]

महापुरुषों एवं शास्त्रों के अनुसार भगवान श्रीरामचन्द्र जी के गुण और चरित्र परम आदर्श थे और उनका इतना प्रभाव था कि जिसकी तुलना किसी अन्य से नहीं हो सकती। उनकी अपनी तो बात ही क्या है? उनके गुणों और चरित्रों का प्रभाव उनके शासन-काल में सारी प्रजा पर ऐसा विलक्षण पड़ा कि रामायण में त्रेतायुग सत्य-युग से भी बढ़कर हो गया।[3] रामराज्य की सङ्कल्पना तथा उसकी सुव्यवस्था महानादर्श का बोधक है। जागतिक प्रवृत्ति, ताड़ना तथा बाह्याभ्यन्तर पीड़ा प्रशान्ति हेतु रामराज्य की आवश्यकता आज सम्पूर्ण विश्व को है। इसीलिए त्रेता के राम-राज्य के अलौकिक शक्तिपुञ्ज प्रभाव को आज निखिल ब्रह्माण्ड में प्रस्तारित करना अनिवार्य-सा प्रतीत होता है।

लक्ष्मण—लक्ष्मण राम के अनुज हैं। वे जीवन-पर्यन्त राम प्रहरी बने रहे। लक्ष्मण ऐसा अङ्गरक्षक राम को दूसरा नहीं मिला।

जन्म—जन्म अयोध्यापुरी में हुआ। **माता-पिता**—उनके पिता का नाम दशरथ और माता का नाम सुमित्रा था। **बाल-चरित**—लक्ष्मण का उनका राम के साथ ही चूड़ाकरण, जनेऊ तथा विद्याध्ययन भी हुआ।

विश्वामित्र की यज्ञरक्षा—विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा के लिए लक्ष्मण राम सहित बक्सर आये और ताड़का, सुबाहु आदि निशिचर वध में राम की इन्होंने सहायता की।

धनुष-यज्ञ—धनुष-यज्ञ की चर्चा सुनकर लक्ष्मण अपने बड़े भाई राम और गुरुदेव विश्वामित्र के साथ जनकपुर जाते हैं।

पुष्पवाटिका-निरीक्षण—मुनिवर का आदेश पाकर लक्ष्मण राम के साथ जनक की पुष्पवाटिका का निरीक्षण करते हैं। पुनः राम के साथ निवासभवन में वापस आ जाते हैं।

परशुराम-संवाद—शङ्करधनुष का भञ्जन सुनकर परशुराम राम को दुर्वाद कहते हैं। यह देखकर भ्रातृ-भक्त लक्ष्मण परशुराम को खूब फटकारते हैं। अन्त में परशुराम

---

[1] मानस–७/२२/४-१० [2] मानस–७/२३
[3] कल्याण, वर्ष-५७ अङ्क-२, शीर्षक–मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के गुण और चरित्र : ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्री जयदयाल जी गोयन्दका के अमृत वचन, पृ०-४४०

रामलक्ष्मण के समक्ष विनीत होकर तपस्या करने वन चले जाते हैं।

विवाह—लक्ष्मण का विवाह उर्मिला से होता है।

वापस—लक्ष्मण विवाहोपरान्त जनकपुर से अयोध्या आते हैं।

वन-गमन—कुछ ही दिनों के भीतर राम के साथ वे वन-गमन करते हैं। राम सीता के साथ केवट द्वारा गङ्गा पार कर भरद्वाज और अत्रि आदि का दर्शन करते हैं। उसके बाद दण्डकारण्य में राम-सीता के साथ प्रवेश करते हैं। वन में राम-सहित शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण और वाल्मीकि आदि ऋषियों का आतिथ्य स्वीकार करते हैं।

शूर्पणखा विरूपीकरण—रावण की बहन शूर्पणखा एक बार पञ्चवटी आती है और राम लक्ष्मण के रूप को देखकर रविमणि की भाँति द्रवित हो उठती है और वह राम के पास अपने विवाह हेतु आती है। राम उसे लक्ष्मण के पास भेज देते हैं, किन्तु लक्ष्मण आपत्ति करते हैं और उसे राम के पास भेजते हैं। राम की अस्वीकृति सुनकर वह राक्षसी-आकृति बनाकर सीता पर आक्रमण करती है। इसी क्षण राम का आदेश पाकर लक्ष्मण तलवार से उसके नाक-कान काट लेते हैं। यह जानकर खर-दूषण आते हैं। लक्ष्मण राम के साथ मिलकर दोनों का वध करते हैं।

कनकमृग के शिकार में निकले हुए राम की पत्नी सीता की वे रखवाली करते हैं, किन्तु सीता की 'मर्म बोली' सुनकर वे राम का पता लगाने चले जाते हैं। इसी बीच रावण सीता का हरण करता है।

सीताखोज में तत्पर—लक्ष्मण राम के साथ सीता को खोजते हुए किष्किन्धा आते हैं। वहाँ लक्ष्मण और राम को सुग्रीव से मित्रता होती है। सुग्रीव वचन देते हैं कि मैं वानरी सेना के बल पर सीता की खोज करुँगा, किन्तु राम द्वारा बालि-वध के बाद राजासुग्रीव का राज-मद हो जाता है, जिसके कारण वह राम को दिये गये वचन का पालन नहीं कर पाता है। राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सुग्रीव के महल की ओर अग्रसर होते हैं। क्रुद्ध लक्ष्मण के भय से सुग्रीव उनको शान्त करने के लिए तारा को भेजते हैं। तारा-सहित लक्ष्मण सुग्रीव के महल में आते हैं। सुग्रीव उन्हें गले लगाकर उचित सम्मान करते हैं, किन्तु लक्ष्मण उनको पकड़कर राम के पास उपस्थित कर देते हैं।

लङ्का-प्रस्थान—लङ्काप्रस्थान के समय लक्ष्मण राम से दुःखी होकर कहते हैं—

नाथ देव कर कवन भरोसा। सोषि अ सिंधु करिअ मन रोसा।।
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।।[1]

रिपुदूत पर दया—रावणदूत को पकड़ कर सब अच्छी तरह मरम्मत करने

---

१. मानस–५/५०/८/३-४

लगते हैं, तब वह दीन वचन से 'कोशलाधीश' को पुकारने लगता है। दयालु लक्ष्मण हँसकर उसे वानरों से मुक्त कर देते हैं और कहते हैं—

रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती।।[१]

तथा— **कहेउ मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार।**
सीता देइ मिलहु नत आवा कालु तुम्हारा।।[२]

लङ्कागढ़ में प्रवेश कर लक्ष्मण मेघनाद के साथ कठिन लड़ाई करते हैं। पहली बार वे समर-भूमि में ही मेघनाद के द्वारा मूर्च्छित कर दिये जाते हैं, किन्तु दूसरी लड़ाई में लक्ष्मण मेघनाद का वध कर देते हैं। सब रामद्वारा रावणवधोपरान्त लक्ष्मण राम के साथ अयोध्या वापस आते हैं और राम के राज्यसञ्चालन में यथासाध्य सहयोग प्रदान करते हैं।

अतः, कहा जा सकता है कि लक्ष्मण राम के परम भक्त भाई हैं। उन्होंने राम-भक्ति के लिए चौदह वर्षों तक अपनी पत्नी उर्मिला को त्याग दिया। राम सीता के सजग प्रहरी बनकर बन में निशिवासर नग्नपाद भ्रमणशील रहने वाले शिरोमणि तपस्वी लक्ष्मण धन्य हैं, जिन्होंने अपनी भाभी के चरण वंदन क्रम में मात्र उनके नूपुर को ही देखा था— **नाहं जानामि कैयूरे नाहं जानामि कुण्डले।**
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभि वन्दनात्।।[३]

अतः लक्ष्मण जैसा भाई, सेवक, प्रहरी, वीर, स्नेही, पराक्रमी, यतिचक्र चूड़ामणि तथा धर्मसम्राट् मिलना कठिन है।

लक्ष्मण : चरित्र और व्यक्तित्व—लक्षमण का यश रघुपति की कीर्त्ति को धारण करने वाले दण्डसदृश है—

रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका।।[४]

शुभ लक्षणधाम, रामप्रिय तथा सम्पूर्ण संसार का आधार होने के कारण ही वसिष्ठ ने उनका 'लक्ष्मण' नाम रखा—

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।[५]

उनकी उग्रता सर्वांशेन अपने इष्टदेव रामचन्द्र के प्रति समर्पित है। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व राम के व्यक्तित्व के हेतु ही अनन्यभावेन तत्पर है। राम का सामीप्यलाभ पाकर वे सनाथ हो जाते हैं। राम के अनन्य सान्निध्य में सहायक नैतिकता, धार्मिकता

---

[१] मानस–५/५१/८
[२] मानस–५/५२
[३] वाल्मीकीय रामायण–४/६/२२
[४] मानस–सो० १६/चौ० ६
[५] मानस–१/१९७

तथा सांस्कृतिकादर्श को वे महत्त्व देते हैं। 'सहजसलोना उनका गौर शरीर सुकुमार और उनका संवेदनशील हृदय राम-प्रेम से लबालब भरपूर है।[१] उनकी उग्र मुद्रा देखने योग्य है— **माखे लखनु कुटिल भइँ भौहिं। रद पट फरकत नयन रिसौहें।।**[२]

उनकी गर्वोक्ति रामप्रताप पर आधृत है—

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउं सुभाउ न कछु अभिमानू।।
जौं तुम्हारि अनुशासन पावों। कंदुक इन ब्रह्मांड उठावों।।
काचे घट जिमि डारों फोरी। सकउँ मेरा मूलक जिमि तोरी।।
तव प्रजाप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना।।[३]
काल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं।।[४]

तथा— **तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बलनाथ।**
जों न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु हाथ।।[५]

उनके वाणी प्रघात से धरती डोलने लगती है—

लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले।।[६]

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद में लक्ष्मण की निःशङ्क व्यङ्ग्योक्तियाँ उनके हास्य-विनोद-व्यङ्ग्यसम्पन्न वाक्चातुर्य के साथ-साथ उनकी प्रकृतिस्थ वीरता का भी हमें परिचय देती हैं। चित्रकूट-प्रसङ्ग में राम का सङ्केत पाते ही उनका वीरोत्साहपूर्ण अमर्ष सहित फुंकार उठता है और उनके मुख से सहसा निकल ही जाता है—

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ।।[७]
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई।।

उन्हीं के शब्दों में—

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मखला।।
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पति आहू।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीन बंधु उर अंतरजामी।।[८]

लक्ष्मण के बिना राम प्राण त्यागने को तैयार हो जाते हैं—

मेरो सब पुरुषारथ याको।

---

१. कल्याण, वर्ष-५७, संख्या-१, जनवरी १९८३ ई०, शीर्षक-भ्रातृ सेवी, लक्ष्मण जी का आदर्श चरित्र : डॉ० श्री देवकी नन्दन जी श्रीवास्तव, पृ०-२३५
२. मानस–१/२५१/८
३. मानस–१/२५२/३-६
४. मानस–१/२५२/८
५. मानस–१/२५३
६. मानस–१/२५३/१
७. मानस–२२९/३-४
८. मानस–२/२२९/३-४

विपति बँटावन बंधुबाहु बिनु करों भरोसो काको ।।[१]
सुनु, सुग्रीव! साँचेह मोपर फेर्यो बदन विधाता ।
ऐसे समय समर-सङ्कट हों तज्यो लषन-सो भ्राता ।।
गिरि कानन जैहैं सागामृग, होंपुनि अनुज सँघाती ।[२]

सञ्जीवनी पीकर मूर्च्छा से जाग्रत लक्ष्मण ने कहा—

हृदय घाउ मेरे, पीन रघुबीरे ।
पाई सजीवन, जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै ।
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि, जैसे पाठ-अरथ जरचा की है ।
सोभा-सुख छति-लाहु भूपकहँ, केवल कांति-मोल हीरै ।
तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरो धीरै ।
उपमा राम-लखन की प्रीति की क्यों दीजै खीरे-नीरै ।।[३]

'चातक चतुर राम श्याम घन के' कहकर उर्मिलावल्लभानन्य विशिष्ट धर्मनिष्ठ लक्ष्मण के सम्पूर्ण चरित्र की रूपरेखा तुलसीदास जी ने 'विनय पत्रिका' में उपस्थित कर दी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि रामार्पित लक्ष्मण का चरित्र एवं व्यक्तित्व महिमामण्डित है।

भरत—हम भरत को महात्मा तथा महान् त्यागी मानते हैं, 'श्री भरत का व्यक्तित्व रामचरितमानस में सर्वोत्कृष्ट है, यदि ऐसा कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।[४] स्वयं गोस्वामी जी श्रीभरत को ही अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं।[५] यथा—

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ।।
राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इन तजइन पासू ।।[६]

श्री भारद्वाज मुनि के शब्दों में—

तुम्ह तो भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ।।[७]

इसीलिए गोस्वामी जी ने रामचरणपङ्कजलोलुप योगी भरत भ्रमर को सर्वप्रथम स्मरण किया है। भरत के बल पर ही महाकवि राम सम्मुख समुपस्थित हो पाते हैं—

---

[१] मानस-२/७१/३-६
[२] गीतावली-६/७
[३] गीतावली-६/१५
[४] पावन प्रसाद (मासिक), नवम्बर-१९७८ ई०, शीर्षक-'प्रणवउँ प्रथम भरत के चरना' : पं० श्री राम किंकर उपाध्याय, पृ०-२१.
[५] पावन प्रसाद (मासिक), नवम्बर-१९७३ ई०, शीर्षक-'प्रणवउँ प्रथम भरत के चरना' : पं० श्री राम किंकर उपाध्याय, पृ०-२१
[६] मानस-१/१६/३
[७] मानस-२/२०७/८

सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम समदम विषम ब्रत आचरत को ।।
दुख दाह दारिद दम्भ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सन्मुख करत को ।।[१]

प्रेम और नेम—श्रीभरत ने राम के प्रति प्रेम और नेम दोनों को एक साथ सुखद निर्वाह किया है।

प्रेम-साधन और प्रेम-साध्य—श्रीभरत के लिए राम-प्रेम साधन तथा राम-प्रेम ही साध्य भी है।

'आदान' का अर्थ प्रदान—उनके पूजापाठ का एक मात्र उद्देश्य है–श्रीराम के कुशल क्षेत्र की कामना।

धर्मनीति से राजनीति—प्रभु की 'थाती' मानकर उनकी श्रुशूषारूप में धर्मनीति द्वारा राजनीति का सञ्चालन भरत ने किया—

नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ।।[२]

विवेक-प्रेम-समन्वय—श्रीभरत जी विवेक तथा प्रेम के समन्वित पुञ्ज हैं—

सोक कनक लोचन मति छोनी । हरी बिमल गुनगन जग जोनी ।।
भरत बिबेक बराहँ बिसाला । अनायास उपरी तेहि काला ।।[३]
तथा–कुसमउ देखि सनेहु सँभारा । बढ़त बिधि जिमि घटज निबारा ।।[४]

भरतस्नेह बिंध्यगिरि सदृश हैं। भरत-विवेक-रूपी अगस्त्य प्रभु स्नेह समक्ष खड़ा हो गये, जिसके कारण राम भरत से हार गये—

भरतु कहहिं सोइ किए भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई ।।[५]

धर्म और वेवेक का संयोजक प्रेम-उनका राम-प्रेम ही उनके धर्म और विवेक का संयोजक है। वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष नहीं चाहते हैं, उन्हें केवल 'रामपदरति' का ही वरदान चाहिए—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम-जनम रवि राम-पद, यह बरदान न आन ।।[६]

भरत-मन लोभी द्विरेफ है, जो राम चरण पङ्कज में सतत् लीन रहता है। 'श्रीभरत

---

[१] मानस–२/३२५/८
[२] मानस–२/३२५
[३] मानस–२/२९६/३-४
[४] मानस–२/२९६/२
[५] मानस–२/२५८/८
[६] मानस–२/२०४

श्रीराघवेन्द्र के चरणकमलों में निरन्तर रहते हैं, किन्तु वहाँ पर कुछ पाने की आकाङ्क्षा उनमें नहीं है। वे तो निरन्तर श्रीराम के चरणों के सान्निध्य में ही सुख का अनुभव करते हैं'।[१]

× × ×

'एक ओर वे नियम और व्रतों का पालन करने वाले प्रेमी हैं, तो दूसरी ओर श्रीराम के अनन्य चरणानुरागी होते हुए भी उनके अन्तर्जीवन में उन चरणों को सुखी बनाने की भावना है, उन चरणों से सुख प्राप्त करने की नहीं।[२] व्यूहावतार भरत का स्वरूप राम जैसा है। उनके पहचानने में कठिनाई होती है—वे विश्वभरण-पोषण करने वाले हैं। श्री वसिष्ठ के शब्दों में—

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।[३]

वे धर्म की कील धारण करने वाले हैं—

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धुरनि धरत को।।[४]

इसीलिए राम के शब्दों में भरत का चरित्र-चित्रण करना दुष्कर है—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।।[५]

श्रीभरत जी परिवार के शुभ चिन्तक थे, तभी तो माता कैकेयी की वर-याचनाक्रम में वे ननिहाल में थे, फिर भी—

अनरथु अवध अरमेउ जबतें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।।[६]

कुसगुणनिवारणार्थ वे शङ्कर की पूजा करते हैं। इसी बीच अयोध्या का दूत उनके पास गुरुजी का संवाद लेकर पहुँचता है, बस—

चले समीर बेग हम हाँके। नावत सरित सैल बन बाँके।।[७]
हृदय सोच बड़ कछु न सुहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई।।[८]

राम-वन-गमन के दारुणावसर पर कौसल्या ने राम से कहा—

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहिं भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु।।[९]

इससे भी सिद्ध होता है कि भरत लाल अपने परिवार के सर्वप्रिय चरित्र हैं। चित्रकूट की पर्णशाला में अवस्थित रामभरत के स्नेह और शील का स्मरण कर दुःखी हो जाते हैं। चित्रकूट में कौसल्या फिर अपने वाणी समर्थन में सुनयना रानी से कहती हैं—

---

१. पावन–प्रसाद (मासिक), नवम्बर-१९७८ ई०, पृ०-२५
२. पावन–प्रसाद (मासिक), नवम्बर-१९७८ ई०, पृ०-२५(१) मानस–१/१९६/७
३. मानस–२/२३२/१
४. मानस–२/२३०/८
६. मानस–२/१५६/५
७. मानस–२/१५७/१
८. मानस–२/१५७/१
९. मानस–२/५५

लखनु रामु सिय जाहुँ वन भल परिनाम न पोचु ।
गहबरि हियँ कह कोसिला मोहि भरत कर सोचु ।।[1]

वे भरत लाल जी को धैर्य धारण कराती हैं—

मातु भरत के वचन सुनि साँचे सरल सुभायँ ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ ।।[2]

पुनरपि पुष्टि करती है—

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपति प्रानहुँ ते प्यारे ।।[3]

श्री भरद्वाज मुनि के शब्दों में—

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं । पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ।।[4]

सङ्कोची भरत—वे सङ्कोची होने के कारण राम से खुलकर बात भी नहीं करते थे। राम-वन-गमन सुनते ही वे पितु-मरण-विषाद तथा गहन दुःख दावाग्नि को भूल गये और इस अनर्थ का कारण स्वयं को ही जानकर चुप्पी साध लिये—

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत सम वन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौनु ।।[5]

अयोध्या की राज्यसभा में भरत ने एक बार घोषणा की—

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिस्नाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय के जरनि न जाइ ।।[6]

गुरु और वे परम पावन अन्तःसलिता श्री सुरसरि तथा माता-पिता-गुरु की स्तुति किये और सानुज श्री सीताराम का मङ्गलमय स्मरण कर राम से मिलने 'पयादेहि पाए' निकल पड़े। उन्हीं के शब्दों में—

रामु पयादेहि पायँ सिधाए । हमकहँ रथ गज बाजि बनाए ।।[7]
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ।।[8]

प्रेममयी यात्रा में उनके पैरों में छाले पर आये—

झलका झलकत पायन्ह कैसें । पंकज कोस ओस कन जैसें ।।[9]

राम के अयोध्या वापस आने पर एक दिन हनुमान ने राम से कहा—

नाथ जरत कछु पूछन चहहीं । प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ।।[10]

---

१. मानस–२/२८२
२. मानस–२/१६८
३. मानस–२/१६८/१
४. मानस–२/२०७/३
५. मानस–२/१६०
६. मानस–२/१८२
७. मानस–२/२०२/६
८. मानस–२/२०२/७
९. मानस–२/२०३/१
१०. मानस–७/३५/६

इसके उत्तर में राम ने कहा—

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरत हि मोहि कछु अंतर काऊँ।।[१]

राजसभा में वसिष्ठ ने कहा—

यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहु।।
रायँ राजपद तुम्ह दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा।।[२]

और मन्त्री का कहना है कि—

कीजिअ गुरु आयसु अवसि कहहि सचिव कर जोरि।[३]

लेकिन, सबका उत्तर भरत ने एक ही बार में दे दिया—

एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रात काल चलिहउँ प्रभु पाहीं।।[४]

श्रीराम को भरत के त्याग पर विचित्र विश्वास है—

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहु कि काँजी सिकरनि छीन सिंधु बिनसाइ।।[५]

तपस्वी भरत की छवि दर्शनीय है—

जटाजूट सिर मुनि पटधारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी।।
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा।।
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन-तन बसन तजे तिन तूरी।।[६]

श्रीभरत के यमनियमव्रतादि के वर्णनक्रम में सभी सङ्कोच करने लगते हैं—

बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं। सेस महेस गिरा गमु नाहीं।।[७]

वे—**पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।**[८]

रूप में जीवन-यापन करते थे। सबने उन्हें राम से भी ऊँचा माना—

दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू।।[९]

'भरत स्थितप्रज्ञ हैं और संसार के हानिलाभों से पूर्णतः विरक्त'।[१०] महाकवि तुलसीदास जी के ही शब्दों में—

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं।।
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा।।
तेहि फल कर फलु दरसु तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा।।[११]

---

[१] मानस–७/३५/७
[२] मानस–२/१७३/२-३
[३] मानस–२/१७५
[४] मानस–२/१९२/२
[५] मानस–२/२३१
[६] मानस–२/३२३/३-५
[७] मानस–२/३२४/८
[८] मानस–२/३२५/१
[९] मानस–२/३२५/३
[१०] डॉ० देवराज : आधुनिक समीक्षा, शीर्षक–तुलसी वीर भारतीय संस्कृति, पृ०-८०
[११] मानस–२/२०८, २०९/३

तथा—**भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ ।**[१] अगर राम राज्यसिंहासन त्यागने में सफल हुए, तो भरत जी सत्ता को छोड़ने में विजयश्री को प्राप्त किये। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सत्ता-त्याग से ही चरित्र सनातन धर्माभिभूत हो सकता है, अन्यथा नहीं—**त्याग में जो मजा है, वह ग्रहण में कहाँ ।**

शत्रुघ्न—दशरथ के पुत्र और सुमित्रा नन्दन शत्रुघ्न अन्य भाईयों के साथ ही बाल-चरित करते हैं और अपने माता-पिता को आनन्दसागर में निमग्न करते हैं। कुछ दिनों के लिए शत्रुघ्न अपने ननिहाल चले जाते हैं। इसी बीच दशरथ-मरण के बाद शत्रुघ्न भरत के साथ ननिहाल से आते हैं और भरत के साथ ही राम से मिलने के लिए चित्रकूट के लिए चल पड़ते हैं। वहाँ पहुँच कर राम को अयोध्या वापस चलने के लिए वे बहुत आग्रह करते हैं, किन्तु राम वापस जाने के लिए तैयार नहीं होते हैं और राम शत्रुघ्न को बहुत समझा-बुझाकर अयोध्या लौटा देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचरितमानस से शत्रुघ्न के चरित्र को नेपथ्य में ही रखने का उपक्रम महाकवि महाकवि तुलसी ने किया है।

दशरथ नन्दन के नन्दन—दशरथनन्दन राम के पुत्रों का नाम क्रमशः लव और कुश है। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को भी पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उनके सम्बन्ध में मानसकार ने नामविहीन सङ्केत-मात्र दिया है—

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे । भए रूप गुन सील घनेरे ।।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलसीदास जी ने रामानुजों के आत्मजों का अति सङ्क्षिप्त परिचय देते हुए भी मानो सीप में समुद्र और विन्दु में सिन्धु भर दिया है।

राजाजनक—महाभारत के रामोपाख्यान के अनुसार जनक विदेहराज हैं और सीता उनकी पुत्री है—**विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो ।**[२] कथासरितसागर में भी जनक को सीता का पिता कहा गया है—**सीता सस्या भवद्भार्या प्राणेशा उनकात्मजा ।**[३] कूर्मपुराण में भी जनक को सीता का पिता माना गया है—**रामस्य भार्या सुभगा जनकात्मजा शुभा ।**[४]

जन्म-स्थान—उनका जन्मस्थान जनकपुर है। जनकपुर नेपाल देश का एक धार्मिक स्थान है। महाराज जनक की पुरी की शोभा अपरम्पार है—

बापीं कूप सरित सर नाना । सलिल सुधारस मनि सोपाना ।।
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा । कूजत कल बहुबल बिहंगा ।।
बरन-बरन बिकसे बन जाता । त्रिबिध समीर सदा सुखदाता ।।

---

[१] मानस–२/२०९/३ [२] महाभारत (रामोपाख्यान)–३/२५८/९
[३] कथासरित्सागर–९/१/६० [४] कूर्मपुराण (पूर्व भाग, अध्याय-२१,१८) का अर्द्ध श्लोक।

जनकपुर के चारों ओर बाग-वन, सुमनवाटिका पल्लवित-पुष्पित हैं तथा उसमें बिपुल बिहङ्ग निवास करते हैं। बाजार अति सुन्दर हैं, जिसकी अँबारियाँ मणिमय हैं। गलियाँ सतत सुगन्ध-सिञ्चित हैं। घर-घर मङ्गलमय मन्दिर है। पुर के नर-नारि सुभग, शूचि, सन्त धर्मशील, ज्ञानी और गुणवान् हैं। जनकभवन के बारे में तुलसीदास कहते हैं—

अति अनूप जह जनक निवासु। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोटि बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥

सियनिवाससदन—सीता जिस सदन में रहती है उसकी शोभा वर्णनातीत है—

धवल धाम मुनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुन्दर सदन सोभा किमि कहि जाति॥

उसके द्वार सुभग हैं और सभी कपाट कुलिस के हैं। उनके पास विशाल बाजिगजशाला है, जो सब काल हय गयरथसङ्कुल रहता है।

सेनाएँ—उनके पास शूरसचिव तथा सेनाओं की बहुतायत है। राजा ने उनके सदन को भी अपने सदन जैसा बनवाया है। पुर के बाहर सर और सरित है।

यज्ञशाला—यज्ञशाला में निम्नाङ्कित मञ्च बनाये गये हैं—

(१) **कञ्चनमञ्च** (महिपालों के लिएं)—

चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महि पाला॥[१]

(२) **अपर मञ्च** (मण्डली-विलास हेतु)—

तेहि पाछें समीप चहुँ पासा। अपर मंच मंडली बिलासा॥[२]

(३) **कतिपय ऊँचा मंच** (नगर लोगों के लिए)—

कछु क ऊँचि सब भाँति सुँहाइ। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई॥[३]

(४) **विशाल मंच** (मिथिला नारियों के लिए)—

तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहु बरन बनाए॥[४]

(५) **सुन्दर विशद विशाल मञ्च** (मुनि सहित राम-लक्ष्मण के लिए)—

जहँ देखहिं सब नारी। जथा जोगु निज कुल अनुहारी॥[५]
सब मंचन्ह ते मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥[६]

देश-विदेश के नाना भूपति जनक के धनुष-यज्ञ में उपस्थित होते हैं, किन्तु कोई

---

[१] मानस (बालकाण्ड)–२२३/३
[२] मानस (बालकाण्ड)–२२३/४
[३] मानस (बालकाण्ड)–२२३/५
[४] मानस–२२३/६-७
[५] मानस–२२४
[६] मानस–२५१/३-६

धनुष को तिल भर भी हिला नहीं सके। अन्त में निराशमन जनक ने कहा—

अब जनि कोउ चारवे भट मानी। बीर बिहीन मही मै जानी।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि बैदेहि बिबाहू।।
सुकृतु जाइ जों पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ।।
जों जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तो पनु करि होतेउँ न हँसाई।।

राम धनुष तोड़ देते हैं। तदुपरान्त सीता का विवाह राम से हो जाता है। इसकी सूचना दशरथ को अवध में दी जाती है। वे बारात लेकर जनकपुर आते हैं। राजा जनक बारात का खूब स्वागत करते हैं और बारात विदाई के समय दान-दहेज में बेशुमार सम्पत्ति राम को देते हैं। पुनः बारात अयोध्या लौट जाती है।

दशरथ मरणोपरान्त जनक अवधपुर आते हैं। वहाँ अवध-समाज से मिलकर शोकसागर में डूब जाते हैं। वसिष्ठ अमित उपदेश देकर उन्हें धैर्य धारण कराने का प्रयास करते हैं। उसके बाद 'राम-घाट' सब स्नान करते हैं और राम से भेंट करते हैं। उसके बाद वे भरतादि सहित पुनः अयोध्या वापस जाते हैं और चार दिन रहकर राजकार्य सब संवार कर अवध का राज्य सचिव सुमन्त, गुरु वसिष्ठ तथा भरत पर सौंप कर तिरहुत चले गये।

मनु—मनु सृष्टिकाल[१] में माने गये हैं। 'मिथुनानां विसर्गादौ (सृष्यादौ) मनु स्वायम्भुवो ब्रवीत्' आदि मानव मनु की सन्तान मानव है। इनकी भार्या शतरूपा थीं।

जन्म-स्थान—इनका जन्म-स्थान कश्मीर में हुआ था। इन्होंने राज्य छोड़कर अपनी पत्नी के साथ वन में सुनन्दा नदी तट पर एक पैर पर खड़ा होकर सौ वर्षों तक घोर तपस्या की।[२] उन्होंने राम प्राप्ति हेतु उपासना की—

द्वादस अच्छर मंत्र मुनि जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंक रुन्ह दंपति मन अति लाग।।[३]

वें फलाहारादि कर तपस्या करने लगे—

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरिहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा।।

बाद में हरिप्राप्तिहेतु मूलफल तथा वारि सब त्याग दिये—

पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे।।[४]

उनके हृदय में निरन्तर यह अभिलाषा रहती थी कि हम उसी रूप का दर्शन करें जो शिव, भुशुंडि आदि भक्तों के मन में बसता है, अन्तर्यामी भगवान विश्व की समस्त

---

[१] यास्काचार्य (निरुक्त)–३/४/२
[२] हरिवंशपुराण–२/१; भागवतपुराण–८/१/७
[३] भागवतपुराण, स्कन्ध–८/१
[४] रा०च०मा०–१/१४३

घटनाओं को सुसङ्गत रूप से सङ्घटित करने वाले पुरुष और प्रकृति के रूप में प्रकट हुए। मनु की अभिलाषा थी—

यानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउं सतिभाउ।
चाहहु तुमहि समान सुत, प्रभु सन कौन दुराउ।।[1]

उनकी प्रीतियुक्त अनमोल वाणी सुनकर करुणानिधि ने—'एवमस्तु' कहा। पुनः उन्होंने कहा—**आपुसरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव सनय होब मैं आई।।**[2]

तब शतरूपा के समीप करुणानिधान ने वर माँगने के लिए कहा। उसने कहा—

जो बस नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।।[3]
और मुझे—**जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।।**
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहू।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहू।।[4]

भगवान ने 'तथास्तु' कहा। पुनः मनु ने राम से विनती की और वरदान माँगा—

सुत विषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूष कहै किन कोऊ।।
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना।।[5]

करुणानिधि ने 'एवमस्तु' कहकर, कहा—

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी।।
सोरठा— **तहँ करि भोग बिलाल तात गए कछु काल पुनि।**
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।।[6]
इच्छामय नरवेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे।।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता।।

× × × ×

आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया।।
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा।।[7]

यह कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये। दम्पति कुछ दिनों तक उस आश्रम में निवास किये, उसके बाद तन त्याग कर अमरावती के वासी हो गये।

कश्यप—कश्यप-अदिति वर्त्तमान मावन-सृष्टि के जनक थे। मेरे विचार से

---

[1] रा०च०मा०–१/१४९
[2] मानस–१/१४९/२
[3] मानस–१/१४९/४
[4] मानस–१/१४९/८/१५०
[5] मानस–१/१५०/८/१५१/१-२
[6] मानस–१/१५१/४-५
[7] मनु १४ हुए, जिनमें अभी वैवस्वत मुन (सूर्य पुत्र) का सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है—

उनको कच्छपावतार की संज्ञा देने का एक मात्र भोगोलिक कारण यह है कि उन्होंने कच्छप की भाँति अगाध जल में भी (सागर के टापूओं में) मानवसृष्टि का विस्तार कर भारतीय साम्राज्य को विस्तृत किया। मेरी दृष्टि में उनका राज्य काश्यप-सागर तक फैला हुआ था। उन्हीं के नाम पर उस सागर का नाम काश्यप सागर पड़ा— The name by which the caspian sea is known in Europe is derived from the caspic, a trial that dwelt, on its western shoes.[1]

कश्यपमरीचि प्रजापति के पुत्र थे। वे कश्मीर में रहते थे। इनका कश्यपाश्रम आज भी अमरनाथ के रास्ते में कश्मीर में वर्तमान है। इन पिता-पुत्र के नाम पर पर घिसपिट कर कश्मीर नाम पड़ा।[२]

कश्यप-अदिति का वंशविटप

दैत्य, दानव, राक्षस, असुर वंश (अनार्य वंश)

देवार्य वंश

शिव—शिव सूर्य के परपौत्र तथा यम के पौत्र हैं। इनका उदर कोमल है। शरीर का रङ्ग पीत तथा श्वेताभ है। उनका शरीर दृढ़, विकराल तथा तेजोमय है। वे श्रेष्ठ भीषक हैं। अत: जड़ी-बूटी की उन्हें अच्छी जानकारी है। वे सात रत्नों को धारण करते हैं। इन्हें 'पशुपतिनाथ' कहा जाता है। इनके नाम हैं—

(१) रुद्र (२) अजएकपन्त (३) अहिर्वुधन्य (४) विरूपाक्ष
(५) त्वष्टा (६) वीरभद्र (७) महादेव (८) हर
(९) शंकर (१०) पशुपतिनाथ (११) शिव (१२) बहुरूप
(१३) त्र्यम्बक (१४) सावित्र (१५) शम्भु तथा (१६) सर्व।

वंशविटपानुसार शिव कश्यप के वंशधर हैं।[३]

निवास-स्थान—शिव का निवास स्थान बराबर बदलता रहा है। शुरू में वे हेमकूट पर रहे, जो हिन्दू कुश का गिरि है। कुछ दिन 'शरवन' में रहे। यह स्थान 'एशिया माइनर' में है। वही 'शिव-देश' कहलाता है। ईरान में शङ्करप्रदेश के अन्तर्गत एक 'जाटा' प्रान्त है, जहाँ 'जाटा' और 'जिप्सी' जाति के लोग रहते हैं। शिव जाटा

स्वयाम्भुवोमनुः पूर्वं परः स्वारोचिषस्तथा। उत्तमस्तामसश्चैव रेवतश्चाक्षुषस्तथा॥
षडेते मनवोऽतीतास्साम्प्रतं तु रवेस्सुतः। वैवस्वतोऽयं सख्यैतत्सप्तमं वर्ततेन्तरम्॥
—विष्णुपुराण

२. History of persia, Vol.1, Page-28 २. नीलमणि : नीलमतपुराण।

३. पर्शिया का इतिहास, जिन्द-१, पृ०-१०३, लेखक—साइक्स।

प्रान्त में ही रहते थे। इसीलिए लोगों ने 'शिव' को 'जटाधारी' कहना शुरू किया।

ईरान में एक स्थान 'हिरात' था। मेरा अनुमान है कि देवासुरकाल में 'हिरात' का नाम 'हर राष्ट्र' रहा होगा। उसी के नजदीक ईरान का 'रुदबर' प्रान्त था, जहाँ रुद्र रहा करते थे। कैलास गिरि के पूर्व में लौहित्यगिरि के ऊपर 'भद्रवट' है, जहाँ शिव रहा करते थे। शिव दूसरे विवाह के बाद हिमाचल प्रदेश नामक ससुराल में ही बस गये। कैलास उनकी राजधानी थी। कुछ दिनों तक अफ्रिका में भी शिव की खूब पूजा होती थी। सम्भवत: उस समय अफ्रिका का नाम 'शिवदान प्रदेश' था। 'शिवदान' का ही विकृत रूप 'सुडान' अफ्रिका में आज तक विद्यमान है। उस समय शिव की कीर्तिकिरण भारत से लेकर पश्चिमी एशिया और अफ्रिका तक विकीर्ण थी।

मानवजीवन के परमादर्श जीवन्त विग्रह के रूप में शिव चिरकाल से प्रतिष्ठित हैं। योगीश्वर शिव सृष्टि के समस्त ऐश्वर्यों के अप्रतिद्वन्द्वी आदित्य हैं तथा प्रणत जनों के विपुल वांछित फलदायक हैं। वे कृतिवास (हस्तिचर्म परिधानधारी) हैं। कभी-कभी नंगा भी रहते हैं। विविध विषयविलासविमुक्त आत्माराम योगीवृन्द हेतु नित्यादर्श, नित्यानन्द तथा नित्याराध्य हैं। अपने अष्टविधवपु बल पर विशाल ब्रह्माण्ड को धारण किये हैं। उनमें 'अहं-मम-बोध' का सर्वथाभाव है। वे भोगाकाङ्क्षा, कामलिप्सा, आलस्य, सङ्कीर्णता, अपसाद तथा अहंमन्यतादि प्रवृत्तियों के शामक हैं। वे भारतीय साधना के चिरादर्श विग्रह हैं। उनकी अर्द्धाङ्गिनी पार्वती समस्त विश्वब्रह्माण्ड की यावत् शक्ति और सम्पत्ति की आधारभूता, यावत् सौन्दर्य तथा माधुर्य की उत्सवरूपा महादेवी भगवती अन्नपूर्णा हैं। तथापि वे कर्तृत्वाभिमानिनीया भोक्तृत्वाभिमानिनी नहीं है। वे आसक्ति, विकार और विक्षेपरहित, सर्वत्यागी स्वात्मस्थ, उदासीन द्रष्टा, भक्त कामना कल्पद्रूम हैं।

निवास—वे श्मशान वासी हैं। उनकी सम्पूर्ण सम्पदाएँ तथा अप्रमेय शक्ति के सभी विचित्र विलास उनकी अनावृत्त तात्त्विक दृष्टि में स्वप्न इव प्रतीयमान है। इसीलिए वे प्राणिमात्र के शिवार्थ नियोजित हैं।

वे 'सर्वसहा' तथा 'सर्वहारा' के सच्चे सहायक हैं। उनके साथ विश्व के समस्त अनावृत्त, प्रताड़ित, उपेक्षित, घृणित, पतित भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनी तथा विकट रजनीचर हैं और वे उनके नायक हैं—

तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनी विकट मुख रजनीचरा॥[१]

हिंस्र नाग उनके गले का हार है, वे उनको अपने भाव में भावित कर उनका

---

[१] मानस–१/९४/८

पालन करते हैं। वे अमङ्गल वेष धारण करके भी मङ्गल राशि हैं। वे विमल, विविक्त तथा अयापविद्ध होकर निरन्तर निस्सीम, अनन्त, सर्वव्यापी तथा अमल अपरिच्छिन्न आत्मानन्द-परमात्मानन्द की अनुभूतिविभूति में विशोक बने रहते हैं।

शिवशृङ्गार—शिव-पार्वती-विवाह के शुभावसर पर 'शिवशृङ्गार' दर्शनीय है—

सिवहि संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मोरु सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति परकेहरि छाला॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव वेष सिवधाम कृपाला॥
कर त्रिसूल अरु डमरू बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहि बाजा॥[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिव ही एक मात्र देवता हैं, जिन्हें देव, दनुज, नर, नाग, खग, भूत-प्रेत, पितर, किन्नर, गन्धर्व, रजनीचरादि समान भाव से पूजते हैं। अत:, शिव का चरित्र महामहिमामण्डित है।

शिव-लिङ्ग-पूजन-प्रथा—भूगर्भखननोपरान्त शिव-लिङ्ग जर्मनी तथा अमेरिकादि देश में भी प्राप्त हुआ है। शिव आर्यवंशी होकर भी पूर्णत: स्वतन्त्र हैं और उनका आचरण आर्य सङ्गठन के प्रतिकूल हैं, फिर भी आज सर्वाधिक पूज्य देवाधिदेव शिव ही हैं। कतिपय लोगों की राय में वेदों में आने वाले 'शिश्नदेव'[2] आर्येत्तर जाति के लिङ्ग पूजक थे, जिनको आर्यों ने नापसन्द किया, किन्तु कतिपय लोगों के अनुसार 'शिश्नदेव' शब्द का अर्थ 'चरित्रहीन' है।

ऋषि-मुनियों ने शिवपूजा तथा लिङ्गपूजा को आर्यधर्म से दूर रखने के लिए भगीरथ प्रयास किया; परन्तु ऋषि-पत्नी-गण उनके विरुद्ध आचरण करके शिवपूजा तथा लिङ्गपूजा को भारतीय आर्यसमाज में श्रीगणेश करने में सफल हो गईं। शिव नग्न वेश में नवीन तापस का रूप धारण कर मुनियों के तपोवन में आये।[3] मुनि पत्नियों ने नग्न शिव को घेर लिया।[4] मुनि गण ने अपने ही आश्रम में अभव्य कामातुराओं को देखकर शिव को 'मारो' 'मारो' कहकर काष्ठपाषाणादि लेकर दौड़ पड़े—

क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमे तु स्वयोषिताम्।
हन्यतामिति सम्भाष्य काष्ठपाषण पाणयः॥[5]

कहते हुए उन्होंने शिव के भीषण उर्ध्वलिङ्ग को निपातित कर दिया—

पातयन्ति स्म देवस्य लिंगमूर्ध्वं विभीषणम्।[6]

---

[1] मानस–१/९१/१-५
[2] ऋग्वेद–७/१/५; तथा १०/१९/३
[3] वामनपुराण–४३/५१-६२
[4] वामनपुराण–४३/६३-६९
[5] वामनपुराण–४३/७०
[6] वामनपुराण–४३/७१

अनन्तर मुनि भयाकुल हो गये, तब ब्रह्मादि देवों ने उन्हें समझाया-बुझाया। अन्त में मुनि-पत्नियों की एकान्त अभिलषित शिव-पूजा प्रवर्तित हुई।[१] कूर्मपुराण के अनुसार पुरुषवेशधारी शिव नारीवेशधारी विष्णु को लेकर सहस्र मुनिगण सेवित देवदास-वन में विचरण करने लगे। उन्हें देखते ही मुनिपत्नियाँ कामार्त्त होकर निर्लज्ज आचरण करने लगीं।[२] मुनिगण क्रोधानल में जलकर शिव का अतिशय निर्दय वाणी से भर्त्सना करने लगे तथा अभिशाप देने लगे—

अतीव परुषं वाक्यं प्रोचुर्देवं कपर्दिनम्।
शेपुश्च शापैर्विविधैर्मायया तस्य मोहिताः ।।[३]

फिर भी अरुन्धती ने शिवाराधना की। मुनियों ने शिव को 'यष्टि-मुष्टि' प्रहार या लाठी घूसे प्रहार करते हुए बोले— तू यह लिङ्ग-उत्पादन कर। शिव को विवश होकर अपना लिङ्ग-उत्पादन करना पड़ा। 'शिव ही आदि देवता हैं, ब्रह्मा और विष्णु उनके लिङ्ग का आदि मूलान्वेषण करने गये, किन्तु हार गये।[४] देवदारु-वन में सुरतप्रिय शिव विहार करने लगे।[५] मुनिनारियाँ काममोहित होकर नानाविध अश्लीलाचार करने लगीं।[६] शिव ने उनकी अभिलाषा पूरी की।[७] मुनिगण काम-मोहिताओं को सम्भालने में व्यस्त हुए।[८] किन्तु पत्नियाँ मानी नहीं।[९] अन्त में मुनियों ने शिव पर प्रहार किये।[१०] मुनि पत्नियों ने शिव को कामार्त्त होकर ग्रहण किया था, केवल अरुन्धती ने वात्सल्य भाव से शिव की पूजा की।[११] भृगु ने शाप देकर लिङ्ग को भूपतित किया[१२] और भृगु ने धर्म तथा नीति की दुहाई दी।[१३] फिर भी मुनिगण शिवलिङ्ग की पूजा करने को विवश हो गये।[१४]

---

[१] वामनपुराण–४३/४४
[२] वामनपुराण–३७ (ऊपरी भाग), श्लोक १३/१७
[३] कूर्मपुराण–३७/२२
[४] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१६-२१
[५] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/७८-७९
[६] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/११२-१२८
[७] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१५८
[८] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१६०
[९] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१६१
[१०] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१६२-६३
[११] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१७८
[१२] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१८७
[१३] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/१८८-१९२
[१४] शिवपुराण (धर्मसंहिता)–१०/२०३-२०७।

यही कथा स्कन्दपुराण (महेश्वर खण्ड), अष्टाध्याय में है। ठीक ऐसी ही कथा लिङ्गपुराण (पूर्व भाग, अ० ३७, श्लोक-३३-५०) में भी है। वायुपुराण के महेश्वर-खण्ड में शिवकथा कही गयी है। पुनः पद्मपुराण के नागर खण्ड के अनुसार अनार्त देश के मुनि जनाश्रय वन में शङ्कर नग्न वेश में पहुँचे।[1] उनको देखते ही मुनि पत्नियों का आचरण शिष्टता की शृङ्खला को पार कर गया।[2] मुनि गण देखते ही सकोप बोले— पापी, चूँकि तूने हमारे आश्रम को विडम्बित कर दिया है, इसीलिए तेरा लिङ्ग तत्क्षण भूपतित होवे—

> **यस्मात्पगव त्वयास्माकं आश्रयोऽयं विडम्बितः ।**
> **तस्माल्लिङ्गं पतत्वाशु तवैव वसुधातले ।।**[3]

तथापि मुनियों को शिव के समक्ष झुकना ही पड़ा। संसार में नाना उत्पात होने लगा।[4] फलस्वरूप देवतागण भयभीत होकर शनैः-शनैः शिव-पूजा स्वीकार करने लगे। इन्द्र ने देव-सङ्गठन के समय रुद्रों को देव-सङ्गठन में नहीं रखा तथा इन लोगों को यज्ञ भाग से वञ्चित किया। इन्द्र, वरुण तथा सूर्यादि देवों ने अपनी व्यक्तिगत पूजा, स्तुति तथा वैदिक सूक्तों द्वारा अपनी-अपनी प्रशंसा-पद्धति को प्रारम्भ किया। रुद्र ने 'भाँग' तथा 'लिङ्ग' की पूजा का समारम्भ किया। उसके सङ्गठन के सभी सदस्य लिङ्ग-पूजक बन गये। उनकी शक्ति के भय से अनुकूल देवराट् इन्द्र ने एक देवसभा का आयोजन किया तथा उसमें रुद्र को भी आमन्त्रित किया। इन्द्र ने पूछा—'आप हमलोगों के वंशज होकर अलग क्यों रहते हैं?' रुद्र ने कहा—'आपलोगों ने हमको देव-सङ्गठन तथा यज्ञ से वञ्चित कर दिया है। इसलिए हमने अपना अलग मार्ग बनाया है। आप लोग तो देव हैं और हम कुछ नहीं हैं। इन्द्र ने कहा—'आज से 'हर' को 'महादेव' कहा जायेगा और आपको यज्ञ भाग भी दिया जायेगा'। इस पर आप प्रसन्न हैं न? तब 'हर' ने कहा—'स्वीकार है', लेकिन हमारी लिङ्गपूजा का प्रतिकार नहीं करना होगा। देवेन्द्र ने पूछा—'लिङ्ग-पूजा से क्या लाभ होगा?' तब हर ने कहा—हमलोगों को अपनी जनसंख्या बढ़ानी चाहिए। जब जनसंख्या बहुत हो जायेगी, तब हमलोग सर्वाधिक शक्तिशाली हो जायेंगे। यह सुनकर इन्द्र स्तब्ध रह गये। फलतः अखिल विश्व में लिङ्ग-पूजाविधि प्रचलित है।

विदेशों में लिङ्ग-पूजा—

(१) मक्का का प्रख्यात 'सगे असबद' प्राचीन शिवलिङ्ग ही है।[5]

---

[1] पद्मपुराण (नागर खण्ड)–श्लोक १-१२
[2] पद्मपुराण (नागर खण्ड)–१३-१७
[3] पद्मपुराण (नागर खण्ड)–१-२०
[4] पद्मपुराण (नागर खण्ड)–२३-२४
[5] मुहम्मद एण्ड द ब्लैक स्टोन–हिष्ट्री ऑफ परसिया, वौल०-२

(२) अरब का प्राचीन धर्म शिव-सम्प्रदाय ही था।[१] सङ्गे असबद का ही दर्शन करने भारतीय मुसलमान मक्का जाते हैं, जिसको 'हज' करना कहा जाता है।

(३) अरब में एक 'उमा' प्रदेश है। हर महादेव की भार्या भी 'उमा' ही थीं।

इससे सिद्ध होता है कि दक्ष-प्रजापति ४५वें की राजधानी उमा प्रदेश में भी थी। अपने 'उमा' प्रदेश के नाम पर ही उन्होंने अपनी पुत्री का नाम 'उमा' रखा। दूसरी सम्भावना यह है कि 'उर' में उनकी राजधानी रही होगी, जिससे 'उमा' नाम पड़ा। शिव का पाणिग्रहण सती से हुआ था। सती को ही 'उमा' कहा जाता है। विवाहोपरान्त कुछेक दिवस तक हर-रुद्र ससुराल में ही रहे। पुनः अलग हो गये। कुछ दिनों के पश्चात् दक्ष प्रजापति ने एक यज्ञ किया, जिसमें शिव को निमन्त्रण नहीं भेजा। सती बिना न्योता के ही पितृगृह चली गयीं। यह घटना सिद्ध करती है कि शिव कहीं आस-पास में ही रहते थे। पौराणिक ग्रन्थों के अनुशीलन-परिशीलन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि शिव के साथ 'लिङ्ग-पूजा' का अमिट सम्बन्ध है और रहेगा।

नारद—नारद ब्रह्मा के पुत्र थे। वे आजन्म ब्रह्मचारी थे। वे सतत् वीणा बजाकर हरि-गुणगान किया करते थे। एक बार नारद को मोह हो गया। वे ब्रह्मसभा में जाकर अपनी प्रशंसा अपने मुख से करना शुरू कर दिये, उसके बाद शिवजी के पास भी गये, वहाँ से मुनि वीणा बजाकर हरि गुणगान करते हुए क्षीर-सागर में शेषशायी विष्णु के समीप पहुँचे। विष्णु ने उनको यथोचित सम्मान देकर अपने पास आसन पर बैठाया और बोले—**बोले बिहसि चराचर राया। बहुत दिनन कीन्ह मुनि दाया।।**[२]

यह सुनते ही—**काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे।।**[३]

तथा— **नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।।**[४]

तब विष्णु ने सोचा—

मुनि कर हित मन कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई।।[५]

उसके बाद नारद हरिपद पर सिर झुका कर हृदय में अधिकाधिक अभिमान के साथ चल पड़े। रास्ते में श्री निवासपुर नामक सुरम्य नगर मिला, जिसका राजा शील-निधि था। उसकी 'विश्वमोहिनी' नामक लड़की थी। राजा ने 'विश्वमोहिनी-स्वयंबर' रचाया था, उसमें अगणित महिपाल भाग लेने आये थे। कौतुकी मुनि पुरवासियों से जानकारी प्राप्त कर 'स्वयंबर' देखने नृप गृहगये। राजा ने—

---

[१] हिस्ट्री ऑफ रोम, लिड्डल–१४/२

[२] मानस–१/१२७/६

[३] मानस–१/१२७/७

[४] मानस–१/१२८/३

[५] मानस–१/१२८/६

आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि।
कहहू नाथ गुन दोष सब एहि के हृदय बिचारि ।।[१]

बस—देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी ।।
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने ।।
जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई ।।
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही ।।[२]

कन्या के सभी लक्षणों को मन में छिपा लिये और कुछ मनगढ़न्त बातें भूप से कहकर विष्णु लोक गये और विष्णु से कहा—

आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही ।।
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा ।।[३]

भगवान विष्णु ने कहा—हे नारद! जिस विधि आपका परमहित होगा, वही मैं करूँगा। यह कहकर हरि अन्तर्धान हो गए। नारद यज्ञशाला में गये, किन्तु वानरमुख को भी नारद जानकर 'सबने उनका सम्मान किया, किन्तु जिस समाज में मुनि फूलकर बैठे हुए थे, उसी समाज में दो महेशगण बैठे हुए थे। वे नारद को देखकर कूट करने लगे—

करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ।।
रीझिहि राजकुअँरि छवि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी ।।[४]

मुनि महेशगणों की अटपट वाणी को सुनते थे, किन्तु बुद्धिविभ्रमवश समझ नहीं पा रहे थे। नृपकन्या को यह देखकर—

मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा ते ही ।।[५]

जिधर नारद बैठे हुए थे, उधर भूलकर भी वह नहीं देखती थी—

पुनि पुनि मुनि उठहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं ।।[६]

इसी बीच विष्णु स्वयंवर में पधारे। कुमारी उन पर प्रसन्न होकर जयमाला पहना दी और वे दुलहिन के साथ विष्णुलोक चले गये। यह देखकर—

मुनि अति विकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ।।[७]

मुनि की मनोदशा को विलोक कर हरगण ने कहा—

............................। निज मुख मुकुर विलोकहु जाई ।।[८]

यह सुनते ही मुनि ने जल मँगाया और अपना मरकट वदन देखकर विष्णु पर

---

[१] मानस–१/१३०
[२] मानस–१/१३१/६-७
[३] मानस–१/१३३/३-४
[४] मानस–१/१३४/२
[५] मानस–१/१३३/८
[६] मानस–१/१३४/२
[७] मानस–१/१३४/५
[८] मानस–१/१३४/६

अति क्रोधित हुए। उसके बाद हरगण को शाप दिया कि 'तुम दोनों कपटी पापी निशिचर हो जाओ'। कमलापति के घर जा ही रहे थे कि रास्ते में वे मिल गये, बस क्या था? तुरंत शाप दिया—

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु मम एहा।।
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करहहिं कीस सहाय तुम्हारी।।
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी।।[१]

क्रोध-शान्त होते ही नारद ने पश्चात्ताप करते हुए विष्णु के चरणों को पकड़ कर कहा—**मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीन दयाला।।**[२]

विष्णु नारद को प्रबोध कर अन्तर्धान हो गये। तदुपरान्त नारद राम गुण-गान करते हुए सत्यलोक को चले गये। नारदचरित पर विहंगम दृष्टि डालने पर पता चलता है कि काम प्राणियों की आदिम प्रवृत्ति है, जिससे आज तक न कोई वञ्चित रहा और न कोई रहेगा ही। कहा जाता है कि नारद श्वेतलोक में जाकर बराबर विष्णु का दर्शन करते रहते थे। देवर्षि नारद धन्य हैं, जो वीणा बजाते, हरिगुण-गान करते और मस्त बनकर इस आतुर जगत् को आनन्दित करते रहते हैं—

अहो देवर्षिधन्योऽयं यत्कीर्त्ति शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्वाद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्।।[३]

नारद वैष्णव थे। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय वैष्णव देवमुनि सीरिया गये। कुछ लोगों का मत है कि ईसाई मत से भी नीतिवाद या अनुष्ठान विधि भारतीय वैष्णवों ने ग्रहण की, किन्तु यह कथन सर्वथा निराधार है—Not a single dogma or rite was derived by the Indian Vaishnava from primitive christianity.[4]

कौसल्या—रानी कौसल्या दशरथ की राजमहिषी थीं। उनके पुत्र राम थे। राम-जन्म का अवलोकन सुख केवल कौसल्या को ही मिला था—

भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।[५]

इसीलिए उनके पुत्र राम 'कौसल्या-हितकारी' थे। जब राम ने पूर्व वरदान की कथा कहकर कौसल्या को सन्तुष्ट कर दिया, तब उन्होंने राम से शिशु-लीला करने के

---

[१] मानस–१/१३६/६-८ [२] मानस–१/१३७/३ [३] श्रीमद्भागवत–१/६/३९

[४] Sir Brajendra Seal : 'Comperative Studies in Vaishnavism and Christianity' Page-102

[५] मानस–१/१९१ छन्द

लिए कहा—**कीजै सिसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा ।**[१] तत्क्षण बालक राम रोने लगे—**सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।**[२]

तत्पश्चात् लोगों ने शिशु राम को देखा । राम की विवेकशील दिव्य लीलाओं को कौसल्या जी ने देखा था—

एक बार जननीं अन्हवाए । करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए ।।
निज कुल इष्ट देव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ।।
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ।।
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देखि सुत जाई ।।
गै जननी सिसु पहिं भयभीता । देखा बाल तहाँ पुनि सूता ।।
बहुरि आइ देखा सुत सोई । हृदय कंप मन धीर न होई ।।
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मति भ्रम मोर कि आन बिसेषा ।।
देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ।।[३]

तथा—
देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मंड ।।[४]

यह देखकर—
बार-बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि ।
अब जनि कबहूँ ब्यापे प्रभु मोहि माया तोरि ।।[५]

राम ने अपने अद्भुत रूपात्मक रहस्य को रहस्य रखने के लिए ही कहा—

हरि जननी बहूविधि समुझाई । यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ।।[६]

राम बाल-लीला, कर्णवेध, यज्ञोपवीत तथा विवाहादि का सुख सब को मिला, किन्तु राम के चतुर्भुज रूप तथा विश्व रूप के दर्शनादि का चरमानन्द मात्र माता कौसल्या को ही प्राप्त हुआ । राम-वन-गमन के समय कौसल्या जी ने राम को शिक्षा के रूप में अपनी सम्पूर्ण प्रज्ञापयोधि ही उड़ेल दिया—

तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितु आयसु सब धरम क टीका ।।[७]

× × ×

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ।।[८]

पुत्र के लिए माता-पिता दोनों की आज्ञाओं में से माता की आज्ञा सहस्र गुना श्रेष्ठ है— **सहस्रं तु पितृम् माता गौर वेणातिरिच्यते ।**

---

[१] मानस–१/१९१ छन्द
[२] मानस–१/१९१ छन्द
[३] मानस–१/२००/१-८
[४] मानस–१/२०१
[५] मानस–१/२०२
[६] मानस–१/२०१/८
[७] मानस–२
[८] मनुस्मृति–२/१४५

कौसल्या माता के चरित्र की दो सर्वाधिक सुन्दर विशेषताएँ हैं—

(१) कौसल्या ने अपनी सभी सौतों के साथ मधुर सम्बन्ध आजन्म कायम रखा।

(२) उन्होंने सगे-सौतेले सुतों में कोई भेद-भाव आने नहीं दिया।

कौसल्या ने भरत को अपने हृदय से लगाया कि उनके दोनों स्तनों से पयस्विनी प्रवाहित होने लगी और नयनों में प्रेमाश्रु भर आये—

अस कहि मातु भरत हियँ लाए। थन पय स्त्रवहिं नयन जल छाए।।[1]

माता के स्तन से दूध अपनी ही सन्तति के लिए टपकता है, दूसरे बच्चों के लिए कतई नहीं, किन्तु कौसल्या के स्तन से स्तन्य का निस्सरण उनके वात्सल्यमय हृदय का द्योतक है। कौसल्या के चरित्र की एक और बहुत बड़ी विशेषता है—**पातिव्रत्य का सर्वतोभावेन पालन**। वह पातिव्रत्य धर्म का पालन हर-क्षण करती है—

कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरिपद कमल बिनीत।।[2]

धर्मज्ञ तथा पतिव्रता कौसल्या के चरित्र का अनुगमन करने से नारियों का लोक-परलोक दोनों में कल्याण सम्भव है।

कैकेयी—कैकेयी राजा दशरथ की सर्वाधिक प्रिय पट्ट महिषी थीं। उसके पुत्र भरत हुए। वाल्मीकीय रामायणानुसार देवासुर-संग्राम में दशरथ ने इन्द्र की ओर से शम्बासुर के विरुद्ध लड़ाई की। उस युद्ध के क्रम में दशरथ रण-भूमि में आहत होकर गिर पड़े। तब वीराङ्गना कैकेयी ने उनको रण-भूमि से हटाकर उनकी जान की रक्षा की। इसके कारण दशरथ ने कैकेयी को दो वरदान प्रदान किया था। राम राज्याभिषेक की तैयारी के शुभावसर पर मन्थरा की कुमन्त्रणा में फँसकर कैकेयी ने राजा दशरथ से दो वरदान माँग ही लिया— (१) भरत को राजगद्दी, (२) राम को चौदह वर्षों तक तपस्वी वेश में राम का वनवास। राजा ने दोनों वरदान कैकेयी को दे दिया और राम-वियोग में सुरधाम चले गये। चित्रकूट यात्रा-क्रम में राम को भय हुआ कि कैकेयी भरत को राज्य दिलाने के लिए दशरथ का प्राण न लें और कौसल्या-सुमित्रा को विष न खिला दे—

सा हि देवी महाराजं कैकेयी राज्य कारणात्।
अपि न व्यावयेत्प्राणान्दृष्ट्वा भरतमागतम्।।
परिदद्याद्धि धर्मज्ञ गरं ते मम मातरम्।।[3]

सीता ने भी कैकेयी को कलह शीला कहकर उनकी भर्त्सना की है—

कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलह शीलया।[4]

---

[1] मानस–२/१६८/५

[2] मानस–१/१८८

[3] वाल्मीकीय रामायण–२/५३/१७-१८

[4] वाल्मीकीय रामायण–६/३२/४

किन्तु राम कैकेयी के सबल पक्षधर हैं। उनका कहना है—

पुरा मातः पिता नः स मातरं ते समद्वहन्।
मातामहे समा श्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्।।[1]

भारद्वाज ने भी रांम ने कहा कि कैकेयी निर्दोष है; क्योंकि राम का निर्वासन सर्वहितार्थ है—मानसकार महाकवि तुलसीदास जी ने कैकेयी का दोष सरस्वती पर लगाया है।

सुमित्रा—सुमित्राम्बा श्री दशरथ की द्वितीय राजमहिषी और लक्ष्मण की वन्दनीय महामहिमामयी तथा करुणामयी जननी थीं। इनके त्याग तथा सेवा की सुरम्य सुरभि से रामकथा सुरभित हो रही है। सुमित्रा ने राम के दक्षिण बाहु तथा बहि:प्राणरूप को प्रकट कर अपने मातृत्व को कृतकृत्य बनाया—

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भजतु जासु सुतु होई।।[2]

रामायण तथा मानस में पायस-प्रसङ्ग का इनकी कथा का श्री गणेश होता है। राजा दशरथ ने देवनिर्मित पायस का आधा भाग कौसल्या को दिया। पुनः अवशिष्ट अर्द्धभाग को दो भागों में विभक्त कर एक भाग सुमित्रा को दिया तथा पुनः उसमें से एक भाग कैकेयी को दिया तथा तथा अवशिष्टाष्टमांश पुनः सुमित्रा को ही प्रदान किया—

कौसल्या यै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः।।
कैकेय्ये चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
पददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्।।
अनुचिन्त्य सुमित्रायैपुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक्।।[3]

रामचरितमानस का पायस-वितरण-प्रसङ्ग वाल्मीकीय रामायण से कतिपय पृथक् है। तुलसीजी के अनुसार दशरथ ने पायस का अर्ध भाग कौसल्या को दिया। पुनः उन्होंने आधे के दो भाग किये, जिसमें से एक कैकेयी को दिया, जो अवशेष रहा, उसका पुनः दो भाग किया। कौसल्या तथा कैकेयी के हाथों में वह एक भाग रखकर प्रफुल्लित हो वे दो भाग (पायस भाग) सुमित्रा को दे दिए, वाल्मीकीय रामायण के अनुसार कौसल्या के बाद जो पायस भाग सुमित्रा को दिया गया था, उससे लक्ष्मण उत्पन्न हुए। इसीलिए वे रामानुरागी रामानुज कहलाये और कैकेयी के पश्चात् जो पायस भाग प्रदान किया गया, उससे शत्रुघ्न पैदा हुए। अतः वे भरतानुज कहलाये। सुमित्रा

---

[1] वाल्मीकीय रामायण-२/१०७/३
[2] रामचरितमानस-२/७४/१
[3] वाल्मीकीय रामायण-१/१६/२७-२९

ने दो पुत्र उत्पन्न किये—प्रथम पुत्र लक्ष्मण तथा द्वितीय पुत्र शत्रुघ्न। ये दोनों सर्वस्व कुशल, धीर, वीर तथा विष्णु के अर्ध भाग से सम्पन्न थे—रामचन्द्र को कौसल्या ने लोककल्याण-हितार्थ उत्पन्न किया। राम सेवार्थ ही सुमित्रा ने लक्ष्मण को पैदा किया। सुमित्रा राज्याभिषेक का कुशल सम्वाद पाकर अपने कर-कमलों से मणिमय सुन्दर चौक पूरने का काम करती है। इन्हें राजमहिषी होने का ईषत् अभिमान नहीं था।

बस—**चौंके चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रुरी।।**[1]

दशरथ राजप्रासाद की अभ्यन्तर व्यवस्थापिका सुमित्रा ही थीं। कौसल्या कहती हैं— **बेझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री! सुमित्रा माता?**[2]

तथा—**हँसि कह रानी गाल बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।।**[3]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि अन्त:पुर में सुमित्रा की ही प्रधानता थी।

'लालन जोग लखन लघु लोने' को राम के साथ वन जाने की सहर्षाज्ञा देकर सुमित्रा ने अपने चरित्र की पराकाष्ठा को सिद्ध किया है। वनगमन के समय सुमित्रा ने लक्ष्मण को उपदेश दिया था—

तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासु। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।।[4]

आदि कवि वाल्मीकि के शब्दों में—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्।।[5]

अपने सौभाग्य को सराहती है कि उनका आत्मज राम की सेवा में लीन है—

भूरि भाग भाजन भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ।।[6]

सुमित्रा का उपदेश माननीय है—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुतुहोई।।
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी।।
तुम्हरेहिं भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं।।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू।।[7]

नारी लोकार्थ प्रेरणादायक है। पूर्वाचार्यों ने सुमित्रा को आचार्य-रूप में स्वीकार किया है। आचार्य स्वरूपा सुमित्रा के अमृतोपम उपदेश लक्ष्मण की रामपदप्रीति और

---

१. मानस–२/७/३
२. गीतावली–२/५१
४. मानस–२/७३/२-३
५. वाल्मीकीय रामायण–२/३३
६. मानस–२/७४/१
७. मानस–२/७४/१-४

दृढ़ हो गयी। श्रुति के—'आचार्यवान् पुरुषो वेद' प्राप्य वरान् निबोधत तथा गीता के 'तद्विद्धि प्रणिपातेन' के अनुसार भी इसी बात का प्रतिपादन होता है। आचार्यस्वरूपा माता का उपदेश स्मरणीय है—

रागु रोषु इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।।[1]

साथ ही जननी, जनक तथा अवध के आनन्द की सुधि राम को न आये, इसके लिए भी वे लक्ष्मण को उपदेशित कर रही हैं—

उपदेसु यह जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।।
तुलसी प्रभुहि सिख अरयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिराम अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।।[2]

माता ने लक्ष्मण को वन-गमन की आज्ञा और रामसेवा करने की शिक्षा तथा सीताराम के चरणों में नित्य-नवीन प्रीति का आशीर्वाद भी दिया। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अनुसार वन-गमन के अवसर पर लक्ष्मण को प्रणाम करते अवलोक कर सुमित्रा ने उनका मस्तक सूँघकर कहा—तुम अपने परम सुहृद राम के परमानुरागी हो। विधाता ने तुम्हारी सृष्टि वनवास हेतु की है अथवा मैंने तुमको वनवास के लिए ही उत्पन्न किया है। अपने श्रेष्ठ भ्राता के वन में विचरण करते समय उनकी सेवा में प्रमाद नहीं करना। सुमित्रा के अपार त्याग का परिचय उस समय मिलता है, जिस समय हनुमान द्वारा लक्ष्मण की मूर्च्छा का समाचार मिलता है—

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाल संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरेहैं।।
सुवन-सोक, संतोष सुमित्रहि, रघुपति-भगति बरे है।
छिनछिन गात सुखात, छिन हिछिन हु लसत होत हरे हैं।।
कपिसों कहति सुभाय, अंब के अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि घनु दूसरे हैं।।
तात! जाहू कपि संग, रिपुसूदन अठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधि सुढर ढरे हैं।।
अब-अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं।।[3]

माता सुमित्रा का वात्सल्य-प्रेम अमर है। वे कहती हैं—

---

[1] मानस–२/७४/५-६ [2] मानस–२/७४/८ [3] गीतावली–६/१३

पगनि कब चलि हौ चारौ भैया?
प्रेम-पुलकि, उर लाइ सुवन सब, कहति सुमित्रा मैया ।।[१]

महर्षि वाल्मीकि के अनुसार जब महारानी कौसल्या राम-वियोग में करुण-विलाप करने लगीं, तब सुमित्रा ने धार्मिक वाणी द्वारा कौसल्या को आश्वासन दिया—

विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम ।
इयं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत् ।।[२]

सुमित्रा का कथन है—

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा ।।
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे ।।[३]

परम विदुषी तथा तत्त्वज्ञा सुमित्रा स्वयं असूयाविरहित स्नेहास्फालित राजरानी हैं। अपनी सपत्नी कौसल्या के प्रति वे बहन का प्रेम रखती है, तभी तो वे कौसल्या के लिए 'जीजी' शब्द का प्रयोग कर उन्हें आश्वस्त करती हैं—

कीजै कहा, जीजी जू! सुमित्रा परिपायँ कहै,
तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु हैं'.....।[४]

अवधेश की द्वितीय महारानी सुमित्रा सभी उत्तमोत्तम गुणों से समलङ्कृत हैं। उनके धीरज, त्याग, प्रेम, स्नेह, सेवा तथा तपोनिष्ठ जीवन से आज का नारी-लोक पथ-प्रदर्शन प्राप्त करता हुआ अपने जीवन को उनकी कीर्तिकिरणों से सतत् आलोकित करता रहेगा—अन्त में, जो तिय सुमित्रा का सप्रेम नामस्मरण करेगी, उसे लक्ष्मण-शत्रुघ्न-सा सुमन तथा पति पद-प्रेम प्राप्त होगा—

सुमिरि सुमित्रा नाम जग, जे तिय लेहिं सुनेम ।
सुवन लखन रिपुवदन से, पावहिं पति पद प्रेम ।।[५]

सीता—अनावृष्टिसम्भूत दुर्भिक्षवारणार्थ राजा जनक जी अपनी पुरी में कृषिकर्म-निष्पादित कर ही रहे थे कि सहसा धरती से सीता निकल पड़ी। राजा ने उन्हें अपनी पुत्री बना लिया और उनका नाम जानकी रखा।

जनश्रुति के अनुसार शिव-धनुष जिस स्थान पर रखा रहता था, उस स्थान की सफाई का कार्य सीता ही किया करती थीं। उसी क्रम में एक बार उन्होंने धनुष को

---

[१] गीतावली–१/९
[२] वा० रामायण–२/४२
[३] वाल्मीकि रामायण–२/४६
[४] तुलसी कवितावली।
[५] तुलसीदास (रामाज्ञा प्रश्न)–३/२

उठाकर उस स्थान को साफ-सुथरा कर दिया ।... उनकी शक्ति, स्वच्छता, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा गृहकला-कुशलता को देखकर राजा जनक ने प्रतिज्ञा कर ली कि 'उस धनुष को तोड़ने वाले वीर-पुरुष के साथ ही अपनी इस भूमिजा पुत्री का पाणि-ग्रहण संस्कार करेंगे । यथावसर 'सीता-स्वयंवर' हुआ । राम ने शिवधनुष का भञ्जन किया । तदुपरान्त सीता ने अपनी वरमाला पहना दी और इस प्रकार सीता-राम-विवाह सम्पन्न हुआ ।

राम के साथ सीता अयोध्या आयीं । कुछ ही दिनों के उपरान्त राम के साथ वे वन में चली गयीं । आरम्भ में सीता को अनसुया ने पातिव्रत्य का उपदेश दिया । पञ्चवटी-निवास के समय कनक मृग बनकर मारीच ने छल किया । सीता ने 'कनकमृग' देखकर राम से कहा—हे नाथ! इस मृग का चर्म बड़ा सुन्दर होगा, कृपया इसको मारकर ले आइए । राम कनकमृग को मारने चल पड़े । इसी बीच रावण ने सीता का हरण कर लिया और उनको लङ्का की अशोकवाटिका में कैद कर दिया ।

सीता को अशोकवाटिका में अकथनीय कष्टों को झेलना पड़ा । इसी बीच हनुमान जी लङ्का पहुँच गये और सीता की सुधि लेने अशोकवाटिका में आ गये । सीता ने उन्हें पुत्र जानकर आशीर्वाद दिया और हनुमान के प्रत्यागमन के समय उन्होंने राम के पास अपनी वेदना भेजी । तदुपरान्त राम ने लङ्का पर चढ़ाई की और राक्षससहित रावण को संग्राम में मार डाला । अयोध्या वापस होते समय राम ने सीता की 'अग्नि-परीक्षा' ली । वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो गईं । उसके बाद वह अपने पतिदेवता के साथ अयोध्या गई और पातिव्रत्य-धर्म में संलग्न हो गई । कालान्तर में उन्हें दो पुत्र हुए—(१) लव और (२) कुश ।

दुइ सुत सुन्दर सीताँ जाए । लव-कुस बेद पुरानन्ह गाए ।।[1]

दोनों विजयी, विनयी तथा गुण-मन्दिर थे—

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर । हरि प्रतिबिंब मानहँ अति सुंदर ।।[2]

अन्त में कहा जा सकता है कि सीता अपने-आप में एक **'पूर्ण नारी'** हैं ।

अनसूया—अनसूया सती-साध्वी नारी थी । इनके पिता का नाम महर्षि कर्दम तथा माता का नाम देवहूति था । उनके अनुज कपिल मुनि सांख्यदर्शन के प्रणेता थे । अनसूया को सत्य, शील, सदाचार, धर्म, लज्जा, विनय, क्षमा, कष्ट, सहिष्णुता और तपादि उत्तमोत्तम गुण विरासत में मिले थे । इनका पाणि-ग्रहण ब्रह्मा के मानस-पुत्र महर्षि अत्रि से हुआ । परमपतिव्रता अनसूया ने अपनी तपस्या से चित्रकूट में अपने आश्रम के समीप पुण्यप्रकाशिनी तथा पापतापविनाशिनी मन्दाकिनी को प्रवाहित कर दिया ।

---

[1] मानस-७/२४/६

[2] मानस-७/२४/७

अनसूया की दृष्टि में नारीजाति के लिए पतिसेवा से बढ़कर दूसरा धर्म कोई नहीं है— **एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ वचन मन पति पर प्रेमा।।**[१]

उन्होंने अपने पतिव्रत के बल पर ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश को छः-छः मास का शिशु बनाकर अपनी गोद में रख लिया और उन लोगों को अपना स्तनपान कराया। उनकी पतिभक्ति के समक्ष ब्रह्माणी, लक्ष्मी तथा सती ने घुटने टेक दिये और उन्हें माता कहकर उनसे क्षमा-याचनाएँ कीं। त्रिदेवा: (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) ने चन्द्रमा, दत्तात्रेय तथा दुर्वासा के रूप में उनके मातृत्व को सहर्ष स्वीकार किया।

अनसूया चारित्रिक शिक्षिका थी। उनका कार्य था— 'नारीजाति को आदर्श चरित्र-शिक्षा प्रदान करना।' वनवास के समय रामलक्ष्मण और सीतासहित अत्रि-आश्रम में गये। अत्रि मुनि ने राम से अनसूया का कीर्त्ति कीर्त्तन किया और कहा कि अनसूया देवी तुम्हारी माता तुल्य हैं। सीताजी इनके निकट जाकर शिक्षा ग्रहण करें। राम की आज्ञा से सीता अनसूया के समीप गयीं और उनके चरणों को पकड़ कर प्रणाम की—

अनसूइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता।।[२]

कुशल-क्षेम पूछने के बाद उन्होंने सीता जी को पतिव्रत-धर्म का उपदेश दिया—

नगरस्यो वनस्यो वा शुनो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियोभर्त्ता तासां लोका महोदयाः।।
दुशीलः कामवृत्तो धनेर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यत्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।[३]

मानस में महाकवि तुलसीदास जी ने अनसूया के उपदेश का प्रभावशाली वर्णन निम्न शब्दों में किया है—

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहूँ आन पुरुष जग नाहीं।।
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।।
बिनू अवसर भय तें रह जोई। जाने अधम नारि जग सोई।।
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।।
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई।।
पति प्रतिकूल जनम जह जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।।[४]

---

[१] मानस–३/४/१०
[२] मानस–३/४/१
[३] वाल्मीकीय रामायण–२
[४] मानस–३/४/११-१९

तथा—**सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।**
जसु गावत श्रुति चारि अजहु तुलसिका हरिहि प्रिय ।।[१]

पति भक्तिन सीता पर प्रसन्न सती अनसूया ने उन्हें हार-वसन, आभूषण तथा अङ्गरागादि दिया और आशीर्वाद प्रदान कर सप्रेम विदा किया। इस प्रकार उपयुक्त उल्लेखों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि आज की नारियों के बीच सती अनसूया की अहर्निश आवश्यकता है।

(क) वनचर पात्र

वानर—वनचर प्राणी होने के कारण वानर को 'वनमानुष' कहा जाता है। मानस में वर्णित वानरों की नीचे सूची दी जाती है—

(१) हनुमान्   (२) सुग्रीव   (३) बालि   (४) अंगद
(५) द्विविद   (६) मयंद   (७) नील   (८) नल
(९) गद   (१०) विकटानन   (११) दधिमुख   (१२) केहरि
(१३) निसठ   (१४) सठ।

किन्तु, तुलसीदास ने तो मानस में अट्ठारह पदुम वानर सेनापति की चर्चा की है— **अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह यूथप बंदर ।।**[२]

इसके आधार पर अन्य वानरों की भी सूची निम्नस्थ है—

(१५) प्रजंघ   (१६) जंभ   (१७) रभस   (१८) शरभ
(१९) पनस   (२०) तार   (२१) नाग   (२२) प्रिय दर्शन
(२३) दुर्धर   (२४) गवाक्ष   (२५) संनादन   (२६) सुखेन
(२७) कुमुद   (२८) शरभ   (२९) बलिमुख   (३०) मैंद
(३१) जम्भ   (३२) गव   (३३) ग़व़य   (३४) ऋषभ
(३५) दुर्जय   (३६) सुषेण   (३७) सुकंठ   (३८) अंडक
(३९) वसंत   (४०) विकट   (४१) दुर्गंध   (४२) कुन्द
(४३) दुरधर्षण   (४४) अनल   (४५) तारक   (४६) केसरी
(४७) रंभ   (४८) दुर्मुख   (४९) दशमुख   (५०) कुंजर
(५१) विजय   (५२) शतबलि   (५३) उल्का मुख   (५४) गवय
(५५) वेगदर्शी   (५६) तार।

वानरी—(५७) सुग्रीव की पत्नी रुमा (५८) बाली की पत्नी तारा तथा (५९) केसरी की पत्नी अञ्जनादि। किन्तु मुख्य रूप से प्रमुख वानर-वानरी

---

[१] मानस-३/५ क

[२]

की ही विवेचना मानस में है, यथा—(१) हनुमान, (२) बालि, (३) सुग्रीव, (४) अंगद, (५) नील-नल और (६) तारा आदि।

हनुमान

जन्म-कथा—शापग्रस्ता अञ्जना नामक अप्सरा के पति एवं सुमेरु पर्वत के राजा केसरी की अनुपस्थिति में अञ्जना के साथ वायु ने रमण किया, जिसके फलस्वरूप चैत्र मास के शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि एवं मघा नक्षत्र में हनुमान का जन्म हुआ; किन्तु कल्पभेद से उनका जन्मदिवस चैत्र पूर्णिमा माना जाता है—

महाचैत्री पूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः। वदन्ति कल्प भेदेन बुधा इत्यादि केचन।।[1]

हनुमान के विभिन्न नाम एवं उन नामों की सार्थकता—वाल्मीकीय रामायण में हनुमान को 'वायुपुत्र' कहा गया है। महाभारत में हनुमान को पाँच बार मारुतात्मज, तीन बार पवनात्मज, दो बार अनिलात्मज, एक बार वायुपुत्र और एक बार वायु-तनय कहा गया है। महाकवि तुलसी दास ने रामचरितमानस में हनुमान को 'हनुमान, कपि, पवनसुत, हनुमंत, मारुसुत, पवनतनय, हनुमत पंवनकुमार, रामदूतादि संज्ञा से विभूषित किया है।

(क) अति सुभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना।।[2]
(ख) सुनु 'कपि' जियँ मानसि जनि ऊना। तै मम प्रिय लछिमन ते दूना।।[3]
(ग) देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीती सब सूला।।[4]
(घ) तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाई।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाई।।[5]
(च) अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा।।[6]
(छ) पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई।।[7]
(ज) हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपा निधाना।।[8]
(झ) आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवन कुमारा।।[9]
(ट) रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुणा निधान की।।[10]

विभिन्न नामों की सार्थकता—वाल्मीकीय रामायण में 'किष्किन्धा काण्ड' के

---

[1] आनन्द रामायण सार०–१३/१६२
[2] रामचरितमानस–४/३
[3] रामचरितमानस–४/२/७
[4] रामचरितमानस–४/३/१
[5] रामचरितमानस–४/४/१
[6] रामचरितमानस–४/१८/४
[7] रामचरितमानस–४/१९/९
[8] रामचरितमानस–४/२२/१२
[9] रामचरितमानस–५/१/३
[10] रामचरितमानस–५/१२/९

सर्ग ६६ के अनुसार हनुमान की जन्म-कथां निम्नस्थ है—पूञ्जिकस्थला नामक अप्सरा शापित होकर वानरयोनि में पैदा हुई। वह कुञ्जर की पुत्री अञ्जना के रूप में प्रकट होकर केसरी की पत्नी बनी। कामरूपिणी होने के कारण उसने किसी दिन रूप-यौवनसम्पन्न मानव-शरीर धारण कर लिया। मारुत ने उसे देखा और आसक्त होकर उसका आलिङ्गन किया—

मनसास्मि गतोयत्त्वां परिष्वज्य यशस्विनि।
वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ।।१८।।
महासत्वो महातेजा महाबल पराक्रमः।
लंघने प्लवने चैव भविष्यति मया समः ।।१९।।

वर फलित हुआ।

'हनुमान' नाम की सार्थकाता—उदित सूर्य को लाल फल समझकर शिशु हनुमान आकाश में कूद पड़े। इन्द्र ने उस पर वज्राघात किया। वे पहाड़ की चोटी पर गिर गये, जिसके कारण बाँयी ठोढ़ी टूट गई। इसीलिए उसका नाम 'हनूमान' पड़ा।

वायुपुत्र—रामायण में हनुमान समुद्र लाँघते हैं। सीता का पता लगाते हैं और अन्य वानरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान तथा कार्य कुशल माने जाते हैं। अद्भुत रस से परिपूर्ण उस चरित्र-चित्रण का ध्यान रखकर उनको 'वायुपुत्र' (विद्याधर, ऐन्द्रजालिक) की उपाधि मिल गई होगी।[१] विनय पत्रिका में तुलसीदास जी ने हनुमान को 'काव्य-कौतुक-कला-कोटि-सिंधो कहा है।[२] रामचरितमानस में हनुमान को प्राय: पवनसुत या इसके पर्यायवाची शब्द की उपाधि दी गयी है। वायु की गति तथा शक्ति हनुमान में थी। इसीलिए पवन-तनय तथा इसके अन्य समानार्थक नाम तुलसीदास जी ने दिया है।

हनुमान की विरुदावली—हनुमान नामक पराक्रमी वानर वायुदेव के औरस पुत्र हैं, जिनकी काया वज्रोपम हैं। वे सभी वानरों में बुद्धिवरिष्ठ हैं—

मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनूमान नाम वानरः। वज्रसंहननोपेतो वेनतेयसमौ जवे।
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि ।।[३]

वे अतुलित बलधाम, स्वर्ण शैलाभ वपु, दनुज-वन-कृशानु, ज्ञानिनामग्र-गण्य, सकल गुणनिधान, वानराधिपति तथा रघुवर श्रीराम के प्रियतम भक्त हैं—

अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल गुणनिधानं वानरीणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।[४]

---

[१] जर्मन ऑरियेंटल जर्नल, भाग-९३, पृ०-८९
[२] विनय-पत्रिका–२८/५
[३] वाल्मीकीय रामायण–१/१७/१६
[४] मानस–५, मङ्गलाचरण श्लोक-३

रामायण की परम्परा नमस्कार के प्रसङ्ग में हनुमान् के देवत्व तथा रामदूततत्त्व की स्पष्ट झलक मिलती है—

गोष्पदीकृतवाराशं मशकीकृतराक्षसम्। रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्।।
अञ्जनानन्दं वीरं जानकीशोकनाशनम्। कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम्।।
उल्लङ्घ्यसिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदायतेनैव ददाहलङ्कां नमामि तं प्राञ्जनेयम्।।
आञ्जनेयमति पाटलाननं काञ्चनाद्रि कमनीयविग्रहम्।
पारिजात तरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम्।।
यत्र यत्र रघुनाथ कीर्त्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्ण लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्।।
मनोजवं मारुत तुल्य वेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि।।[१]

शौर्यवान्, दक्ष, बलिष्ठ, धैर्यवान् अतुल प्रज्ञापयोधि, नीतिज्ञ हनुमान अद्वितीय हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने अगस्त्य ऋषि से इनके सम्बन्ध में कहा था—

शौर्यं, दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्। विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः।।[२]

हनुमत्-नस्कार के समय हनुमान जी के अनुकरणीय गुणों का आत्मावधान साधना तथा तपश्चर्या के द्वारा ही सम्भव है।

हनुमान का दीक्षा-संस्कार—हनुमान का दीक्षा-संस्कार राम-द्वारा सम्पन्न हुआ, जिसके कारण हनुमान ने चार तरह की दीक्षाएँ प्राप्त कीं—

(१) मानस दीक्षा— **सुनु सुत तोहि उऋण मैं नाहीं।**
देखेउँ करि विचार मन माहीं।।[३]
(२) वाक्दीक्षा— **सुनु कपि तोहि समान उपकारी।**
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी।।[४]
(३) चक्षु दीक्षा— **पुनि पुनि कपिहिं चितव सुरत्राता।**
लोचन नीर पुलक अति गाता।।[५]
(४) स्पर्श दीक्षा— **प्रभु कर पंकज कपि के सीसा।**
सुमिरि सो दशा मगन गौरीसा।।[६]

---

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण : पाठ विधि, गीता प्रेस।
२. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण–७/३५/३
३. मानस–५/३१/७
४. मानस–५/३१/५
५. मानस–५/३१/८
६. मानस–५/३२/२

परम धाम प्रयाणावसरपर राम ने कहा—

मत्कथा प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर।
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयः।।

हनुमान जी ने भावाभिभूत होकर स्वीकार करते हुए कहा—

यावत् तव कथा लोके विचरष्यति पावनी।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।।

अस्तु, कीर्तिकाय हनुमान जी अपने स्वामी-गुरु राम की जनकल्याणी अनुमति का अनुपालन तब तक करते रहेंगे, जब तक मानव इस धराधाम पर रामचरित का गायन करता रहेगा।

हनुमान का रूप-निरूपण—

देह का वर्ण (रंग)—तुलसीदास के अनुसार हनुमान 'कनक-भूधराकार' तथा 'स्वर्ण शैलाभदेहम्' हैं—

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयङ्कर अतिबलवीरा।।[1]
अतुललित बलधामं हेमशैलाभदेहं।

× × ×[2]

उन्हें 'रुक्म वर्ण', 'नील वर्ण', 'स्फटिक वर्ण' तथा 'लाल वर्ण' कहा गया है। उनकी अङ्ग कान्ति गिरती हुई क्षणदासदृश पिङ्गल वर्ण की है। 'हनुमान चालीसा' में तुलसी दास ने उन्हें 'लाल देह लाली लसै' कहा है।

उनकी देह में अङ्गराग, मस्तक और कन्धे—हनुमान का अङ्गराग सिन्धूर है—*'रक्तचन्दनपुष्पैश्च सिन्दूराद्यैः समर्चयत्'*।[3] उनके जटाजूट मस्तक पर मणिमय टोपी है।[4] इनके स्कन्ध चौड़े तथा पुष्ट हैं।

कटि, कर्ण एवं गला—तन का मध्य भाग एवं कटि प्रदेश सिंह की कटिसम क्षीण है। मूँज की करधनी है। रत्न कुण्डों से शोभित उनके लाल कर्ण हैं। गले में श्रेष्ठ हार है। वे 'यज्ञोपवित' धारण किये हुए हैं। वे वज्रकोपीन पहने हुए हैं।

होंठ—उनके होंठ छोटे हैं। **रोमावली**—उनकी रोमावली सघन है।

मुँह और जीभ—उनका मुँह और जीभ ताम्बासदृश है।

दाँत—उनके दाँत बिजली की तरह चमकते हैं। वे केशरों की क्यारी में अशोक पुष्प के गुच्छे सदृश हैं।

---

[1] रा०च०मा०–५/१५/८ [2] रा०च०मा०–५/३ [3] नारदपुराण, पूर्व–७४/४४
[4] विनय-पत्रिका—'कपिश-कर्कश-जटाजूटधारी'–२८/२

परिधान—वे पीताम्बर धारी हैं। अभिनव वाल्मीकि तुलसीदास ने हनुमान के मङ्गलमय रूप का वर्णन 'हनुमान वाहुक' में इस प्रकार किया है—

स्वर्ण-सैल-सङ्कास कोटि रबि-तरुन-तेज-घन।
उर-विसाल, भुजदंड चंड नख, बज्र बज्रतन।।
पिंग नयन, भृकुटी कराल, रसना दसनानन।
कपिस केस करकस लंगूर, खल-दल-बल-भानन।।
कह तुलसीदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति विकट।
संताप पापतेहि पुरुष पहिं सपनेहुँ नहिं आवत निकट।।[१]

हनुमान अष्ट सिद्धियाँ सिद्ध कर चुके हैं। यही कारण है कि उनका रूप और आकार निश्चित नहीं है। वहीं वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं, तो कहीं वृहत् से भी वृहत्। उनका मुँह कभी पाटल सम है, तो कहीं माणिक्य एवं प्रवालसम है।

कामरूप हनुमान—वे कहीं वानर हैं, तो कहीं मानव। नराकार तथा वानराकार में प्रकट हनुमान सूक्ष्म, विकट और भीमकाय हैं। राम के सेवक के रूप में वे मानव शरीर धारण करते हैं। वे किष्किन्धा में राम-मिलन के समय विप्ररूप धारण करते हैं—

बिप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ।।[२]

और लङ्का में 'मसक' का रूप ग्रहण करते हैं—.

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।[३]

पुराणों और नाना रामायणों के मतानुसार वे कहीं विप्र, कहीं वटुक, कहीं संन्यासी, कहीं भिक्षु तथा कहीं तापसादि रूपों में चित्रित हैं।

केश—इनके अंगों का केश पीला है—***वज्राङ्गं पिङ्गकेशाढयं स्वर्ण कुण्डल-मण्डितम्।***[४] **आँखें**—किञ्चित् लालिमा युक्त पिङ्गल रंगी हैं, किन्तु क्रोध के क्षणों में वे लाल हो जाती हैं। **नाक**—उनकी नाक बहुत बड़ी है—***वृहन्नासः।***[५] **जीभ**—उनकी जीभ लाल है। माधुर्य गुण पूरित वाणी उनकी जिह्वा का दिव्य अलङ्कार है। **गाल**—उनका गाल भी अजब ही है— **रजायसु राम को जब पायो।**

गाल मेलि मुद्रिका, मुदित मन, पवनदूत सिर नायो।।[६]

होठ—बिम्बज्वलितोष्ठ मेकमवलम्बे।[७] **दाँत**—शुक्लदंष्ट्रोऽनिलात्मजः।[८]

---

१. हनुमान बाहुक–२ (तुलसीदास)।
२. मानस–४/सो०/चौ०-६
३. मानस–५/३/१
४. मन्त्रमहार्णव, पृ०-१८४
५. श्री हनुमत्सहस्रनामस्त्रोत १५वाँ श्लोक।
६. तुलसीदास (गीतावली) सुन्दरकाण्ड
७. हनुमत्पञ्चरत्न–३
८. वा०रा०–५/१/६२

हनु—इनका 'हनु' नाम, रूप और लीला के क्षेत्र में कमाल करती है। हनुमान इन्द्र के वज्राघात से उदयाचल पर गिर पड़े, जिसके कारण उनकी एक हनु कुछ कट (खण्डित) गई और दृढ़ हो गई। इसके बाद पवन-पूत हनुमान के नाम से विश्वविख्यात हुए। **कण्ठ**—दिव्य मणिमालाओं तथा हारों से सुशोभित हैं। वे 'मणिग्रीवः' हैं।[१] **रोमावली**—इनकी स्वर्णवर्ण की रोमावली है। इन्हें 'पिङ्गरोमा' कहा गया है।[२] **स्कन्ध**—इनके स्कन्ध द्वय बलिष्ठ हैं, जिनमें जनेऊ शोभता है— **कांधे मूँज जनेऊ साजै।**[३] **छाती**—उनकी छाती वज्र के सदृश कठोर है। **हृदय**—उनके हृदय में धनुषधारी राम वास करते हैं—

प्रनवउँ पवन कुमार खलवन पावक ज्ञानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।[४]

राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजन सुत बल भाषी।।[५]

पीठ—उनकी पीठ तो रामासन है—

एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई।।[६]

बाहु—वे 'आजानुबाहु' हैं। उनकी भुजाएँ राम-चरण सेवा में रत रहती हैं, राक्षसों का नाश करने में तत्पर रहती हैं तथा सज्जनों को अभयदान देती हैं।

पंजे—उनके पंजे दुष्टों का नाश करते हैं। **मुठिका**—उनकी मुठिका में अपार शक्ति है। **करतल**—वे अपने करतलप्रहार से दुश्मनों का हौसला पस्त करते हैं। उन्होंने करतल-प्रहार से ही जम्बुमाली नामक राक्षस के रथ को तोड़ दिया।[७] **अंजलि**—वे अपनी अंजलि से राम की सेवा करते हैं। **कटि-प्रदेश**—उनका कटि प्रदेश पतला है। वे कटिप्रदेश में वज्र कोपीन धारण किये हुए हैं।

पूँछ—उन्होंने पूँछ से अग्निप्रज्वलित कर लङ्का जला दिया, राक्षसों का मानमर्दन किया तथा लक्ष्मण के प्राण रक्षणार्थ पूँछ के अग्र भाग पर द्रोणाचल पर्वत को देखकर एक लम्बी दूरी तय कर लङ्का में प्रवेश किया। वे दीर्घ लाङ्गुलधारी हैं। तुलसी दास के शब्दों में—हे भोलानाथ! (रुद्र रूप-हनुमान) मेरी बाँह पर अपनी लम्बी पूँछ फेरिये, जिससे मेरा कष्ट मिट जाय। हनुमान ने वैसा ही किया, जिससे तुलसीदास की बाँहों की पीड़ा मिट गई। हनुमान ने ही कहा है—

ममोरुजघावेगेन भविष्यति समुत्थितः। समुत्थित महाग्राहः समुद्रो वरुणालयः।।[८]

---

[१] हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र–९४वें श्लोक

[२] हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र–३२

[३] तुलसीदास (हनुमान चालीसा)।

[४] तुलसीदास (मानस)–१ सो०

[५] तुलसीदास (मानस)–६/५५

[६] तुलसीदास (मानस)–४/३/५

[७] वा०रा०–६/४३/२२

[८] वा०रा०–४/६७/१३

चरणद्वय—इनके चरणद्वय सज्जनों के प्राणाधार हैं। राम ने लक्ष्मण से कहा कि हनुमान के ललाट, भौं, नेत्र, मुख तथा अन्य किसी भी अंग में दोष नहीं है—

न मुखे नेत्र योर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥[१]

अन्त में कहा जा सकता है कि हनुमान जी का रूप दिव्य तथा अद्भुत है, जिसमें दोष-दूषण कदापि नहीं।

मानस के मुख्य मुष्टिप्रहारक हनुमान—वानरजाति मुष्टि प्रहार में विख्यात है। हनुमान को मुष्टिप्रहारविद्या विरासत में ही मिली है। वे वानर वंश के सर्वोत्तम मुष्टि-प्रहारक हैं। उन्होंने चार वीरों पर मुष्टि प्रहार किया है—

(१) **लङ्किनी**—लङ्कानगरी की अधिष्ठात्री देवी लङ्किनी पर हनुमान ने प्रथम बार मुष्टि-प्रहार किया—**मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥**[२]

(२) दूसरी बार हनुमान ने मेघनाद को अशोकवाटिका में मुक्का मारा—

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥[३]

(३) तीसरी बार रावणानुज कुम्भकर्ण को हनुमान ने मुक्का मारा—

तव मारुतसुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो॥[४]

(४) चौथी बार रावण को हनुमान ने मुक्का मारा—

मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
मुरुछागै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥[५]

मुष्टिका प्रहार का दार्शनिक विवेचन—एक-एक अङ्गुली का अपना अलग महत्त्व, प्रभाव और कर्तृत्व है। पाँच अङ्गुलियों की समवेत शक्ति ही मुष्टिका है। तात्त्विक दृष्टि से पाँच अङ्गुलियाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियों की प्रतीक हैं। पाँच अङ्गुलियों को मोड़कर एक स्थान पर स्थिर करने से 'मुष्टिका' बनती है। अङ्गुष्ठ में अग्नि-तत्त्व, मध्यमा में आकाश-तत्त्व, तर्जनी में वायु-तत्त्व, अनामिका में जल-तत्त्व और कनिष्ठा में पृथ्वी-तत्त्व स्थित है। इन पाँच तत्त्वों की समष्टि (मुड़कर एक होना) ही 'मुष्टिका' है। ब्रह्मचारी तथा संयमी योगी (बज्र-अंगी) बजरंगी का मुक्का तो अशनि ही था।

हनुमत-गर्जना—हनुमान की गर्जना सुनते ही निशिचर-नारियों के गर्भ स्रवित हो गये—**चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥**[६]

हनुमान और अशोकवाटिका—हनुमान ने अशोकवाटिका में चार बार राक्षसों से युद्ध किया—(१) **प्रहरी भट**—हनुमान की प्रथम लड़ाई प्रहरी भटों से हुई। इसमें

---

[१] वा०रा०–४/३/३०
[२] मानस–५/३/४
[३] मानस–५/१८/८
[४] मानस–६/६४/७
[५] मानस–६/८३/२-३
[६] मानस–५/२७/१

इन्हें साधारण रण भी नहीं करना पड़ा। (२) यह लड़ाई लङ्कापति रावण द्वारा प्रेषित जाने-माने भटों (८० हजार किंकर नामक राक्षस, प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली, ७ मन्त्रिपुत्र तथा ५ सेनापतियों) के साथ हुई। इसमें उन्हें थोड़ा रणोत्साह आया। (३) तीसरी लड़ाई महाभट अक्षय कुमार के साथ हनुमान की हुई। उन्होंने रावण-सुत अक्षय कुमार का वध अशोकवाटिका में ही कर दिया और भीषण गर्जना हनुमान ने की। (४) दारुण भट तथा अतुलित योद्धा मेघनाद के साथ हनुमान का चौथा युद्ध हुआ। अशोकवाटिका की ओर मेघनाद को आते देखकर हनुमार ने एक ही बार में तीन आङ्गिक क्रियाएँ कीं— **कपि देखा दारुन भट आवा। कटकेटाइ गर्जा अरु धावा।।**[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि हनुमान महान् योद्धा थे।

हनुमान और उनके विचित्रायुध—हनुमान के निम्नलिखित आयुध हैं—

१. दाँत-काटना, २. हाथ–थप्पड़ मारना, मुक्का मारनादि, ३. लात-मारना (चरणायुध), ४. लाङ्गूल–लपेट कर पटकना, ५. नख–निचोड़ना, ६. वृक्ष–उखाड़कर मारना, ७. पर्वत–उखाड़कर मारना, ८. गदा–मारकर चूर-चूर करना, ९. ध्वजाधारी। इन्हीं विचित्र आयुधों के बल पर हनुमान जी संग्राम में सर्वदा अजेय रहे हैं।

वैद्य हनुमान—

रावनु सो राजरोगु बाढ़त विराट उर, दिन–दिनु बिकल, सकल सुख राँक सों।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध मुनि, होत न बिलोक, औत पावै न मनाक सों।।
राम की रजाई सें रसाइनी समीर सूनु उतरि पयोधि–पार सोधि सर वाक सों।
जातुधान–बुट पुटपाक लंक जात रूप–रतन जतन जारि कियो है मृगांक सों।।[2]

रामचरितमानस में हनुमान अपने सखाओं की अपेक्षा अधिक वीर तथा बुद्धिमान हैं, किन्तु यह स्थापना युक्ति युक्त है कि हनुमान रामकथा के अन्य वानरों की भाँति वानर गोत्रीय आदिवासी मनुष्य ही थे, पशु नहीं। 'इंगलैंड के एक वैज्ञानिक डारविन ने जब से यह सिद्ध कर दिया कि आदमी, बन्दर से बढ़कर आदमी हुआ है, सबसे विकासवाद के सिद्धान्त पर यह मानने की प्रथा चल पड़ी है कि मनुष्य के पूर्वज बन्दर की योनि से निकले थे'।[3] अतः स्पष्ट है कि हनुमान मनुष्य ही थे, पशु कदापि नहीं।

हनुमान का व्यक्तित्व, कृतित्व एवं उनकी विशेषताएँ

पराक्रम—बल पराक्रम से पूर्ण हनुमान के निम्नलिखित नाम उनके पराक्रम

---

[1] मानस–५/१८/४
[2] तुलसीदास (कवितावली), सुन्दरकाण्ड–२५
[3] श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर'–हमारी सांस्कृतिक एकता, शीर्षक–भारतीय जनता की रचना, पृ०-१८.

सूचक विशेषण हैं—वीर, वीर्यवान, महाबल, महाबाहु, महावेग, भीम विक्रम, अरिन्दम, बलवान, बलि, अतिबल, अतिमहाबल, बलवीर्य संकृत, महासत्त्व, सत्वान, सत्व सम्पन्न, समर्थ, दुर्घर्ष, गतश्रम, जितश्रम, अपरिश्रान्त, वज्रसंहनन, महाभुज, सुमहाबाहु, महाकाय, भीम, महोत्कट, भीमकर्मा, दुर्निवारण, तेजस्वी, सुमहातेजा, अमितौजसा, वेगवान, अतिवेग, वेगसम्पन्न, मारुततुल्यवेग, तरस्वी, माहत वेगविक्रम, मनोजव, आशुचर, घनतुल्य निःस्वन, मेघस्वन महास्वन, घननानंनिःस्वन, महावीर, महावीर्य, महोत्सा, विक्रान्त, चण्डविक्रम, अमितविक्रम, उत्तमविक्रम, विक्रम, पितृतुल्यविक्रम, वायुविक्रम, पितृतुल्य पराक्रम, मारुतविक्रम, गरुडानिल विक्रम, धीरपराक्रम, चणषपराक्रम, रणचण्डविक्रम, मनःसंतापविक्रम, परन्तप, अरिमर्दन, अरिसूदन, शत्रुकर्षण, परवीरघ्न, परवीरहन्ता, शत्रुविनाशन, शत्रुसैन्यानांनिहन्ता, शत्रुपराजयोचित, वानरानन, ऐन्द्रजालिक, विद्याधर।

कृतित्व—हनुमान राम-लक्ष्मण का सुग्रीव से परिचय कराते हैं—

नाथ सैल कर कपि पति रहई। सो सुग्रीव दास तब अहई।।[1]

वर्षाऋतु—विगत होते ही हनुमान सुग्रीव को उसके कर्त्तव्य की याद दिलाते हैं—

इहाँ पवनसुत हृदयँ विचारा। राम काजु सुग्रीवँ बिसारा।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु विधि तेहि कहि समुझावा।।[2]

राम की मुद्रिका लेकर लङ्का में सीता की खोज करते हैं। अशोकवाटिका उजाड़ देते हैं। राक्षसों का नाश करते हैं। लङ्का-दहन करते हैं। सीता का सन्देश लेकर राम के पास शीघ्र ही उपस्थित होते हैं। सुन्दरकाण्ड के नायक हनुमान जी ही हैं। लङ्काकाण्ड में युद्धवीर के रूप में हनुमान जी कमाल करते हैं। नख, दाँत, मुष्टिका ही उनके युद्धास्त्र हैं। वे पेड़-पौधे एवं पहाड़ों को उखाड़-उखाड़ कर शत्रु-सेना का नाश करते हैं। रावण हनुमान के मन्त्रित्व नामक विशेषण—सचिवोत्तम, मन्त्रिसत्तम, सुग्रीवसचिव, पिंगाधिप मन्त्री, कपिराज हितकर, प्लवंगाधिपमन्त्रिसत्तम, पिंगाधिपति का अमात्य।

प्रज्ञासूचक विशेषण—

(१) मतिमान्
(२) महामति
(३) प्राज्ञ
(४) महाप्राज्ञ
(५) सुमहाप्राज्ञ
(६) मेधावी
(७) बुद्धिमतांवरिष्ठ
(८) धीमान्
(९) तत्त्ववित्
(१०) साधुबुद्धि
(११) अचिन्त्य बुद्धि
(१२) वाक्यज्ञ

---

[1] १. रामचरितमानस–गो० तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं०–श्रीहनुमान प्र० पोद्दार, किष्किन्धा काण्ड–४/३/२

[2] २. रामचरितमानस–गो० तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्पादक–श्री हनुमान प्र० पोद्दार, किष्किन्धाकाण्ड–४/१८/१-२

(१३)वाक्यकोविद (१४)वाक्य विशारद (१५) वाक्य विदां श्रेष्ठ
(१६)प्रियवादी (१७)कार्यविदां वर (१८) सर्वशास्त्र विदांवर
(१९)सर्वशास्त्र विशारद।

वा०रा० के किष्किन्धा काण्ड में स्पष्ट: कहा गया है— *'निश्चितार्थोऽर्थ तत्त्वज्ञः कालधर्म विशेषवित्'* (४.२९.६) तथा *'विदिताः सर्वलोकास्ते'* (४.४४.४)। दक्षिणात्य उत्तरकाण्ड में हनुमान जी छन्द शास्त्र विशेषज्ञ के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। 'हनुमन्नाटक' के रचयिता हनुमान जी ही थे। 'विनय-पत्रिका' में तुलसी जी ने हनुमान जी को 'वेदान्तविद्' कहा है। हनुमान ने अपने इष्ट राम से दर्शन-सांख्य योग-योगादि की शिक्षाग्रहण की थी। अद्भुतरामायण के सर्ग १०-१५ इसके प्रमाण हैं।

श्री दिनेशचन्द्र सेन के अनुसार हनुमान ज्योतिषी एवं सङ्गीतज्ञ थे। महाभारत के अनुसार हनुमान-भीम-संवाद से सिद्ध है कि हनुमान गन्धर्वों तथा अप्सराओं द्वारा रामायण का प्रतिदिन गायन सुनते हैं। तुलसीदास जी ने 'विनय-पत्रिका' में हनुमान जी को 'गान-गुनगंधर्वजेता' (पृ० २९.४), 'सामगायक' (२८.५), 'सामगाताग्रनी' (२७.३) आदि की संज्ञा से अभिहित किया है। मानस में हनुमान को 'सकल-गुण-निधान' कहा गया है—'सकलगुणनिधानम्' के अन्त के बाद वे सीता के यहाँ जाकर सुख-संवाद देते हैं—**सब विधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा।।**[२]

भरत के पास राम-विजय का शुभ संदेश हनुमान जी ही ले जाते हैं। इनके दो कार्य सर्वाधिक प्रशंसनीय है—(१) लङ्का-दहन, (२) औषधि-पर्वत का आनयन। महाभारत के आरण्यक पर्व में भीम हनुमान का परिचय प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

भ्राता मम गुणश्लाध्यो बुद्धि सत्त्वबलान्वितः।
रामायणेऽतिविख्यातः शूरो वानरः पुंगवः।।[३]

आनन्द रामायण (८.७.१२३) में सभी वीरों को हनुमानावतार ही माना गया है—ये ये वीरास्त्वत्र भूम्यां वायुपुत्रांशरूपिण:। हनुमान–भीम–संवाद के आधार पर भीम की हार स्पष्ट है। हनुमान ने उन्हें चार युगों एवं चार वर्णों का धर्म सिखाया और महाभारत के भावी युद्ध में सहयोग का आश्वासन दिया। हनुमान ने अर्जुन का गर्व चूर्ण किया। आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड का 'हनुमता शर सेतु भङ्ग नामक १८वाँ अध्याय अर्जुन के मान मर्दन का ज्वलन्त प्रमाण है।

---

१. दि बंगाली रामायण, पृ०-५१
२. रामचरितमानस–गो० तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्पादक–श्रीहनुमान प्र०पोद्दार, १०६-७
३. महाभारत (अरण्य पर्व-अध्याय)–१४७/११

तुलसीदास जी ने 'विनय-पत्रिका' के २८.३ में गरुड़, सत्यभामा एवं सुदर्शन-चक्र के गर्व का भञ्जन हुआ है। चिरञ्जीवी-महाभारत के रामोपाख्यान में सीताजी हनुमान से कहती हैं— ***'रामकीर्त्या समंपुत्र जीवितं ते भविष्यति'*** । गो० तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड में सीता के मुख से हनुमान को अजर-अमर का वरदान दिलवाया है।

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहूँ बहुत रघुनायक छोहू।।[१]

रामायण के उत्तरकाण्ड में राम ने हनुमान को दो बार वर दिया है—

मत्कथः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर।
तावद्रामस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन।।३०।। (सर्ग १०८)

अभिषेकोपरान्त अयोध्या से विदा होते समय हनुमान ने राम से तीन वर की याचना की थी–अनन्य राम-भक्ति, चिरञ्जीवत्व एवं राम-कथा-श्रवण।

ब्रह्मचारी हनुमान—मैरावणचरितम् (अ० १०) के अनुसार लङ्का-दहनोपरान्त समुद्र में स्नान करते समय हनुमान के स्वेदयाश्लेष्मा को निगल कर एक मत्स्या गर्भवती हुई, जिससे मत्स्यराज उत्पन्न हुआ— ***'तिमिङ्गला हि मन्माता पिता च हनुमान'*** । किन्तु हनुमान जी इस पर आपत्ति करते हुए कहते हैं— हनुमान ब्रह्मचारीति विख्यातं भुवनेष्वपि। स्कन्दपुराण अवन्ती खण्ड, रेवाखण्ड, अ० ८३ में हनुमान को ब्रह्मचारी बतलाया गया है। पद्मपुराण (पातालखण्ड, अ० ४५) के रामाश्वमेध वृतान्त में हनुमान आजन्म ब्रह्मचारी होने के कारण ही शत्रुघ्न को पुनर्जीवित करते हैं—

अद्यहं ब्रह्मचर्यं च जन्मपर्यन्तमुद्यतः।
पालयामि तदा वीरः शत्रुघ्नो जीवतु क्षणात्।।[२]

आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड, सर्ग–१३ में हनुमान को 'कुमार ब्रह्मचारी' की संज्ञा मिली है। श्री हनुमत्सहस्रनामास्तोत्रम् में भी इन्हें ब्रह्मचारी तथा जितेन्द्रिय कहा गया है। तुलसीजी ने इन्हें 'मनमथमथन ऊर्ध्वरेता'[३] कहा है। पद्मपुराण (पाताल खण्ड ११२, १३५) में हनुमान को 'सुदृढ़ बद्ध-मौंजीकोपीन' तथा श्रीमारुतिस्तवराज (वेङ्कटेश्वर प्रेस) में मल्लमल्लकी (कौपीनधारी) कहा गया है। वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड, सर्ग-११/४१/४२ में उनके ब्रह्मचर्य का बड़ा सुन्दर वर्णन है—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते।।४१।।

---

[१] मानस–१६/२-३

[२] पद्मपुराण (पातालखण्ड), अ० ४५

[३] विनय-पत्रिका, गो०तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्पादक-श्रीहनुमान प्र० पोद्दार, २९/३

वा०रा० में हनुमान एक संयमी तथा धार्मिक चरित्र के रूप में सामने आते हैं। उन्हें महात्मा, महामनः संस्कारसम्पन्न, सुवर्त्मना, कृतात्मा आदि विशेषणों से सजाया गया है।

रामभक्त हनुमान—आदि रामायण के वीर-धीर-गम्भीर एवं विश्वासी राम-सेवक-हनुमान एक आदर्श रामभक्त के रूप में उपस्थित हुए हैं। वा०रा० के उत्तर काण्ड के सर्ग ४० में हनुमान द्वारा राम से तीन वरदान प्राप्त करने का उल्लेख है—(१) अनन्य राम-भक्ति, (२) चिरञ्जीवत्व तथा (३) रामकथा-श्रवण। वा०रा० के उत्तरकाण्ड (सर्ग-३९) में हनुमान का उदात्त चरित्र परिलक्षित है—***'राज्याभिषेकोपरान्त वानर सैनिक ते पिबन्ति'*** । एक महीने तक अयोध्या में फल के तत्त्व एवं मधु में डूबे हुए थे और हनुमान जी रामभक्ति में लीन थे, जिसके कारण एक महीना उनके लिए एक मुहूर्त्त बनकर ही रह गया—

ते पिबन्तः सुगंधीनि मधूनि मधुपिङ्गर्लाः।
मांसाऽनि च समृष्टानि मूलानि च फलानि च ।।२६।।
एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा।
ते सर्वे राम भक्त्या च मेमिरे ।।२७।।

देवता के रूप में हनुमान जी

देवत्व की उत्पत्ति—लगभग ८वीं शताब्दी से हनुमान को रुद्रावतार माना गया। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड के रचनाकाल से 'हनुमन्नाम-जप' प्रारम्भ हो गया था। १०वीं से १५वीं शताब्दी तक हनुमद्भक्ति का पुष्प पूर्णरूपेण खिल गया। उनके मन्दिर बनने लगे तथा मूर्त्तियों का निर्माण होने लगा। गोस्वामी तुलसीदासकृत बाहुक २१.२९.३४ इनके प्रमाण हैं। तुलसीदास जी का 'हनुमान-चालीसा' इनके गुणों का गायन है। गोस्वामी तुलसी दास जी की 'विनय-पत्रिका' (३०.३) में हनुमानजी सङ्कटमोचन बन गये—**सङ्कटसोच विमोचनी मूरती।**

द्वारपाल हनुमान—हनुमान मन्दिरों के द्वारपाल तथा गाँवों के संरक्षक के रूप में चिरश्रुत हैं। हनुमत्पूजा के दो रूप हैं—(१) वीरपूजा, जिसमें मूर्त्ति नहीं होती, (२) वानर की मूर्त्ति, जिसका आधार रामकथा है। हनुमान का विकास स्वाभाविक एवं अनुक्रमिक है। अगर हनुमान नहीं होते, तो राम-कथा नहीं होती।

जेहि सरीर रति राम सों, सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेह बस, वानर भे हनुमान।।[1]

---

[1] दोहावली, अ०-६

मानस के हनुमान वानराधीश हैं—

पंचमुख-छमुख-भृगुमुख्य भट-असुर-सुर, सर्व-सरि-समर समरत्थ सूरो।
बाँकुरो बीर बिरुदै त बिरुदावली, बेद बंदी बदत पैजपूरो॥
जासु गुनगाथ रघुनाथ कहु जा सुबल। बिपुल-जल-भसि जग-जलधि झूरो।
दुवन-दल-दमन को कौन तुलसीस है। पवन को पूत रजपूत रुरो॥[1]

सिन्धु-तरन, सिय-सोच-हरन, रबि-बाल बल-तनु।
भुज बिसाल, मूरति कराल काल को काल जनु॥
गहन-दहन-निरदहन-लंक निःशंक, बंक भुव।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवन सुव॥
कह तुलसीदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट।
गुनगनत, नमत, सुमिरत, जपत समन सकल संकट बिकट॥[2]

वानर का परिचय—कौन सुभग सुसील वानर, जिनहिं सुमिरत हानि।[3]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि हनुमान एक बुद्धिवरिष्ठ देवता हैं।

हनुमान के गुण—(१) वे बेजोड़ बली हैं— **राम काज तुम करिहहुँ, तुम बल बुद्धि निधान।** (२) बड़े बुद्धिमान हैं—नागमाता सुरसा से पार पा सके। (३) वेश-परिवर्त्तन में अत्यन्त कुशल हैं। (४) सुन्दर वक्ता हैं। रावण-सभा इसका पुष्ट प्रमाण है। (५) सच्चे सेवक हैं। (६) वे ज्ञानी भक्त हैं। वे रावण को कहते हैं—तुम चिन्मात्र, अत्र, अक्षर, तथा आनन्दमय हो। भक्ति बुद्धि का शोधन कर ज्ञान को दृढ़ करती है। ज्ञान-प्राप्ति से विशुद्ध तत्त्व का अनुभव होता है।

प्रनउ पवन कुमार, खल बन पावक ज्ञान धन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर॥

सीता ने तीन बार आशीर्वाद दिया—(१) होहुँ तात बल सील निधाना। (२) अजर अमर गुननिधि सुत होहू। (३) करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

करहु कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

और वे अत्यन्त प्रसन्न वदन हो माँ के चरणों पर लोटकर बोले—

अब कृतकृत्य भयउ मैं माता। आसिष तव अमोघ विख्याता॥

सीता की खोज उनकी बल बुद्धि का ही परिचायक है—

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
साखामृग कै बड़ि मनुराई। साखा तें साखा पर जाई॥

---

[1] तुलसीदास (हनुमानबाहुक), झूलना ॥३॥ [2] तुलसीदास (हनुमानबाहुक), छप्पय ॥१॥
[3] तुलसीदास (विनय-पत्रिका)–२१५/६

लाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन वधि विपिन उजारा।।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरि प्रभुताई।।
ताकहुँ प्रभु कछु अगम नहीं जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभावँ बडवानलहि जारि सकइ खलु तूल।।

हनुमान जी ने श्रीराम से याचना में भक्ति ही माँगी—

नाथ भगति अति सुख दायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।
सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं।।

श्री हनुमान जी श्रीराम चरण सेवा में सतत् विराजमान हैं। राम हनुमान के ऋणी बन गये।

हनुमान जी (उत्साही)—हनुमान जी कर्म-सौन्दर्य के सच्चे उपासक होने के कारण उत्साही थे। उनकी उत्कण्ठा आनन्दपूर्ण होने के कारण उनमें धृति एवं साहस का सहज सञ्चरण होता है। वे बुद्धिवीर हैं।

प्रत्यभिज्ञा-शक्ति के प्रकृष्ट प्रतीक हनुमान जी—प्रत्यक्षमिश्रित स्मरण को प्रत्यभिमान कहते हैं। प्रत्यभिज्ञान में ईषतांश प्रत्यक्ष होता है तथा बहुलांश उसी के सम्बन्ध से स्मरण द्वारा उपस्थित होता है। 'यह वही था' इन शब्दों द्वारा प्रत्यभिज्ञान की व्यञ्जना होती है। *कनकभूधराकार शरीरा।* जाम्बवान् के मुख से हनुमान ने अपनी विरुदावलि सुनी। फलतः वे 'कनक भूधराकार शरीरा' हो गये। शरीर- मनोविज्ञान के विश्लेषण से यह सिद्ध है कि सुख की दशा में मनुष्य का शरीर विकसित तथा भारी हो जाता है। सुख की सत्ता से शरीर में वृद्धि तथा स्फूर्त्ति आती है तथा दुःख के अनुभव से शरीर में लघुत्व तथा सङ्कोच आदि आता है—

The careful examination it appears that the pleasure is the faling of an expansion, an increase of the self. The very essence of pleasure is an enjancement of the self, its growth, its intensification, its superiority over there or voer its own past states, its moreness in short- moneness than before and as compared with others.[1]

वे स्वार्थी, परार्थी तथा परमार्थी हैं।

---

१. Dr. Bhagwan Das : Science of Emotions (1924), Ch. X, Pp.-340-41.
Tilchner : An out line of Psycholotgy (1902), Ch. V, P.-112.
Stoddart : The Mind and its Disorders (1921), P.-58.

मातु मोहिं लगि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रुखा।।

जीवन-धारणार्थ स्वार्थ आवश्यक है। समाज विधान की व्यवस्था-हेतु परार्थ आवश्यक है। लोक-कल्याण की भावना के विकास के लिए परामार्थ आवश्यक है। हनुमान ने स्वार्थ मानकर ही भगवान से तीन वर माँगा। महत् प्रेरणा शक्ति प्राप्त्यर्थ महापुरुष भी स्वार्थ मानकर ही परार्थ का सम्पादन करते हैं।[१] हनुमान को काम पर अधिकार है। यद्यपि—

'कामस्तग्रे समवर्तताधि मनोरेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो वंधुम सति निरविन्दन् हृदिं प्रतीच्या कवयो मनीषा' ।। ऋ० १०.२९.४

संसार की सारी चीजें काम की चेष्टा के परिणाम हैं—

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
तद् यद् हि कुरुते किञ्चित् तत् तत् कामस्य चेष्टितम् ।। (मनु)

ईश्वर की भक्ति भी काम-प्रवृत्ति से खाली नहीं।[२]

All thoughts, all passions, all delights,
What ever stirs this mortal frane,
All are but ministers of Love,
And feed his sacred flame. — Coleridge : Odetolove.

हनुमान निरामिष थे—आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः (छान्दोग्य-७.२६.२) सात्त्विकाहार से मन एवं बुद्धि भी सात्त्विक (हनुमान की) हो जाती है। वे गन्धर्व गीतागायन के प्रेमी थे। समरसायन के प्रेमी थे, काम और धर्म दोनों के कारण ही कला-कौशल में प्रस्तार संभव है। एक की प्रेरणा होती है और दूसरा उसके स्थायित्व का विधान करता है।

Incidently it may be boted that all the finest products of the fine arts and some also of the useful arts, poetry, drama, dancing, Musing painting, sculpture, archetechure, clothing, metal work, town--planning, gardening, free--planting, road-making etc. Have found their (greatest) gretest pation in, and drawn their most splendid inspiration from religion in all ages and in all countries.

....Religion has thus secured some of the purest joy of humanity, even in the life of the senses.[1]

---

१. स्वार्थो हि यस्य परार्थः सपव अग्रणी पुमान्। —(भर्तृहरि)

२. जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त : डॉ० लक्ष्मी नारायण सुधांशु, पृ०-८९, तृतीय संस्करण।

3. Dr. Bhagawan Das : The Unity of all Religions, P.-465.

पवनतनय के विभिन्न विशेषण— त्वन्नाम स्मरतो ऽइम न तृण्यति मनो मम ।[1]

(१) अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकल गुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।[2]

(२) मनोजवं मारुत तुल्य वेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ।।[3]

श्रीराम श्री हनुमान के वार्त्तालाप से प्रभावित हैं—

नूनं व्यारणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम् ।।[4]

(३) गोस्पदीकृत वारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायण महामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ।।

(४) अञ्जनानन्दनं वीरं जानकी शोकनाशनम् ।
कपीश मक्षहन्तारं वन्दे लङ्का भयङ्करम् ।।

(५) प्रनवउँ पवन कुमार खलवन पावक ज्ञानघन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।।[5]

(६) दास्यभक्ति— श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदमवद् वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिकपिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिभूत कृष्णाप्तिरेषां परम् ।।

श्री हनुमान जी का आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन का आदर्श सर्वथा अद्वितीय है।

सर्वगुणसम्य—

(७) वायुपुराण— आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे च मारुतिः ।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् स्वयं जातो हरः शिवः ।।

(८) ऋषराज जाम्बवान् जी के शब्दों में—

हनुमान हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि। रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च।।
पक्षयोर्यद बलं तस्य भुजवीर्यबलं तव । विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते ।।
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव। विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न बुध्यसे।।[6]

---

[1] अ०रा०-६/१६/१२
[2] मानस-५/३
[3] श्रीरामरक्षास्तोत्र-३३
[4] वा०रा०-४/३/२९
[5] मानस-१/७
[6] वा०रा०-४/६६/३, ६-७

(९) वानरराज सुग्रीव हनुमानजी से कहते हैं—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा बारम्बरे नामरालये । नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुङ्गव।।
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः । विदिता सर्वलोकास्ते ससागरधराधराः ।।
गतिर्वेगश्च तेजश्च लाघवं च महाकपे । पितुस्ते सदृशं वीर मारुतस्य महौजसः ।।
तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते । तद् यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ।।
त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलंबुद्धि पराक्रमः । देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ।।[१]

(१०) महर्षि अगस्त्य से भगवान् श्री राघवेन्द्र कहते हैं—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च । न त्वेताभ्यां हनुमता समंत्विति मतिर्मम ।।
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् । विक्रमश्च प्रभावश्च हनुमति कृतालयाः ।।
दृष्टैव सागरं वीक्ष्य सीदन्ती कपिवाहिनीम्। समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः।।
घर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा । दृष्टा सम्भाषिता चापिसीता ह्याश्वासिता तथा।।
सेनाग्रगा मन्त्रि सुताः किङ्करा रावणात्मजः । एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ।।

भूयोबन्याद विमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ।
लङ्का भस्मीकृतायेन पावके नैव मेदिनी ।।
न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ।।
एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं वित्राणि वान्धवाः ।।
हनूमान यदि मे न स्याद वानराधिपतेः सखा ।
प्रवृत्तिमपि को वेत्तुज्ञानेक्याः शक्तिमान भवेत् ।।[२]

रावण भी कहता है—

न ह्यहँ तंकपिं मन्ये कर्मणा प्रति तर्कयन ।[३] महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपिरूपं व्यवस्थितम् ।[४]

भगवान श्रीराम ने स्पष्ट शब्दों में श्री हनुमान जी से कहा है—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लौके हरीश्वर ।
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन ।।[५]

आज्ञाशिरोधार्य कर हनुमान ने कहा—

यावत्तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी ।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्या तवाज्ञामनुपालयन ।।[६]

---

[१] वा०रा०-४/४४/३-७
[२] वा०रा०-७/३५/२-१०
[३] वा०रा०-५/४६/६
[४] वा०रा०-५/४६/१४
[५] वा०रा०-७/१०८/३३ १/२
[६] वा०रा०-७/१०८/३५ १/२

ब्रह्मचारी हनुमान— **अञ्जनी गर्भसम्भूतो वायुपुत्रो महाबलः ।**
कुमारो ब्रह्मचारी च हनुमन्ताय नमोनमः ।।

वीतराग हनुमान का चरित्र नमस्य है ।

हनुमान् के १२ नाम—**हनुमाञ्जनी सूनुर्वायुपुत्रो महाबलः ।**
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोमितविक्रमः ।।
(अर्जुन के मित्र)
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः । लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ।।
एवं द्वादश नामानिकपीन्द्रस्य महात्मनः। स्वापकाले प्रबोधे च यात्रा काले च यः पठेत्।।
तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत् । राज द्वारे गह्वरे च भयं नास्ति कदाचन ।।[1]

श्रीराम भक्ति की सजीव मूर्त्ति श्री हनुमान जी थे । श्री हनुमान् आदर्श भक्त, सेवक तथा दास थे । श्री हनुमान जी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति के प्रकृष्ट प्रतीक थे । संगीत-कोविद श्री हनुमान जनदेवता थे ।

लोक-भाषा—अवधी-भाषा में श्री हनुमान् जी ने त्रेता-युग में ही राम कथा का शुभारम्भ कर दिया था । उसी परम्परा का निर्वाह गोस्वामी जी ने भी किया तथा अवधी भाषा में मानस की रचना की । हनुमान चतुर्वेदी एवं महावैयाकरण हैं । सूर्य इनके गुरु हैं ।

वानर-ऋक्ष—वाली पूर्णतः द्विजाति था । वाली इन्द्र का पुत्र था । सुग्रीव सूर्य का पुत्र था । जाम्बवन्त ब्रह्मा के पुत्र थे ।

पक्षी-जटायु—पद्मपुराण के अनुसार जटायु महाराज दशरथ के मित्र एवं सहायक हैं । हनुमान बाहुक (४) में लिखा है—

भानु सों पढ़न हनुमान गये भानु मन अनुमानि सिसुकेलि कियो फेर-फार सो ।

हनुमान के गुण—(१) स्वामिभक्ति, (२) अपूर्व-त्याग, (३) ज्ञान की पूर्णता, (४) निरभिमानित्व (अभिमान सुरापानम्)— **सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछु मोरि प्रभुताई ।।**[2] (५) अद्भुत चातुर्य ।

महामना मदन मोहन मालवीय द्वारा प्रवर्तित विश्वपञ्चाग एवं हृषीकेश पञ्चांगों के अनुसार हनुमज्जयन्ती की प्रचलित तिथि कार्तिक कृष्णपक्ष चतुर्दशी मङ्गलवार को सायंकाल में हुआ ।

हनुमान की जन्म-कथा—शापग्रस्ता अञ्जना नामक अप्सरा के पति सुमेरु पर्वत के राजा केसरी हैं । वायु नेडन की अनुपस्थिति में अञ्जना के साथ सम्भोग किया ।

---

[1] आ०रा०-८/१३

[2] मानस-५/३२/४ १/२

फलस्वरूप हनुमान का जन्म हुआ। अञ्जना प्रसवोपरान्त वन में फल हेतु चली गई हनुमान को भूख लगी। सूर्य को फल समझकर आकाश में दौड़ गये। सूर्य ने हनुमान को क्षमा किया। संयोगवश राहु सूर्य को ग्रसने के लिए आ रहे थे। हनुमान ने उसे बड़ा फल समझ कर उसका संस्पर्श किया। भय प्रकम्पित राहु ने इन्द्र के सामने इस घटना को रखा और कहा—'आपने भूख मिटाने के लिए मुझे सूर्य और चन्द्र दिया है, फिर आपने किसी दूसरे को सूर्य क्यों दे दिया है। आज एक अन्य राहु को मैंने सूर्य को पकड़ते देखा है'। यह सुनकर इन्द्र सूर्य की ओर गये। राहु उनसे पहले ही सूर्य के समीप पहुँच चुका था। राहु को फल समझकर हनुमान उसको मिगलने का उपक्रम करने लगे। राहु इन्द्र देवता की दुहाई देने लगा। इन्द्र के ऐरावत को हनुमान एक बड़ा फल समझकर उसी ओर पिल पड़े। यह देखकर इन्द्र ने उन पर वज्राघात किया। उनकी वायीं ठोढ़ी टूट गई और वे पहाड़ पर लुढक गये। तब तक वायु ने अपने आहत पुत्र को उठाकर गुफा की शरण ली। हवा रुक गई। सभी जीव व्याकुल हो गये। देवगण ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा देवों सहित वायु के पास गये। उन्होंने हनुमान को पुनर्जीवित किया और 'अशस्त्र-वध्यता' का वरदान दिया। इन्द्र ने 'स्वच्छन्दतश्च मरण' का वर दिया। अन्त में वायु ने अञ्जना को अपना पुत्र सौंप दिया। बचपन में हनुमान महर्षियों को तंग करते थे, जिसके कारण महर्षियों ने शाप दिया और जोड़ दिया—

यदा ते स्मार्यते कीर्त्तिस्तदा ते वर्धते बलम्।

प्रचलित रामायण के अनुसार हनुमान सचमुच वायुपुत्र हैं। उनका जन्म केसरी की पत्नी अञ्जना से हुआ। यह हनुमत्कथा सर्वाधिक प्राचीन, अत्यधिक प्रशस्त एवं अन्य जन्म-कथाओं का उत्स है।

जन्म—चैत्रमास शुक्लपक्ष, एकादशी तिथि और मघा नक्षत्र में हनुमान का जन्म हुआ— **चैत्रे मासि सिते पक्षे हरि दिव्यां मेघाभिधे।**
नक्षत्रे स समुत्पन्नो हनुमान रिपूसूदनः ।।

कल्प-भेद से पुनः तदनुसार चैत्र पूर्णिमा उनका जन्म दिवस है—**महाचैत्रीपूर्णिमायां समुत्पन्नोऽञ्जनीसुतः वदन्ति कल्पभेदेन बुधा केचन इत्यादि।**[१]

हनुमान् की उपासना—वैखानस-सम्प्रदाय, मध्व-सम्प्रदाय, गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय, वल्लभ-सम्प्रदाय, श्री रामानन्द सम्प्रदाय, श्री समर्थ-सम्प्रदाय, श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय, श्री रागस्नेही भक्तमाल में हनुमान, श्री स्वामिनारायण-सम्प्रदाय में हनुमान की उपासना, कम्ब-रामायण में एक हनुमत्स्तवन, तेलुगु-रामायण में श्री हनुमान, कन्नड़-

---

[१] आनन्द रामायण (सारखण्ड)-१३/१६

साहित्य में श्री हनुमान, वङ्गीय स्मृति तथा तान्त्रिक निबन्धों में श्री हनुमान, गोविन्द-रामायण में हनुमान, परमहंस श्री रामकृष्ण एवं स्वामी श्री विवेकानन्द की हनुमद्धारणा, राज-मुद्राओं पर श्री हनुमादाकृति का अङ्कन, स्थापत्य एवं मूर्त्ति कला में श्री हनुमान, मूर्त्तिकला में हनुमान का सङ्कट मोचन रूप, पूर्वी द्वीपों में श्री हनुमान, दक्षिण-पूर्वी एशिया में हनुमान, विदेशों में हनुमान, राजस्थानी लोक साहित्य में महावीर हनुमान, मालवी लोक-साहित्य में हनुमान, बुन्देली लोक-साहित्य में हनुमान; आदिवासी लोकजीवन में हनुमान, नागपुरी भाषा में श्री हनुमान-सम्बन्धी लोकगीत।

आधुनिक काव्य में हनुमान जी का स्वरूप—हनुमान को मानव रूप में ही स्वीकार किया गया है—'दोनों विकट महामानव थे, दोनों में थी शक्ति अमोघ। किन्तु एक यदि मूर्ति (हनुमान) पुण्य, तो अपर मूर्तिधारी था पाप। (रावण)।[१] हनुमान में अध्यात्म गुण था, तो रावण में भौतिकता।

इस प्रकार आधुनिक श्रीराम-काव्य में हनुमान को भक्ति-काव्यों की तरह देवतावतार, पवन-पुत्र या अन्य कोई मानवेतर और मानवेतर पुरुष न मानकर उन्हें अणिमा, महिमा आदि अष्टसिद्धि आदि शक्तियों से युक्त एक मानव के रूप में चित्रित किया गया है। वे अपनी अध्यात्मसाधना के कारण मानवों से कहीं ऊपर उठ चुके थे। वे महामानव थे और उनमें अथाह शक्ति थी। यह अध्यात्मिक शक्ति थी, जो श्रीराम-काव्य में हनुमान जी की श्रीराम-भक्ति भी विवेकसम्मत और पैनी है। वह एक तरह से आध्यात्मिक महानता एवं विश्वकल्याण का प्रतीक है। अतः श्रीराम भक्ति एवं वीरता–दोनों गुण समवाय बन गये हैं। आधुनिक कवियों ने हनुमान को दिव्य मानवीय गुणों का आगार माना है।

हनुमान और राजनीति—हनुमान जहाँ एक ओर श्रेष्ठ सचिव थे तो, दूसरी ओर उत्तम राजदूत भी थे। राम-सुग्रीव-मैत्री की स्थापना के समय सुग्रीव की वानरी चञ्चलता के कारण मैत्री को बीच में टूटने के विचार से ही 'पावक-साक्षी' दिलाकर शाश्वत मित्रता स्थापित कराते हैं। बलशाली बालि पर अपेक्षाकृत निर्बल सुग्रीव की जीत के कारण राजनीतिज्ञ हनुमान जी ही हैं। श्री रामायण के अनुसार स्पष्ट है कि मन्त्रि-परिषद् मूलरूपेण भारतीय राजदर्शन का प्रमुख विभाग रहा है। श्रीराम के आदर्श मन्त्रिमण्डल में हनुमान सुरक्षा तथा विदेश-विभाग के विशेषज्ञ होने के कारण विदेश-मन्त्री तथा सुरक्षा-सलाहकार में प्रमुख थे।

सहस्राण्यपि मूर्खानां यद्युपास्ते महीपतिः। अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता।।

---

१. रामराज्य, पृ०-१०४; डॉ० बलदेव प्र० मिश्र २. वा०रा०-२/१००/२३-२४

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ।।

आदि कवि वाल्मीकि ने हनुमान की विवेक शक्ति, वाक्-पटुता, विक्रम, निर्णय शक्ति, प्रत्युत्पन्नमतित्व, दूरदर्शिता तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन के भावों को जान लेने की विचित्र क्षमता की भूरिशः प्रशंसा की है। हनुमान–जैसे महासचिवोत्तम के अथक प्रयत्न से ही सुग्रीव ने अपना खोया हुआ राज्य, पत्नी रुमा और सम्मान पुनः प्राप्त किया था। सुग्रीव में दृढ़ता, वचन-बद्धता और राजधर्म के अनुसार मित्र-राष्ट्रों को दिये गये वचनों को पूर्ण करने की शक्ति नहीं थी। वह किष्किन्धा के रंग-महलों में कञ्चन-कामिनी के रंग में रंगकर 'मित्रता' के महत्त्व को भुला दिया। हनुमान ने सुग्रीव को मन्त्री-शिरोमणि के दायित्वों का उदाहरण देते हुए कहा—

नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवोहितम् ।
इत एव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वचः ।।[१]

हनुमान ने सुग्रीव को कर्त्तव्य ज्ञान कराकर सुग्रीव का महान उपकार किया, अन्यथा सुग्रीव का अन्त राम के बाण से ही हो जाता—

इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा। राम काजू सुग्रीव बिसारा।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।।[२]

शत्रु-शिविर से अरिअनुज विभीषण की शरणागति की, वानरों में एक हनुमान ही ऐसे नीतिज्ञ बन्दर थे, जिन्होंने सराहना की। लङ्का-अभियान में अगर विभीषण नहीं होता, तो राम लङ्का पर अपनी विजय वैजयन्ती नहीं फहरा पाते। विभीषण को शरण देने की नीति में भावी विजय के बीज निहित थे। श्रीराम की रावण विजय का सारा श्रेय राजनीति हनुमान जी को ही है।

कुशल दूत हनुमान—एथिक्स के अनुसार दूत का काम बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'दूत' शब्द सन्देश पहुँचाने वाला। अतः दूत में दैहिक तथा बौद्धिक-क्षमता होनी चाहिए। महाकवि विश्वनाथ भट्ट ने 'साहित्य-दर्पण' में दूत के तीन भेद बताते हुए 'निसृष्टार्थ' दूत उसको कहा है, जो स्वामी का कार्य विपक्षी को डराकर, समझाकर या फुसलाकर सिद्ध करता है। श्री हनुमान पहले सुग्रीव-दूत के रूप में भगवान श्रीराम से मिलकर सुग्रीव का काम बनाते हैं, फिर राम-दूत के रूप में सीतान्वेषण जैसा अलौकिक कार्य का सम्पादन करते हैं। हनुमान नीतिनिरूपण हैं। अतः वे अपने प्राकृत (वानर) रूप को छोड़कर कर ब्राह्मण रूप में राम के समक्ष उपस्थित होते हैं। दूत को वेष

---

[१] वा०रा०–४/३२/१८

[२] मानस–४/१८/१-२

बदलकर ही अपरिचित या विपक्षी के समक्ष उपस्थित होना चाहिए। 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के अनुसार युधिष्ठिर ने एक वनचर को दूत बनाकर दुर्योधन का प्रजा-पालन कर्म जानने के लिए भेजा था, वह भी संन्यासी-वेष में ही गया था। हनुमान की नीति मान लेने के बाद हनुमान ने ब्राह्मण का रूप छोड़कर अपना प्राकृत रूप (वानर रूप) धारण कर राम-लक्ष्मण को अपनी पीठ पर चढ़ाकर ऋष्यमूक पर्वत पर ले गये। राम ने पहले सुग्रीव का कार्य सम्पन्न किया। इस प्रकार हनुमार ने सुग्रीव का कार्य साधकर निसृष्टार्थ दूत का पूर्ण परिचय दिया। राम से उनकी अङ्गुठी चिह्न के रूप में लेकर सीता तक पहुँच गये और सीताजी से भी कहा— ***'मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा'*** । चूड़ामणि सीता ने सहर्ष दिया और लेकर राम तक पहुँच गये। सुरसा को अपनी शक्ति और बुद्धि का परिचय दिया।

कुशल सेनापति एवं गुप्तचर हनुमान

राजदूत के गुण—(१) निर्भीक वक्ता, (२) शुद्ध स्मरण शक्ति-चैतन्य, (३) अनन्यथा-वाक्, (४) युद्ध-कला-कुशल, (५) शास्त्र-परिनिष्ठित, (६) अनुभव-सम्पन्न। ये सभी गुण हनुमान में वर्तमान थे। अतः दौत्य-कसौटी पर श्री रामदूत हनुमान खड़ा उतरते हैं।

अनुभव-सम्पन्न—अभ्यस्तकर्मा थे। विद्या, बुद्धि, विवेक, देश, काल, परिस्थिति, पात्र, अनुभव, कर्त्तव्य और कार्यसिद्धि आदि व्यावहारिक गुणों में हनुमान पारङ्गत थे। वे श्रेष्ठ नीतिज्ञ थे।

वेदों में श्री हनुमच्चिन्तन—

ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्।
ॐ अञ्जनीजायविद्महे वायुपुत्राय धीमहि तन्नो हनुमान प्रचोदयात्।।[1]
ॐ तवश्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारुचित्रम्।
पदंयद् विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गौनाम्।।[2]
इषुर्न धन्वन् प्रतिधीयते मतिर्वत्सो न मातुरूपतर्ज्युधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते।।[3]
नृ बाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्रते।
आप्राः क्रतूनत्समजैरध्वरे मतीर्वेर्नद्रुषच्चम्वौ इरासदद्धरिः।।[4]
अक्षानहो नह्यत नोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंश।

---

[1] मन्त्र महा० गायत्री-तन्त्र
[2] ऋक्संहिता-९/७१/२
[3] ऋक्संहिता-९/६९/१
[4] ऋक्संहिता-९/७२/५

अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन वेदासो अनयन्नभिप्रियम् ।।[1]
उपोमतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान्द्रप्सः परिवारमर्ष ।।[2]

हनुमान का दार्शनिक अध्ययन

प्रत्यभिज्ञा-शक्ति के प्रतीक श्री हनुमान जी—हनुमान जी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति (पहचानने की सूक्ष्म शक्ति) के प्रगल्भ प्रतीक थे। दर्शन का सिद्धान्त है–प्रत्यभिज्ञा-ज्ञान। किसी भी व्यक्ति को उसकी आकृति का अवलोकन करते ही पहचान जाने की विलक्षण शक्ति ही प्रत्यभिज्ञा-ज्ञान है। हनुमान जी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति के कारण ही 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्' थे। अश्रुत एवं अदर्शित देश विशेष के लोगों की अन्तरंग प्रकृति से अवगत होकर हनुमान जी ने अपने स्वामी राम के कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न किया। हनुमान जी ने किष्किन्धा काण्ड में पम्पा-सरोवर पर प्रथम मिलन में ही राम को अपनी प्रत्यभिज्ञा-शक्ति का परिचय देकर उनको आश्चर्यचकित कर दिया है— ***'बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्'*** । सुन्दर-काण्ड तथा लङ्का-काण्ड में श्री हनुमान जी ने अपनी प्रत्यभिज्ञा शक्ति का सुन्दर ढंग से परिचय देते हैं। सुरसा एवं लङ्का की दुर्दान्त दानवी को छकाकर अशोकवाटिका में पहुँच कर श्री सीताजी को देखते ही पहचान जाते हैं— **तां विलोक्य विशाला क्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ।**
तर्कयामास सीतेति, कारणैरुपपादिभिः ।।[3]

सुन्दर काण्ड में विभीषण की शरणागति के अवसर पर सुग्रीव एवं लक्ष्मणादि भ्रम में पड़ गये—**कपिन्ह विभीषणु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत विशेषा ।।**[4]

सभी पाश्ववर्तियों के विचारों से अवगत होने के उपरान्त श्रीराम ने हनुमान पर प्रश्नवाचक दृष्टि डाली। हनुमान ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि विभीषण राक्षस वंशोत्पन्न होते हुए भी सन्त-धर्मात्मा हैं। 'हनुमान की प्रत्यभिज्ञाशक्ति का समर्थन सब को देना पड़ता है। भगवान राम हनुमान जी की विलक्षण निरीक्षण शक्ति की भूरिशः प्रशंसा करते हैं।

श्री हनुमान जी का प्रणव-विज्ञान—श्री हनुमान जी ने 'प्रणव-विज्ञान' का प्रतिपादन किया है। भुवनभास्कर से उन्हें इस विज्ञान की प्राप्ति हुई। उनके अनुसार

---

१. ऋक्संहिता–१०/५३/७ २. साम०–११/३/१/२
३. वा०रा०–५/१५/२६ १/२
४. रा०च०मा०, गो० तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्पादक–श्री हनुमान प्र० पोद्दार, सुन्दरकाण्ड-४२/२

यह विश्व 'वाक्'-सत्त्व का ही प्रतिफलन है। वाक् के दो भेद हैं— (१) अर्थ वाक्, (२) शब्द वाक्। शब्दमय 'ओम'-आञ्जनेय के अनुसार चतुरक्षर 'प्रणव' अ ह् अम्– इन चार अक्षरों से निष्पन्न हैं। अर्थात् एकाक्षर-स्फोट 'ओम्' भी चार वर्ण-स्फोट में निहित है। यह एकाक्षरा व्याहृति परमात्मा का नाम है—'तस्य वाचक: प्रणव:'। सूक्ष्म परमात्मा तथा स्थूल प्रकृति का मिलन ही 'ओम्' है। द्वयक्षर 'ओम्'—प्रणव घटक प्रथम अक्षर 'ओ'–ओत और 'म्' का अर्थ 'मित' है। दोनों के योग से यह अर्थ निकलता है जिसमें सब मित तत्त्व प्रोत हैं तथा जो सभी परिमित तत्त्वों में ओत है, वह ईश्वर 'ओम्' शब्द से ज्ञातव्य है।

त्र्यक्षर 'ओम्'-प्रवण का सूक्ष्म अर्थ है अ, उ, म, (अ: सृष्टि, उ: स्थिति, म: संहारकारिणी शक्ति) ये त्रिशक्तियाँ विष्णु की पूर्णाषाड्गुण्य रूपिणी एक शक्ति की अंशरूपा है। प्रणव जब 'पर' का अर्थ प्रकट करता है, तब उसमें अ और उम्, हो जाते हैं। अ = स्थूलचित्-अचित-विशिष्ट-ईश्वर, उम् = सूक्ष्म चित्-अचित्-विशिष्ट ईश्वर। स्थूल ईश्वर कार्य और तथा सूक्ष्म ईश्वर कारण है। ये दोनों एक हैं। यही 'ओम्' का पर अर्थ है।

अर्थ रूप 'ओम्'

आञ्जनेय के अनुसार—

'इत्थ' यथा वाङ्मयोऽयं प्रपञ्चः शाब्द ओमिति।
तथैवार्थो वाङ्मयोऽयं प्रपञ्चो वाच्य ओमिति।।

तात्पर्य यह कि जैसे वाचक वाङ्मय प्रपञ्च शब्द 'ओम्' है, वैसे ही वाच्य अर्थ रूप भी 'ओम' है। अर्थ रूप त्रिविक्रम परमोत्मा रूप 'ओम्' में 'प्रणव' की तीन मात्राओं का अर्थ है–अ = द्यौ:, उ = अन्तरिक्ष, म् = पृथ्वी, अर्थमात्रा-विष्णु। सब मिलकर विष्णुरूप 'ॐ' हैं। अर्थ रूप 'वेद' 'ओम्' में प्रणव की तीन कलाएँ इस प्रकार हैं— अ = ऋग्वेद, उ = यजुर्वेद, म = सामवेद, अर्धमात्रा-अथर्ववेद—सब मिलाकर वेद रूप ॐ है। आध्यात्म में कायिक जीवात्मा रूप 'ओम्' की कलाओं का विश्लेषण इस प्रकार है—अ = स्थूल देह, उ = सूक्ष्म देहम्-कारण मनोमय देह, अर्धमात्रा-जीव। सब मिलाकर अर्थ रूप जीवात्मा 'ॐ' है। अन्त में, आञ्जनेय को निम्न श्लोक से नमन किया जाता है—

आञ्जनेय मतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम्।
पारिजाततरु मूल वासिनं भावयामि पवमाननन्दनम्।।

जन-नायक हनुमान—हनुमान जी का जीवन प्रत्यक्षत: रामार्थ एवं परोक्षत: साधु, सन्त, ऋषि-मुनियों तथा दानवदलित समाज की सेवा के लिए समर्पित था।

उनका समग्र जीवन निःस्वार्थपूर्ण है। उनमें काम, लोभ, अभिमान, दर्प एवं मोह ईषत् मात्र भी नहीं है। शत्रु संहार के समय रौद्र रस के समय उनका क्रोध वीर रस सम्पन्न उत्साह का सञ्चारी भाव है। वे परम भक्त, स्वामी के अनन्य दास, प्रत्युत्पन्नमति, परोपकारी हैं। वे वीरों के वीर हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने मन्दिरों की स्थापना के साथ-साथ व्यायाम स्थल भी बनवाये। आज भी हनुमान-अखाड़ा के नाम से जन-देवता के रूप में महावीर हनुमान जी को याद किया जाता है। तीन दिव्य गुणों के समुच्चय हैं–हनुमान जी— (१) अखण्ड ब्रह्मचर्य, (२) अतुल शौर्य, (३) अनुपम पाण्डित्य। श्री हनुमान जी सुग्रीव के आदर्श मित्र थे।

पथ-प्रदर्शक हनुमान—सीतान्वेषण के समय हनुमान जी बन्दर तथा भालुओं के पथ-प्रदर्शक बने। द्वापर में भीम के पथ-प्रदर्शक बने, अहङ्कार छोड़ने में जब स्वर्ग का मार्ग अवरुद्ध कर बैठं गये, अन्यथा भीम उस मार्ग से कहीं अन्यत्र निकलकर कर्त्तव्यच्युत हो जाते। कलियुग में श्री तुलसीदास जी का पथ-प्रदर्शक बने। उन्होंने कहा—

चित्रकूट के घाट पै, भइ सन्तन की भीर।
तुलसी दास चन्दन घिसें, तिलक देहिं रघुवीर।।

आयु-सीमा—ये चिरञ्जीवी ही नहीं, नित्य जीवी, इच्छामृत्यु तथा अजर-अमर हैं। भक्ति की उत्कृष्टता उनमें है। ***'श्रवणं, कीर्तनं, विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं, वंदनं, दास्यं सख्यामात्मनिवेदनम्' ।।***

अष्टसिद्धि—(१) अणिमा, (२) महिमा, (३) गरिमा, (४) लघिमा,
(५) प्राप्ति, (६) प्रकाम्य, (७) ईशित्व, (८) वशित्व।

ये परम सिद्धयोगी थे। महावीर के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्ति की इत्यता न थी। अथाह बल और अनन्त पुरुषार्थ का नाम ही हनुमान है। 'अमरकोश' के द्वितीय काण्ड के 'सिंहादिवर्ग' के तृतीय पद्य में वानर के पर्याय बतलाये गये हैं—
कपिप्लवङ्गप्लवगशाखामृगबलीमुखाः। मर्कटो वानरः कीशो वनौका...... ।।

वालि

देवेन्द्र के अंशोत्पन्न अति पराक्रमी वानरराज वालि किष्किन्धा के स्वामी थे। वे सन्ध्यावन्दन तथा ईश्वराधना में निरत रहते थे। गो-ब्राह्मण के पूजक थे। उनका ऐश्वर्य अपार था तथा उनके पास बेशुमार दौलत थी। रावण को एक बार छः महीने तक कीड़े की भाँति काँख में दबाकर रखे रह गये। महर्षि पुलस्त्य के कहने पर उन्होंने रावण की जान बख्श दी। उनके विक्रम के भय से ही इनका राज्य निशिचर हीन था। ईश्वरेच्छा बलवती है। दैवदुर्विपाकवशात् सुग्रीव को मारकर अपने राज्य से उन्होंने निष्कासित कर दिया तथा उसकी स्त्री एवं सम्पूर्ण सम्पत्ति हड़प ली। यह सब बालि के

श्रम के कारण ही हुआ।

एक बार वालि ने दुन्दुभि नामक राक्षस को मारकर ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया था। उसके खून से मतंग-मुनि का आश्रम भयावन हो गया। उन्होंने शाप दिया—'वालि इस पर्वत पर आते ही मर जायेगा'। इसी कारण वाली वहाँ नहीं जाते थे। उनके भाई सुग्रीव वहीं अपने चार मन्त्रियों के साथ रहने लगे। प्रियाहीन राम अपनी सीता की खोज में वहाँ पहुँचे। सुग्रीव ने उनसे अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए मैत्री कर ली। श्रीराम ने सुग्रीव की ओर से छिपकर 'बालि-सुग्रीव-युद्ध' के समय बाण से मारकर वाली का प्राणान्त कर दिया। वालि एक वीर पुङ्गव थे। अपनी पत्नी तारा के पैर पकड़ कर समझाने पर वालि ने कहा—तारा, श्रीराम तो समदर्शी हैं और यदि कदाचित् मुझे मार देंगे तो, मैं सदा सर्वदा के लिए सनाथ हो जाऊँगा'। राम के बाण से विद्ध मरणासन्न वालि ने राम को उपराग दिया। उसने राम से पूछा—

मैं वैरी सुग्रीव पियारा। नाथ कवन कारन मोहि मारा।।[१]

उनके हृदय में मृत्यु के समय भी राम के प्रति श्रद्धाभक्ति थी, किन्तु ***'हृदय प्रीति-मुख बचन कठोरा'***[२] से राम अवगत हो चुके थे। उन्होंने अपने भाग्य को बार-बार सराहा—**पुनि-पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा।।**[३]

राम ने कहा— **अचल करहु तुम राखहु प्राना।**[४]

बालि ने कहा—भगवन्! ऐसा सुन्दर अवसर बार-बार नहीं आता—

जन्म-जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अविनासी।।
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।।[५]

बालि ने मरते समय राम की वन्दना की तथा वरदान माँगा—'नाथ! कर्मवश जिस किसी भी योनि में जन्म लूँ, वहाँ आपके श्री चरणों में मेरा प्रेम रहे—

जेहि जोनि जन्मौं कर्मवस तहँ राम पद अनुरागऊँ।[६]

बालि ने भगवान के दिव्य स्वरूप का दर्शन किया—

स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ।।[७]

तत्पश्चात् बालि ने इस प्रकार स्वर्गारोहण किया—

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग।[८]

पूर्वोत्तर भारत के सिद्धाश्रम अर्थात् मलय और कारुष देश से लेकर समग्र बिन्ध्य

---

[१] मानस–४/८/६
[२] मानस–४/८/४
[३] मानस–४/८/३
[४] मानस–४/९/२
[५] मानस–४/९/३-५
[६] मानस–४/९/५
[७] मानस–४/८/२
[८] मानस–४/१०

प्रदेश में दण्डकारण्य घनघोर जङ्गल से आच्छादित था। इन जङ्गलों में वानर एवं ऋक्ष नामक जङ्गली जातियाँ रहती थीं, जिसका प्रधान शासक वानर राजा बालि दक्षिण भारत की किष्किन्धा नगरी में रहा करता था।[१]

सुग्रीव

महाकवि भारवि ने कहा है— *'भवन्ति गोमायु न दन्तिनः'* । (हाथियों के मित्र सियार नहीं होते) बड़ों के मित्र छोटे नहीं होते। भारवि की इस उक्ति से भी अधिक सच्ची उक्ति है कि मनुष्यों के मित्र बन्दर नहीं होते— *'भवन्ति वै कीश सखा न मानवाः'* । हाथी-सियार तो सजातीय हैं, किन्तु नर और वानर (पशु) की मैत्री तो आकाश-कुसुम-सी प्रतीत होती है। विनय-पत्रिका में वानर का सुन्दर परिचय मिलता है— *'कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि'* (विनय–२१५/६)। श्री हनुमान ने भी कहा है— *'प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।'* सीताजी को भी नर-वानर-सङ्गति पर बड़ा आश्चर्य हुआ— *'नर वानरहि संग कहु कैसे'* (रा०च०मा०–५/१२/....)। सुग्रीव और राम की मैत्री पाताल और आकाश का मिलन है। जिस विश्व में 'आदमी को भी मयस्सर नहीं है इन्सां होना' उस दुनिया में पशु मानव-धर्म में दीक्षित होकर महामानवत्व को प्राप्त कर लिया है—

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः। मद्विधा वा पितुःपुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः।।[२]

श्रीराम जी सुग्रीव से कहते हैं—'भैया! सब भाई भरत के सदृश आदर्श वाले नहीं हो सकते। सभी पुत्र मेरी तरह पितृभक्त नहीं हो सकते और सभी सखा (मित्र) आपकी तरह विपत्ति के सहायक नहीं हो सकते'। सुग्रीव बालि के अनुज थे। एक बार मय सुत मायावी नामक एक राक्षस रात्रि में किष्किन्धा में आकर बालि को ललकारने लगा। बालि उसको मारने के लिए दौड़ पड़ा। सुग्रीव भी पीछे-पीछे गये। गिरिवर गुफा में राक्षस नाश हेतु प्रवेश करते समय बालि ने कहा—

परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जाने सु मारा।।[३]

एक महीना व्यतीत हो गया। बालि लौटा नहीं। रक्त धारा प्रवाहित होने लगी। सुग्रीव ने सोचा— *'बालि हितेसि मोहि मारिहि आई'* । अतः शिला-विवर पर डालकर वे किष्किन्धा पुरी लौट गये। मन्त्रियों ने सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दिया। थोड़े ही दिनों के बाद बालि राक्षस को मारकर घर आया। सुग्रीव को राजा के रूप में

---

[१] प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा : हमारा सांस्कृतिक साहित्य, शीर्षक-महाकाव्य, प्रथम भाग (सं० २०१०), पृ०-४०

[२] वा०रा०–६/१८/१५

[३] रा०च०मा०–४/५/६

देखकर क्रोधातुर हो गया। सुग्रीव की जान लेने को उद्धत हो गया। सुग्रीव ने प्राण रक्षणार्थ मतंग ऋषि के आश्रम में शरण ली। शापवश बालि वहाँ जा नहीं सका। सुग्रीव की सम्पत्ति, पत्नी तथा राज्य सब कुछ बालि ने बलात् अपहृत कर लिया। आर्त्त सुग्रीव अपने हनुमान आदि चार मन्त्रियों के संरक्षण में ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे। सीता हरणोपरान्त राम-लक्ष्मण शबरी के सङ्केत पर सुग्रीव जी से मिलने के लिए ऋष्यमूक पर्वत पर आये। सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण को देखते ही हनुमान जी को समाचार जानने के लिए भेजा। राम और सुग्रीव के बीच अग्निसाक्षी के द्वारा मित्रता स्थापित हुई। सुग्रीव ने कहा—

कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी।।[1]

× × ×

सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि विधि मिलिहि जानकी आई।।[2]

और राम ने सुग्रीव की दीनता की कथा सुनकर कहा—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि घटब काज मैं तोरे।।[3]

सुग्रीव ने कहा—**बालि महाबल अति रनधीरा।।**[4]

राम के बल की परीक्षा की जाँच के लिए सुग्रीव जी ने अस्थि समूह दिखाया। .... राम ने अनायास पैर के अङ्गूठे से ही उसे गिरा दिया। पुनः सात ताड़ों को एक ही बाण से गिरा दिया। सुग्रीव समझ गये कि रामजी बालि को मार सकते हैं। सुग्रीव रामजी के साथ बालि से लड़ने गये। वालि-सुग्रीव मल्ल-युद्ध के क्रम में श्रीराम ने एक ही बाण में बालि की जीवन-लीला समाप्त कर दी। तदुपरान्त श्रीराम जी का आदेश मानकर सुग्रीव किष्किन्धा के राजा बन गये। बालि पुत्र अंगद युवराज हुए। सुग्रीव ने बन्दरों को स्पष्ट शब्दों में आदेश दिया—

राम काज अरु मोर निहारा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा।।[5]
जनक सुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महुँ आयहु भाई।।
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ।।[6]

श्री हनुमान जी ने सीता की खोज की। सुग्रीव ने वारन-भालू की विशाल वाहिनी सेना सहित लङ्का पर आक्रमण किया। इनकी मार से संत्रस्त रावण इनसे कन्नी कटाने लगा। लंका-विजयोपरान्त सुग्रीव जी अपने सखा राम के साथ अयोध्या गये। राम ने अपने गुरु वसिष्ठ जी से इनका परिचय निम्न शब्दों में दिया—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहुँ बेरे।।

---

[1] मानस–४/४/२
[2] मानस–४/४/८
[3] मानस–४/६/१०
[4] मानस–४/६/११
[5] मानस–४/२/६
[6] मानस–४/२१/७-८

मम हित लागि जनम इन्ह हारे । भरतहुँ ते मोहि अधिक पिआरे ।।[1]

सुग्रीव—श्रीराम जी ने सुग्रीव को प्राण प्रिय सखा माना है। उन्होंने कहा कि सुग्रीव तुम्हारे जैसा आदर्श निःस्वार्थ सखा संसार में वीरले ही होते हैं। राम ने इनका हार्दिक सम्मान कर इन्हें अयोध्या से विदा किया। सुग्रीव ने कहा—

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसंगीतकथासु वाणी ।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गलभतां मदङ्गम् ।।
त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्त्रं तव मन्दिराणि
अङ्गानि ते पाद रजो विमिश्रतीर्थानि विभ्रत्वहिशत्रु केतो ।
शिरस्त्वदीयं भवपद्मजाधैर्जुष्टं पदं राम नमत्वजस्त्रम् ।।[2]
जब सुग्रीव राम कहँ देखा । अति सम जन्म धन्य करि लेखा ।।
नतर त्यापदं कश्चित् योन्नमित्र विवर्जितः ।

जो इस संसार में मित्र रहित है, वह बहुधा आपत्ति से पार नहीं हो सकता। *'न पूर्णो स्मीति मन्येत मिश्रताः धर्मतोर्थतः'* (मनुष्य को चाहिए कि मैं मित्रता से और धर्म परिपूर्ण हो चुका, ऐसा कभी न सोचे)। सीताहरण सुन उसे भी अपनी स्त्री (रुमा) का हरण याद हो गया। 'कुमार-सम्भव' में कालिदास ने कहा है— *'स्वजनस्यहि दुःखमग्रतो, विवृतद्वारमिवोप जायते'* (अपने सुहृद के आगे दुःख मानो किवाड़ खोलकर निकल जाता है)। भावार्थ यह है कि उस समय पर दुःख विशेष बढ़ जाता है।

अंगद—वनवासी राम ने वैदेही की खोज के क्रम में बालि को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा और अङ्गद को युवराज बनाया। मरते समय अपने पुत्र अङ्गद रुमा को सौंपते हुए कहा—

यह तनय मम सम विनय बल कल्याण प्रद प्रभु लीजिऐ ।
गहि बाँह सुरनर नाह आपन दास अंगद कीलिऐ ।।[3]

राम ने अङ्गद को अपना बना लिया। सीतान्वेषण के समय सम्पत्ति ने कहा—जानकी को रावण हर कर लङ्का ले गया है। वानरवीर दल-बल के साथ सागर-तट पर आये; परन्तु सौ योजन समुद्र को पार कर सीता की खोज करने में सबने असमर्थता व्यक्त की। अङ्गद जी ने कहा—'मैं लङ्का जाऊँगा'। जाम्बवान् जी ने उन्हें रोक दिया। हनुमान लङ्का गये। सीता का समाचार लेकर वापस आये। समुद्र पर सेतु बाँधा गया। लङ्का के त्रिकूट पहाड़ पर 'पद्म अठारह यूथ बन्दर' पहुँच गये। श्रीराम ने अङ्गद को दूत बनाकर लङ्का भेजते समय कहा—

---

[1] रा०च०मा०-७/७/७-८ [2] अ०रा०-४/१/९१-९३ [3] मानस-४/९/२

बहुत बुझाइ तुम्हहिका कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ ।।[१]

अङ्गद जी लङ्का गये। वे जानते थे कि हनुमान जी द्वारा रावण का सामनीति से समझाया जाना निष्फल रहा। अत: रावण को डॉट-फटकार कर अपने मनोबल को भग्न करने तथा उसके अनुयायियों को हतोत्साह करने के लिए श्री अङ्गद जी ने उसकी सभा में ही उससे कहा—

जौं मम चल सकसि सठटारी। फिरहिं राम-सीया मैं हारी ।।[२]

राजनीति पण्डित रावण ने अङ्गद जी से कहा—यह तो बहुत लज्जा की बात है कि 'तुम अपने पितृहन्ता राम लक्ष्मण का साथ दे रहे हो तब अङ्गद जी ने रावण को 'सठ' कहकर दुत्कारा—

सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्री रघुवीर हृदय नहीं जाके ।।[३]

रावण ने राम की जब निन्दा की, तब अङ्गद जी को क्रोधाभिभूत होकर मुट्ठी बाँधकर दोनों भुजाएँ भूमि पर पटक दिये। भूडोल हुआ। रावण के मुकुट भुलूठित हो गये। अङ्गद जी ने इसके चारों मुकुट को श्रीराम के पास भेज दिये। वापस आने पर राम जी ने अङ्गद जी से पूछा—

रावणु जातुधान कुल टीका। भुजबल अतुल जासु जग लीका ।।
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी विधि पाए ।।[४]

भक्त अङ्गद ने नम्र निवेदन के स्वर में उत्तर दिया—

सुनु सर्वग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ।।
साम दाम अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा ।।
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए ।।[५]

राम-रावण-युद्ध में अङ्गद ने कमाल किया। रावण वध के पश्चात् श्रीराम के साथ अङ्गद अयोध्या पधारे। राम का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। राम सब को विदा करने लगे। अङ्गद राम के सेवक थे। 'कहीं राम मुझे भी जाने को न कह दें'—इस भय से अङ्गद जी एक कोने में छिपकर बैठ गये। अन्त में राम की दृष्टि अङ्गद पर पड़ी। अङ्गद काँप उठे। नयनों में आँसू और हृदय में अविरल प्रेम का दीपक जलाते हुए अङ्गद जी ने राम से करबद्ध प्रार्थना की—

सुनु सर्वग्य कृपा सुख सिन्धो। दीन दयाकर आरत बंधो ।।

---

१. मानस–६/१६/७
२. मानस–६/३३/९
३. रा०च०मा०–६/२०/३
४. रा०च०मा०–६/३७/६-७
५. रा०च०मा०–६/३७/८-१०

मरती बेर नाथ मोहि बालि। गएउ तुम्हारेहिं कोछें घाली।।
असल सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता।।
तुम्हहिं बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा।।
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जग दीना।।
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ।।[1]

कहते-कहते राम के चरणों पर अङ्ग बिछ गये। राम ने उन्हें उठाकर गले से लगा लिया। अपना रत्नजड़ित आभूषण आभरण तथा अपने कंठ की माला अङ्गद जी को पहना कर राम विदा करने चले। अङ्गद बार-बार राम को प्रणाम करते हैं। उनकी इच्छा है-राम के साथ ही रम जाने की, किन्तु भगवान राम के दृढ़ निश्चय के समक्ष अङ्गद जी विवश होकर कुम्भला जाते हैं। रामजी ने अङ्गद जी को बहुत दूर तक पहुँचाकर विदा करते हुए कहा—

तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहिहउ पुर आवत जाता।।[2]

हनुमान जी भी आगे चलकर सुग्रीव से आज्ञा लेकर श्रीराम की सेवा में लौटने लगे, तब अङ्गद जी ने कातर स्वर में कहा—

कहेउ दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार-बार रघुनायक हि सुरति कराएहु मोरि।।[3]

वनचर देव—ब्रह्मा ने देवों से कहा कि वानर तन धारण कर हरिपद की सेवा करें— निज लोकहि बिरंचिगे तेवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि धरि महि हरि पद से बहु जाइ।।[4]
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा।।
वनचर देह धरि छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं।।[5]

तदुपरान्त किष्किन्धा-वास के समय राम सुन्दर वन में पहुँचे। उनके उस वन में प्रवेश करते ही कन्द, मूल, फल तथा पल्लवललाम से सुन्दर वन सुशोभित हो गया। सानुज सुरभूप का अवलोकन कर देवता लोग वनचर तन-मधुकर, खग, मृग, रूप धारण कर लिये और प्रभु की सेवा में लीन हो गये—

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा।।[6]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि राम दर्शनाभिलाषी देवों ने वानर, भ्रमर,

---

[1] रा०च०मा०-७/१७ ख/१-७
[2] रा०च०मा०-७/१९(ब)/३
[3] रा०च०मा०-७/१९ (क)
[4] रा०च०मा०-१/१८७
[5] मानस-१/१८७/२-३
[6] मानस-४/१२/४

खग तथा मृगादि वनचर रूप धारण किया और उसी बहाने वे राम के सेवक बनकर अपना जीवन धन्य बना सके।

नल-नील— नल नील दोनों वानर भाई थे।

एक समय सागर तीर पर ऋषियों ने पूजा समाप्त कर जब आँख बन्द कर ध्यान करना शुरु किया, इसी बीच बालक नल-नील ने शालग्राम की मूर्ति समुद्र में फेंक दी। इस पर मुनिगण ने शाप दिया कि तुम दोनों के द्वारा छुआ हुआ पत्थर पानी में नहीं डूबेगा। इसी कारण सागर के कहने पर राम ने नल नील वानर को बुलवाया और नल-नील ने पत्थरों का स्पर्श कर दिया, जिसके कारण सागर में सेतु वानरों की सेना द्वारा बाँध दी गयी। इस प्रकार हम देखते हैं कि नल-नील यद्यपि वानर गोत्रीय आदिवासी मानव थे, फिर भी उनके द्वारा किया गया अभियन्त्रण कार्य सर्वथा सराहनीय है।

सागर पर सेतु बाँधना आज के युग में भी एक दुष्कर कार्य है, किन्तु नल-नील दोनों भाइयों ने गिरि और पादप से ही सेतु निर्मित कर दिया। नल-नील महान अभियन्ता के साथ-ही-साथ परम वीर भी थे, तभी तो—

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं।।[1]

तारा—तारा बालि की पत्नी थी। वह पतिव्रता नारी थी तारा ने बालि का चरण पकड़ कर कहा—**सुनु पति जिन्हहि मिलेऊ सुग्रीवा।ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा।।**
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।।[2]

किन्तु नारी की बात नहीं मानकर बालि ने सुग्रीव से लड़ाई की, जिसके कारण राम के बाण का शिकार होकर उसने अपना प्राण त्याग दिया। उसकी मृत्यु सुनते ही तारा तन-मन की सुधि गँवाकर विलाप करने लगीं—

नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा।।[3]

राम के बहुत समझाने-बुझाने के बाद तारा का मन संतुलित हो सका। तदुपरान्त किष्किन्धा का राजा सुग्रीव हुए और वानरी सभ्यता के अनुसार तारा उनकी पत्नी हुई। तारा एक कुशल राजनीतिज्ञ थीं। जब सुग्रीव सखा-धर्म के पालन से विरत हो गये, तब राम ने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा। क्रोधित लक्ष्मण को शान्त करने के लिए सुग्रीव ने हनुमान के साथ तारा को ही भेजा और तारा ने वाक्चातुरी से लक्ष्मण को प्रसन्न कर ली, जिससे सुग्रीव की जान बच सकी।

अतः स्पष्ट है कि तारा राजनीतिकुशला वनचरी थी और उसकी बात मानकर अगर बालि किष्किन्धा का राज्य-सञ्चालित करता, तो निश्चित रूप से उसका वध नहीं होता।

---

[1] मानस–६/१/१ [2] मानस–४/६/२८-२९ [3] मानस–४/१०/२

मानस के प्रमुख पात्रों का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँच जाते हैं कि वनचर राम और रावण के बीच के 'वियोजक' हैं, जिनके कारण रावण ने अङ्गद को जी भरकर अपशब्द कहा, यथा—

(१) कपिपोत— रे कपिपोत बोलु संभारी ।[१]
(२) मूढ़— मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ।।[२]
(३) कपिसठ— जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहुँ ।।[३]
(४) नर्त्तक— धन्यकीस जो निज प्रभु काजा ।
जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा ।।[४]
(५) अलीक प्रलापी— सोइ रावन जग बिदित प्रतापी ।
सुनेहि न श्रवण अलीक प्रलापी ।।[५]
(६) कपि बर्बर—रे कपि बर्बर खर्व खल अब जाना तव ज्ञान ।[६]
(७) जड़ कपि— कटु जल्पसि जड़ कपि जाकें ।[७]
(८) लबारा— मिलि तपसिन्ह ते भएसि लबारा ।[८]

वानरों के विभिन्न विशेषण दिये गये । यथा—पुनः कहा गया—

(१) रण बांकुरा— रण बांकुरा बालिसुत बंका ।[९]
(२) धीरवीर-बलपुंज— गयउ समासद बार तव, सुमिरि राम पद कंज ।
सिंह ठवनि इत उत चितवन्धीर वीर बलपुंज ।।[१०]
(३) कपिकुञ्जर— कटकटान कपि कुंजर भारी ।
दुहु भुज दंड तमकि महि मारी ।।[११]
(४) अतिबल बांकुरा— गयउँ सभाँ मन नेकु न मुरा ।
बालितनय अति बल बाकुरा ।।[१२]

और विशिष्ट वनचर हनुमान की संज्ञाएँ—

(१) कपिकेहरी—कौतुक सिंधु लाधि तव लंका । आयउ कपि केहरी असंका।।[१३]
(२) वीर अति बांका—अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे वीर अति बाँके।।[१४]

---

[१] मानस–६/२०/१
[२] मानस–६/२०/१
[३] मानस–६/२२ (क)
[४] मानस–६/२३ (ख)/१
[५] मानस–६/२४/८
[६] मानस–६/२५
[७] मानस–६/३०/८
[८] मानस–६/३३ (ख)/६
[९] मानस–६/१७ (ख)/२
[१०] मानस–६/१८
[११] मानस–६/३१ (ख)/३
[१२] मानस–६/१८/७
[१३] मानस–६/३५ (ख)/४
[१४] मानस–६/३६/४

(३) परम चतुर—**परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार ।**
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालि कुमार ।।[1]

ऋक्षपति जाम्बवान्—**सोइ सर्वग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।**
धर्म परायन सोइ कुल त्राता । राम चरन जाकर मन राता ।।[2]

जाम्बवान् ब्रह्मा के अंशावतार थे । त्रेता-युग में क्षीर सागरशायी विष्णु दशरथ सुत बनकर जनकल्याण के लिए अभिभूत हुए । राम के सेवार्थ जाम्बनान् जी सुग्रीव सचिव हुए । ये अति जठर, कुशाग्रमति, महाबली एवं शूरवीर योद्धा थे ।

सीता की खोज की समय समुद्र तट पर अवस्थित हताश वानर सेना के बीच इन्होंने कहा—

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा । नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ।।
जबहि त्रिविक्रम भए खरारी । तब मैं तरुन रहेउँ बलभारी ।।
बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ ।
उभय धरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ ।।[3]

यह कहकर हनुमान जी को ललकार कर कहा—

पवन तनय तुम पवन समाना ।[4]

× × ×

का चुप साध रहेउ बलवाना ।।[5]

राम कार्यार्थमेवत्वं जनितोऽसि महात्मना ।
जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्टवोद्यन्तं विभावसुम ।।
पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्ट या ।
योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि ।।
अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् ।
अतिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत ।।[6]

जाम्बवान् की प्रेरणा से हनुमान को अपनी शक्ति का ज्ञान हो आया । उन्होंने माता जानकी की प्राप्ति के लिए लङ्कासहित रावण के गले में रस्सी बाँधकर और लङ्का को त्रिकूट पहाड़ के साथ वाये हाथ पर उठा लाकर श्रीराम के सम्मुख लाने अथवा मात्र माता सीता को ही देखकर चले आने के लिए जाम्बवान् से पूछा । जाम्बवान् जी ने आशीर्वाद के स्वर में आदेश दिया—

दृष्ट्वेवागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम् ।

---

१. मानस–६/३८ (ख)
२. मानस–७/१२६/१
३. मानस–४/२८/७-८ तथा दो २९
४. मानस–४/२९/४
५. मानस–४/२९/३
६. अ०रा०–४/९/१८-२०

पश्चाद्रामेणं सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम् ।।
कल्याणं भवताद भद्र गच्छतस्ते विहायसा ।
गच्छन्तं राम कार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु ।।[१]

राम-रावण-युद्ध के समय जाम्बवान् रामजी को पग-पग पर सत्परामर्श देते थे। राम के युद्धकालीन मन्त्री वे ही थे। मेघनाद की माया इनके सामने रोने लगी। इन्होंने मेघनाद को दुष्ट कहकर धमकाया। जब मेघनाद ने—

बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही ।।[२]

कहकर जाम्बवान् जी पर जान लेवा शूल का प्रहार किया, तब जाम्बवान् जी ने उसे अपने हाथ में पकड़ लिया और—

मारिसि मेघनाद के छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती ।।
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो ।।
बर प्रसाद सो माइन मारा। तब गहि पद लंका पर डारा ।।[३]

इनसे क्षुब्ध रावण ने अङ्गद से इनके प्रति व्यङ्ग्योचित कही थी—

जाम्बवान मंत्री अति बूढ़ा। सोइ कि होइ अब समरारुढ़ा ।।[४]

समर में जाम्बवान् जी ने अपने दल के वीर भालुओं का संहार देखकर रावण के वक्ष पर प्रचण्ड पद प्रहार किया। दशानन बेचैन होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा।

देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता ।।
उर लातघात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि पारा ।[५]

पुनः एक लात घात किया—**मुरुछित बिलोक बहोरि पदहति भालुपति प्रभु पहिं गयो।**[६]

राम के राज्याभिषेक के समय इन्होंने राम से वचन लिया कि मैं द्वापर में आपको पुनः दर्शन दूँगा तब वे वहाँ से प्रस्थित हुए। जाम्बवान् ऋक्षराज थे, फिर भी वे राजा बालि के अधीनस्थ मन्त्री थे— 'ऋक्षों का राजा जाम्बवान् था, किन्तु वह बालि के अधीन था और उसके दरवार में मन्त्री था। इन जङ्गली जातियों अर्थात् वानरों और ऋक्षों के सरदार अपनी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत भी जानते थे। उनमें से कतिपय जैसे हनुमान इत्यादि तो संस्कृत के महान् पण्डित और नीतिज्ञ थे। इन जातियों में बालि, सुग्रीव, केशरी, जाम्बवान्, अङ्गद, हनुमान आदि बड़े-बड़े विख्यात एवं महाबली योद्धा थे।[७] ऊपर के उद्धरणों के आलोक में स्पष्ट है कि जाम्बवान् वीर, योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी सफल सेनापति थे।

---

१. अ०रा०–४/९/२५-२७
२. मानस–६/७३/५
३. मानस–६/७३/७-९
४. मानस–६/२२/४
५. मानस–६/९/७
६. मानस–६/९७
७. प्रो० जगन्नाथ राय शर्मा : हमारा सांस्कृतिक साहित्य, प्रथम भाग, सं० २०१०, शीर्षक : महाकाव्य, पृ० ४०

(ग) राक्षस पात्र

जो अपने लाभ को त्याग कर दूसरों का हित करते हैं, वे ही सच्चे सत्पुरुष हैं। स्वार्थ को न छोड़कर जो लोग लोकहित के लिए प्रयत्न करते हैं, वे पुरुष सामान्य हैं और अपने लाभ के लिए जो दूसरों का नुकसान करते हैं, वे नीच मनुष्य नहीं हैं— उनको मनुष्याकृति राक्षस समझना चाहिए; परन्तु एक प्रकार के मनुष्य और भी हैं, जो लोकहित का निरर्थक नाश किया करते हैं। मालूम नहीं पड़ता कि ऐसे मनुष्यों को क्या नाम दिया जाय—

एके सत्पुरुषः परार्थ घटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाऽविरोधेन ये।।
तेऽमी मानवराक्षसः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानी महे।।[1]

असुर पात्रों की तालिका

पुरुष पात्र—(१) रावण, (२) विभीषण, (३) कुंभकर्ण, (४) मेघनाद, (५) माल्यवन्त, (६) कालनेमि, (७) मारीच, (८) खर-दूषण-त्रिसिरा, (९) अक्षयकुमार, (१०) मरु, (११) शुक।

स्त्री पात्र—(१) मन्दोदरी, (२) ताड़का, (३) लङ्किनी, (४) त्रिजटा, (५) शूर्पणखा।

रावण—रावण शास्त्रज्ञ, राजनीतिज्ञ और कुशल प्रशासक था। राम-स्वामी पेरियर, रायसाहब, दिनेस चन्द्रसेन, कामिल बुल्के, महात्मा फुले आदि के अनुसार रावण सीता को जबर्दस्ती नहीं ले गया, अपितु वह स्वतः आकृष्ट होकर उसके वश में हुई। वाल्मीकीय रामायण में राम ने उसकी मृत्यु के बाद उसे ***'महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोक रावणः'*** कहा है। उक्त कथन के आधार पर रावण खलनायक नहीं, लोक नायक था। 'पेरियर इ०वी० रामस्वामी रावण को द्रविड़ों का प्रतिनिधि मानते हैं, स्वयं हनुमान ने वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड (सर्ग-४) में राक्षसों के गुणों की प्रशंसा की है।[2] वह त्यक्त, प्रताड़ित, दलित और अपमानित आदिवासियों का राजा था। अतः वह खल नायक नहीं, दलित नायक था। 'आदिम जातियों के जन क्षेत्र में घुसकर राम ने उनकी हत्या की। उनकी संस्कृति भ्रष्ट करने की कोशिश की।

इस प्रकार मेरी दृष्टि में राम-रावण-युद्ध दो व्यक्तियों का युद्ध नहीं, प्रत्युत् दो

---

[1] भर्तृहरि : नीति शतक–७४

[2] दिनमान : २८ नवम्बर-४ दिसम्बर ८२, पृ०-२२; शीर्षक–रावण खलनायक नहीं, दलितों का नायक है।

संस्कृतियों (आर्य और अनार्य) के बीच का संघर्ष था। 'राम आर्य थे, रावण अनार्य'।[1] 'जिनको राक्षस कहा जाता है'।[2] वे द्रविड़, नाग और अन्य आदिम जाति के अनार्य लोग थे। 'वे बौद्ध थे'।[3] डॉ० अम्बेडकर की पुस्तक 'दि अनट चेबल्स' के अनुसार रावण बलशाली, मेधावी और न्यायशील था।

जन्म—रावण का जन्म विश्रवा के पुत्र के रूप में हुआ। उसने कठिन तपस्या की। ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर उसके पास गये और बोले—हे तात! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर माँगो। रावण ने स्तुति की और उनका चरण पकड़ कर कहा—हे जगदीश! सुनिये, मैं वानर और मनुष्य-इन दो जातियों को छोड़कर किसी से नहीं मरूँ। ब्रह्मा और शिव ने 'एवमस्तु' कहा—

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा।।[4]

विवाह—मय दानव ने अपनी परम सुन्दरी कन्या मन्दोदरी से रावण का विवाह कर दिया।

वास-स्थान—समुद्र मध्य त्रिकूट पर्वत पर विधि निर्मित दुर्गम किला का मय दानव ने जीर्णोद्धार किया। उस अत्यधिक सुन्दर तथा बाँके दुर्ग का नाम लङ्का पड़ा—प्रतापी, अतुलित बलवान। एक करोड़ रक्षक-यक्षलोक-के साथ कुबेर लङ्का में निवास करते थे। सूचना मिलते ही रावण ने सेना सजाकर दुर्ग को घेर लिया। कुबेर प्राण बचाकर भाग चले। रावण ने लङ्का नगर का निरीक्षण किया और दुर्गम जानकर रावण ने अपनी राजधानी बनायी।

सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी।।[5]

सामाजिकता—योग्यतानुसार घरों को बाँटकर उसने सभी राक्षसों को सुखी बनाया—**जेहि जस जोग बांटि गृह दीन्हें। सुखी सकल रजनीकर कीन्हें।।**[6]

एक बार कुबेर पर आक्रमण किया और पुष्पक विमान जीतकर हस्तगत किया।

कौतुक प्रिय—एक बार खेल-खेल में ही कैलास पर्वत को उठा लिया—

---

[1] दिनमान : २८ नवम्बर ४ दिसम्बर, १९८२, पृ०-२२, शीर्षक-रावण खलनायक नहीं, दलितों का नायक।

[2] दिनमान : २८ नवम्बर ४ दिसम्बर, १९८२, पृ०-२२, शीर्षक-रावण खलनायक नहीं, दलितों का नायक।

[3] दिनमान : २८ नवम्बर ४ दिसम्बर, १९८२, पृ०-२२, शीर्षक-रावण खलनायक नहीं, दलितों का नायक।

[4] मानस-१/१७६/५

[5] मानस-१/१७८ (ख)/६

[6] मानस-१/१७८(ख)/७

कौतुक ही कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ ।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल चला बहुत सुख पाइ ।।[१]

सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, बल, विक्रम, बुद्धि तथा बड़ाई प्राप्तकर रावण विश्वविदित हो गया। उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण विश्व का अद्वितीय योद्ध था।

पुत्र—रावण का सबसे बड़ा पुत्र मेघनाद था, जिसकी गणना संसार के प्रथम श्रेणी के योद्धाओं में थी—**वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट मट प्रथम लीक जग जासू।।**[२] उसके अनेक योद्धा अकेले ही सम्पूर्ण विश्व को जीत सकते थे—

कुमुख अकम्पन कुलि सरद घूमकेतू अतिकाय ।
एक एक जग जीती सक ऐसे सुभट निकाय ।।[३]

क्रोध मदाभिभूत रावण ने अपने समस्त राक्षसदल को आदेश देकर ब्राह्मण भोजन यज्ञ, हवन और श्राद्धादि कर्मों पर रोक लगा दी और मेघनाद सहित गदा लेकर देवताओं से युद्ध करना शुरू कर दिया—रवि, शशि, पवन, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग–सभी वशवर्ती हो गये। उसके चलते ही धरती काँपने लगती थी और उसकी गर्जना से देव-रमणियों का गर्भपात हो जाता था।

विश्व विजेता—सम्पूर्ण विश्व का अधिपति रावण 'मण्ड लीक मणि' की उपाधि से पूजा जाने लगा—**भुज बल बिस्व वस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र ।**
मंड लीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र ।।[४]

सार्वभौम सम्राट् रावण अपनी इच्छा के अनुसार राज्य करने लगा।

बहु-विवाह—देवता, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग कन्याओं तथा अन्य सुन्दर वरनारियों को भुजबल से जीतकर विवाह कर लिया—

देव, जच्छ गंधर्व नर किन्नर नाग कुमारि ।
जीति बरी निज बाहुबल सुन्दर बर नारि ।।[५]

वेदपुराण विरोधी रावण गौ, ब्राह्मण गुरु-ऋषि, मुनि आदि सब को जान से मरवाने लगा। उनके नगर, गाँव तथा टोले में आग लगवा देता था। वेद पाठियों को देश से निष्कासित कर देता था। खल, चोर, जुआरी, परधन तथा परदारा में रमणशील राक्षस साधुओं से सेवा करवाते थे।

---

१. मानस–१/१७९
२. मानस–१/१७९/७
३. मानस–१/१८०
४. मानस–१/१८२ (ख)
५. मानस–१/१८२(ख)

सीताहरण—राम लक्ष्मण विहीन आश्रम में रहने वाली सीता का रावण ने हरण किया; परन्तु मन में उसने सीता के चरणों की वन्दना की और सुखी हुआ—

सुनत बचन दस सीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना।।[१]

तदुपरान्त गगन पथ से लङ्का की ओर प्रस्थान किया। सीता के विलाप को सुनकर गृद्धराज जटायु ने रघुकूल तिलक रामचन्द्र की पत्नी सीता को पहचान लिया और रावण से लड़ाई ठान दी, किन्तु रावण ने अत्यन्त भयावह कटार से जटायु के पङ्ख काट दिया। घायल जटायु धरती पर गिर गये। घायल जटायु धरती पर गिर गये। वह सीता को अशोकवाटिका में रख दिया। सीतान्वेषण के क्रम में हनुमान लङ्का गये। उन्होंने मधुवन को नष्ट कर दिया। राक्षसों के साथ अक्षय कुमार को जान से मार दिया। पुत्रवध सुनते ही रावण ने मेघनाद को आदेश देकर हनुमान को नागपाश में बँधवाकर अपने सभासदों के बीच बहुत दुर्वाद कहा। हनुमान ने लङ्का-दहन कर दिया तथा गर्जन कर राक्षसियों के गर्भ का स्त्रवण किया, फिर भी रावण अपनी जिद्द पर आरुढ़ रहा। पत्नी मन्दोदरी, भाई विभीषण, दूत शुक, प्रहस्त, माल्यवान, कालनेमि तथा कुम्भकर्ण के बहुत समझाने पर भी रावण ने राम को सीता वापस नहीं किया। अङ्गद तथा हनुमान ने भी समझाया, पर काल-विवश रावण अनसुनी करता रहा।

युद्ध—रावण ने परायी नारी की चोरी के कारण घनघोर युद्ध किया। लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान–राम-दल के सभी वीर योद्धाओं को लड़ाई में रावण ने छक्के छुड़ा दिये, किन्तु सीतापति राम से युद्ध करते-करते रावण मारा गया। उसकी पत्नी मन्दोदरी विधवा हो गयी। राम की मन्त्रणा से विभीषण ने रावण की अन्त्येष्टि क्रिया की। इस प्रकार हम देखते हैं कि रावण अपने-आप में अकेला था।

विभीषण—जन्म राक्षस-कुल में हुआ, फिर भी वे कर्म से मनुष्य थे। विभीषण का अर्थ है–विशेषतः भीषण। वे आकार से ही भीषण थे, स्वभाव उनका मृणालसम मधुर था। उनका काम उनके नाम के विपरीत था। आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण में ही विभीषण जी का 'दासलाभ' हमें होता है। लोक प्रयादानुसार विभीषण को देश-द्रोही मानना उनके साथ घोर अन्याय करना है। उन्होंने स्वार्थ वश सुग्रीव की भाँति-अपने अग्रज रावण का विरोध नहीं किया, अपितु रावण के पापाचारों का विरोध किया था। महर्षि वाल्मीकि ने विभीषण को धर्म परायण पुरुष के रूप में विवृत्त किया है—*'विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः'*।[२] विभीषण अपने भाइयों के साथ तपस्या करने गये। कुम्भकर्ण गर्मी में पञ्चाग्नि तपरत था, शिशिर में जलमध्य बैठता

---

[१] मानस–३/२७/१६

[२] वा०रा०–७/१०/६

था और पावस में वीरासन पर बैठकर वर्षा प्रहार सहता था। रावण अपना सिर काटकर अग्नि को होम करता था, तो विभीषण जी अपने सिर को ऊपर उठाकर वेद पाठ करते थे। ब्रह्मा प्रकट हुए। उनके सभी भाई स्वेच्छानुसार वरदान प्राप्त किये। ब्रह्मा जी ने विभीषण से कहा—'वरं ब्रूहि'। उन्होंने कहा—'प्रभो! जटिल एवं घनघोर विपत्ति-विघ्न ववंडरों के समुपस्थित होने पर भी मेरी धर्मबुद्धि नष्ट न हो। मुझे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग प्राप्त हो। मैं जिस आश्रम में रहूँ, मेरी धर्मनिष्ठा अचल रहे'। ब्रह्मा जी ने कहा—'वत्स! राक्षस कूलोद्भूत होने के बावजूद तुम धर्म-परायण हो। तुम धन्य हो। तुम्हें अधर्म रुचिकर नहीं होगा। तुमको मैं अमरत्व भी प्रदान करता हूँ'। परम पराक्रमी अमर नहीं हो सका, किन्तु विभीषण जी सहज रूप से ही अमर हो गये।

जब रावण के दरबार में बन्दी हनुमान को उपस्थित किया गया, तब रावण ने उन्हें मरवाने का उपाय किया, तब विभीषण जी ने कहा—**आन दंड कछु करिय गुसाई।**[१] रावण ने पूँछ में आग लगवाकर ही हनुमान को छोड़ दिया। राम के सागर तट पर आने के बाद से ही रावण ने सभासदों के परामर्शानुसार राम को मरवाने की बात सोचने लगा। अनुशासन प्राप्त कर विभीषण जी ने कहा—'भाई साहब! मैं इन लोगों से असहमत हूँ। मेरा विचार है कि सीताजी को वापस कर दिया जाय, जिससे अपने राक्षस वंश का विनाश न हो सके'। विभीषण ने महसूस किया कि 'रावण ने परदारा का अपहरण किया है और समस्त देश को युद्धोन्मत्त कर दिया है, यह न्यायसङ्गत नहीं है'। रात्रि में फिर रावण के रनिवास में गये। उनके गुणानुवाद के पश्चात् उन्होंने कहा—'भइया! मेरी बात पर ध्यान दो। पर-स्त्री-हरण के बाद से लङ्का में केवल अपशकुन-ही-अपशकुन हो रहा है। कृपाकर सीता को राम के पास वापस कर दो'। रावण क्रोधातुर होकर कहा—'विभीषण! मेरे सामने से शीघ्र ही हट जाओ'। विभीषण उदास मन वापस लौट गये।

दूसरे दिन राजसभा की युद्ध-मन्त्रणा में भी विभीषण जी ने बहुभाँति समझाया। रावण के सभासदों–प्रहस्त और मेघनाद को खूब पटकारा। तब रावण से अपमानित एवं देश निष्कासित होकर विभीषण अपने चार राक्षसों के साथ राम की शरण में जाते हुए कहा—'रावण! अब तुम्हें कोई अनीति मार्ग से नहीं रोकेगा। ये सब खुशामदी हैं। तुम वंश तथा देश का नाश करने जा रहे हो'। विभीषण की न्याय-परायण धर्म बुद्धि परदारा-हरण में घोर अनीति देखती है। वह रावण के घोर पापाचार का विरोध करता है। रावण ने गालियाँ दीं। विभीषण राम की शरण में चले जाते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं—

---

[१] मानस–५/२३/८

कर्मबन्ध विनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ।
त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ।।
न याचे एम राजेन्द्र सुखं विषयसंभवम् ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ।।[१]

अध्यात्म् रामायण के वक्ता ने विभीषण को नीतिज्ञ और धार्मिक बनाने के साथ-ही-साथ उन्हें ज्ञानी और भक्त के रूप में उपस्थित किया है । इन्हें ज्ञानी भक्त कहा गया है । मानस के कवि तुलसीदास जी ने विभीषण जी को केवल भक्त के रूप में ही चित्रित किया है । उन्हें धार्मिक एवं नीतिवान् माना है । जब ब्रह्माजी ने विभीषण की तपस्या से प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा—

गए विभीषण पास पुनि कहेउ पुत्र वर मागु ।
तेहि मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ।।[२]

महाकवि ने विभीषण के चरित्र को मौलिक कल्पना के बल पर ऊँचा उठाया है, ऐसा तुलसी के पूर्ववर्ती किसी भी रमायणकार ने नहीं किया । वाल्मीकीय रामायण तथा अध्यात्म रामायण में हनुमान रावण के राज महलों में सीता का अन्वेषण करते हुए अशोकवाटिका में पहुँचते हैं, किन्तु मानस में हनुमान जी रावण का सौध ढूँढ़ते हैं । रावण के शाही भवन के समीपस्थ रामभक्त का मकान हनुमान जी को मिलता है—

भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ।।
रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसि का बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ।।[३]

स्पष्ट है कि विभीषण पहले से ही राम भक्त थे । उनके घर 'रामायुध' अङ्कित थे । जगते हुए विभीषण के मुँह से 'राम-राम' सुनकर हनुमान जी समझ गये कि यह कोई राम भक्त ही सज्जन हैं और तब वे ब्राह्मण वेश में उनके पास गये । मानस के हनुमान जहाँ कहीं गुप्तचर के रूप में गये हैं, वहाँ केवल ब्राह्मण के रूप में ही । सामने ब्राह्मण को देखकर विभीषण जी ने प्रणाम कर कुशल-क्षेम पूछा—

करि प्रनाम पूँछी कुसलाई । विप्र कहहु निज कथा बुझाई ।।[४]

विभीषण हनुमान को अपने व्यवहार के कारण मित्र बना लेते हैं । जब रावण बन्दर को जान से मार देने की आज्ञा देता है तब विभीषण आकर ऐसा रङ्ग बदलते हैं, मानो वे उस वानर से अपरिचित ही हैं ।

---

[१] अध्यात्म रामायण–६/३/३६-३७

[२] मानस–१/१७७

[३] मानस–५/४/४, ५

[४] मानस–५/५/३

विभीषण के चरित्र पर प्रकाश—शारदातनय ने एक दूसरे रामानन्द नामक नाटक की चर्चा की है, जिसमें विभीषण का परिचय सीता हरण के पूर्व ही प्राप्त होता है—**प्रागेव सीताहरणाद् पदविभीषण वर्णनम् ।**[१]

सचिव जो रहा धरम रुचि जासू । भयउ बिमात्र बंधु लघुतासू ।।
नाम विभीषण जेहि जग जाना । बिस्नु भगत बिग्यान निधाना ।।[२]
नाइ सीस करिबिनय बहुता । नीति विरोध न मारिअ दूता ।।
आन दंड कछु करिअ गोंसाई । सबहीं कहा मंत्र भल भाई ।।[३]

रावण ने विभीषण की नीतिपरक बातों को मान लिया । सम्पूर्ण लङ्का में विभीषण के ऐसा उच्चाशय, सज्जनोचित व्यवहार, नीति-ज्ञान तथा न्याय प्रियता कहीं नहीं पायी गई । रावण राजसभा में बैठकर अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा कर रहा है, यह सम्वाद पाकर विभीषण अपने राजसभा में आ जाता है तथा आदेश प्राप्त कर नीति धर्ममय विचार प्रकट करते हैं—

जो आपन चाहै कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ।।
सो परनारि लिलाइ गोसाईं । तजउ चउथि कै चंद कि नाईं ।।[४]
तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेश्वर कालहु कर काला ।।[५]

× × ×

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा । प्रनतारति भंजन रघुनाथा ।।
देहू नाथ प्रभु कहँ वैदेही । भजहू राम बिनु हेतु सनेही ।।[६]

रावण के नाना मन्त्री वृद्ध माल्यवान ने भी विभीषण को नीतिज्ञ कहा— ***'तात अनुज तब नीति विभूषन। सो उर धरहु जो कहत विभीषण।।***[७] विभीषणजी ने कहा—**तात चरन गहि माँगेउ राखहु मोर दुलार। सीता देहु राम कहँ अहितन होइ तुम्हार।।**[८]

रावण विभीषण जी को बहुत मानता था । इसीलिए क्रोधित रावण को भी वे बार-बार समझाते हैं । रावण और विभीषण के पितामह पुलस्त्य जी ने एक शिष्य के माध्यम से विभषण जी के पास यह सन्देश भेजा था कि 'तु रावण को समझा दे कि वह सीता को लौटा दे और राम से शत्रुता छोड़कर उनका भक्त बन जाय । नहीं तो सारा परिवार नष्ट होगा और सभी राक्षस भी मारे जायेगे' । इससे सिद्ध होता है कि विभीषण को वे अधिक समझदार समझते थे । विभीषण जी ने पुलस्त्य मुनि का सन्देश सुनाते हुए

---

[१] भावप्रकाश–८
[२] रा०च०मा० (बालकाण्ड), दो० १७६, चौ० ४-५, पृ०-१३२
[३] मानस–५/२३/७-८
[४] मानस–५/३७/५-६
[५] मानस–५/३८
[६] मानस–५/३९/५-६
[७] मानस–५/३९ (ख)/२
[८] मानसं–५/४०/७

रावण से सीता को लौटाने के लिए कहा। क्रोधातुर रावण विभीषण को लात मारकर ढकेल दिया। परिस्थिति से विवश होकर विभीषण जी राम की शरण में यह कहकर चले गये—

रामु सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालवस तोरि।
मैं रघुबीर सरण अब, जाऊँ देहु जनि खोरि।।[१]

धर्म बुद्धि विभीषण भाई द्वारा देश निष्कासित होकर राम की शरण में जाते हुए कहते हैं—'मैं आर्त्त हूँ। मेरा कोई नहीं। मुझे रावण ने त्याग दिया है। आप ही मेरे रक्षक हैं'। राम ने कहा—

मैं जानउँ तुम्हारी सब रीति। अति नय निपुन न भाव अनीती।।[२]
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ विधाता।।[३]

राम ने विभीषण से प्रभावित होकर उन्हें लङ्का का राजा बना दिया और उनसे वर माँगने के लिए कहा। विभीषण ने निष्कपट भाव से कहा—

उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिवमन भावनी।।[४]

राम ने विभीषण जी को सिन्धु नीर से तिलक कर दिया और अपनी अनपायनी भक्ति भी दे दी। कुम्भकर्ण ने विभीषण के इस कार्य की प्रशंसा की—

सुनु सुत भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन।।
धन्य-धन्य तै धन्य विभीषन। भयउ तात निसिचर कुल भूषन।।
बंधु वंश तै कीन्ह उजागर। भजेउ राम सोभा सुख सागर।।[५]

गीतावली में गोस्वामी जी ने विभीषण के चरित्र का और अधिक मार्जन किया है। रावण की लात खाकर देशनिष्कासित विभीषण माँ के पास पहुँचता है। वहाँ शिवजी आसीन थे। उन्होंने कहा—'अब राम की शरण जा। तेरा वहीं कल्याण होगा'। भक्त विभीषण यह सुनते ही राम की शरण में चले गये। विभीषण ने अपने अग्रज लङ्केश रावण के साथ लङ्का की रणभूमि में संग्राम किया और उसने रावण-वध हेतु राम को युक्ति बतलायी, जिसके कारण राम रावण का वध कर सके। रावण की मृत्यु के बाद लङ्का का राजा विभीषण हुए।

विभीषण—विभीषण विष्णुभक्त तथा विज्ञान-निधान थे—

सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भयउ विमात्र बंधु लघु तासू।।
नाम विभीषण जेहि जग जाना। बिष्नु भगत बिग्यान निधाना।।[६]

---

[१] मानस–५/४
[२] मानस–५/४५/६
[३] मानस–५/४५/७
[४] मानस–५/४८/६-७
[५] मानस–६/६३/७-९
[६] मानस–१/१७५/४-५

पूर्वजन्म में धर्मरुचि के रूप में वे राजा भानु प्रताप के सचिव थे। उस समय भी वे भगवत्प्रेमी, नीतिनिपुण एवं नृपहितसाधक थे—

सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृपहित हेतु सिसव नित नीती।।[१]

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः।[२]

दस हजार वर्षों तक तपस्या करने के बाद विभीषण ने भगवच्चरणों में निष्काम प्रेम का ही वरदान माँगा—**तेहि मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।**[३] राम ने भी कहा था—**तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहि आन निहोरे।।**[४] तथा—**मै जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।**[५] रावण को वे अग्रज होने के कारण पितासदृश सम्मान देते हैं—

तुम्ह पितु सरिस भले हि मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा।।[६]

रावण के वे कानूनी सलाहकार थे। सीताहरण के उपरान्त रावण-सभा में आपने स्पष्ट शब्दों में रावण से कहा—

जौ कृपाल पूंछिहू मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता।।
जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो परनारि लिलार गोसाई। तजउ चउथि के चंद कि नाई।।[७]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभीषण रावण तथा समस्त लंकापुरी के परम हितैषी हैं। रावण का भाई तथा सचिव होकर भी वे महान क्रान्तिकारी थे तभी तो लंका प्रवेश करने पर हनुमान ने देखा—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तंह भिन्न बनावा।।[८]
तथा—**रामायुध अंकित गृह सोभा बरनिन जाइ।**
नव तुलसिका बृंद तहं देखि हरष कपिराइ।।[९]

विभीषण के मंत्र से झल्लाकर रावण ने उन पर चरण प्रहार कर दिया तथा लंका से निष्कासित कर दिया—

ममपुर बसि तप सिन्ह पर प्रीती। सइ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।[१०]

तत्पश्चात् विश्वकल्याणार्थ उन्होंने राम शरणागति का अंतिम निर्णय लेकर डिण्डिम-घोष तत्क्षण सुना दिया—

---

[१] मानस–१/१५४/३
[२] वा०रा०–१/७०/६
[३] मानस–१/१७७/५
[४] मानस–५.४७.८
[५] मानस–५/४५/६
[६] मानस–५/४०/८
[७] मानस–५.३७.४-६
[८] मानस–५.४.८
[९] मानस–५.५
[१०] मानस–५.४०.६

रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि ।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहू जनि खोरि ।।[१]

निकुम्भिला में रावण पुत्र मेघनाद के आक्षेप का उत्तर देते हुए उन्होने रावण-त्याग का रहस्य बतलाया था—

कुले जद्यप्यहं जातो राक्षसां क्रूरकर्मनाम् ।
गुणो यः प्रथमो नृणा तन्मे शीलम राक्षसम् ।।
न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वे रमे ।
भ्रता विषम शीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ।।
धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरूष पाप निश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमवार नोति हस्तादाशीविषं यथा ।।
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् ।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्मप्रज्वलितं यथा ।।
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्कं च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ।।
महर्षीनां वधो धोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता।।
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यं नाशनाः।
गुणान्न प्रच्छादया मासुः पर्वतानिव तो यदाः।।
दोषैरे तैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ।
नेयमस्पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ।।[२]

वे निष्क्रोध तथा निरभिमानवश सप्रसन्न प्रणत्ति हेतु राम के पास चल दिये—

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं । करत मनोरथ बहुमन माहीं ।।[३]

सत्याग्राही तथा आत्मबलिदानी विभीषण को राम ने अपना बना लिया । राम-रावण-युद्ध की घनघोर घड़ी में विभीषण जी ने राम को रावण वध की युक्ति बतलयी तथा संग्राम में उन्होंने राम का साथ दिया, जिससे राम की जीत और रावण सहित लंका का विनाश हुआ ।

कुम्भकर्ण

रामहि केवल प्रेमु पिआरा । जानि लेउ जो जान निहारा ।।

कुम्भकर्ण एक वीर योगी था। वह गर्मी में पंचाग्नि तापता था और शिशिरऋतु में जल-शयन करता था। उसकी घनघोर तपस्या से घबड़ाकर ब्रह्मा जी ने विचार किया—

---

[१] मानस–५.४१ [२] वा०रा०–६.८७.१९-२६ [३] मानस–५.४१.४

यदि कहीं यह नित्य भोजन करेगा तो सारा विश्व कुछ ही दिनों में इसके द्वारा समाप्त हो जाएगा। सरस्वती के द्वारा ब्रह्मा जी ने कुम्भकर्ण की बुद्धिभ्रमित करा दी, जिसके कारण उसने छः महीने तक सोते रहने का वरदान माँग लिया। वह पहाड़ की एक भारी गुफा में छः महीने तक सोया करता था। छः महीने के बाद केवल एक दिन के लिए जागता था। भोजन करके समाचार जानने में ही सारा दिन बीत जाता था। उसे पाप-पुण्य और धर्म-कर्म से कोई वास्ता नहीं था। रावण के अत्याचार में कुम्भकर्ण का कोई हाथ नहीं था। उस विशालकाय का हृदय कमलसम कोमल और पद्मपत्रसम निर्मल था। देवर्षि नारद से उसने तत्वज्ञान की शिक्षा ली थी।

जब लंका में वानरी सेना पहुँच गयी और अनीक तथा अकम्पनादि राक्षस नायक कपियों के द्वारा मारे गये, तब रावण ने अनेक प्रयत्नों द्वारा किसी प्रकार कुम्भकर्ण को जगा पाया। इतिवृत्त सुनकर कुम्भकर्ण ने दुःखी होकर रावण से कहा—

जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्याण।।
भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा । जब मोहि आइ जगाएहि काहा ।।
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना ।।[2]

रावण अपनी जिद्द पर डटा रहा । कुंभकर्ण ने अपने अग्रज की आज्ञा मानकर लोचनलाभ के लिए युद्धभूमि में प्रस्थान किया—

स्याम गात सरसीन्ह लोचन । देखौं जाइ ताप श्रय मोचन ।।[3]

कुम्भकर्ण ने विभीषण को बड़ी अच्छी शिक्षा दी—

बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर ।[4]

भक्तिभरित हृदय ने कर्त्तव्यकर्म के सम्मुख अपने घुटने टेक दिये । कुम्भकर्ण को अपने अग्रज की ओर से संग्राम में आरूढ़ होना पड़ा । वह ''देखौं जाइ ताप त्रय मोचन'' का संकल्प लिया । राम ने कहा—**मैं देखउँ खल बल दलहिं ।**[5] और 'राजिवनैन' स्वयं 'कर सारंगु साजि कटि भाथा' अरिबलदलनार्थ चल पड़े। कुंभकर्ण अप्रतिभट था—

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता । जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता ।।
करइ पान सोवइ षट मासा । जागत होइ तिहँ पुर त्रासा ।।[6]
जौ दिन प्रति अहार कर सोई । बिस्व बेगि सब चौपट होई ।।[7]
भूप अनुज अरिमर्दन नामा । भयउ सो कुंभकरन बल धामा ।।[8]

संग्राम में अपना प्रबल पराक्रम प्रदर्शित कर श्री राम के वाणों से बिद्ध शरीर त्याग

---

१. मानस–६.६२
२. मानस–६.२२.२
३. मानस–६.२२.६
४. मानस–६.६८
५. मानस–६.६७
६. मानस–१.१७९.३-४
७. मानस–१.१००.३-५

कर कुंभकर्ण राम में मिल गया—

तासु तेज प्रभु वदन समाना । सुरमुनि सबहिं अचंभव माना ।।[१]

कुंभकर्ण राक्षस कुलोत्पन्न हुआ था। उसका आहार तामसिक था तथा वह तमोगुण रूपा महानिद्रा में निमग्न था, फिर भी कुंभकर्ण ने राम को हृदय से भगवान मान लिया था। यह उसके चरित्र की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

शुक

सुक रावण का दूत था। वह रावण-द्वारा राम की सेना का भेद लेने के लिए राम-दल में भेजा गया था। वह कपि-वेश में राम-सेना के सभी चरित्रों का अवलोकन करने लगा और राम के गुण की मन-ही-मन प्रशंसा करने लगा। राम के प्रेम में विभोर होकर वह शत्रु भाव ही भूल गया—

प्रगट बखानहिं राम सुभाउ । अति सप्रेम गा बिसरि दुराउ ।।[२]

वानरों ने जान लिया कि कपटवेश में रिपुदूत है, तब भांति-भांति का कष्ट उन लोगों ने शुक को देना शुरु किया। दयालु लक्ष्मण ने शुक को भयमुक्त कर दिया और उसके हाथ में पत्र रावणहेतु दिया। वह लक्ष्मण को प्रणाम कर रावण के पास गया और राम का संदेश उन्हें सुनाया तथा वानर-सेना का सम्पूर्ण वृत्तान्त रावण के सम्मुख रख दिया। अभिमानी रावण को अभिमान-त्याग कर राम की शरण में जाने की सलाह शुक ने दी—

कह सुक नाथ सत्य तब बानी । समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी ।।
सुनहु बचन मन परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहू बिरोधा ।।
अति कोमल रघुबीर सुभाउ । जद्यपि अखिल लोक कर राउ ।।
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही । उर अपराध न एकउ धरिही ।।
जनक सुता रघुनाथहि दीजै। एतना कहा मोर प्रभु कीजे ।।[३]

यह सुनते ही रावण ने शुक पर चरण प्रहार किया। शुक ने रावण को झुक कर प्रणाम किया और राम की शरणगति हेतु चल पड़ा—

नाइ चरन सिर चला सो तहाँ । कृपा सिन्धु रघुनायक जहाँ ।।[४]

राम के पास पहुँचकर उसने प्रणाम किया और अपनी कथा राम को सुनायी। राम ने शरणागत शुक पर सहैतुकी कृपा की, जिसके कारण वह पुनः मुनि के रूप में परिवर्तित हो गया और वह (मुनि) राम-पद-वंदन कर अपने आश्रम में चला गया—

वंदि राम पद बारहिं बारा । मुनि निज आश्रम कहुँ पगुधारा ।।[५]

---

[१] मानस–६.७०.८
[२] मानस–५.५१
[३] मानस–५.५६.ख ३-७
[४] मानस–५.५६.ख ९
[५] मानस–५.५६.ख १२

माल्यवन्त

माल्यवन्त रावण के एक चतुर मंत्री थे । उन्होंने रावण से कहा—

तात अनुज तव निति विभूषन । सो उर धरहु जो कहत विभीषन ।।[1]

इतना सुनते ही रावण ने उन्हें दुर्वाद दिया । वे रावण के कठोर रुप को देखते हुए अपने घर चले गये । लंका की आधी सेना जब वानरों के द्वारा लड़ाई में वीरगति को प्राप्त हुई, तब रावण ने अपने मंत्रियों को बुलाकर सलाह माँगी—**कहहु बेगि का करिअ बिचारा ।।**[2] अति वृद्ध मंत्री माल्यवंत, जो रावण के माता-पिता का भी मंत्री था, उसने नीति पूर्ण सलाह दी—

बोला बचन नीति अति पावन । सुनहु तात कछु मोर सिखावन ।।[3]
जब ते तुम सीता हरि आनी । असगुन होहिं न जाहिं बखानी ।।[4]
फिरि हरि बयरु देहु बैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ।।[5]

उनकी बात सुनते ही रावण ने कहा—**करिआ मुह करि जाहि अभागे ।।**[6] इस प्रकार हम देखते हैं कि माल्यवन्त एक नीति निपुण कुशल तथा स्पष्टवादी रावण-सचिव थे । रावण-दल में सर्वाधिक जरठ तथा अनुभवी मंत्री माल्यवन्त ही थे। उन्होंने राक्षस होने के बावजूद यह महसूस किया कि राम की शरणागति न्यायोचित है। अतः राक्षस-कुल में उत्पन्न होकर भी माल्यवन्त राम-भक्त थे । इसीलिए उनका चरित्र परम पुनीत है । -

मारीच

मारीच ताड़का नामक राक्षसी का पुत्र था । वह ऋषि-मुनियों के यज्ञ का विध्वंश करने वाला उपद्रवी राक्षस था । एकबार विश्वामित्र जी के यज्ञ को भ्रष्ट करते समय राम-बाण से सौ योजन दूर सागर-तट पर जाकर गिरा । रावण का वह मामा था । एक बार रावण ने उसके पास जाकर अपना सिर झुकाते हुए अपनी सीताहरण नामक योजना से उसे अवगत कराया । उसने मारीच को कंचनमृग बन कर राम को ठगने के लिए कहा । उसने कहा—राम मनुष्य के रूप में देवता हैं । उन्होंने ताड़का, सुबाहु, खर, दूषण एवं त्रिशिरा का वध किया है । अतः, उनसे वैर नहीं करने की रावण को उसने सलाह दी । अनुनय-विनय करने पर भी अहंकारी रावण नहीं माना, उल्टे साम, दाम, भय, भेद दिखलाने लगा । मारीच ने अपनी अवश्यम्भावी मृत्यु समझ कर रघुनायक-शरण ग्रहण किया—

---

[1] ५.३९.ख
[2] मानस–६.४७.४
[3] मानस–६.४७.६
[4] मानस–६.४७.७
[5] मानस–६.४८.ख.१
[6] मानस–६.४८.ख.२

उभय भांति देखा जब मरना । तब ताकेउ रघुनायक सरना ।।[१]

राम के चरणों में मारीच को अविरल प्रेम था-

अस जियँ जानि दसानन संगा । चला राम पद प्रेम अभंगा ।।[२]

रावण-त्रासवश उसने कपट-कनकमृग का रूप धारण किया। सीता ने कंचनमृग देखते ही उसको मारकर चर्म लाने की राम से प्रार्थना की। राम सब कुछ जानते हुए भी मौन थे, क्योंकि उन्हें "सुररंजन, भंजन महिमारा" के उत्तरदायित्व को संभालना था। इसीलिए धनुर्धारी लक्ष्मण को पहरेदार बनाकर स्वर्णमृग के पीछे दौड़ गये। मारीच मृगवेश में राम को बार-बार मुड़-मुड़ कर अपने नयन से देखकर सनाथ हो रहा था। अन्त में वह राम-वाण के लगते ही राम-राम का स्मरण करते-करते सुरधाम चला गया। राम ने उसके प्रेम को परख लिया और अपने अलभ्य परम पद उसे प्रदान किया—

विपुल सुमन सुरबरषहिं, गावहिं प्रभु गुनगाथ ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ, दीनबंधु रघुनाथ ।।[३]

मारीच दुश्मन के रूप में राम का अनुपम प्रेमी था। त्रिगुणातीत भगवत्प्रीति की रसोपलब्धि जब जीव को हो जाती है, तब जागतिक भोगों के श्लथ भद्दे भोगों के मलिन रसों से मन हट जाता है। रसिया मन को रस नहीं मिले, तब वह दुःख परिणामी गंदें रसों की ओर उन्मुख होता है। विशुद्ध रस ईश्वर के चरण कमलों का स्नेह ही है—**हरि पद रति रस बेद बखाना।** भगवान ने स्वयं कहा है—**रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।**[४] अपने भक्तिसूत्र में भगवत्प्रीतिरस के स्वरूप पर प्रकाश निक्षेप करते हुए कहा है—**अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम् ।** (५१) प्रीतिस्वरूप को 'इदमित्थम्' नहीं कहा जा सकता। प्रेम अगर अनन्त लक्षणों वाला है, तो लक्षणों से सर्वथा परे भी है।

मानस में तत्सुख-सुखिया निष्काम महान् प्रेमी मारीच की जीवन-लीला की अंतिम झाँकी मिलती है। मारीच दो बार राम के सम्मुख गया, पर दोनों बार यह शत्रुरूप में ही उपस्थित होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने मारीच के प्रेम को निम्नपंक्तियों में व्यक्त किया है—**चला राम पद प्रेम अभंगा** । रावण मारीच को कंचनमृग बनने के लिए विवश किया, तब मारीच ने सविनय कहा—

तेहि पुनि कहा सुनहु दस सीसा । ते नर रूप चराचर ईसा ।।
तासों तात बयरु नहिं कीजै । मारें मरिय जिआएे जीजै ।।[५]

अन्त में उसने यहाँ तक कह दिया—**जाहु भवन कुल कुसल बिचारी ।**[६]

रावण कुपित होकर जान मारने की धमकी देने लगा। मारीच रावण के भयवश

---

[१] मानस–३.२५.५
[२] मानस–३.२५.७
[३] मानस–३.२७
[४] गीता–२.५९
[५] गीता–३.२४.३-४
[६] मानस–३.२५.१

कनक मृग बनकर राम को ठगने का प्रयास करता है। मारीच ने राम के प्रति कहा—

निर्बान दायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बस करी ।[1]

मारीच अपने को महान भाग्यवान मानता हुआ प्रभु कार्य सिद्धि हेतु अत्यन्त प्रफुल्लित होकर राम के आश्रम के समीप जाता है। अपने परम प्रियतम राम की प्रसन्नता एवं सुख के हेतु उनके समक्ष शत्रु रूप में जाकर भी मारीच अपने प्रभु प्रेम का निर्वाह करता है तथा रामावतरण के प्रयोजन की सिद्धि में सहायक होता है। मारीच राक्षस वंशोत्पन्न होकर भी राम का भक्त है।

"राक्षस कुलोत्पन्न मारीच श्री राम का भक्त है। लेकिन उसकी अपनी सीमाएँ हैं, अपनी विवशताएँ है। वह अनिच्छा से ही 'सीताहरण' के षडयन्त्रों में रावण का सहयोगी बनता है।"[2] तथा अन्त में उसने सोचा—हे रावण, जिस सीता का तुम हरण करने जा रहे हो, उसके कारण तुम्हारा विनाश अवश्यम्भावी है—

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात् सहितो मया। नैव त्वमपि नाऽहं वै नैव लंका राक्षसः।।[3]

अतः उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि मारीच राम-भक्त था। अगस्त ऋषि के शाप से मारीच राक्षस हुआ—**राक्षसत्वं भजस्वेति** ।[4] उसने सर्वत्र नयनाभिराम अजिन वसंनधारी राम का ही सदैव दर्शन किया था।

वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीर कृष्णाजिनाम्बरम्। गृहीत धनुषं रामं पाश हस्तमिवान्तकम्।।[5]

उसने रावण को नीति का उपदेश दिया था—

त्वद्विधः कामवृतो-सिद्धः शीलः पापमन्त्रितः ।
आत्मानं स्वजनः राष्ट्रं स राजा हन्तिदुर्मतिः ।।[6]

कालनेमि— कालनेमि हनुमान से कपट किया—

उहाँ दूत एक मरमु जनावा । रावनु कालनेमि गृह आवा ।।[7]

तब, कालनेमि ने रावण से कहा—

देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा । तासुं पंथ को रोकन पारा ।।[8]

उसने कहा—**भजि रघुपति करु हित अपना । छाड़हू नाथ मृषा जल्पना ।।**
नील कंज तनु सुंदर स्यामा । हृदयँ राखू लोचनाभिरामा ।।
मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू । महामोह निसि सुतत जागू ।।[9]

---

१. मानस–३.२५.८
२. जनशक्ति शीर्षक मारिच संवाद सेतू का मञ्चन। लेखक–जावेद अखतर खाँ, रविवार २२ मई १९८३, पृ० ६
३. वा०रा०–३.४१.१९
४. वा०रा०–१.२५.१२
५. वा०रा०–३.३९.१५
६. वा०रा०–३.३७.७
७. मानस–६.५५.२
८. मानस–६.५५.४
९. मानस–६.५५.५-७

पर, रावण उसका एक नहीं सुना, तब उसके आदेशानुसार उसने सर मन्दिर, बरबाग तथा आश्रम बनाया और कपटी मुनि के वेश में हनुमान को ठगना चाहा, किन्तु हनुमान जी ने उसके सिर को लंगूर में लपेट कर पटक दिया, जिसके कारण वह मरते समय अपना रूप प्रकट किया और राम-राम कहकर प्राण त्याग दिया—

सिर लंगूर लपेटि पछारा । निज तनु प्रगटेसि मरति बारा ।।
राम-राम कहि छाड़ेसि प्राना । सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना ।।[3]

उसने रामदूत के हाथ मरना पसंद किया—

सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन की बिचार।
रामदूत कर मरौ बरू यह खल रतमल भार ।।[1]

वह मायावी था, तभी तो—

अस कहि चला रचिसि मगमाया । सर मन्दिर बर बाग बनाया।।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालनेमि राक्षस वंशीय होकर भी राम-दल का अन्तःकरण से पक्षपाती है ।

खर-दूषण-त्रिसरा—

लक्ष्मण-द्वारा बिरूपित शूर्पणखा खर-दूषण के पास गयी और खर-दूषण के बल-पौरुष को धिक्कारने लगी। खर-दूषण उससे विरूपीकरण का वृत्तान्त सुनकर यातुधान सेना को सजने लगा और पूर्ण तैयारी के बाद खर चौदह हजार सेना लेकर राम से लड़ने आया । उसके नाना-वाहन और विविध आयुध थे—

नाना बाहन नानाकारा । नानायुध धर घोर अयारा ।।[3]

सभी गर्जन-तर्जन कर रहे थे—

गर्जहि तर्जहि गगन उड़ाही । देखि कटकु भए अति हरषाही ।।[5]

सभी 'धरो-धरो', 'मारो-मारो' तथा 'तिय छीनो' का नारा बुलन्द कर रहे थे—

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई । धरि मारहू तिय लेहू छड़ाई ।।[6]

किन्तु राम के समीप आते ही उनके अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर खर-दूषण ने दूत के द्वारा राम के पास संवाद भेजा—

देहू तुरत निज नारि दुराई । जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ।।[7]

खर-दूषण की बात राम ने नहीं मानी, और उल्टे जली-कटी बात कही । यह सुनते ही खर-दूषण का दिल जल उठा । उसने रजनीचरों को आदेश दे दिया—

---

[1] मानस-६.५७.५-६ [2] मानस-६.५६ [3] मानस-५.५६ [4] मानस-३.१७.५
[5] मानस-३.१७.८ [6] मानस-३.१७.९ [7] मानस-३.१८.६

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए निकट भट रजनीचरा ।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा ।।[1]

खर-दूषण का आदेश सुनते ही निशिचरगण राम पर अस्त्र-शस्त्र की वर्षा करने लगे, किन्तु, राम ने निशिचरगण सहित खर-दूषण और त्रिशिरा का वध कर दिया। खर-दूषण भी रावण के समान ही एक बलवाल योद्धा था, किन्तु राम के साथ युद्ध करने में खेत आ गया ।

मेघनाद—मेघनाद महावीर था—

वारिदनाद जेठ सुत तासू । भट महँ प्रथम लीक जग जासू ।।
जेहिन होहि रन सन्मुख कोई । सुरपुर नितहि परावन सोई ।।[2]

उसने एक बार इन्द्र को जीत लिया था । इसीलिए उसे इन्द्रजीत कहा गया—

चला इन्द्रजित अतुलित जोधा । बंधु बधम सुनि उपजा क्रोधा ।।[3]

मानस में इन्द्रजीत के युद्धों का वर्णन निम्न रूपों में किया गया है—(१) प्रथम युद्ध में इन्द्रजीत हनुमान को नागपाश में बाँधकर लाया था। (२) द्वितीय युद्ध में इन्द्रजीत ने राम-लक्ष्मण को नागपाश में बाँध दिया था । (३) तृतीय युद्ध में पावक को होम देने के पश्चात् इन्द्रजीत अपने रथ पर आरुढ़ होकर अदृश बन जाता है और राम-लक्ष्मण को घायल कर देता है । वाल्मीकीय रामायण के अनुसार उसने अग्निष्टोम, अश्वमेघ आदि सात यज्ञों का फल प्राप्त किया था और कामग स्पन्दन, अक्षय तूणीर आदि के अतिरिक्त उसने युद्ध में अदृश्य रहने का भी वरदान प्राप्त किया था, जिसके कारण वह तीन युद्धों में अदृश्य रहकर ही अपना रण-कौशल दिखलाया । (४) चौथे युद्ध में इन्द्रजीत ने माया रूपी सीता का वध किया । (५) पंचम युद्ध के क्रम में निकुंभिला में इन्द्रजीत के यज्ञ का विध्वंस वानरों के द्वारा किया गया । (६) षष्ठ युद्ध हुआ- मेघनाद और लक्ष्मण के बीच । इस युद्ध में मेघनाद का लक्ष्मण ने वध किया।

मानसकार तुलसी के अनुसार इन्द्रजीत वध की कथा इस प्रकार है—अपने यज्ञ की पूर्णआहुति किये बिना ही इन्द्रजीत युद्ध हेतु उद्यत हो गया और लक्ष्मण के साथ बहुत देर तक द्वन्द्व-युद्ध किया । पंचम युद्ध के अन्त में लक्ष्मण के द्वारा मेघनाद का सारथि मारा गया, जिसके कारण मेघनाद को पैदल ही लंका लौटना पड़ा । इसके अनन्तर वह एक नये रथ पर चढ़कर छठी बार (अन्तिम बार) युद्ध करने लिए रणक्षेत्र में आया । इस युद्ध में लक्ष्मण ने सारथि को और विभीषण ने घोड़ों को मार दिया । लड़ाई के क्षणों में ही वह लक्ष्मण के ऐन्द्र-शस्त्र से मारा गया ।

---

१. मानस–३.१८.१४ २. मानस–१.१७९.७-८ ३. मानस–५.१८.३

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्द्रजीत महान् योद्धा एवं अद्वितीय योगी था। मेघनाद की वीरता का वर्णन तुलसीदास ने निम्नलिखित रूपों में किया है—

मेघनाद सुनि स्त्रवन अस गढ़ पुनि छेका आइ ।
उतरेउ बीर दुर्ग तें सनमुख चलेउ बजाइ ।।[1]

उसने राम-लक्ष्मण-सहित सभी वानरसेना को वध-हेतु खोजना शुरु किया—

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल-लोक-विख्याता ।।
कहँ नल नील द्विबिद सुठीवाँ । अंगद हनुमंत बल-सीवां ।।
कहाँ विभीषण भ्राता-द्रोही । आजु सठहि हठि मारउँ ओही ।।
अस कहि कठिन बान संधाने । अतिशय क्रोध स्त्रवन लगि ताने ।।
सर समूह सो छाँड़इ लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा ।।
जहँ -तहँ परते देखि अहि बानर । सनमुख होइ न सकैं तेहि अवसर ।।[2]
जहँ-तहँ भागि चले कपि रिच्छा । बिसरी सबहिं जुद्ध कै इच्छा ।।[3]
सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेखा ।।[4]
दस-दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर। सिंहनाद करि गरजा, मेघनाद बलवीर।।

अक्षय कुमार—

अक्षय कुमार लंकेश रावण का पुत्र था। वह अशोकवाटिका उजाड़ने वाले हनुमान् से लड़ने के लिए अपार सुभट लेकर चला। हनुमान् ने पेड़ उखाड़कर मारा, जिसके कारण उसकी वहीं मृत्यु हो गयी—

आवत देखि बिटप गहि तर्जा । ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ।।[5]

तदुपरान्त हनुमान् ने कुछ को मार दिया, कुछ को मसल दिया और कुछ को मर्दित कर धूलि में मिला दिया। शेष राक्षस जान बचाकर भाग निकले और रावण को जाकर कहने लगे कि हे प्रभो, वानर बड़ा बलवान है—

कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि ।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ।।[6]

मरु—

मरु एक दैत्य था, जो सागर के समीप वास करता था और सागर को नाना भाँति सताया करता था। सेतुबंधहेतु प्रयत्नशील राम ने सागरतट पर तीन दिवस तक प्रायोपवेश किया, किन्तु सागर के कान पर जूँ तक नहीं रेंगा, तब क्रोधित राम ने सागर-

---

[1] मानस–६.४९
[2] मानस–६.१-७
[3] मानस–६.४९.८
[4] मानस–६.५०
[5] मानस–५.१७.८
[6] मानस–५.१८.१

शमन-दमन-हेतु सरासन तान दिया। भयभीत सागर ने रामकी शरण में आकर उनकी दासता स्वीकार की, तब राम ने उससे पूछा कि "मैं अपना वाण अब कहाँ चलाऊँ।" सागर ने उत्तर दिया कि "अपने तीर से आप मेरे तीरवासी दैत्य मठ का वध कीजिए। "यह सुनकर सागर जल को अपावन करने वाले दैत्य मरू को राम ने अपने वाण संधान से समाप्त कर दिया।

मानस में मरु दैत्य को "खलनर-अथराशि" कहा गया है—

एहि सर मन उत्तर तट बासी। हतहू नाथ खल नर अघरासी।।[1]

सागर की पीड़ा को सुनकर आर्त्तआनन्ददाता राम ने तुरंत उसे मारकर सागर की पीड़ा का हरण कर लिया—

सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा।।[2]

मन्दोदरी—

मन्दोदरी की माता का नाम हेमा (अप्सरा) था। पिता दानवराज मय थे। हेमा अप्सरा होने के कारण नवजात कन्या को छोड़कर देवलोक चली गयी। मय ने पुत्री का नाम मन्दोदरी रखा। वह सुन्दरी, सुशीला, सरल तथा सतोगुणी थी। दानवराज के साथ ही मन्दोदरी रहा करती थी। शनैः-शनैः मन्दोदरी युवती हो गयी—

मय तनुजा मंदोदरी नामा। परम सुन्दरी नारि ललामा।।[3]

एक बार दानवराज अपनी पुत्री के साथ बीहड़ वन में घूम रहे थे। कहीं से रावण भी वहाँ आ गया। उसने मन्दोदरी को देखा और मुग्ध हो गया। उसने अपने पितामह ब्रह्मा तथा कुलीनवंश का परिचय दिया। मय ने सुयोग्य वर समझकर उसके हाथों अपनी कन्या का सविधि पाणि-ग्रहण कर दिया।

सोइ महँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी।।[4]

रावण देवकन्याओं, नागकन्याओं एवं गंधर्व-कन्याओं में सर्वाधिक मन्दोदरी को प्यार करता था। मन्दोदरी भी अक्षरशः पातिव्रत्य-धर्म का पालन करती थी। समय-समय पर "प्रियासम्मित उपदेश" भी देती थी। रावण उसकी बातों पर अमल करता था। सती होने के कारण मन्दोदरी जान गयी थी कि राम पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हैं। वे धरती को राक्षसों से रहित करके ही छोड़ेंगे—

अहंकार सिब बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनज बास सचराचर रूप राम भगवान।।[5]

---

[1] मानस–५.५९.५
[2] मानस–५.५९.६
[3] मानस–१.१७७.२
[4] मानस–१.१७७.३
[5] मानस–

असबिचारि सुनु प्रान पति प्रभु सन बयरु बिहाइ ।
प्रीती करहु रघुवीर पद मम अहिवत न जाइ ।।[१]

रावण-द्वारा सीताहरणोपरान्त मन्दोदरी ने सादर समझाया—"नाथ श्रीराम साक्षात् ब्रह्म हैं। आप उनसे वैर नहीं करें। इसका परिणाम अमंगलकारी होगा। सीता साक्षात् योगमाया हैं। आप मेघनाद को राज्य पद पर अधिष्ठित कर दें तथा हम लोग विजन वन में चलकर राम का भजन करें। वे दीन दयालु अवश्यमेव हम पर दयावृष्टि करेंगे।" पर, रावण के कान पर जूँ तक नहीं रेंगा। वह पुनरपि समझायी—

पति रघुपति हि नृपति जनि मानहू। अग जग नाथ अतुल बल जानहु।।[२]

यह सुनकर रावण ने उसे फटकारा। रावण के नहीं मानने पर मन्दोदरी ने पानी पर लकीर खींचने का प्रयास करते हुए कहा—

अहह कंत कृत राम बिरोधा । काल बिबस मन उपजन बोधा ।।[३]
निकट काल जेहि आबत साई । तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाई ।।[४]

फिर मृदुल स्वर में कहा—

दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु ।
कृपा सिन्धु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु ।।[५]

किन्तु रावण द्वारा उसकी मंत्रणाओं को ठुकराये जाने के बाद उसे ज्ञान हुआ—

पियहि काल बस मति भ्रम भयउ ।

मन्दोदरी अन्त-अन्त तक समझाती रही,किन्तु रावण ने "नारी-प्रबोध" पर ध्यान नहीं देकर राम से संग्राम किया और मारा गया। मन्दोदरी के सुहाग सिन्दूर धुल गये। वह कुररी पक्षी की भांति विलपने लगी। पति की लाश के समीप जाकर वह फूट-फूट कर रोयी। रोते समय भी उसने राम की गुण-सम्पन्नता का वर्णन किया—

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन ।
जोंगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान ।।[६]

अश्रुभरित नयनों ने राम की छवि निहारते ही उसके दुःख का शमन हो गया। वह प्रेमविभोर हो गयी। लंका के राजा विभीषण हुए, पर मन्दोदरी लंका की महारानी बनी ही रही। मन्दोदरी एक नीतिकुशला एवं राजनीतिज्ञा है—

दूतिन्ह सुनि पुरजन बानी । मंदोदरी अधिक अकुलानी ।।
रहसि जोरिकरि पति पगलागी । बोली वचन नीति रशपागी ।।
कंत करष हरि सन परिहरहू । मोर कहा अति हित हियँ धरहू ।।

---

[१] मानस–
[२] मानस–६.३५ ख. ८
[३] मानस–६.३६.६
[४] मानस–६.३६.८
[५] मानस–६.३७
[६] मानस–६.१०४

समुझत जासु दूत कइ करनी । सवहिं गर्म रजरीचर धरनी ।।
तासु नारि निज सचिव बोलाई । पठवहु कंत जो चहहू भलाई ।।
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ।।[1]
तथा—सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें । हित न तुम्हार संभु आज कीन्हे ।।
राम बान अगि गन ससि निकर निसाचर भेक ।
जब लगि ठासत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक ।।[2]

पायोधिबन्धन के बाद रामागमन सुनकर मंदोदरी ने बहुत प्रकार से अपने पति को समझाया—

अतिबल मधु कैरभ जेहिं मारे । महावीर दितिसुत संधारे ।।
जेहिं बलि बांधि सहसभुज मारा । सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ।।[3]
अतएव— रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ ।
सुत कहुँ राज समर्पि वन जाइ भजिअ रघुनाथ ।।[4]

ताड़का—

ताड़का सुकेतु नामक पराक्रमी यक्ष की पुत्री थी । रामायण के अनुसार उसे सहस्रहाथी का बल प्राप्त था। वह रूप यौवन सम्पन्ना थी । उसकी शादी सुन्द से हुई। मारीच नाामक पुत्र पैदा हुआ । अगस्त्यमुनि के शाप से सुन्द मारा गया। ताड़का ने अगस्त्य से बदला लेने की ठान ली । पुत्र सहित क्रोधित ताड़का को अपनी ओर आते देखकर मारीच को राक्षस होने का ऋषि ने शाप दे दिया तथा ताड़का को पुरुष को खाने वाली कहकर अभिशप्त कर दिया। ताड़का ने अगस्त्य ऋषि के आश्रम को नष्ट करना शुरु किया। विश्वामित्र मुनि की आज्ञा से राम ने ताड़का का बध किया। ताड़का के मरने से राक्षसों के बीच हाहाकार और देवदल में जयजयकार होने लगा।

मानस में तुलसीदास जी ने ताड़का का अति संक्षिप्त वर्णन निम्न शब्दों में किया है—चले जात मुनि दीन्हि देखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।।
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।[5]

देवचरित में परिगण्य लंकिनी निशिचरी—

मसक सदृश रूपधारी हनुमान ज्यों ही लंका में प्रवेश करने लगे कि लंकिनी नाम्नी राक्षसी ने कहा—

---

[1] मानस–५.३५.४-१० [2] मानस–५.३६ [3] मानस–६.५.७
[4] मानस–६.६ [5] मानस–१.२०८.ख.५-६

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ।।[1]

इतना सुनते ही हनुमान ने मुष्टि-प्रहार किया। लंकिनी के मुँह से खून का वमन शुरु हो गया और वह धरती पर ढनमना कर गिर गयी, किन्तु शीघ्र ही संभल कर उठ गई और सशंकित होकर पाणिबद्ध विनय करने लगी—

जब रावनहिं ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ।।
विकल होसि तैं कपि के मारे । तब जानेसु निसिचर संधारे ।।[2]

वह हनुमानमिलन को सत्संग समझती है और कौशलेश को हृदय में रखकर लंकाप्रवेश के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। वह निशिचरकुल में जन्म पाकर रावण के द्वारा "लंकाप्रहरी" का कार्य सम्पादित करती है, फिर भी सज्जन का सम्मान तथा राम के प्रति प्रेम और भक्ति रखने के कारण मेरी दृष्टि में वह देवचरित्र में परिगण्य है। उसने अपने देवचरित्रवश ही हनुमान् से कहा—

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा । हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ।।
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई । गोपद सिंधु अनल सितलाई ।।
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही । राम कृपा करि चितवा जाही ।।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि लंकिनी का हृदय भी पूर्णतः मानवीय है। इसीलिए लंकिनी का चरित्र गेय और व्याख्येय है।

त्रिजटा—

त्रिजटा रावण के अन्तःपुर में रहने वाली एक राक्षसी थी। यह "राम- चरन-रति-निपुन-विवेका" थी। उसका राम के प्रति गुप्त प्रेम था। अशोकवाटिका स्थित सीता पर पहरा देने वाली राक्षसियों में त्रिजटा एक ऐसी आदर्श राक्षसी थी, जो अतिवृद्धा होते हुए भी सीता की सुरक्षा का प्रतिपल ध्यान रखा करती थी। वह सीता को ढाढस बँधाती थी तथा अनेक भाँति समझा बुझाकर आश्वस्त करती थी। सीता को डराने धमकाने वाली राक्षसियों से वे कहती हैं—

श्रृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्यं वो हितं भवेत् ।
न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् ।।[4]

"अरी दुष्टा राक्षसियों! मेरी बात सुनो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा। तुम इस रोती-विलखती जानकी को डराओ नहीं, बल्कि इन्हें प्रणाम करो।" त्रिजटा ने पहले ही सपना देखा था—

---

[1] मानस–५.४.५
[2] मानस–५.३.६-७
[3] मानस–५.४.१-३
[4] अ०रा०–५.२.४८-४९

सपने वानर लंका जारी । जातुधान सेना. सब मारी ।।
खर आरुढ़ नगन दस शीशा । खंण्डित भुज मुंडित दस सीसा ।।[१]

उसने कहा—"मैंने स्वप्न में देखा है कि एक बंदर लंका जलाकर चला गया है। राक्षसकुल का नाश हो गया है। रावण गले में मुण्डमाला पहने, शरीर में तेल मर्दन किये, अपने पुत्र-पौत्रों के साथ गोबर में डुबकियाँ" लगा रहा है। लंका का राज्य विभीषण जी को मिला है। सम्पूर्ण लंका में राम का जयजयकार मनाया जा रहा है। विजयी राम ने सीता को बुलवाया है। त्रिजटा को अपने सपने पर पूर्ण विश्वास है। वह कहती हैं—**यह सपना मैं कहऊँ पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी ।।**[२]

त्रिजटा के सपने की सुनते ही सभी राक्षसियाँ सीता जी के चरणों में लोटने लगीं। वियोगिनी सीता का प्राणाधार त्रिजटा ही थीं। सीता उसे माता कहकर संबोधित करती थीं—**त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी । मातु बिपति संगिनि तैं मोरी ।।**[३] त्रिजटा सीता जी को सतत प्रभुलीलासहायिका मानती रहीं। एकदा जब अधीरमना सीता ने कहा— **आनु काठ रचु चिता बनाई । मातु अगिनि तुम देहु लगाई ।।**[४]तब त्रिजटा सीता के पैरों को पकड़ कर समझाने लगी—

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि । प्रभु प्रताप बल सुजस सुनाएसु ।।[५]

अगर त्रिजटा ऐसी सेविका विपत्ति की सहेली तथा कुशल परामर्शदातृ नहीं होती, तो सीता अशोकवटिका में ही शोक-वश आत्मदाह कर लेतीं। अत: त्रिजटा ने सीता के लिए दया द्रविता माँ का कर्म किया। मानसकार ने त्रिजटा को राम भक्तिन माना है—**राम चरन रति निपुन विवेका ।**[६]

शूर्पनखा—

रावण ने अपनी बहन शूर्पनखा का विवाह कालेन्द्र दानवेन्द्र विद्युज्जिह्व से कराया था। रावण ने अपने बहनोई विद्युज्जिह्व को मार दिया। उसके बाद शूर्पनखा लंका पहुँच कर रावण की घोर निन्दा की, तब रावण उसको दण्डकारण्य की अधिकारिणी बना दिया। उसके बाद शूर्पनखा दण्डकारण्य में वास करने लगी। वनवास की अवधि में राम सीता और लक्ष्मण सहित पंचवटी आये। शूर्पनखा एक बार पंचवटी आयी। वह राम-लक्ष्मण को देखकर रविमणि की तरह द्रवित हो उठी—

होइ बिकल सक मनहि न रोकी । जिमि रबिमनि द्रव रबिहि विलोकी।।[७]

---

[१] मानस–५.१०

[२] मानस–५.११

[३] मानस–५

[५] मानस–५.११

[६] मानस–५.११.१

[७] मानस–३.१६.६

विकलमना शूर्पनखा रुचिररूप धारणकर राम के समीप गयीं और कही—

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ।।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ।।
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।।[१]

सीता की ओर देखकर राम ने शूर्पनखा से कहा—**अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।।**[२]

यह सुनकर वह लक्ष्मण के समीप परिणय-निमंत्रण देने पहुँची, किन्तु लक्ष्मण ने कहा—**सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ।।**[३]

यह सुनकर वह पुनः राम के समीप आयी । राम ने फिर उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया । वह लक्ष्मण के निकट जब गई, तब—

लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ।।

यह सुनते ही वह क्रोधित होकर राम के पास भयंकर रूप बनाकर पहुँची । सीता को भयाक्रान्ता देखकर राम ने लक्ष्मण को इशारा कर दिया, बस, लक्ष्मण ने शूर्पनखा का नाक-कान काट लिया—

लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि ।
ताके कर रावन कह मनौ चुनौती दीन्हि ।।[४]

नाक-कानविहीन शूर्पनखा भाई खर-दूषण के पास जाकर उन्हें धिक्कार-धिक्कार कर विलाप करने लगी । खर-दूषण उसकी ललकार पर सेना सजाकर राम-लक्ष्मण से लड़ने के लिए पंचवटी आया । शूर्पनखा खर-दूषण की सेना के सबसे आगे थीं । राम-द्वारा खर-दूषणवध के बाद वह रावण के पास गयी और बोली—

करसि पान सोवसि दिनु राती । सुधि नहिं तव सिर पर आराती ।।[५]

तथा—**रिपु, रज पावक पाप प्रभु अहि गनि अ न छोट करि ।**
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन ।।[६]

वह रावण सभामध्य बहुविध विलाप कलाप करने लगी और अन्त में कही—

तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होई ।।

यह सुनते ही रावण आगबबूला हो उठा और शूर्पनखा से उसके विरूपीकरण का सारा वृत्तान्त सुनने के पश्चात् राम से संग्राम करने को ठान लिया । इस प्रकार शूर्पनखा एक विचित्र निशिचरी थी, जो उत्तेजना दे देकर खर-दूषण-त्रिशिरा तथा रावणसहित सम्पूर्ण लंका के निशिचरों का नाश राम-सेना के द्वारा करवा दी और सच्ची बात यही

---

[१] मानस–३.१६.८.१०
[२] मानस–३.१६.११
[३] मानस–३.१६.१३
[४] मानस–३.१७.१
[५] मानस–३.२०'स'.७
[६] मानस–३.२.'क'

है कि राम-रावण-युद्ध का एक मात्र कारण था—शूर्पनखा की काली करतूत, जिसके कारण विश्वविजेता रावण का घोर पराभव हुआ। मैं नीलगिरि गया था। वहाँ आज भी शूर्पनखा की पूजा होती है और मलयाली नत्तुनाम की जाति की स्त्रियाँ शूर्पनखा की सन्तति मानी जाती हैं।

(घ) नभचर पात्र—

जटायु—

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः।
शूराः शरण्याः सौ मित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।।

श्री राम कहते हैं—"लक्ष्मण। सभी जगह-पशु-पक्षी आदि योनि में भी शूरवीर, शरणागतरक्षक तथा धर्मात्मा मिलते हैं"। प्रजापति कश्यप जी की पत्नी विनता के दो पुत्र हुए—अरुण तथा गरुड। उनमें थे सम्पाति एवं जटायू। सम्पाति उड़ान की होड़ लगाकर सूर्यमण्डल तक पहुँच गये। असह्य ताप को नहीं सह सकने के कारण लौटकर पंचवटी में निवास करने लगे। सम्पाति के पर भानुतेज से भस्म हो गये। वे सागरतट पर गिर पड़े। एक बार महाराज दशरथ शिकार खेलने पंचवटी आये। जटायूजी से उनका परिचय हुआ। दोनों मित्र बन गये। वनवासी राम अपने पितृसखा गृधराज को पिता की तरह आदर देते थे। सीताहरण के समय करुण क्रन्दन सुनते ही जटायु जी ने रावण पर आक्रमण किया। रावण का केश पकड़ कर धरती पर धराशायी कर दिये। रावण ने कठिन कृपाण से उनके पंख काट कर भूमि पर गिरा दिया तथा गगनमार्ग से भाग चला। सीता की खोज में विरहकातर राम चल पड़े। जटायु जी से उनकी मुलाकात हुई। वे मरणासन्न थे। उनका हृदय श्रीराम के चरणारविन्द में मग्न था। उन्होनें कहा—"राघव"। राक्षसराज रावण ने मेरी यह दशा की है। वही पापी सीता जी को दक्षिण दिशा में ले गया है। आपके दर्शनार्थ मैं अब तक जीवित था। अब मेरे प्राण पंछी चलना चाहते हैं। आज्ञा दें।

राम की आँखों में आँसू छलक आये। उन्होंने कहा—आप प्राण को रोकें। मैं आपको स्वस्थ तथा अजर-अमर बना देता हूँ। "जटायूजी परम भागवत थे। उन्हें अधम शरीर से मोह नहीं था। उन्होनें कहा—"हे राम! जिनका नाम मरण के समय मुँह से निकल जाय तो अधम प्राणी भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है; ऐसी तुम्हारी महिमा श्रुतियों ने गायी है। आज वे ही मेरे समक्ष प्रत्यक्ष हैं, फिर मैं शरीर किस लाभ के लिए रखूँ?" राम पुनः रो दिये। वे कहने लगे—"तात! मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ? तुमने तो सुन्दर कर्म से मुनिदुर्लभ गति प्राप्त की है। जिनका मन परोपकार में लगा रहता है, उनके

लिए विश्व में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं है । अब इस शरीर को त्याग कर मेरे धाम को सिधारें ।'' श्री राम ने जटायूजी को अपनी गोद में रखकर अपनी जटाओं से उनकी देह की धूलि को झाड़ने लगे । जटायूजी नें उसी समय प्राण छोड़ दिया। उन्हें राम ने अपना सारुप्य प्रदान किया । वे दिव्याभूषणों से सुसज्जित हो गये और चतुर्भुज होकर वैकुण्ठ चले गये । श्री राम अपने पिता का श्राद्ध अपने हाथों नहीं कर पाये, किन्तु जटायु जी को यह सौभाग्य सहज ही प्राप्त हुआ । "रघुकुल के मित्र जटायू शायद इन्हीं सुवर्णों के कोई जात-भाई होंगे ।''[१] आर्येतर जातियों में यह जाति सबसे अधिक सभ्य तथा सुसंस्कृत थी ।

"These were the sons of Garuda and are mentioned in the Ramayan as "mighty Vuttures of size and strength unparralled."[2]

They lived in the southern forests and we have elsewhere noticed how Jataya intercepted the course of Ravan and was mortally wounded by him.[3]

अरण्य काण्ड में ही तीन प्रेमी भक्तों को सद्गति मिली है ।[४]

गीध अधम खग अगमिष भोगी । गति दीन्ह जो जागत जोगी ।।[५]

गीध को राम ने सारुप्य मुक्ति प्रदान की :-

गीध देह तजि धरि हरि रुपा । भूषन बहू पट पीत अनूपा ।।[६]

इस प्रकार स्पष्ट है कि गीधराज जटायु राम भक्त थे ।

जटायू : एक संत—

रामचन्द्र के पूछने पर जटायू ने कोमल तथा मधुर वाणी में अपना परिचय इस प्रकार दिया— **ततो मधुरमा वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव ।**

उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुसत्मनः ।।[७]

तब राम ने कहा—**सोऽहं वास सहायस्ते भविष्यामि यदीच्छति । सीताश्च तात । रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे ।।[८]** वंशानुगत पैतृक पक्षिराज्य को त्याग कर दण्डकारण्य के अपने राज्य से पंचवटी की ओर चल पड़ा । वह गोदावरी-तटवर्त्ती राम की कुटिया के समीप ही मित्रतावश रहने लगे—

---

[१] मानस–आचार्य श्रितिमोहन सेन, संस्कृत संग्राम, द्वितीय वृत्ति १९५२, पृ०-३०

[२] e

[३] e

[४] मानस पीयूष खण्ड-५ किष्किन्धा काण्ड, लेखक अञ्जनी नन्दन शरण, पृ०-८

[५] मानस–३ [६] मानस–३ [७] बा०रा०अ०–१४.२ [८] बा०रा०अ०–१३.३४

गीधराज से भेंट भइ, बहुबिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परनगृह छाइ।।[१]

पंचवटी में रहते समय सीता को हरकर जब रावण चला, तब जटायू ने उसे देखकर डाँटते हुए कहा—

यथा त्वया कृतं भीरुणा लोकगर्हितम् । तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः।।[२]

रावण के नहीं मानने पर—

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा । सीतहिं राखि गीध पुनि फिरा ।।
चोचन्ह मारि बिदा रेसि देहि । दण्ड एक भइ मुरुछा तेही ।।[३]

किन्तु—

तब क्रोध निसिचर खिसिआना । काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।।
काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम कइ अदभुत करनी ।।[४]

वृद्ध और असहाय गीध पश्चात्ताप करने लगा—**मेरे एकौ हाथ न लागी ।**

दशरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो जो सकल जग साखी ।
बरबस हरत निसाचरपति सों हठिन जानकी राखी ।।[५]

उधर देवता तथा सिद्ध जटायू की विरुदावली गाने लगे—

रामकाज खगराज आजु लरयो, जियतन जानकि त्यागि ।
तुलसीदास सुरसिद्ध सराहत, धन्य बिहँग बड़ भागी ।।[६]

रामनाम की रट सुनकर राम सीता को भी भूल गये—

रटनि अकनि पहचानि गीध फिरे करुणामय रघुराई ।
तुलसी रामहिं प्रिया बसरि गई, सुमिरि सनेह सगाई ।।[७]

और—

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नन- सरोज सनेह सलिल सुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हों ।[८]

राम लक्ष्मण से कहने लगे

मेरे जान तात, कछु दिन जीजै ।

---

[१] मानस–३.११३. [२] बा०रा०अ०–५१.२९ [३] मानस–३.२८.१९-२०
[४] मानस–३.२८.२१-२२ [५] तुलसी गीतावली, अरण्यकाण्ड–१२.२
[६] तुलसी गीतावली, अरण्यकाण्ड–८.५
[७] तुलसी गीतावली, अरण्यकाण्ड–११.४
[८] तुलसी गीतावली, अरण्यकाण्ड–१३

देखिय आप, सुवन-सेवा-सुख, मोहि पितु को सुख दीजै ।।[1]

गृधराज हँसकर कहने लगे—

मेरे मरिबे सम न चारि फल, होहिं तो क्यों न कहीजै ।
तुलसी प्रभु दिजो उतरु मौन ही, परी मानों प्रेम सहीजै ।।[2]

जटायु जी कहते हैं—

स्रवन वचन, मुख नाम, रुपचख, राम उछंग लियो हों ।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं ।।[3]

तब रोते हुए राम ने कहा—

जल भरि नयन कहहिं रघुराई । तात कर्म निज ते गति पाई।।[4]

तथा—परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह महुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन कामा।।[5]

मरणासन्न गीध ने कहा—

त्रिजग जोनि-गत गीध जन्म भरि खाइकुजन्तु जियोहौं ।
महाराज सुकृती-समाज सब-उपर उपर आज कियो हों ।।[6]

एवंप्रकारेण जटायू ने रामांक में ही मुक्ति प्राप्त की—

प्रभुहि बिलोकत गोद-गत सिय हितधायल नीच ।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीच ।।[7]

गीद्धराज जटायु के दिव्यावसान पर सभी सिहाने लगे—

विरत करम रत भगत मुनि, सिद्ध ऊँच अरु नीच ।
तुलसी सकल सिहात सुनि, गीध राज की मीच ।।[8]

ऐसी विलक्षण मुक्ति तो किसी की भी नहीं हुई—

मुए मरत मरिहैं सकल धरी पहर के बीच ।
लही न काहूँ आज लौं गीधराज की मीच ।।[9]

शरीरत्याग कर जटायूजी ने राम से अविरल भक्ति माँग ली और हरिधाम चले गये, तब राम ने चिताबनाकर उनका दाह संस्कार वैदिक रीति से किया—

---

१. तुलसी गीतावली, अरण्यकाण्ड–१५.३
२. तुलसी गीतावली, अरण्यकाण्ड–१५.४
३. तुलसी गीतावली, अरण्यकाण्ड–१४.३
४. मानस–३.३०.८ ५. मानस–३.३०.९-१० ६. मानस–३
७. तुलसी दोहावली–२२२ ८. तुलसी दोहावली–२२३
९. तुलसी दोहावली–२२४

अबिरल भगति मागि बर गीधगयउ हरि धाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ।।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जटायू ने परहितवश अपना प्राण गँवा दिया । इसलिए वे धन्य हैं ।

संपाती—

सीता की खोज में निकले हुए हताश बन्दरों को जामवन्त ने बहुत प्रकार की कथाओं को कहकर ढाढ़स दिया । पर्वत की कन्दरा में रहने वाले सम्पाती ने उनकी बातें सुनीं। बाहर निकलने पर उसने वानरों को देखकर कहा—

आजु सबहि कहं भच्छन करऊँ । दिन बहुचले अहार बिनु मरऊँ ।।
कबहुँ न मिलि भरि उदर अहारा । आजु दीन्ह बिधि एकहिं बारा ।।[२]

गीधवचन सुनते ही सभी वानर डर गये । जामवन्त चिन्तित हो गये ।

अंगद ने कहा—अहा! जटायू धन्य हैं, जिन्होंने राम कार्य-हेतु अपना प्राण न्योछावर कर दिया । हर्ष शोक युक्त वाणी सुनते ही सम्पाती वानरों के समीप आया और उनको अभयदान देकर जटायू का वृत्तान्त पूछा । वानरों से जटायू मरण की कथा सुनकर सम्पाती ने राम-महिमा का गायन किया और कहा—

मोहि लै जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि ।
बचन सहाइ करबि मैं पैहहु खोजहु जाहि ।।[३]

वानरों ने सम्पाती को समुद्री तट पर पहुँचा दिया । उसने अनुज जटायू का विधिवत् श्राद्ध कर अपनी कथा कहने लगा—हे वीर वानरो! सुनो, हम दोनों भाई चढ़ती जवानी में एक बार आकाश में उड़ते हुए सूर्य के पास चले गये । जटायू तेज नहीं सह सकने के कारण वापस आया, किन्तु मैं अभिमानवश सूर्य के पास बहुत देर तक रुक गया, जिसके कारण मेरे पंख जल गये और मैं धराशायी हो गया—

तेज न सहि सक सो फिरि आवा । मैं अभिमानी रबि निअरावा ।।
जरे पंख अति तेज अपारा । परेऊँ भूमि करि घोर चिकारा ।।[४]

वहाँ चन्द्रमा नामक एक दयालु मुनि रहते थे । उन्होने ज्ञान प्रदान कर मेरा देहाभिमान हर लिया । यह कहकर उसने सीता के बारे में साफ-साफ बतला दिया । उसने कहा—त्रिकूट पर्वत पर लंका अवस्थित है । वहाँ निर्भीक रावण रहता है । उसकी अशोक वाटिका में सीता सोच मग्न बैठी हुई हैं । मैं उन्हें देख रहा हूँ, किन्तु तुम नहीं

---

[१] मानस–३.३२
[२] मानस–४.२६.३-४
[३] मानस–४.२७
[४] मानस–४.२७.३-४

देख सकते हो। मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ अन्यथा तुम्हारी सहायता अवश्य करता। तुममें से जो वानर चार सौ कोस समुद्र लाँघ सकेगा, वही बुद्धिनिधान राम कार्य कर सकता है। इसलिए निराशा और कायरता छोड़ कर राम को हृदयस्थ करके यत्न करो। यह कहकर गीध चला गया। संपाती एक बहादुर नभचर था।

"Sampati lived long enough to a venge his brother. The monkeys who were searching for Sita in the Southern quarter, came upon him and he soared high into the sky, had a view of Lanka and described it in detail to Hanuman. This hero worked on the instructions given him by sampati and found Sita in the Ashok Grove." संपाती एक परोपकारी तथा सहृदय नभचर था।

काक-भुशुण्डी—

सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में अतिशय मोहक नील-गिरि है, जिनमें स्वर्णमय शिखर हैं। उन शिखरों पर बरगद, पीपल, पाकर और आम का एक-एक विराट वृक्ष है। पर्वत के ऊपर सुन्दर सरोवर है, जिसकी मणिमय सीढ़ियाँ मन को बरबस लुभा लेती है। उसका जल मधुर अमल तथा स्निग्ध है। उसमें नानारंगी कमल खिले हुए हैं। हंसगण मधुर स्वर में बोल रहे हैं और भ्रमर गुंजन कर रहे हैं। उसी सुन्दर गिरि पर पक्षी काक भुशुण्डी बसते हैं। हरिभक्त काक भुशुण्डी पीपलवृक्ष के नीचे ध्यान करते हैं। पाकर के नीचे जपयज्ञ करते हैं। आम की छाया में मानसिक पूजा करते हैं। श्री हरिभजन के सिवा उनका दूसरा कोई काम नहीं है—

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई । जाप जग्य पाकरि तर करई ।।
ऑब छाँह कर मानस पूजा । तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा ।।[१]

बरगद के नीचे वे हरिकथाओं के प्रसंगों का वर्णन करते हैं और विचित्र रामचरित्र का अनेक विधि प्रेमसहित गान करते हैं—

बरतर कह हरि कथा प्रसंगा । आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ।।
राम चरित विचित्र बिधि नाना । प्रेम सहित कर सादर गाना ।।[२]

सब निर्मल बुद्धिवाले हंस, जो सतत् उस तालाब पर बसते हैं, उसका श्रवण करते हैं—**सुनहिं सकल मति बिमल मराला । बसहिं निरन्तर जे तेहि ताला।।**[३] लंका में युद्ध करते समय कौतुकी राम मेघनाद के नागपाश में जकड़ गयें। देवर्षि नारद ने राम को पाशमुक्त करने के लिए गरुड़ को भेजा। गरुड़ जी को मोह हो गया। उन्होंने सोचा—

---

१. मानस–७.५६.५-६
२. मानस–७.५६.७-८
३. मानस–७.५६.९

भव बंधन ते छूटहि नर जपि जाकर नाम ।
सर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम ।।[१]

नाना भांति मनहि सुमुझावा । प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा ।।[२]

गरुड़ जी ने नारद जी से सारा वृत्तान्त कहा । नारद जी ने कहा—"गरुड़! तुम्हारे हृदय में भी महामोह अंकुरित हो गया है । तुम ब्रह्मा के समीप जाओ । वे जैसा कहें, वैसा ही करो" । गरुड़ जी ब्रह्मा के यहाँ गये । उन्होने उन्हें शंकर जी के पास भेज दिया । उस क्षण शंकर जी कुबेर-गृह जा रहे थे । गरुड़ जी ने शंकर जी के चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए अपना संशय प्रकट किया । शंकर जी ने कहा—"तुम्हारा सन्देह तभी भंग होगा, जब तुम कुछ समय तक सत्संग करो । मेरे पास समयाभाव है। तुम परम प्रवीण रामभक्त महात्मा काक भुशुण्डी के पास जाओ । वे अहर्निश रामकथावाचन करते हैं । उनके यहाँ अतिवृद्ध राजहंस एवं विहंगवर श्रोता के रूप में उपस्थिति होते हैं । तुम वहाँ जाकर भगवान का चरित्रश्रवण करो । वहीं तुम्हारा भ्रमभग्न हो सकेगा ।

नीलांचल पर्वत पर गरुड़ जी गये । वहीं काक भुशुण्डी का परम आश्रम था । उस आश्रम के भास्कर प्रभाव के कारण गरुड़ जी की संशययामिनी की इतिश्री हो गई। स्नानादि से निवृत्त होकर गरुड़ जी हरि-कथा प्रारम्भ करने वाले काक भुशुण्डी जी के निकटस्थ हुए । उन्होंने सर्वदेवमय अतिथि गरुड़ जी को सादर आसन दिया । तदुपरान्त गरुड़ जी के आग्रह पर उन्होंने अपनी आत्मकथा बतलायी । उन्होंने कहा—कलियुग के पूर्वकल्प में मैंने अयोध्या में शुद्र रूप में जन्म लिया था । उस समय भीषण अकाल पड़ा था । पेट-पीड़ावश अयोध्या से उज्जयिनी चला गया । मैं अतिदरिद्र था, कुछ दिनों के बाद मेरे पास कुछ सम्पदा भी आ गई । वहाँ शिवभक्त एक ब्राह्मण रहते थे । उन्होने मुझे शिवमंत्र से दीक्षित किया । मैं शंकर भक्त था और राम-कृष्ण का परम विरोधी था । मैं उन पर छींटाकसी किया करता था । मेरे गुरुदेव कोमल हृदय थे, फिर भी उन्हें दारुण व्यथा हुई । उन्होंने समझाया "भगवान् शंकर सतत् राम-नाम-जप में तत्पर रहते हैं । तुम्हें श्रीराम के प्रति ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखना चाहिए ।" गुरुजी के पुनः पुनः समझाने के बावज़ूद मैंने अहंकारवश उनकी अवहेलना की ।

"एक बार की बात है । मैं अपने आराध्य भगवान शंकर के मन्दिर में उनका नाम जप रहा था । उसी समय मेरे गुरुदेव वहाँ आये, लेकिन मैंने उठकर उनको प्रणाम नहीं किया । गुरुदेव ने मेरी इस उद्दण्डता पर अपनी प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की, किन्तु

---

[१] मानस–४.५८ [२] मानस–७.५८

भगवान शंकर क्रोधित हो गये। उन्होंने तत्क्षण शाप दिया। गगनवाणी हुई—"यह एक सहस्र जन्म ग्रहण करेगा। मेरे गुरुदेव सुनते ही दयार्द्र होकर" हाय! हाय!! करने लगे। उन्होंने आर्त्तस्वर में आशुतोष की प्रार्थना की। भगवान उमानाथ के कहा—"मेरा शाप मृषा नहीं होगा। इसे अधम योनियों में हजार बार जन्म लेना पड़ेगा किन्तु इसे जन्म-मरणगत पीड़ा नहीं होगी। मेरी कृपा से इसे जन्मान्तरों की बातें याद रहेंगी। अन्तिम जन्म में यह ब्राह्मण कुलोत्पन्न होगा। उस समय इसे भगवान् श्रीराम के चरणों में रति उत्पन्न होगी तथा इसे अव्याहत गति होगी।

"भगवान शंकर से अभिशप्त होकर नाना योनियों में भ्रमण करते हुए मैं सुरदुर्लभ ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुआ। परम कृपालु आशुतोष-औढरदानी की कृपा से मुझे पूर्वजन्म की स्मृति थी, एतत् मेरा मन भगवान श्री राम के चरण कमलों के चिन्तन में रमा हुआ था। कुछ ही दिनों के बाद मेरे माता-पिता सुरधाम चले गये। मैं ईश्वराधना हेतु वन में चला गया। वहाँ ऋषि मुनियों की सत्संगति के प्रभाव से श्री राम के चरण कमलों के दर्शन की ललक क्षिप्र हो गयी। ऋषियों से अपनी उत्कंठा जताने पर वे निर्गुण निराकार निरंजन का उपदेश देते थे। मैं तो सगुण रूप भगवान् राम की मोहिनी मूर्ति के दर्शनार्थ तड़प रहा था। एतदर्थ मैं महर्षि लोमश के आश्रम में गया। दंडवत् के बाद मैंने साकार ब्रह्म राम के दर्शन का उपाय पूछा। महर्षि बार-बार निराकार ब्रह्म मत का प्रतिपादन करते और मैं पुनः पुनः उनका खण्डन कर सगुण रूप का मण्डन करने लगा।

"मूर्ख कहीं का।" ऋषि अप्रसन्न हो गये। उन्होंने मुझे शाप दे दिया-"तू मेरे सत्य वचन पर प्रत्यय न कर तर्क करता जा रहा है। तुझे अपने पक्ष का अडिग दुराग्रह है। जाओ, शीघ्र ही अधम काग हो जाओ।" तत्काल मेरा शरीर काग का हो गया, लेकिन इसके लिए मुझे किंचित् कष्ट नहीं हुआ। मैंने अति आदरपूर्वक उनको दंडवत् किया और उड़कर जाना ही चाहता था कि दयाद्रवित लोमश ऋषि को इसके लिए पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने बुलाकर राम-मंत्र दिया। उन्होंने मेरे मस्तक पर अपने स्नेहिल कर-कमल फेरते हुए मुझे आशीर्वाद दिया—"तुम्हारे हृदय में श्रीराम-भक्ति सतत् बनी रहे तथा श्रीराम तुम्हें सदा प्यार करें। ज्ञान-विराग तथा सारी शुभेच्छाएँ तुममें वास करेंगी। तुम स्वेच्छानुसार जन्म और मरण को प्राप्त करोगे। तुम जिस आश्रम में रहोगे, वहाँ एक योजन तक अविद्या नहीं व्यापेगी।"

मैं कृतार्थ हो गया। गुरु-आज्ञावश मैंने उनके चरणों की वन्दना की। तत्पश्चात् यहाँ आ गया। यहाँ मैं सत्ताइस कल्प से रह रहा हूँ। श्रीराम जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब मैं उनके पाँच वर्षों तक की बाल छवि का नयनभर कर अवनलोकन करता हूँ और लोचनलाभ लेता हूँ। पुनः उसी (शिशुरूप) रूप को हृदयंगम कर यहाँ वापस

आ जाता हूँ। यहाँ मैं नियमतः श्री राम का ध्यान, जप एवं मानसपूजा एवं भगवान् की लीलाकथा कहता हूँ, जिसे श्रेष्ठ राजहंस सादर सुनते हैं। भगवान् शंकर जिस आश्रम में जाकर परमानन्द को प्राप्त होते हैं, उस आश्रम का वर्णन उन्हीं के शब्दों में—

जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा।।
तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघपति गुन, पुनि आयउँ कैलास।।[1]

गरुड़—

गरुड़ जी महान् ज्ञानी, सद्गुणराशि, हरि के सेवक और उनके वाहन हैं। उन्हें 'खगपति' कहा जाता है। एक बार श्रीराम ने रणलीला की और मेघनाद के हाथों अपने को बँधा लिया, तब नारदमुनि ने गरुड़ को भेजा—

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा।।[2]
इंद्रजीत कर आप बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो।।[3]

सर्पभक्षक गरुड़ ने बन्धन काट दिया, उसके बाद उनके हृदय में हरि के प्रति भ्रम हो गया। वे मोहवश दुःखी हो गये। व्याकुल होकर वे नारद के पास गये और आपबीती सुनायी। नारद ने उन्हें ब्रह्मा के पास भेज दिया। ब्रह्मा जी ने कहा—हे गरुड़! तुम शंकर जी के पास जाओ। गरुड़ शंकर जी पास गये। शंकर जी ने उन्हें रामभक्त, ज्ञानी, गुणधाम तथा निरन्तर रामकथा कहने वाले काकभुशुण्डी के पास सत्संग हेतु भेज दिया। वहाँ जाकर श्री हरि गुण समूह का श्रवण कर मोह जनित दुःख से गरुड़ मुक्त हो गये। आर्यों के पूर्व अपनी-अपनी सभ्यता-संस्कृति लेकर वास करने वाली जातियों में सुपर्णों का स्थान महत्वपूर्ण है। सुपर्ण का अर्थ पक्षी है। 'नाग' का शाब्दिक अर्थ 'साँप' है और सुपर्ण का पक्षी। खूब सम्भव है, इन दोनों जातियों के लांछन (टोटेम) ये दोनों जन्तु थे[4]। **तानि यानि वयांसि वङ्गा मगधाश्चेरपादाः**[5]। अर्थात् ये जो वङ्ग, मगध तथा चेर देश के रहने वाले हैं, यही तो पक्षी कहलाते हैं।

सुपर्णवंशियों में सर्वोत्तम पुरुष गरुड़ थे। सुपर्ण लोग विष्णुभक्त थे। गरुड़ विष्णु के वाहन हैं। आर्य आगमन के कारण सुपर्णलोग पूर्वी भारत की ओर चले गये थे। इसीलिए वङ्ग मगधादि के वासी को 'पक्षी' कहा गया है। गरुड़ किरात के शत्रु थे, इसीलिए गरुड़ को "किरातभक्षी" कहा जाता है। विनीता अपने पुत्र गरुड़ से कह रही

---

[1] मानस–७.५६
[2] मानस–७.५७.३-४
[3] मानस–७.५६
[4] मानस–७.५७.३-४
[5] आचार्य अतिमोहन सेन संस्कृति संगम द्वितीयवृत्ति १९५२, पृ० २८

है कि सहस्र-सहस्र किरातों को भक्षण करके अमृत ले आओ। सुपर्णों की नाग, किरात, निषादादि जातियाँ शत्रु थीं। सुपर्णकन्या विनीता नागजातीय कद्रू की बहुत दिनों तक दासी थीं। बाद में उसके पुत्र गरुड़ ने अपनी माँ को 'दासी' से मुक्त किया।'' महाराष्ट्र के पांचालों में सुपर्ण देवज्ञ हैं।

छद्म वायस जयन्त

जयन्त देवराज इन्द्र का पुत्र था। वह मूढ़मंदमतिवश वायसरूप धारण कर सीता के चरणों में चोंच मारकर भाग चला। शोणित देख राम ने धनुष पर सरकंडे के बाण का सन्धान किया। कौआ ब्रह्म बाण को देखते ही भयभीत हो गया और छली जयन्त अपनी असली रूप धारण कर अपने पिता इन्द्र के समीप गया, किन्तु इन्द्र ने उसे शरण नहीं दी, तब वह ब्रह्मलोक तथा शिवलोकादि में भय-शोक-विह्वल होकर गया, लेकिन वहाँ भी उसकी रक्षा नहीं हो सकी। नारद ने विकल जयन्त पर दया दिखलायी और उसे तुरन्त राम के पास भेज दिया—

नारद देखा विकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता।।
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।।[१]

आतुर तथा संत्रस्त जयन्त राम के चरणों को पकड़ कर—''रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'', कहना शुरु किया। राम को दया आ गयी, जिसके कारण जयन्त का प्राण बच गया, किन्तु अपराधी जयन्त की एक आँख फोड़ कर श्री राम ने उसे ''काना'' बना ही दिया। इन्द्र पुत्र जयन्त ''काक'' के रूप में सीता के पास पहुँचा। ''तात्पर्य कि उसके मन में यह प्रश्न उठा कि ''का'' यह स्त्री कौन है? और ''कः'' अर्थात् यह पुरुष कौन है?[२] उसने सीता के (मानस के अनुसार) चरण में चोंच मारा और भाग चला। राम ने उसकी एक आँख ले ली और उसे मुक्त कर दिया। कहते हैं ''काक'' उसी दिन से एकाक्ष हो गया। तात्पर्य कि जिस व्यक्ति के मन में ''का'' ''कः'' का प्रश्न उठे और उसके समाधान के लिए वह उत्सुक हो, तो एकाक्ष बनना होगा। ''अक्ष'' धातु का अर्थ होता है—पहुँचना, भेदना, व्याप्त होना आदि आदि।[३] ''अक्ष का दूसरा अर्थ ''नेत्र'' भी है। नेत्र संस्कृत के ''नी'' धातु से बनता है। ''नी'' का अर्थ होता है— 'ले चलना'। अक्ष वह है जो रास्ता बतलाये। एक नेत्र से अतिरंजित स्वरूप को देखा जाता है और दूसरे नेत्र से विकृत रूप को जयन्त, वह जो जय या विजय पाने में समर्थ हो''।[४]

---

१. मानस–१.९-१०
२. आर्यावर्त्त रविवार, मई १९६३ ई० पृ०-४, श्री विश्वनाथ सिंह
३. आर्यावर्त्त रविवार, मई १९६३, पृ०-४, शीर्षक–कोऊ कह सत्य, झूठ कह कोऊ।
४. वहीं

पितर दशरथ—

प्राणधिक प्रिय पुत्र राम से बिछुड़ कर दशरथ जीवित नहीं रह सके। वे अपना प्राण त्याग कर पितर लोक चले गये। राम ने जब रावणसहित सभी निशाचरों का नाश किया और लंका को जीत लिया, तब दशरथ ने पुत्र मोहवश पितरलोक से लंका आकर राम का अवलोकन किया और तनय को देखते ही गलदश्रु हो गये—

तेहि अवसर दशरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए।।[1]

जब अनुजसहित राम ने उनकी वंदना की, तब उन्होंने अपने पुत्रों को आशीर्वाद दिया।

अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिता तब दीन्हा।।[2]

राम ने पुन: कहा कि हे तात! आपके पुण्य-प्रभाव से ही मैंने अजय निशिचरों को विजित किया है—**तात सकल तब पुन्य प्रभाउ। जीत्यो अजय निसाचर राउ।।**[3] सुत बचन सुनते ही दशरथ प्रीतिपारावार में बहने लगे और उनके नयन से सलिल प्रवाहित होने लगा तथा रोमांच हो गया। दशरथ ने भेदभक्ति के कारण मोक्षलाभ नहीं लिया। राम ने उन्हें अपना दृढ़ ज्ञान देकर अपनी भक्ति प्रदान की। फलस्वरूप—

बार-बार करि प्रभुहि प्रनामा। दशरथ हरषि गए सुरधामा।।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पितर को अपनी संतान के प्रति अमोघ मोह होता है, जिसके कारण वे अपनी सन्तति से बराबर मिलते रहते हैं।

भूत-प्रेत, पिशाच-पिशाची, योगिनी

मानस में महाकवि तुलसी ने भूत-प्रेत, पिशाच-पिशाची की चर्चा रणभूमि में वीर-वध के उपरान्त की है। जब-जब निशिचर मारे गये, तब-तब भूत-प्रेत, पिशाच-पिशाची की उँगलियाँ घी में पड़ी।

खर-दूषण के बाद—कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं।।[5]

तुलसी ने मानस में चौदह हजार प्रेत की चर्चा की है—

सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी।।[6]

पिशाच-पिशाची—मेघनाद ने समरभूमि में मायायुद्ध शुरु कर दिया, जिसके कारण "मारु", "काटु" आदि बोल-बोलकर पिशाच-पिशाची समर-भूमि में नाचने लगे—

---

[1] मानस–६.११.१

[2] मानस–६.११.२

[3] मानस–६.११.३

[4] मानस–६.११.८

[5] मानस–३

[6] मानस–३

नाना भाँति पिसाच पिसाची । मारु काटु धुनि बोलहिं नाची ।।[१]
मज्जहिं भूत पिसाच बेताला । प्रमथ महा झोटिंग कराला ।।[२]

लंका में राम-रावण-युद्ध के समय रावण ने मायाविस्तार के द्वारा प्रचंड जंतुओं को प्रकट किया, जिसमें बैताल, भूत, पिशाचादि धनुष-वाण लेकर तैयार हो गये—

बेताल भूत पिसाच । कर धरें धनु नाराच ।।[३]

योगिनी—योगिनी ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुज कपाल धारणकर शोणित पान करना शुरु किया । वे उन्मत्त होकर नाचने और गाने लगी—

जोगिनी गहें कर बाल । एक हाथ मनुज कपाल ।।
करि सद्य सोनित पान । नाचहिं करहिं बहु गान ।।[४]

वे "धरु-धरु", "मारु-मारु" के घोर रव से दिग्-दिगन्त को निनादित कर दिये और मुँह बा-बाकर वानरों को खाने के लिए दौड़ पड़े—

धरु मारु बोलहिं घोर । रहि पुरि धुनि चहुँ ओर ।।
मुख बाइ धावहिं खान । तब लगे कीस परान ।।[५]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये नभचर पात्र बहुत भयावह है ।

'घन'— वर्षाकाल में 'मेघ' आकाश में छा गया और परम मनोहर गर्जन शुरु किया । वारिद देखकर मोर नाचने लगा । तब राम ने लक्ष्मण से कहा—

लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नु भगत कहूँ देखि ।।[६]

नभचर घमंडी घन की गर्जना सुनकर प्रियाहीन राम-मन डरने लगा—

घन घमंड नभगरजत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ।।[७]

घन-बीच क्षण-क्षण क्षणदा उसी प्रकार छमकने लगी, जिस प्रकार 'खलप्रीति' चपला-सी क्षणस्थायी होती है—

दामिनी दमक रहन घन माहीं । खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं ।।[८]

सघन निशि में खद्योत का विराजना, मानों घमंडियों के समाज का मिलन है—

निसि तम घन खद्योत बिराजा । जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ।।

घनरहित निर्मल आकाश, ठीक उसी प्रकार सुशोभित होता है, जिस प्रकार सभी आशाओं को 'हरिजन' त्याग देते हैं—

---

[१] मानस–६.५९.२
[२] मानस–६.६७.१
[३] मानस–६.१००.१
[४] मानस–६.१००.२
[५] मानस–६.१००.३
[६] मानस–४.१३
[७] मानस–४.१३.१
[८] मानस–४.१३.२

बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिचन इव परिहरि सब आसा ।।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के परम पुजारी अभूतपूर्व अमर महाकवि तुलसीदास जी ने "जस", "जथा", "जनु", "जिमि" तथा "इव" आदि उदाहरण अलंकारों के माध्यम से 'घन' का 'मानवीकरण' किया है और चूँकि, घननभ में ही स्वच्छन्द विचरण करता है, इसीलिए मानसकार ने उसे "घमंडी" भी कहा है ।

अतः, उपर्युक्त उद्धरणों के अद्भुतालोक में मैंने अभिमानी घन को मानवीरूप प्रदान करते हुए उसे नभचर-पात्र की कोटि में रखा गया है ।

मित्र जलद— भरत राम से मिलने वन जा रहे हैं, उस समय जलद उनके सिर पर छाया करता जाता है—

किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भएऊ न राम कहँ जस भा भरतहि जात ।।[२]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि जलद को भरत के मित्र के रूप में चित्रित कर तुलसीदास जी ने नवीन उद्भावना की है ।

यक्ष-यक्षिणी—

हेमाङ्गद तथा रत्नचूड़ ने आकाशमार्ग में गमन करते हुए राक्षसेन्द्र की पुरी लंका की अन्तःपुर से व्यग्र दृष्टि डालकर समरभूमि की ओर ताकती हुई स्त्रियों को देखा । वानर तथा राक्षसों के बीच घमासान युद्ध हो रहा था । वानरों की वीरता पर मुग्ध हेमाङ्गद ने रत्नचूड़ से कहा—हे मित्र! जरा इन वानरों की वीरता को देखो । ये उछल-उछल कर पर्वत उखाड़ते हैं तथा रावण सेना पर शैलशिखरों की वृष्टि करते हैं ।

रत्नचूड़ ने उस दृश्य को देखकर हँसते हुए कहा—हे मित्र! ये वानर राक्षस कटक पर प्रहार करने के लिए मलयागिरि पर से अरगजाविटपों को उखाड़-उखाड़ कर राक्षसों पर प्रहार करते हैं । राक्षस प्रतिकार करना चाहते हैं, किन्तु चन्दन-विटप में लिपटे हुए सर्प राक्षसों के बदन को बांध देते हैं । हेमाङ्गद ने सस्मित कहा—मित्र देखो! विशाल वृक्ष के प्रयोग कपिगण अस्त्र के रूप में करते हैं । उनके रणसन्मुख राक्षस पराङ्मुख दीख रहे हैं ।

रत्नचूड़ ने सहसा व्यग्र होकर कहा—हाय, अपने क्रोध तथा भय के कारण राक्षसराज ने विश्वव्यापी हाहाकार मचा दिया है । चतुर्दिक् गहनान्धकार व्याप्त है, बाणों से आकाश आच्छादित है । वानरों के द्वारा फेंके गये पर्वत-शृङ्गों को राक्षस पीस रहे हैं । लगता है, मानो दामिनी दमक रही है, घन घमंड से नभ में गरज रहा है तथा तूफान

---

[१] मानस-४.१५ स.९

[२] मानस-२.२१६

के साथ प्रलयकर वृष्टि हो रही है। हेमाङ्गद—मित्र! देखो, रणभूमि का दृश्य कितना त्रासद है। वाणों की चोट से पर्वत "राई" बन रहा है। वृक्षों की टकराहट से शक्ति तथा तोमर मृषा सिद्ध हो रहे हैं। कुछेक पल दोनों एकाग्रचित सोत्कंठ युद्ध पर दृष्टिनिक्षेपण करते रहे। रावण और भयंकर बन गया था। वानर जाति के राजा सुग्रीव के छल से रावण बच गये।

सहसा आकाश की ओर देखते हुए रत्नचूड़ ने कहा-कदाचित् स्वर्गाधिपति का रथ दशरथनन्दन के लिए आ रहा है। हेमाङ्गद ने देखकर कहा—हाँ मित्र, यह देवराज का ही रथ है। उनके सारथी मातलि रथ पर कवच तथा धनुष भी ला रहे हैं। पुनः दोनों मौन हो गये। कुछ देर के बाद चिंतित हेमाङ्गद ने कहा-रावण के बाण ने तो धरती और आकाश को झाँप दिया है। रत्नचूड़ ने कहा-मत चिन्ता करो। देखो-रावण के सभी अस्त्र-शस्त्रों को राम निष्फल बना दिये हैं। कुछ देर के बाद एक ओर जय-घोष, तो दूसरी ओर हाहाकार मचने लगा।

दोनों ने देखा-प्रचण्ड-प्रतापी महाबली लंकेश अपनी ऐहलौकिक लीला का संवरण कर चुका था। तदुपरान्त, दोनों यक्षों ने राक्षसनारियों सहित मन्दोदरी विलाप सुना तथा यह उद्घोष सुना कि रावण के कारागाह का अन्त हुआ। देवगण मुक्त हुए। वनदेवता पारिजातादि देवलोक के वृक्षों को नन्दन वन में लिए जा रहे हैं। अश्वरक्षक उच्चैश्रवाः नामक अश्व को अपनी अश्वशाला में लिए जा रहे हैं।

राक्षस के कारागार से मुक्त अपने मित्रों से मिलने के लिए वे दोनों उत्कंठा के साथ अग्रसर हुए। 'यक्ष' एक महत्त्वपूर्ण नभचर है—"यक्ष चारित्री की ऊर्जाओं खनिजों, बेशकीमत धातुओं तथा रत्न भंडार के प्रतिनिधि हैं।" अतः, नभचर पात्रों में इनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

रावण दूतद्वय शुक-सारण

रावण ने राम की सेना के रहस्योद्घाटनार्थ शुक तथा सारण को भेजा। सारण लौटकर माल्यवान के पास पहुँचा। मायावी सारण वानर सेना में वानर बनकर प्रवेश किया था, लेकिन कुमार विभीषण ने पहचान लिया था तथा मुझे बन्दी बनाकर रामाभिमुख किया। राम ने सम्मानपूर्वक मुझे मुक्त कर दिया तथा अपनी राजधानी वापस आने की आज्ञा दी। यह सुनकर माल्यवान प्रसन्न होकर राम का गुणानुवाद करने लगे। सारण ने कहा—हे आर्य! विभीषण ने भाई को परित्याग कर तथा राम दल में मिलकर अधर्म किया है। माल्यवान ने आह भरकर कहा—मेरे बच्चों! इसमें विभीषण का अपराध नहीं है। अपराध है दशग्रीव का या हम लोगों का अभाग्य है।

सारण—यह कैसे ? माल्यवान ने कहा—हनुमान ने अशोक-वाटिका उजाड़ दिया तथा लंका-दहन किया। तदुपरान्त विभीषण ने रावण को बहुत समझाया, किन्तु रावण क्रोधित होकर विभीषण को लंका से निष्कासित कर दिया, तब विवश उन्हें शत्रुशिविर की शरण लेना पड़ा। सारण दुःखी होकर कहा—हे आर्य! वानरों की विशालवाहिनी सेना को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राक्षसकुल में केवल विभीषण ही बच पाऐंगें। वानरों ने सेतु बनाया तथा सागर पार किया। अब वे सब सुवेल नामक पर्वत उपत्यका पर हैं। ससैन्य राम का समुन्द्र-लंघन सुनकर माल्यवान का चेहरा सूखने लगा। उसने व्यग्र होकर कहा—राम ने बालि जैसे महायोद्धा का वध कर दिया तो हम लोगों की बिसात ही क्या है? शतयोजनव्यापी सागर दुर्ग पार करना मानव शक्ति के परे है। अब उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं। हाँ मेरी पुत्री, विश्वविजेता पराक्रमी की माता निकषा, तुझे अब अपने अजेय पुत्र की कौन-सी दशा देखनी होगी?

कहते-कहते माल्यवान की आँखों में सावन की तरह अश्रुवर्षण शुरू हो गया, किन्तु धैर्य धारण कर कहा—काश! महामुनि विश्रवा की तपस्या के प्रभाव से इस वंश में पिण्डदान करने के लिए यदि कोई रह जाता। शुक ने माल्यवान को सूचित किया कि राम ने वानरों के साथ लंका पर आक्रमण कर युद्ध में धुमाक्ष, प्रहस्त, महोदर आदि अमात्य तथा सेनापति को मार दिया। सुनते ही माल्यवान ने व्याकुल होकर पूछा-कूमार नारान्तक ने क्या किया? शुक ने अश्रुसिक्त होकर अंगद द्वारा कुमार नारान्तक की मृत्यु का समाचार दिया। माल्यवान फूट पड़े। एकाएक आवाज आयी—हे वीर सैनिकों! वानरों को पीठ मत दिखाओ। इन्द्रजीत मेघनाद लक्ष्मण-वध हेतु समरभूमि में आ गये हैं। राम से युद्ध करने के लिए द्वितीय पौलस्त्य-कुम्भकर्ण ने अस्त्र धारण किया है। अब राम-लक्ष्मण का डर कहाँ? कुछ देर बाद राक्षसों के दल के कुम्भकर्ण राम द्वारा तथा लक्ष्मण द्वारा मेघनाद मारे गये। राक्षसदल में निराशा तथा दुःख की गहन तमिस्त्रा व्याप गयी तथा विजय का स्वप्न ज्वारभाटे में बह गया। आशा के पतले रेशमी धागे के सहारे अपने विश्वासों की किश्ती को विपत्ति की लहरों के थपेड़े खाने के लिए राक्षसों ने छोड़ दिया।

आकांक्षाएँ राख का ढेर बन गयीं। उधर रामदल के वीरान होठों पर मुस्कान की गुलाब कलियाँ खिलने लगीं। लंका में पवन के परों पर फिसलती हुई-थिरकती हुई आर्तध्वनि या तन-मन में बेचैनी का विष घोलने लगीं। उधर हँसी के फब्बारे थे, किलकारियों की शहनाइयाँ बज रही थीं, तो दूसरी ओर भूत की जड़ीभूत पीड़ा बर्फ बनकर पल-पल पिघलने लगी।

शुकसारण रावण-दूत था। रावण ने दो पक्षियों–शुक और सारण को भेद लेने के लिए राम की सेना में भेजा था।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि रावण दूत द्वय शुक-सारण सफल गुप्तचर था।

(ड़) जलचर पात्र

गंगा—गंगा नक्षत्रलोक, द्युलोक तथा पृथ्वीलोक में हैं—

ख्यातिर्यस्याः खं दिवं च नित्यं । पुरा दिशो विशो विदिशश्चावतस्थे ।।[२]

यह घृतवहा, विश्वतावा तथा रुक्मगर्भा हैं। यह तीनों लोक की माता हैं—

उस्त्रां जुष्टां मिषती विश्वतोयाभिरां वज्रीं रेवतीं भूधराशाम् ।
शिष्टाश्रयामृतां ब्रह्मकांता गंगाश्रयेदात्मवान्सिद्धिकामः।।[३]

गंगा के विभिन्न विशेषण हैं, जैसे–ब्राह्मी, नारायणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, जाह्नवी तथा भागीरथी तथा विष्णुपदी आदि—

गंगाविष्णुपदी जह्नतनया सुरनिम्नगा । भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि।।[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नदियों में गंगा सर्वतोभावेन सर्ववरेण्य हैं।

मानस की गंगा

वन-गमन के क्रम में राम, लक्ष्मण और सीता केवट की नाव पर चढ़ कर गंगा पार हुए। उसी समय सीता ने गंगा से करबद्ध कहा—हे माता! मेरा मनोरथ पूरा करना, जिससे पति और देवर के साथ सकुशल वापस आकर तुम्हारी पूजा कर सकूँ—

सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ।।
पति अेवर संग कुसल बहोरी । आइ करौं जेहिं पूजा तोरीं ।।[५]

सीता के प्रेम रस सिक्त विनय की वर वाणी रूपी विमल नारी को पाकर गंगा ने कहा—हे रघुवीर प्रिया वैदेही, सुनो! आपका प्रभाव विश्व में किसे विदित नहीं है? आपका दर्शन करते ही मनुष्य राजा बन जाता है। आपकी सभी सिद्धियाँ सेवा करती हैं। आपने जो हमारी विनती की, वह आपने कृपा करके मुझे प्रशंसा दी है, तथापि देवि! मैं आपको आशीर्वाद दूँगी—

प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ ।
पूजहि सब मन कामना सुजसु रहिहि जग छाइ ।।[६]

---

[१] श्रीठाकुरदत्त मिश्र, अनर्घरावण, प्रथम संस्करण, १९५६-५८

[२] महाभारत अनु०–२७.८६

[३] महाभारत अनु०–२७.९४

[४] अमरकोष–१.३

[६] मानस–२.१०२.२-३

गंगा का मंगलमूल वचन सुनकर मुदित सीता उनके अनुकूल हो गयी—

गंग बचन सुनि मंगल मूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ।।[१]

लंका से प्रत्यागमन-क्रम में विमान पर चढ़ कर सीता गंगा तट पर उतरीं और गंगा के चरणों में लिपट कर नाना-भांति उनकी पूजा कीं, जिसके फलस्वरूप गंगा ने आशीर्वाद दिया—**दीन्हि असीस हरषि मन गंगा । सुंदरि तव अहिवात अभंगा।।**[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसकार तुलसीदास ने जलचरी गंगा को 'वरदायिनी देवी' के रूप में मानस में प्रतिष्ठित कर उनके मानवहृदयबोध का प्रसन्न प्रवाह प्रवाहित किया है ।

प्रयागराज

राम-चरित-मानस में महाकवि तुलसीदास ने "प्रयागराज" को 'तीर्थपति' कहा है—

माघ मकरगत रबि जब होई । तीरथ पतिहिं आव सब कोई ।

उनके राज्याधीनस्थ निम्नस्थ हैं—

(१) सचिव - सत्य । (२) प्रिय नारी - श्रद्धा ।
(३) कोष-चार पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)। (४) प्रदेश - पुण्य ।
(५) देश -अति चारुता । (६) क्षेत्र - अगम गढ़ गाढ़ ।
(७) सेना - सकल तीर्थ । (८) सिंहासन - संगम ।
(९) मुकुट - अक्षयवट । (१०) चँवर-गंगा-यमुना की तरंगे।
(११) सेवक - साधुगण । (१२) बंदी - वेद-पुराण ।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रियनारी । माधव सरिस मीतु हितकारी ।।
चारि पदारथ भरा भंडारु । पुन्य प्रदेश देस अति चारु ।।
छेत्रु अगम गढु गाढ़ सुहावा । सपनेहुँ नहिं प्रति पच्छिन्ह पावा ।।
सेन सकल तीरथ बर बीरा । कलुष अनीक दलन रनधीरा ।।
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा । छत्रु अखय वटु मुनि मनु मोहा ।।
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा । देखिं होहिं दुख दारिद भंगा ।।
सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम ।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ठाम ।।[४]

ऐसे तीर्थ पति को देखकर सुखसागर रघुवर सुखी हो गये और सीता तथा लक्ष्मण सखा को सुनाकर तीर्थराज की प्रशंसा करने लगे—

---

[१] मानस—२.१०३.१
[२] मानस—६.१२०'स' ९
[३] मानस—४३.'स' ३
[४] मानस—२.१०४.३१

अस तीरथ पति देखि सुहावा । सुख सागर रघुबर सुखु पावा ।।
कहि सिय लखनहिं सखहि सुनाई । श्रीमुख तीरथ राज बड़ाई ।।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रयाग को 'तीर्थों के राजा' के रूप में चित्रित कर महाकवि तुलसी ने जलचर पात्रों में सर्वश्रेष्ठ 'प्रयाग' को ही माना है।

वेणी-वचन—चित्रकूटगमनक्रम में भरत जी प्रयाग आये और त्रिवेणी को प्रणाम कर—**सबिधि सितासित नीर नहाने । दिए दान महिसुर सनमाने ।।**[२] पुनः—**देखत स्यामल धवल हलोरे । पुलकि शरीर भरत कर जोरे ।।**[३] उसके बाद उन्होंने तीर्थराज प्रयाग से एक ही वर माँगा—**जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ।**[४] भरत के वचन को सुनकर त्रिवेणी ने कहा—

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ।।
बादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं ।।[५]

वेणी-वचन सुनते ही उनका तन पुलकित तथा मन हर्षित हो गया—

तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ।।[६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भरत और त्रिवेणी के वार्तालाप के माध्यम से सुजान कवि तुलसीदास जी ने त्रिवणी का दिव्य पुरुष के रूप में चित्रण किया है। हिन्दी-साहित्य के लिए यह अमर देन है।

सिंहिका—सिंहिका जल में रहने वाली एक निशिचरी थी, जो माया के द्वारा गगनचरखगसहित अन्य जीवजन्तुओं की परछांहियों को पकड़ लेती थी और उसी के द्वारा उन्हें सिंधु में पतित कर उनका भक्षण किया करती थी—

निसिचरी एक सिंधु महुँ रहई । करि माया नभ के खग गहई ।।
जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं । जल बिलोकि तिन्ह के परिछाहीं ।।
गहइ छाँह सक सों न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगन चन खाई ।।[७]

उसी निशिचरी ने हनुमान के सागर-सन्तरण के समय उनसे छल की थी, उसके छल को तुरन्त समझकर हनुमान ने उसे अपनी गदा से मार दिया—

सोइ छल हनुमान कहँ कीन्हा । तासु कपट कपि तुरत हिं चीन्हा ।।
ताहि मारि मारुत सुत बीरा । बारिधि पार गयउ मतिधीरा ।।[८]

---

[१] मानस—२.१०५.२-३
[२] मानस—२.२०३.४
[३] मानस—२.२०३.५
[४] मानस—२.२०४
[५] मानस—२.२०४.७-८
[६] मानस—२.२०५
[७] मानस—५.२.१-३
[८] मानस—५.२.४-५

सागर—जब हनुमान लंका के लिए प्रस्थान कर रहे थे, तब जलनिधि ने उन्हें रघुपतिदूत विचार कर मैनाक को उनका श्रम हरण करने के लिए कहा—

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी । तैं मैनाक होहि श्रमहारी ।।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सागर जड़ है, फिर भी सागर को विचारकं के रूप में चित्रितकर महाकवि तुलसीदास ने उसका मानवीकरण किया है तथा जलनिधि को दार्शनिक मानव के रूप में उपस्थित कर तुलसीदास ने कमाल कर दिया है।

ब्राह्मणवेशी सागर—तीन दिनों तक राम सागर के समक्ष उपस्थित होकरर रास्ता माँगते रह गये, किन्तु सागर ने रास्ता नहीं दिया, तब क्रोधवश राम ने लक्ष्मण को धनुषवाण लाने के लिए कहा—

लछिमन बान सरासन आनू । सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ।।[२]
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लछिमन के मन भावा ।।
संघानेउ प्रभु बिसिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ।।[३]

मकर, उरग तथा झषादि को व्याकुल होते देखकर विप्ररूप में सागर नाना मणियों से भरी हुई हाटकथाल लेकर राम के समक्ष उपस्थित हो गया—

कनक थार भरि मनि गन नाना । बिप्र रूप आयस तजि माना ।।[४]

भयाक्रान्त सिन्धु ने राम का चरण पकड़ कर कहा—हे नाथ! मेरे सब अवगुण को क्षमा करें। राम ने सागर के विनीत वचनों को सुनकर सागर को क्षमादान दिया। उसने राम को कहा—

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई । लरिकाई रिषि आसिष पाई ।।
तिन्ह के परस किएँ गिरि भारे । तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ।।[५]

मैं फिर अपनी शक्ति भर सहायता करुँगा। इसी प्रकार हे स्वामी। सागर बँधवाइए। उसने कहा—**एहि सर मम उत्तर तट बासी । हतहु नाथ खल नर अघ रासी ।।**[६]

यह सुनते ही राम ने तुरंत सागर के कष्ट को दूर किया। राम के बल पौरुष को देखकर सागर खुश हो गया और सारा वृत्तान्त कहकर राम को सुनाया—

सुनि कृपाल सागर मन पीरा । तुरतहिं हरी राम रनधीरा ।।
देखि राम बल पौरुष भारी । हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ।।
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा । चरन बंदि पायोधि सिधावा ।।[७]

---

[१] मानस–५.३.९
[२] मानस–५.५७.७
[३] मानस–५.५७.५-७
[४] मानस–५.५७.८
[५] मानस–५.५९.१-२
[६] मानस–५.५९.५
[७] मानस–५.५९.६-७

निज भवन गवनेउ सिंधु श्री रघुपति हि यह मत भायऊ ।
यह चरित कलिमलहर जथामति दास तुलसी गायऊ ।।[१]

"सिन्धु का निज भवन-गमन सिद्ध करता है कि चतुर चूड़ामणि तुलसीदास जी ने सागर का मानवीरूप उपस्थित कर विश्वसाहित्य को विस्मय विमोहित कर दिया है।

सिंधु बचन सुनि राम सचिव बेलि प्रभु अस कहेउ ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु ।।[२]

सागर 'जलनिधि पात्र' हैं, फिर भी राम-सागर वार्तालाप के द्वारा तुलसीदास ने 'सागर' को अधम पुरुष के रुप में चित्रित किया है ।

सर, सिन्धु, नदी तथा नद—
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या । मेकलसुता गोदावरि धन्या ।।
सब सर सिंधु नदीं नदनाना । मंदाकिनि कर करहिं बखाना ।।[३]
के आधार पर सिद्ध है कि तुलसी दास जी ने सर,सागर,नदी तथा नाना नद के मुखों से गंगा की प्रशंसा करवाकर इन सबका मानवी रूप उपस्थित किया है ।

मकर, उकर तथा झषगण—सागर पर कोप करके राम ने अपने कराल विशिष का संधान किया, जिसके फलस्वरूप उदधि-उर में बाड़वाग्नि प्रोद्भूत हुई । जलनिधि के उदर में रहने वाले जंतु जलने लगे और मकर, उरग तथा झषगण आकुल-व्याकुल हो गये—**संधानेउ प्रभु बिसिष कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ।।**
मकर उरग झषगण अकुलाने ।[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि परम उदार कवि तुलसीदास ने जलनिधि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा पीनातिपीनकाय जंतुओं की अर्न्तज्वाला का अपनी दिव्य दृष्टि से भव्य दर्शन किया है ।

जलनिधि के जलचर—सागर-सेतु पर राम के चढ़ते ही जलनिधि के सभी जलचर राम-रूपछविसिंधु-निहारणार्थ प्रकट हो गये । मगर, नक्र तथा नाना झषव्यालादि के शतयोजन परम विशाल तन पर महाकवि की सहज दृष्टि निक्षेपित हुई—

मकर नक्र नाना झष ब्याला । सत जोजन तन परम बिसाला ।।[५]
वे 'जीवः जीवस्य भोजनम्" की सार्थकता सिद्ध करने वाले थे—
अइसेउ एक तिन्हहिं जे खाहीं । एकन्ह कें डर तेपि डराहीं ।।[६]
सभी प्रभु को बिलोकने लगे तथा टालने पर भी नहीं टले । सबका मन हर्षित था।

---

[१] मानस–५.५९.८
[२] मानस–६.३.४
[३] मानस–२.१३७.४-५
[४] मानस–५.५७.६-७
[५] मानस–६.३.५
[६] मानस–६.३.६

सभी उस दिव्य दृश्य को देखकर सुखी थे और मीन तक जल त्याग कर हरिरूप निहारते-निहारते मग्न हो गये—

प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे । मन हरषित सब भए सुखारे ।।
तिन्ह की ओट न देखिअ बारी । मगन भए हरि रूप निहारी ।।[1]

इस प्रकार महाकवि की सर्वव्यापिनी दृष्टि ने एक ही बार में जलनिधि के तट पर सभी जलचरों का दर्शन कर लिया ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जलचर पात्रों के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी दिव्य-विस्तीर्ण सर्वदर्शिनी दृष्टि का परिचय दिया है ।

(च) उभयचर पात्र

दादुर—

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।।

के अनुसार जीव विज्ञानी मानसकार तुलसीदास जी ने "वटु-समुदाय" की वेद-ध्वनि की उत्प्रेक्षा "दादुर ध्वनि" से की है । दादुर सामान्यतः भूमि के पथरीले और नमी वाले स्थान में पाया जाता है । यह मुख्यतः यामिनी में ही विचरण करता है । यह अपने अभिज्ञान के बल पर एक लम्बी अवधि तक एक निश्चित क्षेत्र में ही जीवनयापन करता है । यह धीरे-धीरे जमीन की सतह पर चलता है । इसकी यह चलन-पद्धति आत्म-सुरक्षा के लिए उपयोगी है ।

इसका रंग भूरा, मटमैला तथा कृष्णघन-सदृश होता है । दादुर की ही एक विशिष्ट जाति होती है, जिसमें आन्तरिक ध्वनियंत्र पाया जाता है । इसकी तेज-तर्रार "टर्र-टर्र"की समवेत आवाज वेदपाठी वटुसमुदाय की समवेत ध्वनि-सी प्रतीत होती है । जैसे वटुसमुदाय गुरु गंभीर ध्वनि में वेद पढ़ता है, ठीक उसी प्रकार नर दादुर अपने बहुत बड़े ध्वनियंत्र को आवाज निकालने के क्रम में फैलाता है, तो उसके ध्वनियंत्र का आकार लगभग उसके सम्पूर्ण शरीर के आकार के बराबर हो जाता है ।

इसकी आवाज अधिकाशंतः वर्षा के आगमन के पूर्व तथा वर्षा काल में ही सुनी जाती है । इसकी ध्वनि से सामान्यतः वर्षा के शुभागमन का बोध होता है । इसके इसी गुण के कारण इसे "मौसम का भविष्यवक्ता" कहा गया है—

"All though it is much smaller than bull -frog of North America, it is astonishingly loud in it's croaking. The main frog possess large vocal sacs, which when inflated bulgeout the throat in a spherical form to dimensions little less than the oreatures body. As their voiceis most oftan heard a little before the showar, they are often wrongly regarded as Prognosticators of wealther," that is, their crosking indicates the approach of rain."

---

[1] मानस–६.३.७-८

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर इस मत पर पहुँचा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास जी ने 'दादुर' की तुलना 'वटु' से कर उसका प्रच्छन्न मानवी रूप प्रकट किया है, जो सहज सम्भाव्य ही है, किन्तु सूक्ष्म विश्लेषण करने पर दादुर तथा वटु में अन्तर दृष्टिगम्य होता है, यथा—वटुसमुदाय द्वारा वेद ध्वनि का निस्सरण आयास सिद्ध है, किन्तु दादुर-ध्वनि वंशानुगत क्रम में मिले अन्य सामान्य तथा सहज गुणों में से एक है। फिर भी, दोनों में अन्तर मित और साम्य अमित है, जिस प्रकार दादुर-ध्वनि उसके जीवन की आवश्यकता एवं सुरक्षा के लिए उसमें प्राप्य है, उसी प्रकार वटु-ध्वनि भी वटु के जीवन निर्वाह की पूर्वपीठिका की विनिर्मिति ही है। वर्षाकाल में दादुर ध्वनि चतुर्दिक सुहावन लगती है। इससे स्पष्ट लक्षित होता है कि धरती पर दादुर का व्यापक समुदाय है—"मेढ़क की लगभग एक हजार से अधिक जातियाँ संसार भर में पाई जाती हैं। हमारे देश में भी मेढ़क की कई जातियाँ हैं। इनमें साधारण मेढ़क तथा दादुर दो प्रमुख जातियाँ है।"[१] "दादुर उभयचर प्राणी है"।[२] दादुर ध्वनि और वटु ध्वनियों में "भेदसहित साम्य"ही दीख पड़ता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि "दादुर ध्वनि और वटु ध्वनि में साम्य की उत्कंठा एवं उनकी तुलना के लिए उत्प्रेक्षा का कवि द्वारा सहारा लिया जाना कवि की विश्रुत वैज्ञानिक बोधव्यता, ज्ञानगम्यता तथा प्राणिप्रियता का परिमल परिचायक है। "दादुर ध्वनि" तथा "वटु-ध्वनि" में साम्य स्थापित कर कवि ने "ध्वनि विज्ञान" के क्षितिज को नव्य रुप प्रदान कर दिया है।

(छ) अन्यान्य पात्र

वियोगी वनस्पतियाँ, पशु, पक्षी तथा जलाशय—"राम-वन-गमन" के कारण अयोध्या के बाग,विटप,गुल्म,सरिता,सरोवर, हय-गय, केलिमृग तथा अन्य पशु एवं चातक, मोर, चकोर, पिक, सुक, सारिका, सारस और हंसादि राम-वियोग-

---

[१] श्रीसुबोध विहारी सहाय, जीवविज्ञान भाग-२ शीर्षक उभयचरवर्म, श्रीजनार्दन सिंह पृ०९, बिहार स्टेट टेक्स बुक पब्लिकेशन कारपोरेशन लिमिटेड, संशोधित संस्करण १९८१।

[२] वही

विकल होकर सहसा सन्न रह गये—

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं । सरित सरोवर देखि न जाहीं ।।[१]

तथा— **हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर ।**
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर ।।[२]

विरह-बाढ़—राम की विरह-बाढ़ में अयोध्या के सभी जड़-चेतन बहते-बहते डूब गये—**राम बियोग बिकल सब ठाढ़े । जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े ।।**

राम सीता-वियोग में प्रकृति के सभी जड़-चेतन उपादानों से पूछने लगे—

लछिमन समुझाए बहु भाँति । पूछत चले लता अरु पाँती ।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखि सीता मृग नैनी ।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकट कोकिला प्रबीना ।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहि भामिनी ।।
बरुन पाव मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ।।
श्री फल कनक कदलि हरषाहीं । नेकुन संक सकुच मन मांही ।।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते है कि सृष्टि के सभी जड़-चेतन मानवीय संवेदनाओं से सदा-सर्वदा संचालित होते रहे हैं और अनागत में होते भी रहेंगे।

विरहीबाजि—राम-वन-गमन के पश्चात् सारथि सुमंत्र के रथाश्व दक्षिण दिशावलोकन कर विरह विदग्ध हो गये—

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहग अकूलाहीं ।।[३]

और वे अन्न-जल त्यागकर करुण क्रन्दन करने लगे—

नहीं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि ।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ।।[४]

"रघुबर-विरह-पीर" के तीरसन्धान से बिद्ध शोकशिथिलाश्वदशा द्रष्टव्य है—

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे । बन मृग मनहूँ आनि रथ जोरे ।।
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें । राम बियोगि बिकल दुख तीछें ।।
जे कह रामु लखनु बैदेही । हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ।।[५]

तथा—**रथु हांकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं ।**
देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछिताहिं ।।[६]

---

[१] मानस–५.८२.८

[२] मानस–२.८३

[३] मानस–२.१४१.८

[४] मानस–२.१४२

[५] मानस–२.१४२.५-७

[६] मानस–२.९९

मेरी दृष्टि में "सामाजिकपशु मानव से श्रेष्ठ चतुष्पदी जंगली जानवर बाजी ही है; क्योंकि वह मनुष्यों के दुःखदर्द को पी-पी कर सहानुभूति, संवेदना और सम्वेदना प्रदान करता है। अतः, अन्त में करुण-कवि-कुमुद कलाधिपति तुलसी जी के स्वर में मैं अपना स्वर मिलाकर अपनी वाणी को विश्राम देता हूँ—

बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहिं भाँती।।[१]

सरिता, वन तथा गिरि

सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बरबाटा।।

के आधार पर स्पष्ट है कि राम जब वन में गये, तब स्वामी भक्तिवश सरिता, वन तथा पहाड़ादि ने सुंदर और श्रेष्ठ रास्ता राम को दिया। इससे सिद्ध होता है कि सरिता, वन तथा गिरि में मानवीय गुणों का दर्शन करना गोस्वामी तुलसीदास जी को समदर्शी कवि सिद्ध करता है। गिरि-कैलास बिन्ध्याचल पर्वत मदरमेरु तथा हिमशैलादि चित्रकूट की कीर्त्ति का गायन करते हैं—

उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुर बासू।।
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते।।
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई।।

इससे स्पष्ट लक्षित है कि कैलास, मंदर, हिमालय तथा बिन्ध्याचल आदि के मुखों से चित्रकूट की प्रशंसा करवाकर चतुर महाकवि ने उन्हें मानवी गुणों से सजा दिया है।

अनल—

भगति सहित मुनि आहूति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरु कर लीन्हें।।[२]
तब अदृश्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ।।[३]

दशरथ द्वारा किये गये पुत्रेष्टि-यज्ञ में अग्नि देव ने मानवरूप में प्रकट होकर होम लिया और पुनः वह अदृश्य हो गये। अग्नि का प्रकट होना और छिप जाना उसके मानव रूप का परिचायक है।

धरि रूप पावक पानि गहि श्रीसत्य श्रुति जग विदित जो।[४]

"पावक-पाणि-ग्रहण" से पावक का मानवीकरण ध्वनित होता है। अतः, स्पष्ट है कि महाकवि तुलसीदास जी ने 'पावक' को भी मानव मानकर उनका सफल चरित-चित्रण 'मानस' में किया है।

---

[१] मानस–२.१४२.८
[२] मानस–१.१८८.६
[३] मानस–१.१८९
[४] मानस–६.१८

पृथ्वी— **सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका ।**
संग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ।।[१]

उपर्युक्त छन्द के मनन से ज्ञात होता है कि पृथ्वी ने गाय का रूप धारण कर लिया था। धरती का गाय का रूप बनाकर देवसमाज में हरिप्राप्ति हेतु उपस्थित होना हमें घोर आश्चर्य में डाल देता है और तुलसी जी की अनुपम उद्भावना पर मेरा मुग्ध विभोर मन मोर बनकर शोर मचा-मचा कर थिरक-थिरक उठता है।

विप्रवेषधारी वेद—सीतारामविवाह के समय 'वेद' ने विप्ररूप धारणकर विवाह पद्धति की जानकारी दी थी—

होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं ।
बिप्र वेष धरि बेद सब कहि विवाह बिधि देहिं ।।[२]

वेदद्वारा विप्रवेषधारण किया जाना, गोस्वामी तुलसीदास जी की कल्पना का कमाल है। जब श्री राम राज-सिंहासन पर आसीन हुए, तब बंदीवेष में उनका यशोगान करने वेद आये—

भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम ।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्री राम ।।[३]

'वेद' एक अमर कीर्ति है; किन्तु ग्रन्थ का बंदी के रूप में मानवी चरित्र प्रदान करना तुलसी के सिवा और से कहाँ सम्भव है।

लंकादेवी— लंका देवी राक्षसी के रूप में हनुमान के मार्ग को अवरुद्ध करती हुई कहती है—**जानेहिं नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।**[४] यह सुनते ही हनुमान ने उसे एक मुक्का मार दिया, जिसके कारण उसके मुँह से रुधिर गिरने लगा। वह हनुमान से हारकर कहती है कि स्वयंभू ने उससे कहा था—तुम्हारी पराजय के उपरान्त राक्षसों का नाश होगा—

जब रावनहिं ब्रह्म वर दीन्हा । चलत बिरंचि कहा मोहि चिन्हा ।।
बिकल होसि तैं कपि के मारे । तब जानेसु निसिचर संघारे ।।[५]

उसने हनुमान से कहा—

प्रविसि नगर कीजे सब काजा । हृदयँ राखि कौसलपुर राजा ।।[६]

अतः, उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि लंकिनी राक्षसी होती हुई भी राम-भक्तिन थीं।

रामदूत—"शर", राम ने अपने शर से रावण का वध कर दिया। उसके बाद

---

१. मानस–१.१८३.८
२. मानस–१.३२३
३. मानस–७.१२ 'ख'
४. मानस–५.३.३
७. मानस–५.३.६-७
८. मानस–५.४.१

उनका दूत बनकर 'बाण', रावण की भुजा और उसके सिर को मंदोदरी के आगे रख दिया—**लै सिर बाहु चले नाराचा ।।**[१]

पुन: वह राम-दूत के रूप में राम के समीप आया और उनके निषंग में समा गया। तुलसी के शब्दों में—

मन्दोदरि आगे भुज सीसा । धरि सर चले जहाँ जगदीसा ।।
प्रबिसे सब निषंग महुँजाई । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ।।[२]

अंत में, हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि परम चतुर कवि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने राम के निर्जीव 'शर' को भी मानवी चेतना (ह्यूमेन कांन्सीअसनेस) से संपन्न कर उनके द्वारा दौत्यकर्म का सफल सम्पादन कराया है ।

आज्ञाकरी पुष्पक-विमान—पुष्पक-विमान कुबेर का था । रावण ने उन्हें हराकर पुष्पक छीन लिया था। रावण-वध के बाद राम लक्ष्मण,सीता, विभीषण तथा वानरादि को पुष्पक विमान पर बैठाकर अयोध्या ले आये। उसके बाद राम ने 'पुष्पक' को आदेश दिया कि "तुम कुबेर के पास चले जाओ"। उनका आदेश पाकर पुष्पक हर्ष-विरह के द्वन्द्व में पड़ कर कुबेर के पास चला गया। श्री तुलसी के शब्दों में—

आवत देखिं लोग सब कृपासिंधू भगवान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि विमान ।।[३]

तथा—**उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।**
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु विरहु अति ताहु ।।[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज्ञाकारी जड़-पुष्पक विमान को भी मानवी रूप प्रदान कर महाकवि तुलसी दास ने कमाल कर दिया है ।

मित्र मेघ—राम-वन-गमन के कठिन अवसर पर 'मेघ' ने राम के प्रति अपने मित्र प्रेम का पावन परिचय दिया था । जहाँ-जहाँ राम जाते थे, वहाँ-वहाँ मेघ भी जाता था और उन्हें दीर्घ दाघ निदाघ से बचाने के लिए आक़ाश में उमड़-घुमड़ कर उन्हें स्निग्धता प्रदान कर बाग-बाग हो जाता था—

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ।।[५]

अत: स्पष्ट है कि मेघ सहचर तथा सुहृद बनकर अपने संत-स्वभाव का परिचय निराली शैली में देकर हमें आश्चर्य चकित कर देता है ।

गिरिमैनाक—सीतान्वेषणक्रम में हनुमान सागरोल्लघनार्थ चल पड़े। उनकी

---

[१] मानस–६.१०२.२
[२] मानस–६.१०२.७
[३] मानस–७.४.'क'
[४] मानस–७.४ 'ख'
[५] मानस–३.६.५

देखकर सागर ने समझ लिया कि "यह रामदूत है।" इसीलिए जल-निधि ने मैनाक-पर्वत से कहा—हे मैनाक! तुम ही इनका श्रान्तिशामक हो। अतः अपने ऊपर इन्हें विश्राम करने दो—**जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं पैनाक होहि श्रमहारी।।**[1]

तब हनुमान जी ने उसे अपने हाथ से छू दिया और पुनः प्रणाम करके कहा—भाई! श्रीरामचन्द्र जी का कार्यसंपादन किए बिना मुझे विश्राम कहाँ—

हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम।।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि जड़ प्रकृति के परस्पर विचार-विमर्श का विलक्षण-विज्ञानबोध महाकवि तुलसीदास जी को सहज रूप से ही प्राप्त था। अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि महकवि तुलसीदास जी ने—

जड़ चेतन जग जीव जत सकलराम मय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।[3]
और— **देव दनुज नर नागखग प्रेत पितर गंधर्व।**
बंदउँ किंनर रजनींचर कृपा करहु अब सर्व।।[4]

कहकर सभी प्राणियों की वन्दना ही नहीं की है, प्रत्युत उनके जीवन-चरित की दिव्यविवेचना भी यथावसर प्रस्तुत की है।

अतः गोस्वामी तुलसीदास जी कवि कर्म-कमनीय, नमनीय एवं वंदनीय है। 'सीताराम—"विवाहोपरान्त, सीता जब राम के साथ अयोध्या के जिए विदा ले रही थीं, उस समय जनकपुर के विहग तथा मृगों ने भी अपनी आकुलता को मूक भाषा में 'सीता-सुता' को सौंप कर विदा किया था—

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए।।
व्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही।।
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसे कहि जाती।।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास जी ने "बेटी-विदाई" के विरह सागर को इतना अधिक अतुल बना दिया है कि उसमें खगमृगादि भी अपादमस्तक निमग्न हो जाते हैं। मानवीकरुणा का प्रबल प्रसार प्रकृति के लघु जीवों-खग-मृगादि तक दिखलाकर महान् महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने आकाश-कुसुम खिला दिया है।

—०००० —

---

[1] मानस–५ मङ्गलाचरण श्लोक ३. चौ०-५   [2] मानस–५.१
[3] मानस–१.७. 'ग'   [4] मानस–१.७.घ   [5] मानस–१.३३७.१-३

६.

राम-कथा-प्रसंगों का संश्लिष्ट आकलन

प्राचीन भारत में राजनीतिक एकता का अभाव उसके इतिहास की एक विशेष दुर्बलता रही है, यद्यपि उसकी भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता साधारणतया सिद्ध है[१]। भारत के प्राचीनतम निवासियों को मानव-विज्ञानवेत्ता पूर्व-पाषाणकालीन मानते हैं। वे एक प्रकार की बर्बर जाति के थे, जो पेड़ों के नीचे तथा पहाड़ों की गुफाओं में रहते थे[२]। कलान्तर में भारतीय मानव ने अन्य देशों के आदिम मनुष्यों की भाँति ही अपने विकास की मंजिल उत्तरकालीन पाषाण के रूप में तय की। ताम्र युग की सैन्धव सभ्यता को 'धातुकाल' कहा जा सकता है[३]। धातुकाल से ही सुसंस्कृत जीवन का श्री गणेश हुआ । उस सभ्यता के निर्माता द्रविड़ थे । वे भारत की प्राचीनतम सभ्य जाति के थे। पाश्चात्य विद्वान् जे० केन्नेडी के मतानुसार द्रविड़ 'भूमध्यसागरीय' जाति के हैं [४]। द्रविड़ भाषाएँ दक्षिण की बोलियों में आज भी प्रधान है । द्रविड़ भाषाओं की विशेषताएँ वैदिक तथा काव्य संस्कृत प्राकृतों, प्राचीन बोलियो, अपभ्रंशादि तथा उनसे निकली उत्तर भारत की अनेक आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं तथा बोलियों में मिलती हैं [५]।

द्रविड़ समाज कुछ अंश तक "मातृसत्ताक" था और उसका धर्म साधारणत: "तमपूर्ण" तथा "घृणोत्पादक" था[६] । वे मातृ देवियों तथा अगणित देवात्माओं के पूजक थे । इस पूजा में नरमेघ तथा जननेन्द्रियों का स्तवन भी करते थे। मेरी दृष्टि में द्रविड़ तथा ऋग्वैदिक 'दास' तथा 'दस्यु' एक ही जाति के थे । द्रविड़ों के पूर्वज रूपसागर (मेडिहेरेनियन) के किनारे रहते थे और वहीं से वे लोग एक के बाद एक तीन झुण्डों में भारत आये ।

---

१. डॉ० राधा कुमुद मुखर्जी : फण्डोमेन्टल यूनिटी ऑफ इण्डिया ।
२. श्री भी० रङ्गाचार्य : प्री-मुसलमान इण्डिया, वोल० १, पृ० ४८.
३. संस्कृति के चार अध्याय : स्व० राष्ट्र कवि 'दिनकर'
४. मि०जे० कन्नेडी : जे०आर०एच०एस०, १९९८, पृ० २९४-२९६.
५. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वोल० १, पृ० ४२.
६. मि० एल०डी० बरनेट : एन्टीक्यूटिज ऑफ इण्डिया, पृ० ४.

आर्य विदेशी, विजातीय तथा विधर्मी आक्रमणकारी थे। वे ऊँचे, गौराङ्ग तथा सुन्दर थे। अनार्य नारे तथा कृष्णवर्णी थे। दस्युओं की नाक चिपटी थी। अतः आर्य उन्हें 'अनासाः' कहते थे। अनार्य वैदिक देवताओं को नहीं मानते थे, इसलिए आर्य उन्हें 'अदेवयु', 'अन्यव्रत', 'अयज्वन' तथा 'अकर्मन' कहते थे। अनार्य वैदिक देवता के निन्दक थे। इसलिए आर्य उन्हें 'देव-पीयु' कहा करते थे। अनार्य शिव-लिङ्ग के आकार की कोई पूजा करते थे, जिससे आर्यों ने उन्हें 'शिश्नदेवाः' कहा। इस प्रकार के लिङ्ग-पूजन का प्रमाण द्रविड़ सिन्धु-सभ्यता में अनन्त संख्या में प्राप्त है।

इन साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि अनार्य तथा दस्यु जातियाँ द्रविड़ जातियाँ द्रविड़ थीं, जिनके प्रदेशों को आर्य उनसे छीनना चाहते थे। दस्यु-स्वदेश तथा अपने पशुओं के लिए जी-तोड़ लड़े, किन्तु आर्यों से हारकर वनों तथा पर्वतीय उपत्यकाओं में आश्रय लिया। आज भी उनके वंशधर भारतीय काननों में बसे हुए हैं—

(१) गोंड (२) खाँड (३) कोल (४) भील
(५) संथाल (६) ओराँव (७) मुण्डा।

अनार्यों में से जो भाग नहीं सके, वे आर्यों के "दास" हो गये। इन्हीं दासों को आर्यों ने "शूद्र" की संज्ञा दी—

पूजिय विप्र सील गुन हीना। शूद्र न गुनगन ग्यान प्रबीना।।[1]

प्राचीन भारत का महाकाव्य रामायण उन्हीं की देन है। राजाओं की इच्छाओं पर नियंत्रण रखने के लिए "समिति" तथा "सभा" नामक संस्थाएँ कायम की। कीथ साहब के अनुसार "समिति" जनकार्यों को संपन्न करने वाली संस्था थी और सभा वह स्थान था, जहाँ सामाजिक उत्सव तथा समिति की बैठक होती थी[2]।

रावण की सभा में शूर्पनखा जाकर कही—

सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ।।[3]

आर्यों का कुल पितृ प्रधान था। मानस में सीता के जिए जनक से संबंधित नाम ही आये हैं, सुनयना से नहीं। जैसे—

जनक सुता जग जननि जानकी। अति सथ प्रिय करुना निधान की[4]।।

---

१. रामचरितमानस
२. कीथ साहल : कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० २७
३. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दो० २१ (ख)
४. वही/ बालकाण्ड/सो० १७/चौ० ७

तौ जानकिहिं मिलिहिं बरु एहु । नाहिन आलि इहाँ संदेहू ।।[१]
तात जनक तनया यह सोई । धनुष जग्य जेहि कारन होई ।।[२]
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं । अस कहि चरन गहे बैदेही ।।[३]

आर्यों में एक पत्नी विवाह की प्रथा थी । अपना पति चुनने में नारी को काफी स्वतंत्रता थी[४] । डॉ० अलटेकार ने भी "दि पोजिशन आफ वोमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, काशी, १९३८ के अनुसार सिद्ध किया है कि आर्यों में "स्वयंबर" के द्वारा ही विवाह सम्पन्न होता था। मानस का—

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई । ईसु काहि धौंदेइ बड़ाई ।।[५]

एक ज्वलन्त उदाहरण है । जो ईश्वर पुत्र हैं, उन्हें आर्य कहा गया है— आर्यः ईश्वर पुत्र । आर्यास्यापत्यम आर्यः ।।[६] "आर्य" शब्द का अर्थ है–"कृषक" ।[७]

मानस के मानवेतर-पात्र—

वस्तुतः अनार्य मानव ही थे । "आन्ध्रालय से लेकर आंध्रद्वीप तक—बालि, यवद्वीप, स्वर्ण द्वीप, सुमात्रा आदि द्वीप समूह स्थल संश्लिष्ट थे और इन द्वीपों ने नर-नाग-देव-दैत्य-दानव-असुर-आर्य-व्रात्य सभी नृवंश के जन एक साथ ही रहते थे ।[८] आन्ध्रालय को आज-कल आस्ट्रेलिया महाद्वीप कहा जाता है । "उत्तरापथ से ऊपर भारत वर्ष के सीमान्तों पर पिशाचों, गन्धर्वो किन्नरों, देवों और उपसुरों के जनपद थे । एलावर्त आदित्यों का मूल स्थान था, उर-पुर और अत्रि पत्तन में देवों का आवास था और उनके पास काश्यप तट पर चारों ओर दूर तक असुर, गरुड़, नाग, दानव, दैत्यों के खण्ड राज्य फैले हुए थे ।"[९]

(१) असुर—

रामायण में असुरों को राक्षसों से सर्वथा पृथक् माना गया है । असुरों की माता, दिति, देवों की माता अदिति की सौत थी । असुर लोग ऋषि-मुनियों के विरोधी दुश्मन, मांसभक्षी तथा ब्रह्म हत्यारे थे ।[१०]

---

[१] मानस/बालकाण्ड-२२१/६
[२] मानस/बा०का०-२३०/१
[३] मानस/बा०का०-२३५/४
[४] भागवतशरण उपाध्याय, 'वोमेन इन ऋग्वेद', द्वितीय सं०, कासी-४
[५] मानस/बा०का०/२३९/१
[६] निरुक्त (यास्क)।
[७] श्रीरामचरित सिंह, एम०एस-सी० : होमलैण्ड ऑफ एरियन्स ।
[८] वयं रक्षामः–आचार्य चतुरसेन, पृ० ११, संस्करण १९६९
[९] वयं रक्षामः, वही, पृ० १२
[१०] रामायण कालीन समजा : शान्ति कुमार नानू राम व्यास, प्रथम संस्करण, पृ० २०

वातापि तथा इल्वन इनके मुखिया थे, जो अगस्त्य मुनि के हाथों खेत आये। दण्डकारण्य के ऋषियों ने असुरनाश निमित्त राम की प्रार्थना की थी—

वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ।
ऋषियोऽभ्यागमन्सर्वेवधा या सुररक्षसाम् ।।[१]

वाल्मीकि की दृष्टि में असुर पातालवासी अधर्म पोषक हैं—

त्वमिहासुरसंधानां देवराज्ञा महात्मना ।
पाताल निलयानां हि परिधः संनिवेशितः ।।[२]
तथा— अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च राक्षस ।[३]

असुरों ने देवों तथा राक्षसों से सदा वैर रखा । दशरथ से भी दंडकारण्य में असुरों ने संग्राम किया था । दशरथ प्राण बचाने के लिए कैकेयी को दो वरदान दिये थे । हनुमान के मुष्टि-प्रहार से मूर्च्छित रावण को देखकर असुर प्रसन्न हो गये थे—

विसंज्ञं रावणं दृष्टवा समटे भीमविक्रमम् ।
ऋषयो वानराश्चैव ने दुर्देवाश्च सासुराः ।।[४]

ऋग्वेद के प्राचीनतम मंत्रों में प्राय: ग्यारह स्थलों में असुरों का अविरोधी वर्णन है। असुर पराक्रम के प्रतीक थे, इसी कारण "असुर" शब्द "वरुण" और "इन्द्र" का विशेषण बना । यह पराक्रम असुरों द्वारा सुमेरु सभ्यता के नष्ट होने से उन्हें प्राप्त हुआ। जब आर्यों ने असुरों से लड़ना शुरु किया, तब आर्यों ने अपने ऋग्वेद के बाद के मंत्रों में उन्हें विरोधी कहकर "राक्षस" कहा । यह ऐतिहासिक सत्य है कि आर्य-अनार्य एक लम्बे अर्से तक लड़ते रहे, जिससे दोनों बिखर गये । असुरों से लड़ने वाले मध्य एशिया के आर्य पन्द्रहवीं शदी ई०पू० के हत्ती मित्तनी आदि थे, जो द्रुह्य राजाओं के वंशज थे। निश्चित रूप से असुर भी बाद में आने वाले आर्यों के ही दल थे तथा भूमि के लिए उनमें परस्पर युद्ध होता रहता था। निष्क्रमण की तंरगों को एक-दूसरी से टकराना स्वाभाविक है। यह पौराणिक सत्य है कि देव और असुर एक ही पिता के पुत्र थे...." कश्यप की सपत्नियों से उत्पन्न ये दोनों थे।" दैत्य दिति से उत्पन्न हुए और आदित्य अदिति से । दैत्य असुर थे और आदित्य देव (आर्य) । मानसकार ने मानस में असुर की मात्र चर्चा ही की है—

असुर समूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आयउँ नृप तोही ।।[५]
मारि असुर द्विज निर्भयकारी । अस्तुति करहिं देव मुनि झारी ।।[६]

---

[१] वा०रा०–१/१/४३-४ [२] वा०रा०–५/१/९२ [३] वा०रा०–४/३५/१३
[४] वा०रा०–६/५९/१५-६ [५] मानस–१/२०६/९ [६] मानस–१/२०९

असुर सेन सम नरक निकंदिनी । साधु बिबुध कुलहित गिरिनंदिनी ।।[१]
असुर नाग खग नर मुनी देवा । आइ करहिं रघुनायक सेवा ।।
जब-जब होइ धरम के हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।[२]
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।[३]

आर्यों तथा अनार्यों की सामाजिक व्यवस्था भिन्न थी। आर्यों में वर्णाश्रमधर्म था, किन्तु अनार्य जाति रहित समाज के थे। सिन्धु के संपूर्ण भाग में आर्य फैले हुए थे और अनार्य दक्षिण के वनवासी थे। देश के विजयी आर्यों को अनार्य जातियों में से कुछ ने सहयोग दिया तथा कतिपय ने डटकर उनसे लड़ाइयाँ कीं । कालान्तर से अनार्य पूर्णतः परास्त होकर अनार्यों के आर्यत्व को स्वीकार कर लिये ।

(२) राक्षस—

विंध्य पर्वत की दक्षिणात्य अनार्य जातियाँ आर्यों की सभ्यता संस्कृति को अंगीकार की, लेकिन भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर तथा लंकाद्वीप के खूँखार नरभक्षी काली जाति की सभ्यता संस्कृति, नीतिरीति तथा आचार-विचार दूषित थे। इस जाति को आर्यों ने "राक्षस" कहा। वेदों में असभ्य, बर्बर, निर्दय तथा घृणास्पद जातियों को राक्षस कहा गया है। राक्षस जाति के नाशार्थ राम ने अभियान किया था। वाल्मीकि के अनुसार राक्षस ऋषि-मुनियों के आश्रमों को नष्ट करने वाले, वेद विरोधी ब्राह्मणघातक तथा कामरूप निशाचर के रूप में चित्रित हैं। उत्तर भारतीय आर्यों को राक्षसों से निरन्तर युद्ध करना पड़ा। पूर्व महाभारतकालीन भारत वर्ष के राजनीतिक इतिहास में राक्षसों का प्रमुख स्थान है। ये सभ्य तथा परिष्कृत थे, किन्तु स्वेच्छाचारिता, भोगेच्छा, दुष्टता तथा क्रूरता के कारण बदनाम थे। वे अमर्यादित, शीलहीन, आचरणहीन, नियमित, यौन प्रिय तथा विकृत आहारी थे। मांसाहार में वे कुशल थे।

(३) वानर—

वानर दक्षिण भारत की अनार्य जाति थी । यह जाति आर्य सखा थी । इनका काम था–आर्यों को धार्मिक अनुष्ठान में सक्रिय सहयोग देना। "नस्ल, वर्ण, भाषा, स्वरूपगत वैभिन्य तथा वैविध्य के बावजूद आर्य-संस्कृति के समर्थक थे । रावण के विरुद्ध इन्होंने राम की सहायता की थी । बाली तथा सुग्रीव वानरों के नेता थे । वानर जाति विन्ध्यपर्वत श्रेणी के दक्षिण में निवास करने वाली एक मानव जाति थी, जिसे

---

[१] मानस/बा०का०/दो० ३०(ख)/९

[२] मानस/बा०का०/दो० ३३/७

[३] मानस/बा०का०/दो० १२०/६-७

निरा बंदर समझना उनके साथ घोर अन्याय होगा। इंग्लैंड के वैज्ञानिक डारविन ने विकासवाद का सिद्धान्त निरूपित कर यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य के पूर्वज बंदर योनि के ही थे। एप, गिब्बन, ओरंग उत्तान, चिपंजी बन्दरों की ये ही चार जातियाँ मनुष्य रूप में विकसित हुई। अतः, सिद्ध है कि बालि तथा सुग्रीवादि वानर मनुष्य जाति के ही थे। "वास्तव में वानर जाति विंध्य पर्वत श्रेणी के दक्षिण में निवास करने वाली एक वनचर जाति थी और उसे निरा बंदर समझ लेना भूल है।"[१] उनके वानर कहलाने के दो कारण हो सकते हैं— रहन-सहन या आचार-विचार की दृष्टि से उसमें विचित्रता थी अथवा आर्य लोग उससे भली-भाँति परिचित नहीं थे और एक पूछँ युक्त उछल-कूद मचाने वाली जाति को देखकर उसे वानर कहने लगे।[२]

मानस में अनेक वानरों की चर्चा हुई है—

द्विबिद मयंद नीलनल अंगद विकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ, जामवन्त बलरासि।[३]

अट्ठारह पदुम यूथप बन्दर की ओर मानसकार तुलसी ने संकेत दिया है—

अस मैं सुना श्रवण दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर।।[४]

इनमें सर्वाधिक प्रशंसित वानर हैं हनुमान जी, जिन्होंने लंका की अशोकवाटिका में रावण-द्वारा नजर बंद (कैद) सीता का अन्वेषण बड़ी कुशलता से किया।

सीता-शोध की आध्यात्मिक रहस्य—

हनुमान अन्तर्यात्रा के एक यात्री हैं और सीता उस यात्रा का अन्तिम लक्ष्य, हनुमान साधक हैं, सीता साध्य। हनुमान योगी हैं और सीता योग। अन्तःमार्ग के यात्री हनुमान का पाथेय ज्ञान है। वे वैराग्य हैं। ज्ञान का पाथेय लेकर वैराग्य के द्वारा शांति-शोध में उद्यत होना ही हनुमान द्वारा सीता-शोध किया जाना है। "वैराग्य" से ही कर्म, ज्ञान एवं उपासना परिपक्व होती है। वैराग्य कर्म को भक्ति के निकट, भक्ति को ज्ञान के समीप तथा ज्ञान को शांति तक ले जाता है। हनुमान वैराग्य-साधना प्रतीक के हैं तथा वैराग्य-स्वरूप हैं—

प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय, विषम-वन भवनमिव धूमकेतू।।[५]

---

[१] रामायण कालीन समाज–शान्ति कुमार नानू राम व्यास, सत्साहित्य प्रकाश, प्रथम संस्करण, १९५८, शीर्षक आर्य और अनार्य, पृ० १६

[२] जै० म्यूअर 'ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स भाग-२, पृ० ४१६-९

[३] मानस/सुन्दरकाण्ड/दो० ५४

[४] मानस/सुन्दरकाण्ड/दो० ५४/३

[५] विनय-पत्रिका–५८/८

जयति धर्मार्थ कामापवर्गद विभो, ब्रह्मलोकादि वैभव विराग-वैराग्य है[1]— **''दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्व वशीक संज्ञा वैराग्यम्''**[2]। दृष्ट एवं आनुश्रविक से वितृष्ण चित्त का पूर्ण वशीकरण किया जाना ही वैराग्य है । "गुणों से अनासक्ति ही वैराग्य'' है । ज्ञान की चरम सीमा ही वैराग्य है। "ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम् (योग-भाष्य)। इसके पश्चात् ही कैवल्य की प्राप्ति होती है—**''एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति**[3]। ज्ञान की पराकाष्ठा ही वैराग्य होने के कारण ही हनुमान् जी 'ज्ञानिनाम-ग्रगण्यम्' है । योग का मूल वैराग्य है । वैराग्य का चरम मूल शांति है । उसका मार्ग ज्ञान है । उसका कर्त्तव्य शोध है । समग्र सृष्टि का चरम लक्ष्य 'शांति' है। श्री रामोपाख्यान में सीता ही शांति हैं। शांतिरूपिणी सीता के प्राप्त करने के लिए राम को 'भव-चाप' तोड़ना पड़ा। 'भव-सागर' को लाघें बिना हनुमान् को भी सीतारूपी शांति नहीं मिली। प्रवृत्ति मार्गस्वरूप लंका में मोहरूपी रावण का राज्य है। वह मोह (रावण) सीता (शांति) को छीनने वाला है। वैराग्य रूपी हनुमान रात्रि (मोह-निशा) में ही यात्रा करते हैं।

अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ।

हनुमान् का सीता शोध-हेतु रात्रि में यात्रा करना, साधक के लिए अन्तर्साधना का पूर्णतया गोपनीय रखना एवं 'जग-जामिनी' में सतत जागरुक रहने का संकेत है—

जागु, जागु, जीव जड़। जो है जग-जामिनी,
देह-ठोह-नेह जानि जैसे धन-दामिनी ।।[4]

एहिं जग जामिनी जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच वियोगी ।।
जानिअ तवहिं जीव जग जागा । जब सब बिषय विलास विरागा ।।[5]

योगी का कर्म मिलाना है। हनुमान् ने सीता-राम, सुग्रीव-राम, विभीषण-राम, लक्ष्मण को संजीवनी बूटी पिलाकर राम से मिलाया तथा विरह-वारिधि मग्न भरत को राम से मिलाया। हनुमान् एक साधक हैं, जिन्हें शांति प्राप्त्यर्थ सर्वप्रथम भवसिन्धु का संतरण करना पड़ा। ज्ञान-वैराग्य रूपी नेत्र से ही हनुमान् ने शांति रूपी सीता की खोज की—

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ग्यान विराग नयन उरगारी ।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी । भाव भगति मनि सब सुख खानी ।।[6]

शांति-गवेषणा की तीन मार्ग—(१) राह मोह -जन्य आसक्ति-रावण। (२) अनुराग - परमात्मा - प्रेम (सीता को राम के प्रतिप्रेम)। (३) विराग - शांति प्राप्यर्थ हनुमान् की

---

[1] १. विनय-पत्रिका–२९/२
[2] २. योगदर्शन १/१५
[3] ३. योगभाष्य १/१६)
[4] ४. विनय-पत्रिका ७३/१
[5] ५. मानस–२/९२/३-४
[6] ६. मानस–७/११४/७/११९ (ख)/१०४-१५

अनुसंधित्सा का मार्ग है—विराग-मार्ग। रावण शांति (सीता) को भोग्य मानता है, अतः, उसका नाश हुआ। हनुमान् शांति (सीता) को 'पूज्या' मानते हैं। अतः उनका कल्याण हुआ। साधक आध्यात्मिक सिद्धि को भोग्या नहीं, पूज्या मानकर ग्रहण करता है, अन्यथा सिद्धि-विलोप एवं साधक का (रावण) विनाश हो जाता है। प्रत्येक साधना में ईश्वर की पुरस्सरता अपरिहार्य है। "शांति ज्ञान-वैराग्य की जननी है। राम-भक्ति ही शांति है और यही सीता है। भगवती-भक्ति-शांति सीता है। ज्ञान एवं वैराग्य (हनुमान) पुत्र हैं। अतः हनुमान् सीता को 'माँ' और सीता हनुमान को 'सुत' कहती हैं।

हनुमान् गुणातीत होने के कारण गुण संकुल पदार्थों से विरक्त हैं। सीता ने 'आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ।। अजर अमर गुन निधि सुत होहू।' इतने पर भी हनुमान् खुश नहीं हुए, जब सीता यह वरदान -'करहू बहुत रघुनायक छोहू ।। करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।।' तब वे हर्षातिरेक में झूम उठे। सच है—साधक ऐहिक सिद्धियों से प्रसन्न नहीं होता, वह तो भगत्प्रेम की प्रगाढ़ता को पाकर ही आनन्दार्णव में मग्न हो जाता है। शक्तिमान् परब्रह्म (श्रीराम) अपनी विमुक्ता शक्ति (सीता) की शोध के लिए केवल वैराग्य (हनुमान) को ही दूत बनाकर साधक ब्रह्म से कृपा रूपिणी प्रत्यभिक्षा रूपी मुद्रिका प्राप्त कर ही कृतकृत्य होता है।

साधन-मार्ग में मान का त्याग होना प्रथम संविदा है। हनुमान् का अर्थ है—जिसका मान नष्ट हो चुका हो। सुरसा ने विशालकाय रूप 'अहं' दिखाया तो हनुमान् ने अनानुमान (अति लघु रूप) दिखाया। ज्ञान निरालम्ब है, आकाश भी निरालम्ब है। हनुमान ज्ञान (आकाश) मार्ग से गमन करते है। उनके प्रत्यूह है—(१) सत्त्व गुणी माया की बाधा-सूरसा, (२) रजोगुणी माया का विघ्न-लंखिनी, (३) तमोगुणी माया की बाधा-सिंहिका ।

हनुमान को सीता-शोध में तीनों नारियों (त्रिगुणात्मिका माया) बाधाएँ बनीं। साधक को मायारूपी नारी से सचेत रहना चाहिए। हनुमान ने सुरसा (सत्त्वगुणी) को प्रणाम करके अपनी रक्षा की, रजोगुणी लंकिनी को ऊर्धमृता करके छोड़ दिया तथा तमोगुणी सिंहिका का प्राणान्त कर साधक को तीनों गुणों का यथोचित उपयोग करना चाहिए।

हनुमान जी लंका में पहुँच कर कनकभवन त्यागिनी एवं कनकमृग पर मुग्ध सीता को लंका के कनक-भवन में खोजा- लेकिन कनक में शांति (सीता) कहाँ! वहाँ शान्ति की भ्रान्ति मात्र है। शान्ति की प्राप्ति की युवक्ति भगवद्भक्त के पास थी, क्योंकि वह मोह निशा में भी जागने वाले योगी थे। अशोक-वाटिका में भी सीता (शांति) को हनुमान (वैराग्य) ने स-शोक देखा। अशोक ने सीता विनय सुनकर अंगुठी (भगवद् अनुग्रह)

गिरा दी। राम नामांकित मुद्रिका पाकर परम अशान्त सीता को परम शांति मिली। सीता रूपी शांति ने हनुमान रूपी वैराग्य से कहा—

अजर अमर गुन निधि सुत होहू । करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ।।
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।।

यह निर्भर प्रेम ही तो परम शांति है—

निर्भरानन्द-संदोह कपि-केसरी, केसरी-सुवन भुवनेक भर्त्ता ।
(विनय-पत्रिका २९/१)

सुन्दरकाण्ड के आरम्भ के मङ्गलाचरण में ही 'शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाण शान्तिप्रदम्' कहा है। इस काण्ड में—

(१) शान्ति सीता का समाचार पाकर अशांत श्रीराम को शांति मिली।
(२) समुद्र-तट पर बैठी हुई मरणासन्न वानरी सेना को शांति मिली ।
(३) हनुमान को तो साक्षात् देवी से वरदान पाकर परम शांति मिली और
(४) वैराग्य पुत्र के द्वारा श्री राम-नाम तथा श्री राम-कथा और राम-नाम अंकित अति सुन्दर' मुद्रिका पाकर शांति देवी को महाशांति मिली।

गृध्र (सुपर्ण)—

प्राचीन भारत की कतिपय घूमंतू जातियाँ अपने पर्यटन शील, स्वभाव के कारण पक्षियों-गृधों या सुपर्णों की संज्ञा से अभिहित किया गया था।[1] रामायण काल में गृध्र जाति भारत के पश्चिम समुद्र तट तथा उसके निकट की पवर्तमालाओं पर रहा करती थी। इसके मुखिया संपाति और जटायु नामक दो भाई थे। इन दोनों की मृत्यु के उपरान्त गृध्रों का राजनीतिक अस्तित्त्व समाप्त हो गया।

राम चरित-मानस में इस जाति का अल्प परिचय मिलता है—

गीधराज सुनि आरत बानी । रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ।।[2]
जाना जरठ जटायू एहा । मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ।।[3]
सुनत गीध क्रोधातुर धावा । कह सुनु रावन मोर सिखावा ।।[4]

रावण के गिरफ्त से छुड़ाने के प्रयास में अपना प्राण त्याग दिया । राम ने अपने संबंधी की तरह उनका दाह-संस्कार किया—

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ।।[5]

---

१. श्री अविनाश चन्द्र दास-ऋग्वेदिक इंडिया, पृ० १४८ २. मानस/३/२३/७
३. वही ३/२८/१४ ४. वही ३/२३/१५ ५. वही ३२/८/३२

बाल्मीकीय रामायण—

ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुखितः ।[१]

सुपर्ण वंश संभवतः सप्त सिन्धु की एक यायावर आर्य थी।[२] भौना,[३] उराँव[४] और बिर्होर[५] जातियों में गिद्ध या गिद्धि गोत्र प्रचलित है। दक्षिण दिशिगामी हताश बंदरों को सागर तट वासी जटायू के अग्रज संपाति ने पर्वत गुफा से निकल कर अपना परिचय दिया था।

हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई । गगन गए रबि निकट उड़ाई ।।
तेज न सहि सक सौ फिरि आवा । मैं अभियानी रवि नियरावा ।।
जरे पंखे अति तेज अपारा । परेउँ भूमि करि घोर चिकारा ।।[६]

संपाती ने अपने दिवंगत भाई को तिलांजलि दी—

मोहि लै जाहु सिंधुतट देउँ तिलांजलि ताहि ।
बचन सहाइ करवि मैं पैहहु खोजहु जाहि ।।[७]

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा।।[८]

बाल्मीकीय रामायण के अनुसार—

ततः कृतोदकं स्नातं तं गृध्रं हिरि यूथपाः।[९]

इससे सिद्ध होता है कि गृध्र-जाति ने आर्य जातियों की धार्मिक रीतियों को अपना लिया था।

(५) शबर—

सीतान्वेषण क्रम में राम लक्ष्मण तपस्विनी शबरी के आश्रम में पधारे थे। शबरी पंपा-सरोवर के समीप की तपस्थ शबर जाति की स्त्री थी। शबर जाति के लोग बहेलिये

---

१. वाल्मीकीय रामायण ३/६३/३१
२. ए०सी०दास, ऋग्वेदिक इण्डिया पृ० ६५ और १४८ ।
३. आर० बी० रसेल: वही, भाग२ पृ० २२८
४. पी० डार्हे: रेलिजन एण्ड कस्टम्स ऑव दि उराओंस मेम्वायर्स ऑव दि एसियाटिक सोसाइटी, भाग-१, पृ० १६०
५. शरच्चंद्र राम: दि बिर्होर्स, (राँची,१९२५), पृ० ९१
६. रा० च० मानस/४/२७/२-४
७. वही/किष्किन्धा/२७/
८. रा०च०मानस/किष्किन्धा/२७/१
९. वा०रा० आदि०वा०, ४/६०/१

तथा शिकारी होते हैं। मानसकार के अनुसार शबरी एक अधम जाति की नारी थी—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।[1]
जातिहीन अध जन्म महि मुक्त कीन्हि अस नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारी।।[2]

अधुना शबरों का प्रतिनिधित्व मध्य प्रदेश की पहाड़ियों में निवास करने वाली इसी नाम की एक जाति करती है। वाल्मीकि ने अनार्य कन्या शबरी को "श्रमणी" कहा है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार शबर भारत वर्ष की एक जाति है—'भारत वर्ष की जनता, मुख्यत: आर्य तथा द्रविड़ नस्लों की बनी हुई है और उसमें थोड़ी-सी छौंक शबर और किरात (मुंड और तिब्बत बर्मी) की है।'

(६) यक्ष—

यक्ष राक्षसों के समकालीन थे। संख्या और शक्ति की दृष्टि से ये नगण्य थे। ये असाधारण सौन्दर्य तथा शारीरिक बल के लिए विश्वविश्रुत थे। तारका विकराल राक्षसी बनने के पूर्व एक सुन्दर तथा शक्तिशाली यक्षिणी थी। यक्ष तथा राक्षस सजातीय थे। दोनों के बीच वैवाहिक संबंध था।[3]

देखि विकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई।।[4]

यक्षराज कुबेर रावण के सौतेले भाई थे तथा दोनों विश्रवा मुनि की संतान थे। लंका कुबेर की थी। प्रारंभ में यक्ष-राक्षस दक्षिण भारत में रहते थे। राक्षसों ने यक्षों को धीरे-धीरे उत्तर की ओर खदेड़ दिया।[5] बाद के संस्कृत ग्रंथों में यक्षों को देवयानि की कोटि में रखा गया।

(७) गंधर्व—

गंधर्व लोग अलौकिक संगीतज्ञ थे। इनके गीतों, अप्सराओं के नृत्यों तथा पुष्प-वृष्टि से ही किसी भी समारोह का श्रीगणेश होता था। गंधर्वी दुंदुभी ही मंथरा के रूप में प्रकट हुई। वह धर्म-नृत्य, सूर्यभक्ति तथा गायन विद्या में निपुण था। तुम्बरु श्री गंधर्व ही था, रंभा में आसक्ति के कारण वह समय पर नहीं पहुँच पाया, जिसके कारण कुबेर के शाप का भाजन बनकर राक्षसी रूप पाया।

शितन्नवाशल गुहामंदिर के एक भित्ति-चित्र का गंधर्व, फल्लव, ७वीं शताब्दी ई०

---

[1] अरण्यकांड/दो०३४/चौ०२
[2] वही/वही/३६/
[3] वा०रा० १/२५/७-८
[4] मानस/बा०कांड/१७८(ख)/४/३
[5] चिन्तामणि विनायक वैद्य--दि रिडिल ऑफ दि रामायण, पृ० ९९

द्रष्टव्य है। कबन्ध गंधर्व था, किन्तु "शाप से बन्ध हुआ, इस कारण इसे माया कबन्ध कह सकते हैं।"[१] मानस में कहीं-कहीं गंधर्व की चर्चा हुई है—

किन्नर नाग सिद्ध गंधर्वा। बधुनृ समेत चले सुर सर्बा।।[२]

सुनु गंधर्व कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्म कुल द्रोही।।[३]
सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा गे बिरंचि के लोका।[४]

(८) किन्नर—

यह एक स्त्रैण जाति थी। से सभी शृंगार प्रिय तथा विलासी थे। उनका एक ही काम था—शृंगारिक गीत गाना। ये केलिक्रीड़ा में निपुण थे। रामचरितमानस में भी तुलसीदास जी ने किन्नर की चर्चा की है—

सुरकिन्नर नर नाग मुनीसा । जय जय जय कहि देहिं असीसा।।[५]
बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर सुर बधू नाचहिं चढ़ी बिमान।।[६]
बरषहिं सुमन रंग बहुमाला। गावहिं किन्नर गीत रसाला।।[७]
देवदनुज किन्नर नर श्रेनी। सादर भज्जहिं सकल त्रिवेणी।।[८]
किन्नर नागसिद्धगंधर्वा। बधुन्ह समेत चले सुरसर्वा।।[९]
देव दनुज किन्नर नर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला।।[१०]

किन्नर तीर्थ करते थे, तभी तो माघ मकरगत रवि के होते ही वे तीर्थराज प्रयाग पधारते थे। तीर्थ से पाप धुलता है—

अनुपातिक नस्त्वेते महापातकिनो यथा। अश्वमेधेन शद्धयन्ति तीर्थानुसरणेन च।।[११]
तरति अनेन इति तीर्थः।

तारने वाले को "तीर्थ" कहते हैं। तरना सत्कर्मों, सद्भावनाओं तथा सद्विचारों का प्रतीक है।

(९) सिद्ध—

सिद्ध-चरणों को आदि कवि बाल्मीकि ने अंतरिक्ष निवासी माना है। ये ब्रह्म विज्ञान में निपुण थे। इन्हे योग सिद्धि प्राप्त थी। ये मंगल अवसर पर प्रसून की वर्षा करते थे—

---

[१] मानस-पीयूष, पृ० ७
[२] राम चरित मानस/बालकांड/६०/१
[३] रामचरित मानस/अरण्यकांड/३२/८
[४] वही/बालकांड/१८३/८/१
[५] वही/वही/२६४/२
[६] वही/लंका कांड/१०९(क)
[७] रा०च०मानस/बा०काण्ड/२६१/६
[८] वही/वही/४३(ख)/४
[९] वही/वही/६०/१
[१०] वही/वही/८४/६
[११] विष्णुस्मृति।

जोगीन्द्र सिद्ध मुनीस देव विलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जयजय जय भनी।।[१]

इनकी चर्चा मानस में अनेक बार हुई है—

मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नयत नाथ पद कंजा।।[२]
जानि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।[३]
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पंथ सब के लाग।।[४]
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा।।[५]
करि चिक्कार घोर धावा बदनु पसारि। गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि।।[६]
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगि। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।[७]
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी। ते पि काम बस भए बियोगी।।[८]

नाग—नाग जाति मानव की ही एक जाति थी। इनका सर्पचिह्न था। यह यक्ष की समकालीन जाति थी, जो दक्षिण भारत में फली-फूली थी। नागों का अधिकार लंका के कुछ भागों पर भी था। प्रचीन मालबार प्रदेश पर भी उसका अधिकार था। यह ध्रुंव सत्य है कि यह मानव की एक समुद्री जाति थी।

"नाग को मानव से उच्चतम स्थान प्रदान किया गया है। वे नदियों, झीलों तथा समुद्र के तल में रहते हैं, तथा उन स्थानों में भी जहाँ हीरे-जवाहिरात तथा रत्न होते हैं। वे सोतों, कुओं सरोवरों में एकचित जीवन शक्ति की रखवाली करते हैं। गहरे समुद्रों के रत्न भंडार के वे अभिभावक कहे गये हैं। उनके सिर में एक बेसकीमत मणि होती है, ऐसा समझा जाता है।"[९]

'सुरसा नागमातरम् ।'[१०] 'भुजगाः सागरंगमाः।'[११]
'नामाश्च तुष्टु वुः प्रेक्ष्य सर्वे कपिवरं सहसा विगतक्लमस् ।'[१२]
'नागकन्या वरारोहाः पूर्णचन्द्रनिभानना (दृष्टा) हनुमता तत्र ।[१३]

---

[१] रा०च०मानस/बालकांड/छंद ४
[२] वही/वही/१८५/१६
[३] वही/वही/१८६/१
[४] वही/लंका कांड/११२/४
[५] वही/बालकांड/२६१/५
[६] मानस/लंकाकांड/७०
[७] मानस/बालकांड/२५/२
[८] मानस/बालकांड/८४/८
[९] माया कहानी मालिक, जनवरी "७०-विष्णु और बुद्ध के संरक्षक-सर्प (पौराणिक कथा) सर्वश्रेष्ठ पृ० ५५
[१०] वाल्मींकी रामायण ५/१/१३७
[११] वही /५/१/७३
[१२] वही /५/१/८४
[१३] वही /५/१२/२१

नाग का निवास स्थान महेन्द्र तथा मैनाक पर्वतों की गुफाएँ भी थीं। हनुमान को समुद्र लांघते नागों ने देखा था। नाग कन्याएँ बड़ी सुन्दर होती थी। सुन्दरता के कारण ही वे रावण-द्वारा बहुत बार अपहृत हो चुकी थी— **प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्या बलाद्धृताः ।**[1]

राजधानी— इनकी राजधानी भोगवती नगरी थी। प्रमुख नाग जैसे वासुकि और तक्षक आदि के रावण ने युद्ध में हराया था। कालांतर में नागजाति चेर-जाति में घुल-मिल गई। वह ईस्वी सन् के प्रारंभ में शक्ति संवद्धित हुई थीं।[2] मानस में नाग की चर्चा नाम मात्र की ही हुई है। जैसे—

देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरतन निज भागा ।।[3]
नाग असुर सुर नर मुनि जैसे। देखे जिते हते हम वेते ।।[4]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नाग एक आदिवासी मानव जाति थी।

अप्सरा— अप्सरा मणिकाएँ और वाराँगनाएँ थीं। अनिंघ स्निग्ध रूपमाधुरी एवं अलौकिक सौन्दर्य सुधावी होने के कारण मांगलिक वेला में देवों के समारोह में इनकी महत्त्व पूर्ण भूमिका नृत्व के माध्यम से होती थी। ये स्वर्ग सुन्दरियाँ नृत्य कला का प्रदर्शन कर मोह लिया करती थीं। मदन ने काममय रुचिर ऋतुराज को धरा पर प्रकट कर अचल समाधिस्थ शिव का ध्यान भंग करना चाहा। उस कामोन्मत्त परिवेश का अप्सराएँ नाच गाकर और अधिक उन्मादक बना दीं।

जागद मनोभव सुएहुँ मन बन सुभगता न परे कही ।
सीतल सुगंध मंद मारुत मदन अनल सखा सही ।।
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजल पुंज मंजुल मधुकरा ।
कलहंस पिक सुग सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ।।[5]

पुराणों के अनुसार इनका जन्म सिन्धु में हुआ था। समुद्र मंथन से ये जन्मीं। इसका लक्ष्यार्थ है कि अप्सराएँ सागर तटवासिनी थीं। वे साधारण-सर्वसुलभ स्त्रियाँ थीं।

त ताः स्मप्रतिगृहपान्ति सर्वे ते देवदानवाः ।
अप्रतिग्रहणादेव ता वे साधारणाः स्मृताः ।।[6]
बाजहिं ताल परवाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।।[7]

---

[1] वही /५/१२/१२

[2] श्री बी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार- 'साउथ इण्डिया इन दि रामायण'' सेवेंथ ओरियण्टल कॉनफेरेस १९३३)

[3] मानव/ बालकांड/१९५/२

[4] वही/अरण्यकांड/१८/३

[5] मानस/ बालकांड/८५/१-४

[6] वही १/४५/३५

[7] मानस/लंकाकांड/ ९/९

इसे किसी ने अंगीकृत नहीं किया। देवदानव भी इसे अपना नहीं सके। रावण ने अनेक अप्सराओं का योग किया। मित्र की तृप्ति के लिए जाती हुई उर्वशी से वरुण ने प्रणय निवेदन किया। (वा०रा० ७/५६/१५-६) "सुराणां न चेक स्त्री परिग्रह:।[१] रंभारावणप्रसंग से सिद्ध है कि अप्सराएँ वेश्या थीं, रूपजीवा थीं। रावण ने कहा- "पति हर सरसां नास्ति।[२] अप्सराओं के कोई पति नहीं होते थे। पौराणिक मान्यतानुसार जब कोई योद्धा रणक्षेत्र में प्राणत्याग कर इंद्र लोक पहुँचता था, तब अप्सराएँ उनका स्वागत तथा मनोरंजन करती थीं।

रूप यौवन दृप्तानां दक्षिणानं च मानद । नूनमप्सरसार्मा चित्तानि प्रमथिष्यसि।।[३]
न हयेष उच्चावचताम्रचूड़ा विचित्रवेषाप्सरसो भजिष्यत् ।[४]

ऋषिमुनियों का स्वागत करने के लिए वे पृथ्वी पर भी उतरती थी। वे सांसारिक लोगों के लिए तात्कालिक चिन्तामणि थी। मानस में अप्सरा का अत्यन्त चित्रण किया गया है— मकरी नामक सरोवर के जीव ने अप्सरा बनकर हनुमान से कहा—

मुनि न होई यह निसिसर घीरा । मानहुँ सत्य बचन कपि मौरा ।।[५]
अस कहि गई अपछत जबहीं । निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं ।।[६]

उपर्युक्त मानस की चौपाइयों से साफ-साफ स्पष्ट होता है कि अप्सराएँ मानवी ही थीं और धरातल पर ही रहती थी, आकाश में नहीं। अप्सराओं को नाच-गान में तल्लीन रहने का कारण आकाश गामिनी कहा गया है।

काक भुशुंण्डी—

उत्तर दिसि सुंदर गिरिनीला । तहँ रह काक भुसुंडि सुसीला ।।[७]

मानस की उपर्युक्त चौपाई पर भौगोलिक दृष्टि निक्षेपण से स्पष्ट होता है कि गंगा-गोदावरी के तट पर सुंदरी जाति के वृक्ष पाये जाते हैं। सुन्दरी वृक्ष के नाम पर ही गंगा डेल्टा के ज्वारीय वन का नाम सुन्दरवन पड़ा। दक्षिण के नीलगिरि पर्वत पर टोडा जाति के आदिवासी बसते है। काक भुशुंडी भी आदिवासी ही थे और वे भी नील-गिरि पर्वत पर ही रहते थे। तुलसीदास ने उन्हें क्रमशः नीच जाति- अधम जाति तथा कुलाति कहा है—

मैं खल मल संकु मति नीच जाति का मोह ।
हरिजन द्विज देखे जरउँ करउँ विष्णु कर द्रोह ।।[२]

---

१. वा०रा० ७/२६/४० २. वही/७/२६/४० ३. वा० रा० ४/२०/१३
४. वही /४/२४/३४ ५. मानस ६/५७/२ ६. वही ६/५७/३
७. मानस/उत्तरकाण्ड/६१/२ ८. वही/वही/१०५ (क)

अधम जाति में विद्या पाएँ । भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ।
मानी कुटिल कुभाग्य कूजाती । गुर कर द्रोह करउ दिनु राती ।।

पुनः तुलसी ने काक भुशुंड़ी को शुद्र कहा है—

कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना । सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना ।।[१]

काक भुशुण्डी मनुष्य का रूप धारण कर राम-जन्म महोत्सव के अवसर पर अयोध्या आये थे।

काक भुसुंडि संग हम दोउ । मनुजरूप जानह नहिं कोउँ ।।[२]

मानस के आधार पर यह सिद्ध होता है कि काक भुशुंण्डी निम्न जाति (शूद्र वर्ण) के मानव थे, पक्षी कदापि नहीं। भारत की कुल जनसंख्या का लगभग ४ (चार) प्रतिशत आदिवासी मनुष्य हैं। इनमें से अधिकांश शहर से दूर पहाड़ों तथा वनों में रहते थे।

भारत के प्रायः सभी राज्यों में अल्पाधिक संख्या में आदिवासी निवास करते हैं। मध्य प्रदेश में आदिवासियों की संख्या सर्वाधिक है। गौंड़, भील तथा उराँव यहाँ की मुख्य जनजातियाँ है। बिहार के छोटानागपुर के पठार में संथाल, उराँव, हो, मुंडा खरिया आदि आज भी बसे हुए हैं। असम, अरुणाचल प्रदेश तथा मेघालय में अधिकांशतः आदिवासी ही हैं। इनमें गारों, खासी, लुशाई, आदि तथा नीशी मुख्य हैं। नीलगिरि पर्वत पर वास करने तथा वट, पीपर, पाकर और रसाल वृक्ष के नीचे क्रमशः हरि कथाप्रसंग ध्यान योग, उप-यज्ञ तथा मानस पूजादि करने के कारण ही काक भुशुष्डि जी दीर्घायु थे।

तेहि गिरि रुचिर बसइ सग सोई । तासु नास कल्पांत न होई ।।[३]

हनुमान—

"हनुमान" शब्द निश्चित रूप से एक द्रविड शब्द "आणमन्दि का रूपांतर है, जिसका अर्थ होता है। (आण-नर मन्दिर कपि) "नरकपि" "वृषाकपि तथा हनुमान दोनों किसी प्राचीन द्रविड़ देवता के नाम के रूपातंर हैं।[४] रामायण के अन्य वानरों की तरह हनुमान् भी वानर-गौत्रीय आदि वासी थे।"[५] बिहार के छोटानागपुर जिले में रहने वाली उराँव तथा मुण्डा जातियों में तिग्गा, हलमान, और बजरंग नाम गोत्र मिलते हैं, ये सभी हनुमान के ही वंशज हैं। जब मैं सिंहभूमि जिले में गया और वहाँ की "भुइया" जाति

---

[१] मानस/ १०८/(घ)/८ [२] वही/१/१९५/४ [३] मानस/उत्तराकांड/७/५६/१

[४] एफ० ई० पार्गीटर: ज० रो० प० सो० १९११, पृ० ८०३ और १९१३ पृ० ३९६

[५] फादर कामिल बुल्के: रामकथा, तृतीय संस्करण, पृ० १११

से सम्पर्क किया, तब भुइया जाति के आदिवासियों ने मुझे बतलाया कि उनके पूर्वज हनुमान थे और वेपवन वंशी होने का दावा आज भी करते हैं। डालटन के "एथनाँलाजी आँव बंगाल" के पृष्ठ १४० के अवलोकन से भी मेरे कथन की पुष्टि होती है। हनुमान ने विप्र-रूप में राम से भेंट की—

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयउ। माथ नाइ पूछत अस भयउ।।[१]
तथा—**अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ।।[२]**

से स्पष्ट होता है कि हनुमान छद्‌मवेश धारण करने में दक्ष आदिवासी मानव थे।

रावण—

आदि काव्य के कतिपय स्थलों (रामायण ६.६६.५) से पता चलता है कि रामकथा के राक्षस प्रारंभ में मनुष्य ही माने जाते थे। मानस का रावण मानव की तरह बुद्धिमान, वीर, बलवान, पंडित तथा महान शासक था। उसकी अपनी सभ्यता, संस्कृति, राजनीति, सामाजिक व्यवस्था तथा विशिष्ट शासन नीति थी। वस्तुत: लंका का राजा रावण आदिवासी अनार्य प्रजाति का था। आज भी असुर आदिम जाति की भाषा में "रावना" का प्रयोग होता है। रॉची जिले के रयडीह थानान्तर्गत कटक या गाँव में आज भी 'रावना' नामक एक परिवार विद्यमान है। "रावना" एक गौत्र है।

इस प्रकार "रावण" का नाम एक वास्तविक अनार्य नाम का ही संस्कृत रूपान्तर है। रायपुर जिले में जाकर मैंने वहाँ के आदिवासियों से सम्पर्क किया, तब पता चला कि गौंड रावण के ही वंशज हैं वे (गौंड) आज भी रावण को पूर्वज के रूप में पूजते हैं। छोटानागपुर जिलें के उरॉवों से बातचीत के क्रम में पता चला कि "उरॉव" जाति की उत्पत्ति रावण से ही हुई थी और इसलिए उन्हें "उरॉव" की संज्ञा दी गयी। रावण अनिष्ट, क्रूर, अशुभ, हिंसा, तथा पाप का प्रतीक बन गया था। अत: मानस में उनके प्रयुक्त सभी नाम वर्णनात्मक तथा प्रतीकात्मक है, जैसे रावण दस कंधर दशकंठ, दशग्रीव, दशाननादि ।

रावण के दशकंठ, दशग्रीव तथा दशाननादि नाम रूपक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जिसका अर्थ है, जिसका कंठ, ग्रीवा तथा आनन अन्य साधारण मनुष्यों के दश कंठ, दशग्रीवा तथा दश आनन के सदृश बलवान हो। अन्त में रावण के लिए उपर्युक्त नाम प्रचलित हो गये। अथर्व वेद में एक दशास्य (दशमुख) तथा दशशीर्ष ब्राह्मण का वर्णन आया है—

---

[१] मानस/किष्किन्धाकांड/सो०/चौ ६

[२] वही/वही/२/५

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः। स सोमं प्रथमः पपो स चकाररसं विषम्।।[१]

उपर्युक्त उद्धरण के आलोक में स्पष्ट होता है कि महाकवि तुलसीदास जी ने अथर्ववेद से प्रभावित होकर ही रावण के विकराल स्वरूप की मानस में कल्पना की है।

विशिष्ट-मानवेतर

वानर— आदि काव्य के अनेक स्थलों से स्पष्ट होता है कि प्रारंभ में ये सब मनुष्य ही माने जाते थे। सी० वैद्य के मतानुसार वानर जाति के लोग सचमुच वानर के समान दिखलाई पड़ते थे और इससे उनका यह नाम पड़ा।[२] जैन राम कथा के अनुसार इसमें वानर और राक्षस दोनों विद्याधर-वंश की भिन्न-भिन्न शाखाएँ माने जाते हैं।[३] उन्हें कामरूपत्व तथा गगन गामिनी आदि अनेक विद्याएँ प्राप्त थी। इससे उनका नाम विद्याधर पड़ा। वानर वंशी विद्याधरों की ध्वजाओं, महलों तथा छतों के शिखर पर वानरों के चिह्न विद्यमान थे। अतः वे वानर कहलाये।"[४]

जैन रामायणों के मतानुसार वानर, ऋक्षादि नाम उन जातियों की ध्वजा पर बन्दर का चिह्न था, वह वानर जाति कहलाती थी, जिसकी ध्वजा पर रीछ का चिह्न था, वह रीछ कहलाती थी। आज भी रुसियों की ध्वजा पर रीछ तथा अंग्रेज जाति की ध्वजा पर सिंह का चिह्न होने से उन देशों के वीरों को "रस्सियन बयर्स" तथा "ब्रिटिश लायन्स कहा जाता है। जैनों की राम-रावण कथा में वानर चिह्नांकित ध्वजा मुकुटधारी जाति वानरवंशीय कही गई है।[५]

आज-कल आदिवासियों की तरह उन जातियों के अनेक कुल अनेक पशुओं तथा वनस्पतियों की पूजा करते थे। जिस कुल के लोग जिस पशु या वनस्पति की पूजा करते थे, उसी के नाम से पुकारे जाते थे। इस पशु या वनस्पति को आज कल "टोटम" कहा जाता है। आधुनिक भारत के आदिवासियों में ऐसे "टोटम" या गौत्र विद्यमान हैं, जिनका उल्लेख मानस में हुआ है, जैसे वानर (जाम्बवान) और गीध (जटायु और संपाति) आर० वी रसेल के मतानुसार बंदर और रीछ तेरह सर्वाधिक प्रचलित टोटमें में सम्मिलित हैं। रेद्दी,[६] बरई, बसोर, मेना और खगार[७] जातियों में भी वानर द्योतक गौत्र मिलते है।

---

[१] अर्थर्ववेद ४/६/१ [२] सी० वी० वैद्य : रामायण पृ० १५३

[३] एच लुडर्स: जर्मन ओरियेण्टल सोसाइटी जर्नल, भाग ९३/१९३९) पृ० ८९।

[४] एच० याकोबी । इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन एंड एथिक्स: ब्राहमनिज्म।
ए० चक्रवर्ती : दि जैन गजेट भाग २२ (१९२६) पृ० ११७, पउमचरियं ६/८९

[५] शिवनन्दन सहाय: तुलसीदास, पृ० ४१६

[६] दि ट्राइ एण्ड कास्ट्स आँव दिसेंट्रल प्रार्विसेस भाग,-१, पृ० ९०

[७] सी० वॉन फूदर- हाइमेंडार्फ दि रेद्दीस आँव दि बाइसन हिल्स, पृ० ३२९

दिव्य पात्र— देवता दिव्य पात्र की कोटि में परिगण्य है। "सीता-स्वयंवर के अवसर पर देवता स्वयंवर में उपस्थित थे। राम-चरित मानस में तुलसीदास देवताओं के मनुष्य का रूप धारण कर उपस्थित होने की बात करते हैं—

देवदनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आए रनधीरा ।।[१]
देखहिं सुर नभ बढ़े बिमाना । बरषहिं सुमन करहिं कल गाना ।।[२]
निज लौकहि बिरंचि ये देवन्ह इहइ सिखाइ ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ।।[३]
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हरषे देव बिलंब न कीन्हा ।।
बनचर देह धरी छिति माहीं । अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ।।
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरि । रहे निज निज अनीक रचि रुरी ।।[४]

मनुष्य की बहुमुखी प्रगति का कल्पना चित्र ही देवता हैं। देवता गौराङ्ग होते हैं। उनकी काया सुन्दर और आकर्षक होती है। "देवता" का साधारण अर्थ है "देनेवाला।"विवेक सम्पन्न उदार परोपकारी तथा सेवापरायण व्यक्ति को देवता कहा जाता है। "जिनकी आत्मिक विभूतियाँ और भौतिक सम्पत्तियाँ उत्कृष्ट की समर्थक आदर्श-वादिता में सहयोगरत हों, उन्हें देव प्रकृति का कहा जा सकता है।"[५]

मनुष्य का समग्र विकास देवता के रूप में होता है। देवता मनुष्य के उत्कर्ष की चरम सीमा है। देवत्व ही वह वैभव है, जिसकी परिणति अनेकानेक ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में प्रकट परिलक्षित होती है। देवत्व को अमृत, पारस, कल्पवृक्ष, ब्रह्मास्त्र आदि नामों से पुकारा जाता है। सभी देवता पहले मानव थे।[६] बाद में वे लोग स्वयं ईश्वर बन गये।[७] "देव इसी पृथ्वी के वासी थे।"[८] जो पहले पैदा हुए, वे देव थे और बाद में होने वाले मनुष्य थे।[९] "देव और मनुष्य एक ही समय जन्मे।"[१०] देव पृथ्वी के ही वासी थे।" "मानव को ही प्राचीन काल में देव कहते थे।"[११] देव सोमपायी थे तथा मनुष्य सुरा।[१२] विश्वामित्र ने ऋग्वेद में सभी देवताओं को आकाश के नीचे धरती पर भारतवासी कहा है।[१३]

---

[१] मानस/बालकांड/२५०/८
[२] मानस/बालकांड/२४५/८
[३] वही/वही/१८
[४] वही/वही/१८७/२-५/।
[५] अखण्ड ज्योति : प्रगति और पूर्णता का लक्ष्य बिन्दु "दैवत्व" सितम्बर" ८१ पृ० ९
[६] ऋग्वेद ३/६०/३
[७] वही/ ४/३/२/
[८] अर्थर्ववेद ११/५/१९ तथा ४/११/६
[९] शतपथ ब्राह्मण ७/४/२/४०
[१०] शतपथ ब्राह्मण २/३/४/४
[११] शतपथ ब्राह्मण ४/३/२/४
[१२] वही/ ११/१/२/१२
[१३] तैत्तिरीयोपनिषद १/३/३/३३
[१४] ऋग्वेद ३/५४/९

इस प्रकार स्पष्ट है कि देवता भी मानव ही थे। मानवेरु कदापि नहीं ।

मानवेतर पात्रों का समाज—

(१) देव- समाज
(२) दनुज-समाज
(३) नाग-समाज
(४) खग-समाज
(५) प्रेत-समाज
(६) पितर-समाज
(७) गंधर्व-समाज
(८) किन्नर समाज
(९) रजनीचर-समाज
(१०) वनचर-समाज
(११) अक्ष-समाज
(१२) गीध-समाज
(१३) शबर-समाज
(१४) यक्ष-समाज
(१५) सिद्ध-समाज
(१६) असुर-समाज
(१७) राक्षस-समाज
(१८) निषाद समाज
(१९) अप्सरा-समाज
(२०) काक-समाजादि ।

वैदिक काल में समाज था, पर वर्ण- व्यवस्था नहीं थी। राजा पुरुरवा ने उर्वशी अप्सरा से विवाह किया। इन्द्र ने पुलोम दैत्य की पुत्री पौलोमी से परिणय किया। भृगु ने दैत्य राज हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या और दानव पुलोमन की पुत्री पौलोमी का परिण्य किया था। ऊपर कथित वैवाहिक सूत्रों से स्पष्ट होता है कि उस काल में वर्ण-व्यवस्था नहीं थी। ऋग्वेद में केवल एक ही सूक्त है, जिसमें लिखा है "विराट् पुरुष कितने रूपों में उत्पन्न हुए। उनका मुख, ब्रह्मण, भुजा क्षत्रिय जंघाएँ वैश्य तथा चरण शूद्र हुए।

रामायणकाल से ही वर्णाश्रमधर्मानुसार ऋषियों ने देवों को भी वर्णाश्रम धर्म में घसीट दिया, जिसके कारण निम्नलिखित देवता निम्नलिखित जाति में परिगणित हुए—

अग्नि: वृहस्पति-	ब्राह्मण
इन्द्र, वरुण, सोम,	क्षत्रिय ।
रुद्र, आदित्य, विश्वदेवा -	वैश्य ।
पूषण[२] ।	शूद्र।

किन्तु ऋग्वेदानुसार वरुण पुत्र अंगिरा हैं तथा अगिंरा पुत्र वृहस्पति। यही वरुण ब्राह्मण ग्रंथों में क्षत्रिय तथा उनका पौत्र वृहस्पति ब्राह्मण बन गये।[३] ऋग्वेदानुसार

---

१. ऋग्वेद १०/९०/११
२. मैत्रायण संहिता १/१०/१३
३. शतपथ ब्राह्मण १४/४/२/ २३/२५ और ऐतरेय ब्राह्मण ३४/५।

वृहस्पति भाषा वैज्ञानिक थे। इसलिए उन्हें ब्राह्मण तथा राजा वरुण को क्षत्रिय कहा गया। जब उर्वशी अप्सरा के पुत्र वसिष्ठ ब्राह्मण हो सकते है, तब दूसरा भी अपने कर्मानुसार ब्राह्मण बन सकता है। विश्वमित्र ने कर्मकौशल वश अपने-आपको ब्राह्मण घोषित कर दिया। अत: स्पष्ट है कि मानस के दिव्य-देवता पात्रों का अन्य मानवेतर पात्रों की तरह ही अलग-अलग समाज था।

राक्षसों का सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन—

दक्षिण की वैभवपूर्ण आदिम जातियाँ आर्यों का समर्थन तथा विरोध के कारण दिव्य या दुष्ट योनियाँ बन गईं।[१] ये भारत की मूल द्रविड जातियाँ हैं। इनकी पृथक् सभ्यता संस्कृति तथा राज्य सत्ता थी। इनमें सर्वाधिक मुख्य वानर तथा राक्षस हैं। राजनीति के अनुसार वाल्मीकीय रामायण में राक्षसों तथा आर्यों के पारस्परिक संघर्ष का सबसे पहले विशद् वर्णन मिलता है। इसमें राक्षसी सभ्यता संस्कृति पर सविस्तार आलोक निक्षेपित है। महाभारत पुराणों में भी राक्षसों की चर्चा हुई है, लेकिन उनका सांस्कृति महत्त्व गौण है। रामायण काल में ही राक्षसों के व्योम विकास तथा पाताल पतन का परिचय लभ्य है। वाल्मीकीय राक्षसों का वर्णन महत्त्वपूर्ण है। रामायण में राक्षसों की तीन शाखा- (१) विराध-शाखा (२) दानव (३) 'रक्ष' या राक्षस ।

(१) विराध शाखा— दंडकारण्य के उत्तरी भाग स्थिति। विराध-मुखिया था। आकृति भयानक थी। जब तथा शत हृदा का यह वंशज था।

(२) दानव— वन की संतति-दानव प्रतिनिधि कबंध राक्षस। उसके भुजपाशगतसभी प्राणी उसके आहार बन जाते थे। लक्ष्मण ने उसकी मृत्यु के बाद उसका शव गढ़े में डालकर जला दिया था। रावण ने दानव सरदारों का वध "हन्तारं दानवेन्द्राणाम्" किया था।

(३) ''रक्ष'' या राक्षस''— सर्वाधिक क्रूर तथा बलान्वित। लंकावासी पुलस्त्य तथा दिति वंशज रावण के वंशवद थे।

वा०रा० के उत्तरकांड (सर्ग४-११) में महर्षि अगस्त्य ने राक्षसों की उत्पत्ति तथा विस्तार का वर्णन किया है- प्रजापति ब्रह्मा ने जल सष्टि करके उसकी रक्षा के लिए प्राणियों को उत्पन्न किया। इनमें क्षुधा पीड़ित बोले उठे "वयं रक्षाम:" हम रक्षा करेंगे। ब्रह्मा ने इन्हें "राक्षस"कहा। दूसरे, जो भूखें नहीं थे, बोले-"वयं यक्षाम:" हम यज्ञ करेंगे। ब्रह्मा ने इन्हें 'यक्ष'की संज्ञा दी।

हेन्सटेरिया एक परजीवी जड़ है। राक्षस हेन्सटेरिया की तरह दूसरों का खून चूसते

---

[१] श्री चिन्तामन विनायक विद्या: "दि रिडिल ऑफ दि रामायण पृ०९४।

थे। अतः वे हिंसक मानव थे। "ईश्वरीय कार्य में यथेष्ट प्रयत्न करो। तुमको दूसरे धर्मों से विभक्त कर सम्मानित किया है और धार्मिक आदेश में संकोच नहीं दिया है। तुम अपने महात्मा इब्राहिम की कुर्वानी की सदैव स्मरण कर अपने को समर्पण करते रहो।"[१] किन्तु कुरान शरीफ में ही दूसरी जगह है—"लई नालल्लाह लुहु मुहाबला दिमाओहाबला कीयना लुहुत्त क्रबामिन्कुम। "अर्थात ईश्वर के पास कुर्बा नी का गोश्त तथा खून नहीं पहुँचता, वह तो हृदय के भावों का सच्चा त्याग देखता है। राक्षस रक्तपात में विश्वास करते थे। उन्हें ईश्वर की परवाह एकदम नहीं था।

राक्षस—विद्युत्केश राजा का विवाह संध्यापुत्री साल कटंकटा से हुआ। सुकेश पुत्र हुआ। कामोन्मत्त सालकटंवटा द्वारा त्यक्त सुकेश शिव-पार्वती द्वारा पालित हुआ तथा एक आकाशगामी विमान प्राप्त किया। सुकेश के पुत्र— (१) माल्यवान, (२) समाली, और (३) माली । ये तीनों दौर्दण्ड, दुर्द्धर्ष एवं क्रूर थे। सुर-असुर जयी अपने साथियों के साथ लंका के दुर्भेद्य दुर्ग में जा बसे। राक्षसों से त्रासित देवों की प्रार्थना पर विष्णु ने इन्हें लंका से मार भगाया। ये अनुचरों के साथ लंका छोड़ कर रसातल में सालकटंकटा-जाति के बीच बस गए। किंचित कालोपरान्त सुमाली रसातल छोड़ कर भारत के मैदानी भाग में आकर बस गया। उसकी पुत्री कैकसी ने सायंकाल विश्रवामुनि से पुत्रयाचना की जिसके कारण उससे काजल समकाला रावण, पर्वताकार कुंभकर्ण, विकराल शूर्पनखा तथा धर्मात्मा विभीषण पैदा हुए। कठोर तपस्योपरान्त रावण में ब्रह्म जी से "अजेय होने का बर" प्राप्त कर नाना सुमाली की मंत्रणा पाते ही लंकाधिष्ठाता कुबेर से लंका छीन लिया और लंकेश बन गया। रावण ने अपनी शक्ति के बल पर भारतीय प्रायद्वीप के समुद्री भागों पर अपना सिक्का जमा लिया।

लंका-विजय से पहले राक्षसों के राजनीतिक जीवन में शतधा उत्थान-पतन हुए। पुराण के अनुसार वे सागर तट वासी तथा जलीय प्रदेश संरक्षक थे। वे पेटू तथा अभक्ष्यभक्षी थे। उनका प्रधान निवासस्थल भारत का दक्षिणी समुद्र-तट एवं लंका-द्वीप था। इस जाति के लोग आज भी अंडमान, बोर्नियों सुंद तथा भारतीय महासागर के अन्य द्वीपों में भी पाये जाते हैं। रावण-मातृ पक्ष की ओर से सालकटंकटा के वंश में उत्पन्न हुआ था। वह निश्चित रूप से आदिवासी था।

रावण— श्री चिन्तामण विनायक वैद्य ने भी इसे आदिवासी कहा है। इस नाम की एक नरभक्षक जाति राम से पूर्व ही लंका में रहती है।"[३]

---

[१] कुरानशरीफ सूरहजपाल-१७ । [२] कुरानशरीफ आयत ।

[३] दि रिडिल ऑफ दि रामायण श्री चिन्तामण विनायक विद्या ।

लंकेश रावण दिग्विजयार्थ ससैन्य निकल पड़ा। समस्त क्षितिमण्डल पर लूटमार के बल पर वह एक अजेय धनुर्धर बन गया। उसने साम्राज्यवादी स्वर में उद्घोषणा की: "या तो मुझ से लड़ाई मोल लो या अपनी हार स्वीकार करो।

युद्ध में दीयतामिति निर्जिताः स्मेति वा ब्रूत । १७/१९/२

राक्षस और असुर—संसार में तीन प्रकार के मनुष्य हैं। देव, मनुष्य और असुर। तीनों प्रजापति की संतान हैं। परन्तु अपने संस्कारों से कर्मों के द्वारा स्वभाव बन जाने से देव श्रेष्ठ हैं, मनुष्य साधारण हैं, और असुर निकृष्ट हैं।[1] असुर शब्द का अर्थ है- प्राण का प्रोषण करने वाला। जो अपने सुख के लिए दूसरे प्राणियों की हिंसा करते हैं, वे सभी असुर हैं।[2]

असुर वे हैं जो अपने लाभ के सामने किसी दूसरे के लाभ की परवाह ही नहीं करते। स्वार्थ सिद्धि ही उनका परम ध्येय है। अपने लाभ के लिए वे दूसरों को मारने लूटने अथवा अन्य प्रकार से हानि पहुँचाने में जरा भी संकोच नहीं करते। वे प्रकृति से अपने लाभ के लिये हिंसक पशुओं के उदाहरण इकट्ठे कर रखते हैं, जो दूसरों की हानि करके अपना पेट भरते हैं।[3]

आढ़े खल बहु और जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ।।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ।।
जिन्हके यह आचरण भवानी । ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ।।[4]
देखत भीम रूप सब पापी । निसिचर निकर देव परितापी ।।
करहिं उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहिं करि माया ।।
जेहि बिधि होई धर्म निर्मूला । सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ।।
जेहिं जेहिं देस धनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ।।
सुभ आचरनु कतहुँ नहिं होई । देव विप्र गुरु मान न कोई ।।
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना । सपनेहु सुनिब न बेद पुराना ।।
जप जोग बिरागा तप मुख भागा श्रवन सुनइ दससीला ।
आपनु उठि धावइ रहे न पावइ धरि सब घालइ सीसा ।।

---

[1] कल्याण मार्ग श्री योगेन्द्र नाथ जी पृ० १३६-१३७ उपनिषेद अंक वर्ष २३ अंक ।
[2] वेदों और उपनिषेदों में मांस "भक्षण" और अश्लीलता नहीं है, पाण्डेय पं० श्री राम नारायण दत्त जी शास्त्री "राम" पृ० १२३ उपनिषद्ध अंक वर्ष २३ अंक।
[3] कल्याण मार्ग, श्री योगेन्द्र नाथ जी पृ० १३७।
[4] मानस, बालकांड सोरठा १८४ चो० १-३, पृ० १३६

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिज नहिं काना ।
तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुरा ।।
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसापर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवानि मिति ।।[१]

यक्षविजयोपरान्त कुबेर से पुष्पक विमान सहित लंका छीन कर उसने यमपुरी पर विजय वैजयन्ती फहरायी। वासुकि की राजधानी भोगवती पर विजय शंख निनाद किया। निवातकवच की मणिन्मयी में पहुँचा, लेकिन ब्रह्मा ने उससे संधि करा दी। पुन: कालिय दैत्य के अश्मनगर पर कब्जा किया। क्षीर सागर तटवर्ती वरुणालय के वरुण पुत्रों पर अपना आधिपत्य जमाकर उसी राह से लंका वापस आया। "पाताल लोक पर रावण का धुआं-धार हमला शीघ्रता आकस्मिकता और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से एक आधुनिक हवाई आक्रमण के समान जान पड़ता है।[२]

तदन्तर अपने बहनोई मधु के साथ उसने मेघनाद के छद्म युद्ध के बल पर देवसेना को हराकर इंद्र को बंदी बनाया। ब्रह्मा के बीच-बचाव करने पर देवराज मुक्त हो पाये। अनार्य वानराज वाली ने रावण को अपनी काँख में दबोच कर पशु सम चारों समुद्रों तक घुमाया था। "येनाहं पशुवद्गृहयभ्रमितश्चतुरोर्णवान् ७/३४/४०। रावण ने उससे संधि कर ली। वाली के अंकुश के कारण दक्षिण में रावण की साम्राज्यलिप्सा दब गयी थी।

रसातल विजय के पश्चात् रावण ने पंचवटी के समीपवर्ती जनस्थान में अपनी उत्तरी सैनिक चौकी स्थापित की । खर-दूषण को १४००० सेना का सेनापति बनाया। खर-दूषण वे गंगा-यमुना के मैदान पर धावा बोलकर उत्तर भारत के कतिपय भागों पर आधिपत्य जमा लिया। रावण का भतीजा लवणासुर यमुनातट स्थित मधुपुरी (मथुरा) नगरी का शासक था। रावण के संबंधी ताटका तथा उसके पुत्र मारीच ने सोन तथा गंगा नदियों के बीच के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। उस समय उसका नाम "मलद" तथा "करुण" था। वे सब विश्वामित्र के आश्रम पर आतंक मचाकर उनके यज्ञ का विध्वंश कर देते थे। सिद्ध है कि राक्षस महमूद गजनी तथा महमूद गोरी के समान ही हमलावर थे। माहिष्मती नरेश कार्तवीय अर्जुन से रावण हारकर संधि करके अपना पक्षधर बना लिया। सभी कार्य राजाओं, दृष्यन्त, सुरथ, गाधि, गय और पुरुरवा को रावण ने हरा दिया। अयोध्या पर उसने दो बार आक्रमण किया। पहली बार अनरण्य

१- मानस, बालकांड, सो० १८३ चौ० ३-८ पृ० १३६

२- रामायणकालीन समाज, प्रथम संस्करण पृ० २७ श्री शांति कुमार वानूराम व्यास।

के शासन-काल में उसने अनरण्य को मार डाला। दूसरी बार मांधाता ने राक्षसराज से संधि कर ली। दशरथ ने स्वयं स्वीकार किया था कि में रावण का युद्ध में सामना करने में असमर्थ हूँ।

न हि शक्तोस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः ।।१/२०/२०

आर्य शक्ति भास्कर रावण को गहनतमिस्रा पराक्रम के समक्ष मुंह की खा चुकी थी। रावण के पराक्रम का निम्न रूप में परिचय दिया जा रहा है।

चलत दसानन डोलति अवनी । गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ।।
रावन आवत सुनेऊ सकोहा । देवन्ह तके मैरु गिरि सोहा ।।
विगयालन्ह के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ।।
पुनि-पुनि सिंह नाद करि भारी । देइ देवतन्ह गारिपचारी ।।
रन मद मत्त फिरइ जागधावा । प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ।।
कवि[१], ससि,[२] पवन[३], बसन[४],धनधारी[५]। अगिनि[६] काल[७] जम[८] सब अधिकारी।।
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा । हठि सबही के पथहिं लागा ।।
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी । दसमुख बसवर्ती नर नारी ।।
आयुस करहिं सकल भयभीता । नवहिं आइनित चरन बिनीता ।।
भुजबल बिस्व बिस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीकमनि रावन राज करइ निज मंत्र ।।१८२ (क)
देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नाम कुमार ।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि ।।१८२ (ख)

रावण के पास चतुरंगिनी सेना थी। चलेउ निसाचर वटकु अपारा ।
चतुरंगिनी अनी बहुधारा ।।'[३]

रावण के पुत्र भी बड़े शक्तिशाली थे। हिकायत सेरीराम की प्राचीन हस्तलिपि १६३३ ई० की है। इसके अनुसार इन्द्रजित देवलोक का राजा, महीरावण पाताल का राजा, गंगा महासूरी नाग लोक का राजा हुआ।[४] बाल्मीकि के अनुसार रावण की उपस्थिति में समस्त प्रकृति भयभीत थी। राक्षसों तथा आर्यो की पारस्परिक शत्रुता का मुख्य कारण एक-दूसरे की सीमा का अतिक्रमण था। दक्षिण की ओर आर्यो के प्रसार में दुर्गम विंध्य पर्वत माला के वीहड़ वन बाधा थे। सर्वप्रथम अगस्त्य मुनि ही प्रथम आर्य

---

१. रा० च० मा० बालकांड, ५-१३ चौपाई दो० १८२ (क)
२. वही, बालकांड दो० १८२ (ख)
३- मानस, ६/७९ दोहा के ऊपर चौ० पृ० ५४६
४- श्री सत्यनारायण व्यास: रमायण की विभूतियाँ प्रथम संस्करण १९५१ परिशिष्ट पृ०१२१।

थे, जिन्होंने दक्षिण में आर्य बस्तियाँ स्थापित कीं। जन्म स्थान के निकट गोदावरी के ऊपरी तटों के समीप दंडकारण्य में उन्होंने आर्यो के एक आश्रम मंडल की स्थापना की। ये आश्रम एक प्रकार से दक्षिण में आर्य प्रस्तार के अग्रिम संनिवेश थे। गोदावरी नदी के निकट दंडकारण्य में आर्यो की बस्ती थी तथा राक्षसों की जनस्थानीय चौकी आस-पास थीं, जिसके कारण आपसी संघर्ष की वह प्रमुख रंगमंच बना हुआ था। "मंदाकिनी (चित्रकूट) से पंपासर तक राक्षसों ने भीषण उपद्रव मचा रखा था। "शूर्पनखा का सोलह वर्षीयराम के अनुज लक्ष्मण द्वारा विरूपीकरण तथा सीता हरण आर्यों तथा राक्षसों की चिरकालीन शत्रुता की चरम परिणति था। लंका यद्ध में रावण बध के बाद भारतीय राजनीति में राक्षसों की सतत् के लिए मौत (पांलिटिकल डेथर्ड्र हो गयी।

इतिहास-पुराणों में राक्षसों की आकृति,विकृत, भयानक एवं रोंगटे खड़े कर देने वाली बतलायी गयी है; परन्तु रामायण में उन्हें सामान्य मनुष्यों की भाँति ही चित्रित किया गया है। मेरी दृष्टि में राक्षसों को भयानक या विकराल बताने का एक ही कारण है, वह है आर्य जाति की जन्मजात एवं वंशगत शत्रुता। ग्रिफ्थि महोदय के शब्दों में रामायणकार ने राक्षसों का संबोधन एक विरोधी और धृणास्पद जाति के लिए किया है और यह नाम विशुद्ध ऐतिहासिक न होकर मात्र घृणा का सूचक है, संसार की सभी जातियों की पौराणिक कथाओं में दैत्य और पिशाच भयानक और अप्राकृतिक रूप वाले वर्णित किये गए हैं। सीता पर पहरा देने वाली कृत्य आकृति वाली स्त्रियाँ थी, जिनके बारें मे बाद मे एक अतिरंजित धारणा बंध गई।

वस्तुतः राक्षस जाति के लोग बड़े बलवान ऊँची कद वाले भीमकाय होते थे। उनका रूप रंग काला था। आज भी दक्षिण भारत के अधिकांश निवासी काले हैं। वाल्मीकि के अनुसार सुन्दर भी होते थे। "विरूपान बहुरूपाश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः (५/२/२०) रावण की पटरानी मन्दोदरी एक "चारुरूपिणी, गौरी, कनक वर्णासुन्दरी थी(५/१०/५२) रावण का व्यक्तित्व बड़ा लुभावना था। (६/११/३४-६)

राक्षसों का सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन—

वा०रा० का युद्धकाण्ड सिद्ध करता है कि राक्षस सामान्य मनुष्य थे। राम वानरों से कहते हैं कि तुम लोगों में से कोई भी मनुष्य का रूप धारण करके न लड़े जिससे हमारे पक्ष में (मैं लक्ष्मण तथा विभीषण और उनके चार अनुयायि इन्हें मिलाकर) कुल सात मनुष्य होंगे और तुम इनके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य को निः शंक होकर मृत्यु के घाट उत्तार सकते हो।

'न चैव मानुषं रूपं'' कार्यं हरिभिराहवे। वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान।

के शासन-काल में उसने अनरण्य को मार डाला। दूसरी बार मांधाता ने राक्षसराज से संधि कर ली। दशरथ ने स्वयं स्वीकार किया था कि में रावण का युद्ध में सामना करने में असमर्थ हूँ।

न हि शक्तोस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः ।।१/२०/२०

आर्य शक्ति भास्कर रावण को गहनतमिस्रा पराक्रम के समक्ष मुंह की खा चुकी थी। रावण के पराक्रम का निम्न रूप में परिचय दिया जा रहा है।

चलत दसानन डोलति अवनी । गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ।।
रावन आवत सुनेऊ सकोहा । देवन्ह तके मेरु गिरि सोहा ।।
विगयालन्ह के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ।।
पुनि-पुनि सिंह नाद करि भारी । देइ देवतन्ह गारिपचारी ।।
रन मद मत्त फिरइ जागधावा । प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ।।
कवि[१], ससि,[२] पवन[३], बसन[४],धनधारी[५]। अगिनि[६] काल[७] जम[८] सब अधिकारी।।
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा । हठि सबही के पथहिं लागा ।।
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी । दसमुख बसवर्ती नर नारी ।।
आयुस करहिं सकल भयभीता । नवहिं आइनित चरन बिनीता ।।
भुजबल बिस्व बिस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीकमनि रावन राज करइ निज मंत्र ।।१८२ (क)
देव जच्छ गंधर्व नर किन्नर नाम कुमार ।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि ।।१८२ (ख)

रावण के पास चतुरंगिनी सेना थी। चलेउ निसाचर वटकु अपारा ।
चतुरंगिनी अनी बहुधारा ।।'[३]

रावण के पुत्र भी बड़े शक्तिशाली थे। हिकायत सेरीराम की प्राचीन हस्तलिपि १६३३ ई० की है। इसके अनुसार इन्द्रजित देवलोक का राजा, महीरावण पाताल का राजा, गंगा महासूरी नाग लोक का राजा हुआ।[४] बाल्मीकि के अनुसार रावण की उपस्थिति में समस्त प्रकृति भयभीत थी। राक्षसों तथा आर्यों की पारस्परिक शत्रुता का मुख्य कारण एक-दूसरे की सीमा का अतिक्रमण था। दक्षिण की ओर आर्यों के प्रसार-में दुर्गम विंध्य पर्वत माला के वीहड़ वन बाधा थे। सर्वप्रथम अगस्त्य मुनि ही प्रथम आर्य

---

१. रा० च० मा० बालकांड, ५-१३ चौपाई दो० १८२ (क)
२. वही, बालकांड दो० १८२ (ख)
३- मानस, ६/७९ दोहा के ऊपर चौ० पृ० ५४६
४- श्री सत्यनारायण व्यास: रामायण की विभूतियाँ प्रथम संस्करण १९५१ परिशिष्ट पृ०१२१।

थे, जिन्होंने दक्षिण में आर्य बस्तियाँ स्थापित कीं। जन्म स्थान के निकट गोदावरी के ऊपरी तटों के समीप दंडकारण्य में उन्होंने आर्यों के एक आश्रम मंडल की स्थापना की। ये आश्रम एक प्रकार से दक्षिण में आर्य प्रस्तार के अग्रिम संनिवेश थे। गोदावरी नदी के निकट दंडकारण्य में आर्यों की बस्ती थी तथा राक्षसों की जनस्थानीय चौकी आस-पास थीं, जिसके कारण आपसी संघर्ष की वह प्रमुख रंगमंच बना हुआ था। "मंदाकिनी (चित्रकूट) से पंपासर तक राक्षसों ने भीषण उपद्रव मचा रखा था। "शूर्पनखा का सोलह वर्षीयराम के अनुज लक्ष्मण द्वारा विरूपीकरण तथा सीता हरण आर्यों तथा राक्षसों की चिरकालीन शत्रुता की चरम परिणति था। लंका यद्ध में रावण बध के बाद भारतीय राजनीति में राक्षसों की सतत् के लिए मौत (पांलिटिकल डेथर्ड्र हो गयी।

इतिहास-पुराणों में राक्षसों की आकृति,विकृत, भयानक एवं रोंगटे खड़े कर देने वाली बतलायी गयी है; परन्तु रामायण में उन्हें सामान्य मनुष्यों की भाँति ही चित्रित किया गया है। मेरी दृष्टि में राक्षसों को भयानक या विकराल बताने का एक ही कारण है, वह है आर्य जाति की जन्मजात एवं वंशगत शत्रुता। ग्रिफ्थि महोदय के शब्दों में रामायणकार ने राक्षसों का संबोधन एक विरोधी और धृणास्पद जाति के लिए किया है और यह नाम विशुद्ध ऐतिहासिक न होकर मात्र घृणा का सूचक है, संसार की सभी जातियों की पौराणिक कथाओं में दैत्य और पिशाच भयानक और अप्राकृतिक रूप वाले वर्णित किये गए हैं। सीता पर पहरा देने वाली कृत्य आकृति वाली स्त्रियाँ थी, जिनके बारें मे बाद मे एक अतिरंजित धारणा बंध गई।

वस्तुत: राक्षस जाति के लोग बड़े बलवान ऊँची कद वाले भीमकाय होते थे। उनका रूप रंग काला था। आज भी दक्षिण भारत के अधिकांश निवासी काले हैं। वाल्मीकि के अनुसार सुन्दर भी होते थे। "विरूपान बहुरूपाश्च सुरूपांश्च सुवर्चस: (५/२/२०) रावण की पटरानी मन्दोदरी एक "चारुरूपिणी, गौरी, कनक वर्णासुन्दरी थी(५/१०/५२) रावण का व्यक्तित्व बड़ा लुभावना था। (६/११/३४-६)

राक्षसों का सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन—

वा०रा० का युद्धकाण्ड सिद्ध करता है कि राक्षस सामान्य मनुष्य थे। राम वानरों से कहते हैं कि तुम लोगों में से कोई भी मनुष्य का रूप धारण करके न लड़े जिससे हमारे पक्ष में (मैं लक्ष्मण तथा विभीषण और उनके चार अनुयायि इन्हें मिलाकर) कुल सात मनुष्य होंगे और तुम इनके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य को नि: शंक होकर मृत्यु के घाट उत्तार सकते हो।

'न चैव मानुषं रूपं'' कार्यं हरिभिराहवे। वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान।

अहमेव सहभ्राता लक्ष्मणेन महोजसा। आत्मना पंचमश्चायं सखा मम विभीषणः।।[१]

इससे ध्वनित होता है कि राक्षस मनुष्य ही है। रावण की पत्नी मन्दोदरी को हनुमान ने सीता समझ लिया था। इससे स्पष्ट होता है कि राक्षस भी मनुष्य ही थे। कला तथा जनमानस में रावण को दसाननादि विशेषण से भूषित किया गया है। रावण का आलंकारिक वर्णन कवियों की देन है। रामायणकार ने रावण को "दशानन" तथा दशग्रीव शब्द स्थायी संबोधन के रूप में व्यवहृत किया है। इनका शाब्दिक अर्थ लगाना निराधार है। 'दशरथ' का अर्थ यह नहीं हो सकता है कि दशरथ के पास मात्र दस रथ ही थे या वे एक ही बार में दशरथ पर सवारी करते थे।

"दशग्रीव" दशाननं" शब्द रूपकात्मक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। रूपक या उपमा समय की गति के साथ भिन्नात्मक अर्थ देती हैं। जनमानस उसके शब्दार्थ को ही वास्तविक अर्थ समझने लगता है। लेकिन मेरे मतानुसार रावण एक अप्रतिहत महारथी तथा अद्वितीय योद्धा था। राक्षस नरभक्षी होने के कारण ही कुरप विकृत माने जाने लगे। उन्हें 'नरमासाशिनः' कहा गया है। तारका "पुरुषादी" (मानव मांसभक्षी) तथा मारीच राक्षस ऋषियों का मांस खाता था। रावण ने कुबेर दूत को तलवार से काटकर राक्षसों के भक्षणार्थ फेंक दिया था। रावण के अमात्यों ने कार्तवीर्य अर्जुन के अमात्यों को कच्चा ही चबा गया था। विराध राक्षस ऋषियों के मांस को बड़े चाव से खाता था। राक्षस सभी प्रकार के मांसों का आहार करते थे। सुन्दर कांड के ११ वें सर्ग में रावण के भोजन के वर्णन में अनेक प्रकार के मांस पदार्थ गिनाये गए हैं। वे "मांस-शाणिति भोजनाः" में कुशल थे। शूर्पनखा, कुंभकर्णादि रक्तपात करने में प्रवीण थे। ये मदिरा पान भी करते थे। शिष्टाचार तथा लोक-व्यवहार में राक्षस आर्यों की भांति कुशल थे। युद्ध क्षेत्र में जाते समय कुंभकर्ण ने अग्रज रावण का अभिवादन किया था। मारीच ने अपने आश्रम में आगत रावण का पाद्य, अर्ध्य, आसन तथा श्रेष्ठ भक्ष्यभोज्य पदार्थों से स्वागत किया। शरणागत विभीषण ने सम को समयानुकूल विनम्रता तथा सम्मान भावना से पूजा।

राक्षस शव को गाड़ते थे। कबंध राक्षस का ऊर्ध्व संस्कार राक्षसों तथा आर्यों की मिली-जुली पद्धति से किया गया। आर्य रीति के अनुसारं पहले जलाया गया और राक्षस प्रथानुसार उसके अवशेष भूमि में गाड़ दिये गये।

विवाह—अग्नि-साक्षी द्वारा इनका विवाहोत्सव संपन्न होता था। रावण ने अग्नि प्रज्वलित करके मन्दोदरी का वरण किया था।

राक्षस-विवाह—वधू का अपहरण करके विवाह करने की प्रथा राक्षस-विवाह

---

[१] वा०रा० ६/३७/३३-५

कहलायी। मधु दैत्य ने रावण की भतीजी कुंभीनसी का अपहरण करके विवाह किया। राक्षस विवाहित या अविवाहित किसी भी स्त्री के साथ समागम करने में ईषत् हिचकते नहीं थे। रावण ने पुंजिक स्थला अप्सरा का बलात्कार किया था। ब्रह्मा द्वारा अभिशाप दिया जाना राक्षसों के अमर्यादित यौन-सम्बन्धों में एक अनिवार्य सुधार का प्रतीक है।

आर्य-अनार्य में विवाह-सम्बन्ध भी होते थे। रावण सीता तथा वेदवती सी आर्य रमणी से विवाहेच्छया तथा शूर्पनखा राम लक्ष्मण से विजातियों से परिणय चाहती थी। अनेक राजर्षियों, विप्रों, गंधर्वों तथा दैत्यों की कन्याएँ काम पीड़िता होकर स्वेच्छया रावण की पत्नी बन गई थीं।

राजर्षि विप्रदैत्यानां गन्धर्वाणां च योषितः ।
रक्षसां चा भवन् कन्यास्तस्य कामवशंगताः ।।[१]

राक्षस धार्मिक कर्मों के संपादनार्थ स्वस्त्ययन नामक मांगलिक क्रिया करते थे—

कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे रणाभिमुखा ययुः।[२]

राक्षस सनियम तपस्या करते थे। आर्य-तपस्वी आध्यात्मिक ज्ञान तथा परलोक सुधार के लिए तपस्या करते थे, किन्तु साक्षस भौतिक स्मृद्धि के लिए तपस्या करते थे। तपश्चरण की अवधि में वे तितिक्षा तथा कठोर संयमव्रत पालते थे। विराध ने तपस्या करके किसी भी शास्त्र से अवध्य बन जाने का वर प्राप्त किया था। मारीच मृग चर्म और जटाओं का बाना बनाया था। हनुमान के अनुसार रावण तप बल के कारण ही सीता का स्पर्श करके भी भस्म नहीं हुआ—

सर्वथाति प्रकृष्टोऽसौ रावणों राक्षसेश्वरः ।
यास्यतां स्पृशतो गावं तपसा न विनाशितम् ।।[३]

तपस्या से प्राप्त सिद्धियों का उपयोग ये अधर्माचरण में करते थे। ये नर-भक्षी थे—खल मनु जाद द्विजामिष भोगी।[४]

अस्त्र-शस्त्र—

सरं सक्ति तोमर परसु सूल, कृपा एकहिं बारहीं ।
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं ।।[५]
लंका सिखर उपर आगारा । तहं दसकंधर देख अखारा ।।

---

[१] वा० रा० २/२६८
[२] वा० रा० ६/३५/१
[३] वा० रा० १५/५९/४
[४] लंकाकांड, दो० ४५, चौपाई, ३ की प्रथम अर्द्धाली।
[५] अरण्यकांड, छंद १ दो २० पृ० ४२१।

छत्र मेघडंबर सिरधारी । सोई जनु जलद घटा अतिकारी ।।
मन्दोदरी श्रवन ताटंका । सोइ प्रभु जनु दामिनी दर्मका ।।[१]
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा । सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा ।।
प्रभु मुसुकान समुझि अभियाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना ।।[२]
जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट ।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट ।।[३]
वीर घातिनी छाड़िसि साँगी । तेज पुंज लछिमन उर लागी ।
मुरछा भई सक्ति के लागे । तव चलि गयउ निकट भय त्यागे ।।
चतुरंगी सेना— चली तमीवर अनी अपारा । बहु गज रथ पदाति असवारा ।।[४]
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरुथनि को गने ।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बलत नहिं बने ।।[५]
राक्षस-प्रकृति प्रेमी— वन वाग उपवन वाटिका सर कूप बापीं सोहहीं ।
अन्तर्जातीय तथा बहुविवाह प्रथा—नरनाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।[६]
लंका नगर पर कड़ा पहरा—करि जतन भट कौटिन्ह बिकट बन नगर चहूँ दिसि रच्छहीं।
राक्षस नरभक्षी— कहुँ महिष मानुष धेनु अज खल निसाचर भच्छही।।[७]

विभीषण को "नतु राक्षसचेष्टित: कहकर आदि कवि ने इन्हें दुर्जनों के बीच अकेला सज्जन कहा है।[८]

ये राक्षस यज्ञ- यागादिक अनुष्ठान द्वारा जादू टोने वाली (अर्थर्ववेदीय) क्रियाएँ करके अजेय बनने की रहस्यात्मिका शक्ति प्राप्त करना चाहते थे। रावण एक अग्रगण्य याज्ञिक तथा अग्नि होत्री था, उसके अग्निहोत्र की अग्नि से उसकी चिता प्रज्वलित हुई थी। इन्द्रजित का यज्ञ गीता के अनुसार "तामस यज्ञ" था।

---

१. लंकाकांड, दो० १३(क) चौ० ४ से ८ तक पृ० ५०५
२. लंकाकांड दो० ५१, पृ० ५२९
३. ५१ पृ० ५२९
(१) ब्रह्मशास्त्र - सुन्दरकांड मेघनाद । दो० ५४, चौ० ७-८
(२) नागपाश - रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो ।
नागपाश देवन्ह भय पायो ११, दो० ७३ चौ० १३ लंकाकांड पृ० ५४२।
४. दो० ८६ चौ० ३ पृ० ५५१।
५. मानस/काण्ड ५ छंद दो ३ पृ० ४६४
६. मानस, काण्ड ५, दो० ३ पृ० ४६४।
७. छन्द ३ मानस पृ० ४६४.
८. ५/१७/२२/

राक्षसों की रहस्यमयी देवी निकुंभिला कुल देवी थीं। लंकायुद्ध में इंन्द्रजित ने निकुंभिला देवी के प्रीत्यर्थ एक यज्ञ किया था— **निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहुवेन्द्रजित ।**[१] राक्षस सुशिक्षित थे। वे वैदिक शिक्षा में निष्णात थे। लंका भवन वैदिक मंत्र दद्वघोष से अनुगूंजित थे। राक्षस स्वाध्याय करते थे।

शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान रक्षोगृहेषु वै। स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श ह।।[२]

रात्रि के चौथे पहर में अशोक वाटिका में हनुमान जी को षडंग वेदों के ज्ञाता और यज्ञों का अनुष्ठान कर्त्ता ब्रह्म राक्षसों की वेदध्वनि सुनाई पड़ती थी।

षडङ्ग गवैदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् । शुश्रावब्रह्म घोषान्स विरात्रे ब्रह्ममराक्षसाम्।।[३]
पुण्यान् पुण्याहथोषांश्च वेदविदिभरुदाहृतान्। शुश्राव सुमहातेजा भ्रातृर्विजयसंश्रितान्।।[४]
पूजितान्दधिपात्रेश्च सर्पिभिः सुमनोक्षतैः। मन्त्रवेदविदोविप्रान ददर्श स महाबलः।।[५]

तथा—

वेद विघाव्रत स्नातः रवकर्मनिरतरतदा। स्त्रियः कस्माद् वधंवीर मध्यसे राक्षसेश्वर।।[६]

अतिकाय-रावण का कनिष्ठ पुत्र ज्ञानी, वृद्धसेवी, वेदपारंगत, शस्त्रास्त्र कुशल हाथी, घोड़े की सवारी में दक्ष, धनुर्धारी श्रेष्ठ, राज्य कूटनीति मर्मज्ञ था। वह साम, दाम, दंड विभेद की चालों में भी चतुर था। रणाभिमुख कुंभकर्ण ने रावन-सभा में अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र से सम्बन्धित वक्तृता दी थी। इसी समय "महोदय" नामक एक राक्षस ने पुरुषार्थ चतुष्ट्य -धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष-के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला था।

राक्षस संस्कृत बोलने में कुशल थे। हनुमान जी ने अशोक वाटिका में सोचा था कि यदि मैं सीता से एक ब्राह्मण की भांति संस्कृत बोलूँगा तो वह मुझे रावण समझ कर डर जायेंगी। इल्वल तथा वातापि नामक असुर बंधु परिष्कृत संस्कृत बोलते थे। रावण की राज्य-सभा सर्वज्ञ एवं बुद्धि वरिष्ठ अमात्यों एवं कूशल नीति निर्माण कलायुक्त मंत्रियों से सुशाभित था।

मन्त्रिणश्च यथामुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः ।
अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धि दर्शनाः ।।[७]

सभा में शिष्टाचार तथा अनुशासन प्राप्त रहता था। रावण की राज्य-सभा में बुद्धि विनम्रता एवं शिष्ट विवेक का साम्राज्य था।

---

१. वा०रा० ६/८२/२५।
२. वा०रा० ११५/४/३
३. वा०रा० ११५/१८/२
४. वा०रा० ६/१०/८
५. वा०रा० ६/१०/९
६. वा०रा० ११६/११/२२
७. वा०रा० ६/९२/६०।

"चित्रगृह" "निशागृह", लतागृह "चित्रशाला क्रीड़ागृह "पुष्पगृह" आपानशााल (मधुशाला) बने हुए थे, (५/१२) हृदय, कंठ और मूर्धा से क्रमशः मंद, मध्यम और उच्च स्वर निनादित होता था। राक्षस सुसंस्कृत थे। रावण के शासन-काल में राक्षसों का साम्राज्य भौतिक समृद्धि के उतङ्ग शांग पर था। त्रिकूट पर्वत पर लंका दुर्ग था। वह रजतकनकवर्णी था। भयानक राक्षस पहरेदार थे। चित्र चाँदी से मढ़े हुए थे। स्वर्णद्वार थे। भव्य प्रांगण थे। अलौकिक अंतर्द्वार थे। उसमें लड़ाकू रथ तथा सवारियाँ थीं। द्वारपाल के रूप में योद्धाओं की हस्तीदंत प्रतिमाएँ बनी हुई थीं। घुड़सवार सैनिक पहारेदार थे। वह महल मंदराचलसम ऊर्ध्वमुखी, मोरयुक्त ध्वजा भरित, अक्षय रत्नकोष से भरा था। वह नृपोचित सामग्रियों से पूर्ण तथा रमणी रत्नों से पूर्ण था। पायल की झंकार करधनियों की खन-खन तथा मृदंगघोष मिलित वातावरण मोहक था। अनेक अटारियां थी, वेदूर्य मणियों से जटित कनक वातायन थे। विविध-विहंग कल कूंजन कर रहे थे। शंख, शस्त्रास्त्र तथा धनुषशालाएँ थीं। मोहक विशाल चोबारे थे। महल के बाहर सेनापतियों के अद्भुत महल निर्मित थे। आस-पास फुलवारी थीं, जिनमें पक्षी-पशु आदि रमण करते थे। उद्यान में कमनीय कुंज, कदली-भवन दिवस विहार स्थल यामिनी विहार स्थल, क्रीड़ागिरि तथा सरस सरोवर सुशोभित हो रहे थे। स्वर्णमयी हय, गय अस्तबल थे। रावण का शयन कक्ष अवर्णनीय था। मणि मिश्रित सीढ़िया, स्फटिक फर्श कनक स्तम्भ तथा हस्ती दंत से बनी नारी मूर्त्तियाँ थीं। फर्श बहुरंगी चित्रों से सुसज्जित चोकोर कालीन से भरे हुए थे। दीवारों के पर्दो के रंग आस-पास की वस्तुओं से मिलते-जुलते थे।

राक्षस-रावण का महल—

अगरुधूप से सुवासित कक्ष थे। दीवारें पुष्पमालाओं तथा बंदनवारों से अलंकृत थीं। रात दिन मालूम पड़ती थी। सम्पूर्ण वातावरण आह्लादक, उत्साहवर्द्धक तथा चित्ताकर्षक था। महल के परिपार्श्व में नृत्यशाला, संगीतशाला तथा आपानशाला बनी हुई थीं। नंदनवन सम अशोक वाटिका थी, जिसमें पशु पक्षी भवन तथा प्रासाद थे। पद्मापूर्ण बावलियाँ, लता-कुंजों, एवं कर्णिकार, किंशुकः, पुन्नाग चंपक तथा अशोकवृक्षों से सुशोभित वाटिका "नैव मनः कान्तम्" थी।

लंका में सामान्य राक्षसों के निवासस्थल समृद्ध, बेशकीमत, स्वर्णिम एवं अर्ध चन्द्राकार अलंकृत थे। तोरण, अटारी, शिखर से युक्त महल थे। अगुरु, चंदन चर्चित महल मणि मौक्तिक, हीरे, मूँगे से परिपूर्ण थे। क्षौम कोशेय वस्त्र, उर्मी वस्त्र, कनक पात्रादि से भरा हुआ था। मैक्सिकों, पेरु (दक्षिण अमेरिका) के विशाल सूर्य मन्दिर की दीवारें स्वर्ण जटित थीं। तिब्बत की राजधानी ल्हाला के बौद्ध मन्दिर की छत स्वर्णिम थी। प्राचीन समय में दक्षिण भारत तथा लंका में स्वणिखान तथा नदियों की रेत में से

पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। आज भी मैसूर राज्य की खानों में सोना बहुतायत में मिलता है। मारीच तथा विभीषणादि भी राजनीति निपुण थे। वे अंतरराष्ट्रीय नीतियों से सुपरिचित थे। विभीषण ने कहा- दूत अवध्य होता है—**दूता न वध्याः समयेषु राजन् सर्वेषु सर्वत्र प्रवदन्ति सन्तः।**[१]

कुंभकर्ण ने कटु आलोचक के रूप में रावण को डाटा था। राजनीति की रक्षा के लिए ही अन्ततोगत्वा कुंभकर्ण ने रावण का साथ दिया। विभीषण जान गये थे कि लंका राक्षसों से छीना जाएगा, इसीलिए राम से मैत्री कर उसने राक्षसी लंका का अधिपति बनना स्वीकार किया। राक्षस छली, प्रपंची तथा धोखेवाज "कूटयोधिनः" थे। मारीच "महामाया विशारद" था। रावण भी मायास्त्रष्टारमाहवे थे।[२]

राक्षसी सेना नकाबपोश संग्राम करती थी। ये जंगली जानवर (बाघ, घोड़ा, ऊँट, हरिणादि) के नकाब लगाम शत्रु बदल को वास देते थे। राक्षस एक सुनिश्चित सैन्य-व्यवस्थानुसार युद्धसंचालित करते थे। रावण की अपनी चतुरंगिणी सेना थी। राम से युद्ध के समय रावण ने आपसी मन्त्रणा कर, बिना कारण बताये, धौंसा बजाकर सब सैनिकों को इकट्ठा करने का आदेश दिया। **"शीघ्र भेरी निनादेन ......समानयध्व सेन्यानि वक्तव्यं न च कारणम्।**[३] इनके पास भूगर्भ मार्ग तथा सैनिक को छिपाने के लिए तहखाने थे।

इनका जासूस-विभाग (सी०आई० डी०) तथा (सी० आई० बी०) बेजोड़ था। रावण ने शूर्पनखा को जासूस बना कर पंचवटी में राम की गति विधि का पता लगाने के लिए भेजा था। सीताहरण के पश्चात् रावण ने आठ जासूसों को राम-लक्ष्मण के क्रियाशीलनों का पता लगाने के लिए भेजा था। राम-सुग्रीव मैत्री में खटाई का काम करने के लिए रावण ने शुक को नियुक्त किया था। वानर-सेना की शक्ति का पता लगाने के लिए उसने शुक, सारण तथा शार्दूल के नेतृत्व में कई जाजूस नियुक्त किया था।

श्रेष्ठ राक्षस वीर रथ में बैठकर रणभूमि में जाते थे। रावण, मेघनाद, अतिकाय तथा महारक्ष आदि रक्षवीर निपुण धनुर्धारी थे। आकाशयुद्ध में भी ये कुशल थे। ये बाहु-युद्ध गदा-युद्ध तथा मुष्टि युद्ध में प्रवीण थे। वे सैन्य साधन, युद्ध संचालन तथा धनुर्विधा में कमजोर थे। वे व्यक्तिगत रूपेण बलवान होकर भी अव्यवस्थित भीड़ के रूप में शत्रुओं से लड़ने के कारण हार गये। राम ने धनुर्विद्या तथा युद्ध कौशल में प्रवीण होने के कारण रावण को हरा दिया।

एक तरफ वे धर्म-कर्म, शिक्षास्वाध्याय में लीन थे, तो दूसरी और अनीति अधर्म

---

[१] ५/५३/१३   [२] ६/१११/५३   [३] ६/३२/४३

हिंसा, अत्याचार विलास तथा व्यभिचार में आकंठ निमग्न होकर सर्वनाश की प्राप्त हुए। वह यज्ञविध्वंसक था। रावण "नेकयज्ञविलोप्तारम्", "धर्मव्यवस्था भेत्तारम् तथा उच्छेत्तारं धर्माणाम्" था। रावण "ब्रह्मघ्न" था। उत्तरकांड के अनुसार रावण ने राजा मरुस्थल के माहेश्वर यज्ञ में आये हुए ऋषियों को खाकर तथा उनका शोणित पानकर अपने को परितृप्त किया था।[१] परायी स्त्रियों पर बलात्कार के कारण राक्षस असभ्य माने गये। रावण ने कहा—

स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदेव न संशयः। गमनं वा परस्त्रीणां हरणं संप्रमथ्यक।।[२]

रावण एक अजितेन्द्रिय परस्त्रीगामी तथा स्त्रीबटमार था। वह मानवों से भी संबंध रखता था। अशोक वाटिका में हनुमान ने मानवों को देखा था। ब्राह्मण जो राक्षसों के पुरोहित थे या उसकी नगरी में शांत चित्त रहते थे, उन्हें राक्षस आदर करता था। राक्षस सेनापति प्रहस्त रणाभिमुख होने लगा, तब राक्षसों ने उसकी मंगल कामना के लिए ब्राह्मणों को प्रणाम करने लगे थे— **हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणाश्चं नमस्यताम्।**[३]

वह मानव को मरणधर्मा तथा क्षीणप्राणी मानता था, वह केवल भरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस, देवतादि से भय खाता था। रावण ने राम का उपहास किया।

त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुये। मूर्खस्य पाप शीलस्य मानुषस्य विशेषतः।।[४]
कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली। मयाधिका वा तुल्या वा तत्तु मोहान्न बुध्यते।।[५]

रावण ने राम का उपहास किया—

राज्यभ्रष्टेन दानेन तापसेन पदातिना । किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्प तेजसा।।[६]

सीता ने राक्षसियों से उब कर मनुष्यता तथा पराधीनता को धिक्कारा था—

धिगस्तु खलु मानुष्यं धिगस्तु परवश्यताम् ।[७]

रामायणकालीन आर्यों के अनुसार स्वधर्म च्युत जातिवहिष्कृत मानव साक्षसों की श्रेणी में हो जाते थे। ये अनार्य अधर्माचरण के कारण राक्षस बनने का शाप प्राप्त किए। ताटंका एक यक्षिणी थी, अगस्त्य ऋषि पर आक्रमण की, तब उन्होंने उसे नरभक्षी राक्षसी बन जाने का शाप दिया। मारीच को भी "राक्षसत्त्वं भस्वेति मारीचं व्याजहार सः"[८] राक्षस बना दिया गया। उत्तरकांड में राजा कल्माषपाद ने वसिष्ठ को भ्रमवश नर-मांस परोस दिया, तब मुनि ने उसे नर भक्षी राक्षस बन जाने का शाप दिया।[९] इस प्रकार एक आर्य भी कुत्सित एवं जघन्य अपराधवश दंडित होकर राक्षस योनि में गिर गये।

---

१. ७/१८/१९)।
२. ५/२०/५
३. ६/५७/२१
४. ३/४०/४/
५. १६/१११/२१।
६. १३/३५/२१
७. ५/२५/२०)
८. (१/२५/१२)
९. (७/६५२८)

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि राक्षस-जाति आर्यों की एक शाखा थी। वह दक्षिणात्य उर्वर भूमि में बस गयी। उसने एक विशिष्ट सभ्यता का निर्माण किया जो अत्यन्त शक्तिशाली तथा वैभवपूर्ण बन गई। मेरी दृष्टि में, रावण प्रजापति ब्रह्मा के वंशज विश्रवा मुनि का पुत्र था। यही राक्षस जाति के मूल आर्यत्त्व का प्रतीक है। लेकिन आर्यों की दक्षिणी शाखा अपनी मूल संस्कृति के शुभदा भावनाओं के कारण बर्बर तथा विलासिता के पंक में फँसकर अनार्यों का सा आचरण करने लग गई।[1]

टी० के० वेंकटरमन ने "दि राक्षसाज (के०वी०) रंग स्वामी मेमोरियल बुक पृ० १८७-८३ में कहा है कि राक्षस लोग दक्षिण भारत तथा लंका के मूल निवासी थे, जो अपनी बर्बरता से उठकर रामायण काल में एक अर्द्ध सभ्य दशा में आ गए थे। नस्ल की दृष्टि से वे दस्युओं के से थे, जिनके साथ ऋग्वेदीय आर्यों का संघर्ष रहता था।[2] दाक्षिणात्य मतानुसार, राक्षस आदिम तीरंदाजों तथा मछुओं के वंशज थे, जो संख्या की दृष्टि से प्रमुख होने कारण अपना पृथक् राज्य सत्ता कायम किये।[3] शनैः शनैः आर्यावर्त्त से संपर्क बढ़ाते-बढ़ाते वे ब्राह्मणत्त्व को प्राप्त हुए। ब्रह्मराक्षस (वे राक्षस जो ब्राह्मण-धर्मी थे) उनके उदाहरण हैं। ये संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर वैदिक कर्मकाण्ड का सम्पादन करते थे।

रामायण काल में दक्षिणी भारत के दक्षिणी छोर पर लंका में एक काली खूंखार जाति वास करती थी, जो आर्य विरोधी तथा उनके धार्मिक अनुष्ठानों को भ्रष्ट कर देती थी। इस जाति के अवशेष आज तक जावा में पाये जाते हैं।[4] भारतीय महासागर के द्वीपों तक ये ध्वंसात्मक प्रवृत्ति फैलाये हुए थे। आर्यो ने राक्षसों को दैत्याकार कामरूप तथा रक्त पिपासु कहकर खूब लथेड़ा है। सेबाइट लोगों ने भी अपने विरोधी जातियों का अपावन भयंकर तथा दैत्याकार कह राक्षस काले थे। हबशियों के समान उनके उननुमा घुंघराले केशपाश थे।[5] वे रजत-कनक अलंकारों से विभूषित थे। आज भी उनकी जाति सूडान मे वर्त्तमान है। डा० जान फ्रेजर के अनुसार, सिलीन के मूल निवासी आर्यो से

---

[1] श्री के० एस० रामस्वामी शास्त्री, "दि आर्य कॉलोनिज ऑफ किष्किन्धा एण्ड लंका (इण्डियन कल्चर वोल० ५, पृ० १९५

[2] श्री टी० के० वेंकटरमण- "दि राक्षसाज (के०वी०रंग स्वामी मेमोरियल स्मृति ग्रंथ, पृ० १८७/९३।

[3] श्री० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार - साउथ इण्डिया इन दि रामायण ।

[4] श्री नवीन चन्द्र दास- ए नोट ऑन दि एण्टीक्यूटी ऑफ दि रामायण, पृ० ७

[5] पॉलिसेशन जर्नल, वॉल, ५ उपयुक्त में उद्धृत ।

पहले पनपने वाली एक कृष्ण वर्ण लोग थे तथा दक्षिण भारत की द्रविड़ जातियाँ उसी से निकली है, भारत में आर्यों का प्रभुत्त्व स्थापित होने पर यह जाति दक्षिण पूर्वी एशिया के प्रायद्वीप में तथा इंडोनेशिया ओर ओशिएनिया के द्वीपों में खदेड़ दी गई और मलयेशिया के निवासी उसके वर्तमान प्रतिनिधि हैं।[1]

प्रकृति प्रेमी काक—

काक भुशुण्डी प्रकृति के परम पुजारी थे। प्रकृति प्रेमवश ही वे सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में अवस्थित सुन्दर नील पर्वत पर वास करते थे, जिसके चार मणिमय शिखर हैं।[2] उन शिखरों में एक-एक पर बरगद, पीपल,पाकर तथा आम का विशाल विटप है। पर्वत के ऊपर एक सुन्दर तालाब है, जिसकी सीढ़ियां मणिमयी हैं।[3] उसका जल स्निग्ध, अमल, मधुर है, उसमें नाना रंगी कंज विकसित होते रहते हैं। मराल मेदुर ध्वनि उच्चरित करते हैं और चंचरी गुंजन करते हैं।

(१) गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी । नील सेल एक सुंदर भूरी ।।
तासु कनकमय सिखर सुहाए । चारि मोरे मन भाए ।।
(२) तिन्ह पर एक-एक विटप बिसाला । बट पीपर पाकरी रसाला ।।
सैलोपरि सर सुंदर सोहा । मनि सोपान देखि मन मोहा ।।
(३) सीतल अमल मधुर जल जलज विपुल बहुरंग ।
कूजत कलरव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग ।।[4]

तुलसी विटप— सीतानुसन्धान क्रम में हनुमान जी लंका गये। वहाँ विभीषण के गृह घर पर उन्होंने नव तुलसी वृन्द को देखा।

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ ।
नवतुलसीका वृन्द तह देखि हरषि कपिराइ ।।[5]

तुलसी विटप का धार्मिक महत्त्व तो है ही साथ ही साथ उसका आर्युर्वेदीय महत्त्व भी बहुत है। वह कफ, पित्त तथा वात् शामक हे उसमें प्रतिजीवाणु शक्ति (एण्टी वॉयोटिक) पायी जाती है।

मानस बाग-सौन्दर्य—

बाग प्रकृति के शृंगार होते है। उनके बिना किसी भी प्राणी का पृथ्वी पर रहना असंभव है। मनुष्य तथा जीव-जन्तुओं का भोजन भी बाग की वनस्पति ही हैं। बाग की

१- रामायणकालीन समाज, प्रथम सं० पृ० ५२
२- मानस-उत्तरकांड दोहा-५५ चो० ७-८
३- वही ७/५५/९-१० ४- मानस/७/५६/ ५- वही ५/५

आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा पद्धतियाँ में जड़ी बूटियाँ दवाएँ बनाने के काम में आती है। मानव की बढ़ती हुई आबादी के साथ-साथ मानवीय आवश्यकताएँ भी क्रमश: बढ़ती जाती है। इन आवश्यकताओं की पुर्ति के लिए पौधों का अधिकाधिक उपयोग करना पड़ता है।

पौधों की जड़े मिट्टी को मजबूती से पकड़े रहती है, जिससे मिट्टी का कटाव रुकता है। प्राणियों के द्वारा श्वसन-क्रिया में सांस छोड़ने से हवा दूषित हो जाती है। पौधे वायु को शुद्ध कर उसे पुन: जीव जन्तुओं के सांस लेने योग्य बनाते है। पौधों में वृद्धि, गति, प्रजनन, प्रकाश, संश्लेषण तथा श्वसनादि विभिन्न क्रियाएँ आनन्द के विषय हैं। वातावरण की नाना परिस्थियों के बीच पौधों की अनुकूलता, उनका जीवन चक्र तथा उनका परस्पर सम्बन्ध दिव्यानन्द की उपलब्धि कराता है।

भूपबाग— मानस के प्राय: सभी काण्डों में बाग-वन का महाकवि तुलसी ने उल्लेख किया है। जनकपुर में राजा जनक ने जो बाग लगाया था, "भूप बाग कहा गया है। उस बाग की शोभा दिव्य है।

भूप बागु बर देखउ जाई । जहं बसंत रितु रही लोभाई ।।[1]

उनके बाग का वर्णन निम्नस्थ है—

लागे बिटप मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि बिताना ।।
नव पल्लव फल सुमन सुहाए । निज संपति सुर रुख लजाए ।।
वातक कोकिल कीर चकोरा । कूँजत बिहग नटत कल मोरा ।।[2]

मध्य बाग में मणिसंचित सोपानों से शोभित सट था, जिसके विमल सलिल में बहुरंगे सरसिज खिलखिला रहे थे एवं उसमें जल, खग, कुंजन कर रहे थे तथा भृंग गुंजायमान थे।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा । मनि सोपान विचित्र बनावा ।।
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा । जल खग कूजत गुंजत भृंगा ।।[3]

परमरम्य बाग-तड़ाग को बिलोकते ही बंधु समेत प्रभु (राम) हर्षित हो गये—

बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत ।
परम रम्य आरामु जो रामहि सुख देत ।।[4]

उस बाग में माली गण थे, जो बाग का सृजन तथा सिंचन करते थे—

चहुँ दिसि चितई पूछे मालीगन । लगे लेन दल फूल मुदित मन ।।[5]

१- मानस-१/२२६/३   २- वही /१/२२६७-६   ३- मानस/१/२२६/७-८
४- वही १/२२७   ५- वही १/२२७/१

सरसमीप सुन्दर गिरिजा गृह था—

सरसमीप गिरिजा गृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मन मोहा ।।[१]

फुलवारी— भूपबाग में एक अद्भुत फुलवारी थी।

एक सखी सिय संग बिहाई । गई रही देखन फुलवाई ।।[२]

उसमें लताएँ थीं, जिसमें प्रेमी प्रेमिका लुक-छिपकर प्यार करते थे।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।।[३]

लताभवन—भूप बाग में लता भवन था, जिसमें प्रेमी निवास करते थे और समयानुकल उसमें से प्रकट हो जाते थे- राम लता भवन से निकले थे,

लता भवन तें प्रगट मय तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकले जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ।।[४]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनकपुर के राजा जनक का बाग भूप बाग अपने युग का एक अनुपम बाग था।

मणडप एक—

दुलहा-दुलहिन अनेक—राजा जनक ने चारों दुलहा के लिए एक रत्न-मण्डप बनवाया—

एक मण्डप— हरित मनिन्ह के पत्रफल पदुमराग के फूल ।
रचना देखि बिचित्र अति मन बिरंचि कर भूल ।।[५]

तथा—**बेनु हरित-मनि मय सब कीन्हें । सरल सपटब परहिं नहिं चीन्हें ।।**
कनक कलित अहि बेलि बनाई । ज्यो नहिं परइ सपरन सुहाई ।।
तेहि के रचि पचि अंध बनाए । बिच बिचव लुकता दाम सुहाए ।।
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा । चीट कोंटि पचि रचे सरोजा ।।[६]

एवं— **सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलम कोटि ।**
हेम बोरि मरकत धवर लसत पाटमय डोरि ।।[७]
दीप मनोहर मनिमय नाना । जाहिं न बरनि बिचित बिताना ।।[८]

जय धुनि बंदी वेद धुनि मंगलमय निसान ।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध, सुरतरु सुमन सुजान ।।[९]

१- वही १/२२७/४
२- वही १/२२७/७
३- मानस/ १/२२७/३
४- वही /१/२३२
५- वही १/२८७
६- मानस/१/२८७/४
७- वही/ १/२८८
८- वही १/२८८/३
९-मानस/१/३२४

गुरु वसिष्ठ के अनुसार सभी वेद तत्त्व हैं—

धरे नाम गुर हृदय बिचारी । बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ।।[१]

जीव की चार अवस्थाएँ हैं। चारों दुलहा भी चार अवस्थाओं के प्रतीक हैं।

राम—रामचन्द्र जी तुरीयावस्था हैं तथा अर्द्धमात्रात्मक हैं।

लक्ष्मण—वे 'लक्ष्ण धाम' तथा जगत् का आधार विभु हैं। ये "विश्व" "अ" कारात्मक हैं। इन्हें "जाग्रत" कहा गया है।

भरत—ये प्राज्ञ हैं, "म" कारात्मक हैं। ये सुषुप्ति अवस्था कहलाए।

शत्रुघ्न—शत्रुघ्न जी तेजस हैं। इसीलिए इन्हें "उ" कारात्मक कहा जा सकता है। ये स्वप्नावस्था के प्रतीक हैं।

अकाराक्षर सम्भूतः सौमित्रिविश्वभावनः ।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तेजसात्मकः।।
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षर सम्भवः ।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्ममानन्देकविग्रहः ।।[२]

चारों दुलहिन भी जीव की चार अवस्थाओं की ही प्रतीक हैं—

(१) सीता-तुरीयावस्था। (२) उर्मिला-जाग्रतावस्था,
(३) माण्डवी-सुषप्ति अवस्था। (४) श्रुतिकीर्ति-स्वप्नावस्था।

एक मण्डप में ही चारों दुलहा तथा चारों दुलहिन अपने-अपने पति के साथ शोभा पा रही हैं।

सुन्दरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं ।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं ।।[३]

"जाग्रत अवस्था के विभु का नाम "विश्व' है, स्वप्नावस्था के विभु का नाम "तेजस" सुषप्ति अवस्था के विभु का नाम "प्राज्ञ' और तुरीयावस्था "ब्रह्म" है। यही चतुष्पाद ब्रह्म हैं, यही वेद तत्त्व हैं, इन्हीं का नाम एकाक्षर महामन्त्र हैं।"[४]

बादान्य पद गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—

मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरिहर सुरसर्व ।
महामत्त गजाराज कहँ, बस कर अंकुस सर्ब ।।[५]

---

[१]-वही. १/१९७/१ [२]- रामतापिनोपनिषद्। [३]-मानस/१/३२/१० छंद

[४]- कल्याण: श्री विदेहराज का मण्डपः पंतश्री विजयानन्द जी त्रिपाठी, पृ० १२९० वर्ष ११ संख्या ९ अप्रैल १९३७ [५]- मानस

इस प्रकार एकाक्षर मंत्र की चार मात्राएँ हैं— (१) अ, (२) उ, (३) म तथा (४) अर्धमात्रा ।

इनमें अकार विश्व है, उतेजस् है, मकार प्राज्ञ है तथा अर्धमात्रा तुरीय ब्रह्म है। चतुष्पाद ब्रह्म प्रकाश के कारण ही बेद में इसे—"प्राण" कहा गया है। इस महामंत्र के वश में विधि हरिहरादि उसी प्रकार वशीभूत हैं, जिस प्रकार महामत्त गजराज अंकुशवर्ती होता है। हवस्व, तेजस, प्राज्ञ तथा तुरीयवस्था में तात्त्विक भेद नहीं है। अवस्थाभेद से ही इनमें भेदोपचार होता है तथा अवस्थाओं के भेद से ही इनका मिलन दुर्घट है। ब्रह्म का मूल निवास मानव-हृदय-सिंधु ही है—

व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ।।
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ।।[1]

हृदय में राजा ब्रह्म छिपकर बैठे हुए हैं, वहीं चोर भी बास करते हैं—

मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा।।
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा।।
तम लोभ मोह अहंकारा। मद कोह बोध रिपु मारा।।
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जानि अनाथा।।[2]

राजा-ब्रह्म को प्रेम से प्रंकट किया जाता है—

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।।[3]

प्रेम-हेतु नामस्मरण आवश्यक है—

सुभिरिअ नाम रूप बिनु देखें । आवत हृदयँ समेहँ बिसेषे ।।[4]

सयत्न नाम स्मरण के बाद निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म के रूप में प्रकट हो जाते हैं—

नाम निरथन नाम जतन ते । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते ।।[5]

और मोल से रत्न के प्रकट होते ही दरिद्रता भाग जाती है। हृदय रत्न-और मोल से रत्न के प्रंकट होते ही भक्ति चिन्तामणि के परम प्रकाश से हृदय आकाश आनन्दाकुल हो उठता है। तब अपने हृदयस्थ ब्रह्म को पाकर जीव परमानन्द को प्राप्त होता है।

भक्त के हृदय रूपी रत्न मंडप में चतुष्पाद ब्रह्म अपनी चारों अवस्था के साथ विराजमान होते हैं। उसी पल अनाहत नाद की तुमुल ध्वनि होती है, जिससे महामंगल साकार होता है। जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म तथा उनकी शक्ति चारों दुलहा और चारों उनकी दुलहिन के रूप में जनक-मण्डप में एक साथ विराजमान हुए, ठीक उसी

---

[1] मानस/१/ .
[2] विनय-पत्रिका
[3] मानस/१/१८४/५/
[4] वही/१/२०/६/

प्रकार भक्त हृदय मण्डप में भी सगुण रूप से शक्ति सहित भगवान सुशोभित होते रहते है।

ब्रह्म अनंतानंद, अव्यपदेश्य, असङ्ग, असंहत, अचिन्त्य, अनन्तकोटी ब्रह्माण्ड-नायक सर्व सामर्थ्य, सर्वप्रद, परम-प्रकाश, सर्वाधिष्ठान, सर्वस्वतन्त्र, सर्वैश्वरपरिपूर्ण, देवाधिदेव, दिव्यातिदिव्य, परमानन्दरससारसिन्धुसर्वस्व, अनन्तकल्याणगुणगणनिलय, सुन्दरातिसुन्दर, अखिल सौन्दर्य माधुर्यरसामृतसारभूत, रसराजमणि, आनंदकंद अद्वितीय अमरतत्त्व निरतिशय, निरूपाधिक परम प्रेमास्पद करुणावरुणालय तथा भक्त परम करुणा प्राणविभव हैं। भक्त-हृदय-मण्डप में भगवान ठीक उसी प्रकार अभिव्याप्त हैं, जिस प्रकार फेन, लहर तथा बुल-बुले के बाह्ययान्तर बारि ओतप्रोत रहता है।

अखण्ड, अपरिच्छिन्न, तथा सर्वावभासक परम कारुणिक भगवान का भक्त के साथ समवाय सम्बन्ध है। भगवान का मंजुल, मनोहर मधुर तथा मङ्गलमय स्वरूप एवं फलस्वरूप है। उनके पादारविन्द नखमणिचन्द्र की दिव्यद्युति से हृदय-मण्डप को सुसज्जित करना ही परम फलस्वरूप है। भक्त गण भुक्तिमुक्ति विरक्ति को त्याग कर सगुण भक्ति के अभिलाषी होते हैं और वस्तुतः सर्वाभिलाशविरत, ज्ञान एवं क्रिया संस्पृष्ट अनुरूप तथा भगवान् राम का अंनुस्मरण तथा अनुसरण ही भक्ति है।

भगवान् राम की सफल सौन्दर्य-छवि, चित्ताकर्षकरूप-माधुरी तथा सुषुमा-राशि का अवलोकन करते ही ब्रह्म विद्वरिष्ठ तत्त्वनिष्ठ विदेह (जनक) का ज्ञानगेह मानों अगेय हो गया, देह-यष्टि सुधि समाप्त हो गयी, रोमांच हो गया, वाणी मूक हो गयी तथा आनन्दाश्रु से नयन डबडबा गये—

इन्हहि बिलोकति अति अनुरागा । बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ।।
सहज बिराग रूप मनु गोरा । द्रवित होत जिमि चंद चकौरा ।।[1]

अमलात्मा, अदृश्य, अग्राह्य तथा अद्भुदानंद भगवान् का धराधाम पर प्रादुर्भाव भक्तों के कल्याणार्थ ही होता रहा है और होता रहेगा भी।

यथा—

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा । चले बनहिं सुन रन मुनि ईसा ।।
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं । मम मन सीता आश्रम नाहीं ।।[2]
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई । चले बिलोकत बन बहुताई ।।[3]
संकुल लता विटप धन कानन् । बहुखंग मृग तहँ पंचानन ।।[4]
लछिमन देखु बिपिन कह सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा ।।[5]

१- मानस/१
२- मानस/३/६(ख)/१/
३- वही ३/२९/ (ख)/३
४- वही ३/३२/४
५- वही ३/३२/५
६- वही ३/३६/३

बिरह बिकल बलहीन मौहि जानैसि निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ।।[१]
चहु दिसि कानन बिटप सुहाए ।।[२]
सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मौह बिपिन कहुँ नारि बसंता ।।[३]
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं । सब कर भल सब के मन माहीं ।।[४]
तापस वेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनबासी ।।[५]
होत प्रातु मुनि वेष धरि जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर, मरनु राउर अजस नृप समुझिव मन माहिं ।।[६]
मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तौर ।।[७]
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं । जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं ।।[८]
बिदा मातु सन आवउँ मागी । चलिहउँ बनहिं बहुरि पग लागी ।।[९]

मानस का वन-करुणोत्सव—

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबसं बेनु बन खागी ।।[१०]
करहु राम पद सहज सनेहू । केहि अपराध आजु बनु देहू ।।[११]
भरतहि अवसि देहु जुबराजू । कानन काह राम कर काजू ।।[१२]
राम सरिस सुत कानन जोगू । कहा कहिहि सुनि तुम्ह कहँ लोगू ।।[१३]
जेहि भाँति सोकू कलंकू जाइ उपाय करि कुल पालही ।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही ।।[१४]
नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान ।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर आनंदु अधिकान ।।[१५]
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ।।[१६]
आयसु देहि मुदित मन माता । जेहिं मुद मंगल कानन जाता ।।[१७]
बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान ।
आइ पाव पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान ।।[१८]

१- मानस ३/३७(क)
२- वही ३/३९ (ख)/५
३- वही ३/४३/१
४- वही २/२८८/४
५- वही २/२८/३
६- वही २/३३
७- मानस २/४१
८- वही २/४३/६
९- वही २/४५/४
१०- वही २/४६/४
११-वही २/४८/६
१२- मानस/२/४९/२
१३- वही २/४९/७
१४-वही २/४९/८
१५- वही २/५१
१६- वही २/५२/६
१७-वही २/५२/७
१८- मानस/२/५३

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा । कहेउ जान बन केहि अपराधा ।।[१]
राजु देन कहिं दीन्ह बनु सोहि न सो दुख लेसू ।
तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड क्लेसु ।।[२]
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ।।[३]
अंतहुं उचित नृपहि बन बासू । बथ बिलौकि हियं होइ हराँसू ।।[४]

मानस का वन-करुणोत्सव—

बड़भागी बनु अवध अभागी । जो रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी ।।[५]
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाउँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताउँ ।।[६]
जाहु सुखेंन बनहि बलि जाउँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊ ।।[७]
चलन चहत बन जीवन नाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ।।[८]
पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु ।
पति रबिकूल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधांनु ।।[९]
सोइ सिय चलन चहत बन साथा । आयसु काह होइ रघुनाथा ।।[१०]
करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु वन भूरि ।
बिष वाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि ।।[११]
बन हित कोल किरात किसोरी । रचीं बिरंचि विषय सुख भोरी ।।[१२]
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ।।[१३]
के तापस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ।।[१४]
सिय बन बसिहि तात केहि भाँति । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ।।[१५]
सुरसर सुभग बनज बन चारी । डाबर जोगु कि हंस कुमारी ।।[१६]
कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष ।।[१७]
कानन कठिन भयंकर भारी । घोर छामु हिम बारि बयारी ।।[१८]
लागइ अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ।।[१९]
ब्याल कराल बिहग बन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा ।।[२०]
हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मौहि देहहि लोगू ।।[२१]

---

[१] वही २/५३/७ [२] वही २/५५ [३] वही २/५५/२ [४] वही २/५५/४
[५] मानस/२/५५/५ [६] वही २/५५/८ [७] वही २/५६/४ [८] वही २/५७/३
[९] वही २/५८ [१०] मानस २/५८/७ [११] वही २/५७ [१२] वही २/५९/१
[१३] वही २/५९/१ [१४] वही २/५९/३ [१५] वही २/५८/४
[१६] मानस/२/५९/५ [१७] वही २/६० [१८] वही २/६१/४
[१९] वही २/६२/२ [२०] वही २/६२/३ [२१] वही २/६२/५

नव रसाल बन बिहर नसीला । सोहकि कोकिल बिपिन करीला ।।[१]
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंदबदनि दुखु कानन भारी ।।[२]
खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकुल ।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुखमूल ।।[३]
बनदेवी बनदेब उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ।।[४]
बन दुखनाथ कहे बहुतेरे । भय विषाद परिताप घनेरे ।।[५]
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू ।।[६]
कहेउ कृपालु भानु कुल नाथा। परिहरि सोचु चलहू बन साथा।।[७]
नहिं विषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहू बन गवन समाजू।।[८]
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइइ सबहि बिधि अवध अनाथा।।[९]
मांगहू बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई।।[१०]
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।[११]
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहु।।[१२]
तुम्हरे हिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं।।[१९]
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु अहइ उपदेसू।।[२०]
उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितुमातु प्रिय परिवार पुर सुखँ सुरति बन बिसरावहीं।।[२१]
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए।।[२२]
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई।।[२३]
सुकृतु सुजसु परलोक नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ।।[२४]
सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि ।
रथ बढ़ाई देखराई बनु फिरेहु गएँ दिन चारि ।।[२५]
जब सिय कानन देखि डेराई । कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई ।।[२६]
बरस चारि दस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु ।
ग्राम बासु नहिं उक्ति सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु ।।[२७]

---

[१]- मानस २/६२/७ [२]-वही २/६२/८ [३]- वही २/६५
[४]- वही २/६५/१ [५]- वही २/६५/५ [६]- वही २/६६/८
[१३]- मानस/२/६७/३ [१४]- वही/२/६७/४ [१५]- वही/२/७०/३
[१६]- वही/२/७०/१ [१७]- वही/२/७३/४ [१८]- वही/७३/८
[१९]- मानस/२/७४/३/ [२०]- वही २/७४/८ [२१]- वही २/७४/४
[२२]- वही २/७७/५ [२३]- वही २/७७/६ [२४]- वही २/७८/४
[२५]- मानस/२/८१ [२६]- वही २/८१/३ [२७]- वही २/८८

सिय रघुबीर कि कानन जोगू । करम प्रधान सत्य कह लोगू ।।[१]
अगम पंथ बन भूमि पहारा । करि केहरि सर सरित अपारा ।।[२]
सासु ससुर सन मोरि हुंति बिनय करबि परिणाय ।
मोर सोचु जनि कछु में बन सुखी सुभायं ।।[३]
जेहि बन जाइ रहब रघुराई । परनकुटी में करवि सुहाई ।।[४]
तब गनपति सिव सुमिरि प्रभुनाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गबनु कीन्ह रघुनाथ।।[५]
करि प्रनामु देखत बन बागा । कहत महातम अति अनुरागा ।।[६]
छाँह करहिं धन बिबुधगन बरषहि सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं ।।[७]
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए । तेहि इरिषा बन आनि दुराए ।।[८]
धन्य तो देसु बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाउँ।।[९]
राम लखन पथि कथा सुहाही । रही सक़ल मग कानन छाई ।।[१०]
एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत ।
जाहिं चले देखत बिपिनसिय सौमित्रि समेत ।।[११]
देखत बन सर सैल सुहाए । बालमीकि आश्रम प्रभु आए ।।[१२]
सुरनि सरोज बिटप बन फूले । गूंजत मंजु मधुर रस भूले ।।[१३]
सैल सुहावन कानन चारु । करि केहरि मृग बिहग बिहारु ।।[१४]
धन्य भूमि बन पंथ पहारा । जहँ जहँ नाथ पउ तुम्ह धारा ।।[१५]
एहि बिधि सिय समेत दो भाई । बसहिं बिपिन सुर मुनि खुखदाई ।।[१६]
जब तें आइ रहे रघुनाथकु । तब तें भयउ बनु मंगल दायकु ।।[१७]
सुरतरु सरिस सुसाय सुहाए । मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए ।।[१८]
बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं । देसि राम बनु सकल सिहाहीं ।।[१९]
एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी । संग मृग सुर तापस हितकारी ।।[२०]

१- वही २/९०/८
२- वही २/९७/७
३- मानस २/९८
४- वही २/१०३/५
५- वही २/१०४
६- वही २/१०५/४
७- वही २/११३
८- वही २/११९/६
९- मानस/२/१२१/६
१०- वही २/१२१/८
११- वही २/१२२
१२- वही २/१२३/५
१३- वही २/१२३/७
१४- वही २/१२१/४
१५- मानस/२/१३५/
१६- वही २/१३६/४
१७- वही २/१३६/५
१८- वही २/१३६/७
१९- वही २/१३७/३
२०- वही २/१४१/३

कहेउँ राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ।।[1]
पूँछत उतरु देव में तेही। गे बन राम लखनु बैदेही ।।[2]
बन रघुपति सुरपति नरनाहु। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहु ।।[3]
बहरि लखनु भरत बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं ।।[4]
रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ।।[5]
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई ।।[6]
तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा।।[7]
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ।।[8]
तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधुर फल खाए ।।[9]
देखत पुरी अखिल अघभागा । बन उपबन बापिका तड़ागा ।।[10]
भरत सत्रुहन दोनउ भाई । सहित पवन सुत उपबन जाई ।।[11]
सुन्दर उपबन देखन गए । सब तरु कुसुमित पल्लव नए ।।[12]
सुन्दर बन गिरि सरित तड़ागा । कौतुक देखत फिरउँ बरागा ।।[13]
सुमनवाटिका सबहिं लगाई । बिबिध भांति करि जतन बनाई ।।[14]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि मानस के सभी काण्डों में अल्पाधिक रूप से बन का उल्लेख किया गया है।

मानस की बस्तियाँ— मानस में निम्नलिखित बस्तियों का उल्लेख हुआ है— (१) ग्राम, (२) पुर, (३) नगर, (४) गाँव, (५) गाउँ, (६) गाऊँ और (७) पुरी। उपर्युक्त के उदाहरण निम्नलिखित हैं:

(१) ग्राम—

ग्राम निकट जब निकसिहिं जाई । देखहिं दरसु नारि नर धाई ।।[15]

(२) पुर—

जेहि कारन अज अगुन अरूपा । ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा ।।[16]
पुर नर नारि सुभग सुचि संता । धरम सील ग्यानी गुनवंता ।।[17]
पुर रम्यता राम जब देखी । हरवे अनुज समेत बिसैषी ।।[18]

१- मानस/२/१४१/४
२- वही/२/१४५/४
३- वही २/१७५/३
४- वही २/२८८/४
५- वही २/२९१/३
६- वही २/२९१/४
७- मानस ८/११९ (ख)/१
८- वही/५/७/६
९- वही/५/२७/७
१०- वही /७/२८/८
११- वही/७/२५/४
१२- वही ७/३१/२
१३- मानस/७/५५/६
१४- वही/७/२७/१
१५- वही/२/१०८/७
१६- मानस/१/१४०/२/
१७- वही/१/२१२/६
१८- वही/१/२११/५

कौसल्यां अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि बज्र पर पारा ।।[१]
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर-नारी । देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं।।[२]
पुर सोभा संपति कल्याना । निगम सेषसारदा बखाना।।[३]
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कंगूरा रंग रंग बर ।।[४]
पुर सोभा कछु बरनि न जाई ।।[५]

(३) नगर—

बाहे नगर परम रुचिराई ।।[६]
बनइ न बरनत नगर निकाई । जहाँ जाइ मन तहईं लोभाई ।।[७]
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी । कीन्हे स्वबस नगर नर नारी ।।[८]
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ।।[९]
पाइ रजायसु नाइ सिरुरथु अत्ति बेग बनाइ ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ ।।[११]
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा।।[१२]
हरषि चले मुनि बूंद सहाया। बेगि बिदेह नगर नियराया।।[१३]
जौं राउर आयसु में पावों। नगर देखाइ तुरत ले आवों।।[१४]
देखन नगर भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए।।[१५]
पिता बचन मै नगर न आवउ । आपु सरिस कपि अनुज पठावउ।।[१६]

(४) गाँव—

जै पुर गांव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं।।[१७]

(५) गाउँ—

अति लालसा बसहिं मन माही। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं।।[१८]

(६) गाउँ—

जाहु सुखेन बनहि बलि जाउँ। करि अनाथ जन परिजन गाउँ।।[१९]

(७) पुरी—

बंदउँ अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि।।[२०]

१- वही/२/४८/८
२- वही/२/५०/४
३- वही/७/८(ख)/८
४- मानस/७/२६/१३
५- वही/७/२८/७
६- वही/७/२८/७
७- वही/१/२१२/१
८- वही/१/२२८/५
९- वही/१/२२८/५
१०- वही/२/४५/६
११- मानस/२/८२
१२-वही७/२४/४
१३- वही/१/२११/४
१४- वही/१/२१७/६
१५- वही/१/२१९/१
१६- वही/६/१०५/४
१७- मानस/२/११२/१
१८- वही/२/१०९/३
१९- वही/२/५६/४/
२०- वही/१/१५/१/

ग्राम, गाँव, गाउँ तथा गाऊँ मध्यम श्रेणी की बस्ती को कहा जाता है, “पुर” छोटी बस्ती को कहा जाता है, “पुरी” लघु नगर को कहा जाता है तथा नगर शहर को कहा जाता है। शहर भारी तथा सघन बस्ती की ही संज्ञा है। निषादराज से “ग्राम बासु नहिं उचित” सुग्रीव जी “पुर न जाउँ” तथा विभीषण जी से “नगर न जाउँ” कहकर यह स्पष्ट किया गया है कि बस्ती के विभिन्न विभाग हैं— श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ, कुल” किन्तु राम तीनों में से कहीं नहीं जाकर वन में वास किये और अपने नियम पर अटल रह गये। चौदह वर्षों के वनवासी जीवन में राम ऋषियों-मुनियों के आश्रम में पदार्पण किये। त्रैता युग में वनवासियों के आश्रमों की गणना “ग्राम” “पुर” तथा “नगर में नहीं थी, क्योंकि उस युग में वन राजा के राज्य में आय का स्रोत नहीं माना जाता था। इसीलिए ऋषिगण “तापस” और “उदासीन” उनमें स्वतंत्र रूप से विचरण करते हुए भजन तथा ध्यान करते थे। “चक्र-वर्ती राज्य त्याग करके चौदह वर्षों तक राम वन में वास करें, दशरथ द्वारा प्रदत्त वर ही सिद्ध कर देता है कि ऋषियों का आश्रम, ग्राम, पुर तथा नगर किसी में भी परि-गण्य नहीं था। वनवास की करुण वेला में राम एक बार बस्ती के बाहर शीशम वृक्ष के नीचे कुश तथा पत्रों की सुन्दर कोमल साथरी पर ही निवास किये थे। अतः कहा जा सकता है कि मानस में अनेक बस्तियों का वर्णन आया है, किन्तु उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीन ही हैं—ग्राम, पुर और नगर।

राम-कथा की संस्कृति सामाजिक है। किसी भी अन्य संस्कृति का दलन किये बिना राम कथा में आर्य-द्रविड़ संस्कृति के अलावा अनेक अन्य जातियों की संस्कृति की छौंक दी गयी है। अतः राम-कथा की सामाजिक संस्कृति मेरी दृष्टि में मानव संस्कृति-रसायन की परिपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम है। राम-कथा तो संस्कृति-समन्वय है। मानसकार तुलसी ने अपने मधुकर तैयार किया है, आयास से राम कथा के सांस्कृतिक आयाम के मधु कोषों को तैयार किया है, तभी तो राम-कथा के सभी चरित्र सांस्कृति सूत्र में आबद्ध, हैं। उनके सांस्कृतिक सूत्र भी “सात्विक समन्वय” के ही परिणाम हैं।

यह कथा सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की विजयश्री की प्रतीक है। भारतीय संस्कृति तो अपार और अगाध उदधि है। “भारतीय महासमुद्र के समान है, जिसमें अनेक नदियाँ आ-जाकर विलीन होती रही है, संस्कृति किन्तु, सागर की अगाध गहराई जानने की लिप्सा हो भी तो किससे पूछा जाय? यह स्पष्ट है कि राम-रावण-युद्ध के समय सैकड़ों वानरवीर धड़ाधड़ सागर के ऊपर बने सेतु के ऊपर से कूदते हुए लंका में चले गये थे, लेकिन उनमें से कितने को सागर-गांभीर्य का ज्ञान है। सागर-मंथन के समय देवताओं ने “मन्थन-दण्ड” बनाकर जिस विशालकाय गिरि को सागर के नीचे डाल दिया था तथा जो सचमुच सागरतल से पाताल तक पहुँच गया था. वही मंदराचल पर्वत

सागर की अगाधता का अभिबोध प्राप्त कर सकता है।[१] मुरारि कवि के अनुसार वाग्देवी के रहस्य को पाना और सतही बातों के जिज्ञासुओं में अन्तर है—

अब्धिलंधित एव वानर भटैः किं त्वस्य गंभीरताम् ।
आपतालनिमग्न पीवरतनुर्जानाति मंथाचलः ।।[२]

मेरी दृष्टि में राम कथा अगाध अपार सागर है ओर उसके चरित्र सेतु पर आरुढ़ होकर पार होने की इच्छा रखने वाला मैं हूँ। राम कथा के चरित्रों की सामाजिक संस्कृति के अध्ययन क्रम में उसकी अन्तरंग परीक्षा मेरी लिए असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। "आर्यों और द्रविड़ों के मिलन से भारतीय संस्कृति ने जो रूप धारण किया, यह उसी की ताकत थी कि इस समन्वय के बाद जो भी जातियाँ इस देश में आयीं वे भारतीय संस्कृति के समुद्र में एक के बाद एक विलीन होती चली गयी।"[३]

नाना संस्कृतियों तथा जातियों के सम्मिश्रण से विनिर्मित रामकथा की सामाजिक संस्कृति विश्वजनीन संस्कृति की पूर्वपीठिका है, जिसकी आधार शिला पर विश्व संस्कृति को अधिक भवशाली बनाया जा सकता है। राम कथा की सामाजिक संस्कृति की सर्वाधिक श्रेष्ठ विशेषता है— "अनेक वादों विचारों, दर्शनों और धर्मों का समीकरण। सामाजिक सांस्कृतिक लक्षण का विषय है परिभाषा का कदापि नहीं। संस्कृति हममें अभिव्याप्त है। अतः हमारे क्रियाकलाप का कौशल सांस्कृतिक निधि है। ज्ञानार्जन क्रम में वह स्वतः अभिव्यक्त होती है। असभ्य भी सुसंस्कृत होता है और सुसंस्कृत भी असभ्य हो सकता है।

आदिवासी सुसभ्य नहीं होते, किन्तु दया, माया, करुणा, मैत्री, सत्यता, शिष्टाचार तथा सदाचार के कारण वे सुसंस्कृत होते हैं। प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि, वानर तथा राक्षस वनों में पर्वतों की गुफाओं में और सागर तट पर वास करते थे। **करक मंदिर उनको मयस्सर कहाँ;** किन्तु पर्णकुटी में वास करना, जंगली जीव जन्तुओं से मित्रता और प्यार करना, भूमि शयन और वल्कल बसन पहन कर भी वे सुसंस्कृत ही नहीं थे, प्रत्युत वे मानव जाति की सामाजिक संस्कृत के नियामक थे।

यह बात ठीक ही है कि सभ्यता और संस्कृति का पुष्प एक ही साथ खिलता है और परस्पर प्रभावित भी करता है, जैसे सेतुबंध। सेतुबंध कार्य स्थूल रूप से वानरी-सभ्यता का कर्म था, किन्तु कब, क्यों और किस प्रकार का सेतु सागर पर बाँधा गया,

---

[१] सुप्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर डाडवेल ।

[२] मुरारि कवि : श्लोक ।

[३] रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पहला अध्याय पृ० ३९ संस्करण- २६जनवरी, १९५६

इसका निर्णय वानरों की सांस्कृतिक रुचि के बिना संभव कहाँ। प्रकृति के गुण ईर्ष्या, क्रोध, मोह, लोभ, काम और राग द्वैषादि के आवेगों पर लगा हुआ अंकुश ही संस्कृति है। अत: इन तमोगुणों पर जिसका जितना अधिक कठोर नियंत्रण अथवा शासन है, उसकी संस्कृति भी उतनी ही अधिक ऊर्ध्वमुखी है।

वानरी ओर राक्षसी सभ्यता में उनकी संस्कृति उसी तरह व्याप्त थी, जिस तरह मधु में मिठास रहती है। इसीलिए इन मानवेतर चरितों की सभ्यता भले ही नष्ट हो गयी हो, किन्तु उनकी संस्कृति आज मानव-मन में बैठकर इन्द्र जाल के सतरंगी धनुष का विकराल टंकार कर रहा है, जिसके कारण कहने के लिए तो हम मानव और देवता भी हैं, किन्तु दानवी संस्कृति के रक्तबीज ने हमें आपादमस्तक आरक्त वना दिया है। सोने की लंका तो जल गयी; किन्तु हमारे मन की लंका नहीं जली है और शायद न जलेगी ही। लंका के राजा रावण का बध तो हो गया, किन्तु हमारे मन में जो दशान बैठकर अट्टहास कर रहा है, मानवी संस्कृति हेतु आज प्रश्नवाचक चिह्न बन गया है, शायद जब तक मानव सृष्टि रहेगी, मानवी-संस्कृति की जगह दानवी संस्कृति ही प्रश्न वाचक चिह्न का कुटिल कठोर और गुरु-गंभीर गर्जना करती ही रहेगी।

राम-वानर-मिलन दो जातियों-सांस्कृतिक संपर्क का प्रतीक है, जिनके परस्पर मिलन से जिन्दगी की एक नवीन धारा प्रभावित हुई थी, जिसका असर दोनों जातियों पर पड़ा। दोनों के आचार-विचार के आदान-प्रदान के कारण ही वानर-आर्य की तरह सभ्य हो गये और वानरों का दर्शन और विचार रामानुकूल हो गये। वानरों की सभ्यता भीतर से खिल उठी, जिसके कारण उनका मन, आचार और विचार, परिष्कृत हो उठा और वे आर्यो के जैसा व्यवहार करने लगे।

जनकपुर की पुष्पवाटिका—.

जनकपुर की पुष्पवाटिका मर्यादित तथा मधुरतम शृंगार की अप्रतिम प्रस्तुति है। जिस राम गुरु विश्वामित्र के पूजनार्थ पुष्प लेने पुष्पवाटिका पहुँचते हैं, उसी समय सीता भी गिरिजा-पूजन हेतु माँ से आदेशित होकर उसी वाटिका में सुशोभित होती है। पुष्पवाटिका में किशोर-किशोरी के अनुराग-वर्णन के क्रम में तुलसीदास का मर्यादावाद कन्नी काटने लगा है तथा उसने धर्म और प्रेमादि का अतिवादी विकृति को अस्वीकृति दे दी है। पुष्पवाटिका प्रसंग में तुलसी के अनुसार लोक-मंगलार्थ परमावश्यक रस तथा मर्यादा का ही स्वरूपांकन हुआ है।

पुष्पवाटिका : सीताराम: संगमश्री—

पुष्पवाटिका में सीताराम का मिलन परस्पर सुन्दरतावलोकनार्थ नहीं हुआ था और न किसी पूर्वनियोजित संकेत सेतु ही की सिद्धि का ही कारण था, प्रत्यूत्त सात्त्विक

श्रद्धावश ही दोनों वाटिका में आये थे। अनुशासित राम माली से अनुमति प्राप्त कर प्रमुदित मन पुष्पचयन में विभोर हो गये—

चहुं दिसि पूँछि माली गन । लगे लेन दल फूल मुदितमन ।।[१]

तत्क्षणागता सीता अनुरागी अन्तः करण से पार्वती पूजन में सरावोर हो गयीं

पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बरु भागा ।।[२]

पुष्प चयन क्रम में अनुराग को मर्यादा एवं पुरातन प्रीति के समन्वित मेदुर-कान्तिमय धागे में आबद्ध कर तुलसी ने कमाल कर दिया। तदुपरान्त सीता के अन्तःकरण में दर्शन की उत्कण्ठा उद्भूत होती है। सखियाँ पहले से ही राम के दिव्य सौन्दर्य से अवगत हो चुकी थीं, किन्तु वे चाहती थीं कि सीता धनुषभंग के पश्चातही राम के प्रति उत्कण्ठा तथा पूर्वराग़ की सृष्टि करे। इससे स्पष्ट होता है कि सीता की सखियाँ सजग थीं। किन्तु गौरी-पूजन कें उपरान्त एक सखी द्वारा वर्णित राजकुमार के अनिर्वचनीय सौन्दर्य का संकेत श्रवण करतें ही सभी सखियाँ ह्रदय कपाट खोलकर उद्गारों को उत्कीर्ण करने लगीं। तुलसीदास जी ने इस अवसर पर "नारद वचन" की ओर इशारा किया है—"इस वाटिका में जिस राजकुमार का सौन्दर्य तुम्हें सम्मोहित करेगा, वही तुम्हारा पति होगा।" इस तरह पुष्पवाटिका में स्नेह और मर्यादा परस्पर परिपूरक रूप में प्रस्तुत हुआ है। पुष्पवाटिका की वेगवती स्नेह सरिता शरद ऋतु की मुखरमंदाकिनी है, जिसका नीर तीर तरल-तंरग-रंग में उमंग भंग घोलता है।

एक सखी गौरी पूजन त्याग कर वाटिका-भ्रमणार्थ निकल पड़ती है। उस ललना के ललकते लाल लोल लोचन के समक्ष विश्वमोहन राम का दिव्य सौन्दर्य ज्यों ही भास्वर होता है कि उसकी मन मधुकरी उनके दिव्य रूप माधुर्य रस में निमग्न होकर आस्वादनानन्द प्राप्त करने लगती है।

संकोची रूप— सीता का संकोच पराये ह्रदय में सद्भाव का सर्जन्र करता है।

सौन्दर्याकर्षण— सहित सीता के अविरल अनुराग की यही दिव्य भाव पुष्प-वाटिका में सर्वप्रथम रामचन्द्रजी का दर्शन पाने वाली सखी में भी दीखता है—

तासुदसा देखी सखिन्ह, पुलक गात-जलु नैन ।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहि सब मृदु बैन ।।[३]

तथा—देखन बाग कुखर दुइ आए । बय शिोर सब भाँति सुहाए ।।
स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।।[४]

---

[१] मानस/१/२२७/१

[२] वही/१/२२७/६

[३] तुलसी/मानस/१/२२८

[४] वही/वही/१/२२८/१-८

बरनत छवि जह तह सब लोग—

एक अपरिचि राजकुमार को निरखने के लिए जाने में अनौचित्मकाशंका के वरणार्थ अपने कमनीय कला-कौशल का सहारा लिया है—

नगर

एक कहइ नृप तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।।
जिन्ह नित रूप मोलनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।।
बरनत छवि जह तह सब लोग। अवसि देखिअहि देखन जोग।।[१]

इससे सिद्ध होता है कि किशोर सीता की भावना को मर्यादा का समर्थन उपलब्ध हुआ। राम का अपूर्वानूरागी अन्तःकरण दर्शनीय है—

कंकन किकिनी नूपुर धुहन सुहन। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि।।
मानहु मदन दुंदुमक दीन्ही। मनी बिस्व बिजय कहँ कीही।।[२]

कंकण, किकिणि एवं नूपुरों की रुनझुन मात्र से ही राम में रागोदय का हो जाना जन मानस अद्भूत आश्चर्य में आकंठ निमग्न कर देता है, क्योकि यह वह राम हैं, जिनकी खुली घोषणा है—

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी।।[३]

मेरी दृष्टि में, तुलसी ने इसके द्वारा अनुराग की दिव्यता का ही प्रतिपादन किया है।

प्रथम श्रुति, तब दृष्टि— सौन्दर्य दृष्टि का विषय है, किन्तु राम को सीता सौन्दर्य का सर्वप्रथम साक्षात्कार श्रुति के माध्याम से हुआ। अतः रीम का प्रेम श्रुति समर्थित है और राम को तुलसी ने "श्रुति सेतु पालक" कहा भी है। सहज मनोविज्ञान के अनुसार व्यकित अपने अन्तर्मन के उन्ही भागों को अन्य के समक्ष प्रकाशित करता है, जिनसे दूसरों की दृष्टि में उनको सम्मान सुख मिले। अलंकारों की ध्वनी सुनकर राम ने अपने हार्दिक उद्धगार को तत्क्षण अपने अनुज लक्ष्मण के सामने निस्संकेत : अव्यक्त कर दिया। इससे उनकी मानसिक कमजोरी प्रकट नही ,वरंच उनके दर्पणोपम दिव्य चरित्र का प्रोद्भासन ही होता है।

अलंकार ध्वनी में राम को विश्व विजय हेतु प्रस्थित काम का दुंदुभि घोस सुनायी पडता हैं और "पुष्पवाटिका" के प्रसंग के माध्यम से उन्होने राम और काम तथा अनुराग आरैर विराग का समवाय सम्बन्ध स्थापित किया है।

काम-नाश-विश्वनाश—काम नाश का अर्थ विश्वनाश है। सृष्टि संरचना का मूल काम है। पुष्पवाटिका में काम अनङ्गरूप में प्रस्तुत होता है और पराभक्ति स्व-

---

[१] मानस/१/२२८/४-६ [२] वही/१/२२९/१-२ [३] वही/१/२३०/६

रूपिणी आद्यशक्ति श्रीसीता के चारु चरणों का आश्रय ग्रहण कर ही विश्व विजय के अपने सङ्कल्प की पूर्ति का आकाङ्क्षी है। यही कारण है कि पुष्पवाटिका में काम को राम का किञ्चित् भय नहीं है; क्योंकि काम, ज्ञान तथा विराग दोनों के भय से मुक्त है। आध्यात्मिक दृष्टि से ईश्वर सन्निकट लाने वाला काम, काम नहीं, 'राम' है। यही कारण है कि लक्ष्मण पुष्पवाटिका में राम के शृङ्गार में सहायक सिद्ध होकर उसे मौन-मर्यादा प्रदान करते हैं। इसीलिए वे लताकुञ्ज में श्रीराम को ले जाकर मयूर पूँछ और कुसुम-कलियों से उनका कमनीय शृङ्गार करते हैं। उनका उद्देश्य श्रीराम को दूल्हे के रूप में प्रस्तुत करना था; क्योंकि उनकी दृष्टि में वास्तविक विवाह तो आज ही सम्पन्न होने जा रहा था।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि जनकपुन की पुष्पवाटिका सर्वविध शोभाश्री है।

अशुभ के लक्षण—

अशुभ होन लागे तब नाना। सेवहिं खर सृकाल बहु स्वाना।।
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू।।
दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा।।
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी।।

प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात वह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कचरज असुभ अति सक को कही।।
उत्पात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चापसर जोरत भए।।[२]

रणोद्यत रावण को भी अपशकुन हुआ था। उसके हाथ से अस्त्र भी छूटकर गिर गया था।

स्वप्न में विश्वास—त्रिजटा ने सीता को डराने वाली राक्षसिनियों से कहा था कि जातुधान नाश तथा राम विजय की सूचना देने वाला मैंने स्वप्न देखा है—

सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरुढ़ नगन दस सीसा। मुंडित सिंर खंडित भुजबीसा।।
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ विभीषण पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।

---

[१] पावन प्रसाद : सम्पादक ज्ञानेश्वर, वर्ष-४, अङ्क-३, सितम्बर '७८ ई०, शीर्षक–'कङ्कन किङ्किनी नूपुर धुनि सुनि' पुष्पवाटिका में श्रीसीता-राम-मिलन : पं० श्रीराम किङ्कर उपाध्याय, पृ० १०

[२] मानस–१०१/(ख)/७-१०

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ बिन चारी ।।[१]

दिव्य रूप—राम का दिव्य रूप दर्शनीय है—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा । नील कंज बारिद गंभीरा ।।
अरुन चरन पंकज नख जोती । कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ।।
रेख कुलिस अंकुस सोहे । नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ।।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहि देखा ।।
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी । हियँ हरि नख अति सोभा रुरी ।।
उर मनिहार पदिक की सोभा । बिप्र चरन देखत मन लोभा ।।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई । आनन अमित मदन छबि छाई ।।
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे । नासा तिलक को बरने पारे ।।
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला । अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ।।
चिक्कन कच कुंचित गुजारे । बहु प्रकार रचित मातु सँवारे ।।
पीत झगुलिया तनु पहिराई । जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ।।

अन्त में तुलसी को कहना पड़ता है—

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेसा । सो जानइ सपनेहुँ जेहि देखा ।।[२]

देवों के वसन—राम —पीताम्बर, विष्णु—श्वेताम्बर, शङ्कर—बाघम्बर, हस्तीचर्म, केहरिछाल, यम—असिताम्बर ।

देवियों का वसन—शारदा—शुक्लाम्बर, लक्ष्मी—पीताम्बर ।

राम— पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ।।[३]
शिव— कुंडल कंकन पहिरे व्याला । तन विभूति पटके हरि छाला ।।[४]

शव का मुकुट उनकी जटा ही थी—

जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्य निधि सोह बाल बिधु भाल ।।[५]

राम का अन्तःपुर नाना भाँति वेशों में सुशोभित और रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों तथा मालाओं से सुसज्जित सहस्रों सुन्दरियों से शोभित था—

नाना वर्णाम्बर स्रजम् । सहस्रं वर नारीणां नानावेशविभूषितम् ।।[६]

रावण सुनहरे सूत के वस्त्रों को पहनता था । कढ़ा हुआ बेशकीमत क्षोम (ओम

---

[१] मानस–५/१०/३-७
[२] मानस–१/१९८/१-१२
[३] मानस–१/३/२१८
[४] मानस–१/९१/२
[५] मानस–१/१०६
[६] बा०रा०–५/९/३३

कदाचित क्षुम या अलसी के पौधे के रेशों से तैयार होता था) वह पहनता था। सन (शण) की रस्सी से लङ्का में हनुमान को बाँधा गया था— *'बबन्धुः शरण वल्केश्च'*।[१] उनकी पूँछ में कपास के पुराने चीथड़े लपेटे गये थे— *'वेष्टन्ते तस्य लाङ्गूलञ्जीर्णैः कार्पासिकः पटेः'* ।[२] रावण के अन्तःपुर में हनुमान ने देखा कि उसकी स्त्रियों की साड़ियों के पल्ले उनकी साँसों के समीर में वैसे ही लहरा रहे थे जैसे पवन झोकों से झण्डे फहराते हों।

अंशु कान्ताश्च कासां चिन्मुखमारुत कम्पिताः ।
उपर्युपरि वस्त्राणां व्याधूयन्ते पुनः पुनः ।।
ताः पताका इवोद्धताः ।।[३]

लाल वस्त्र—तारा ने लाल रङ्ग के पलङ्गपोशों का उल्लेख किया है— *'कृमिराग परिस्तोम'* ।[४] राक्षस लोग भी लाल वस्त्र के ही शौकीन थे।

मुकुट—रावण मणि-जड़ित मुकुट धारण करता था। भृत्यवर्ग पगड़ी पहनते थे। रावण के चामर धारी, खर के सेनापति और विभीषण के अनुचर पगड़ियों में सजे थे। इन्द्रजित के यज्ञ में उपस्थित राक्षसी परिचारिकाएँ लाल पगड़ियाँ पहने हुई थीं।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे ।।[५]

बालि के पास इन्द्र की दी हुई, रत्नों से जड़ी, सोने की एक उत्तम माला थी— *'शक्रदत्ता वरामाला कामनी रत्नभूषिता'* ।[६] रावण भी गहने पहनता था। कुम्भकर्ण बहुमूल्य आभूषणों से मण्डित होकर वानरी सेना का मुकाबला करने गया था। धुम्राक्ष राक्षस के रथ में सुवर्ण-भूषित गधे जुते थे। रावण के रथ में झनकार करने वाले रत्न, आभूषण तथा घंटियाँ लगी थी—

नाना लङ्कार भूषितम् । किङ्किणी जाल संयुतं नाना रत्न परिक्षिप्तं रथम् ।।[७]

रावण के अन्तःपुर में हनुमान को उसकी स्त्रियों की करधनियों और नूपुरों की झनकार सुनाई पड़ी थी। उनकी विभूषणों की पंक्ति से बिजली की चमक जाती थी—

विभूषणानां च ददर्श मालाः शत हृदानामिव चारु मालाः ।[८]

कुण्डल—कर्णभूषण जो एक भारी-सा घुमावदार लटकने वाला गहना था और तनिक शरीर-सञ्चालन से हिलने-डुलने लगता था। 'कुण्डल' शब्द संस्कृत के

---

[१] बा०रा०–५/४८/४६
[२] बा०रा०–५/५३/६
[३] बा०रा०–५/९/५३-४
[४] बा०रा०–४/२३/१४
[५] मानस–६/३१(ख)/७
[६] वा०रा०–४/१७/५
[७] वा०रा०–६/९०/३०-१
[८] वा०रा०–५/५/२२

'कुण्डलिन्' (कुण्डली मारने वाले साँप) से सम्बद्ध है; क्योंकि दोनों घुमावदार होते हैं। रावण के कुण्डलों की चमक तरुण सूर्य-सी थी— *'तरुणादित्य वर्णाभ्यां कुण्डलाभ्यां विभूषितः'* ।[1] स्वर्णिम कुण्डल तथा मणिकुण्डल कहलाते थे। रावण का श्रोणीसूत्र नीलवर्ण का था— *'श्रेणी सूत्रेणमहता मेचकेन सुसंवृतः'*।[2]

नुपुर—लङ्का का समुद्र रत्नों की खान माना जाता था—रत्नोध जल संनादम्।[3] रावण की सभा में उपस्थित राक्षस मंणियों से अलङ्कृत थे—

माला—*सुवर्ण नाना मणि भूषणानां सुवाससां संसदि राक्षसानाम्*।[4] रावण की रानियों ने बालों में पुष्प मालाएँ गूँथ रखी थी— *'समाल्यांकुलमूर्ध जाः'* ।[5] अशोकवाटिका में सीता के समान आते समय रावण ने लाल मालाएँ पहन रखी थीं। रात को मालाएँ पहनकर सोने का रिवाज था— *'शयनादुत्थितः काल्यंत्यक्तभुक्तामिव स्रजम्'* ।[6] अप्सराएँ मुकुट की शैली में पुष्पों से केश सजाती थीं— *'उच्चावच-ताम्रचूडा'* ।[7] हनुमान ने लङ्का में सीता को आश्वासन देते हुए कहा था—'जघनों तक लटकती हुई और महीनों से बँधी हुई तुम्हारी इस एक वेणी को, हे देवि! महाबली राम शीघ्र ही आकर खोलेंगे—

अचिरान्मोक्ष्यते सीते देविते जघनं गताम्।
घृतामेकां बहुन मासान् वेणीं रामो महाबलः ।।[8]

बाल—सम्भवतः रावण भी बाल नहीं कटवाता था। विभीषण ने सभासदों से प्रार्थना की कि शत्रु द्वारा रावण केशों को पकड़ कर घसीटा जाय, इसके पहले ही आपलोग उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लें—

यावद्धि केशे ग्रहणात्सुहृदिभः समेत्य सर्वैः परिपूर्ण कामैः ।
निगृह्य राजापरिरक्षितव्यो भूतेर्यथा भीमबलेर्गृहीतः ।।[9]

राक्षस अपने लम्बे बालों को बाँध कर रखते थे। बा०रा० के अनुसार रावण और मेघनाद शिखा रखते थे। स्त्रियाँ अङ्गों पर अङ्गराग और कुचों पर रक्त-चन्दन का अनुलेपन करती थी। रावण की रानियों के मुख-मण्डल कमल सदृश गन्ध वाले थे— *'पद्मगन्धी निवदनानि'* ।[10]

---

[1] वा०रा०–५/२२/२८
[2] वा०रा०–५/२२/२६
[3] वा०रा०–६/४/११९
[4] बा०रा०–६/११/२९
[5] बा०रा०–५/१८/१७
[6] बा०रा०–४/१५/१७ तथा ५/२५/१७
[7] बा०रा०–४/२४/३४
[8] बा०रा०–६/३३/३१
[9] बा०रा०–६/१४/१९
[10] बा०रा०–५/१९/३६

खान-पान—रावण ने सुस्वादु खाद्य वस्तुओं से सीता को लुभाना चाहता था—

सा च कामैः प्रलोभ्यन्ती भक्ष्येर्भोज्येश्चनेथिली ।[१]

वानर विशुद्ध शाकाहारी थे। राक्षस मुख्यतः मांसाहारी थे।

भात—कुम्भकर्ण की भूख मिटाने के लिए राक्षसों ने चावलों की अद्भुत राशियाँ लगा रखी थी— **चक्रुर्नैर्ऋत शार्दुला राशिमन्नस्य चाद्भुतम् ।**[२]

फल—रावण की पानभूमि (मधुशाला) में हनुमान ने नानारङ्गी फल पड़े देखे थे— **फलैश्च विविधैरपि ।**[३] वानर फलाहारी होते हैं। मानस के सभी वानर फलाहारी हैं। हनुमान के फलाहार का मानस में स्पष्ट उल्लेख है—

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । जागि देखि सुन्दर फल रुखा ।।[४]
खाएसि फल अरु विटप उपारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ।।[५]
जौ न होति सीता सुधि पाई । मधुबन के फल सकहिं की खाई ।।[६]
खायउँ फल प्रभु लागी भूखा । कपि सुभाव ते तोरेउँ रुखा।।[७]

नरमांसाहारी राक्षस—इल्वन असुर श्राद्ध के बहाने पड़ोस के ब्राह्मणों को आमन्त्रित करता और उन्हें मेढ़े का मांस पकाकर खिलाया करता था—

भ्रातरं संस्कृतं कृत्वाततस्तं मेष रुपिणाम ।
तान्द्विजान्भो जया मासबाद्ध दृष्टेन कर्मणा ।।[८]

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी । भट अतिकाय अकम्पन भारी ।।[९]

रावण और कुंभकर्ण भैंसे का माँस खाता था। महिष, मृगा, वराह का माँस खाता था। रावण की पान में हनुमान ने नाना प्रकार के माँस पदार्थ देखे थे।

राक्षस में नर-मांस खाने की प्रवृत्ति थी। रावण ने सीता को धमकी दी थी कि यदि तुमने मेरी पर्यक-शायिनी बनने से इन्कार किया तो रसोइय मेरे प्रातः-कालीन कलेवे के लिए तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे

कालेनानेन नाभ्येषि यदि मांचारु हासिनी ।
ततस्त्वाँ प्रातराशार्थ सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ।।[१०]

१- बा०रा०–४/६२/७
२- बा०रा०–६/६०/३२
३- बा०रा०–५/११/१९
४- बा०रा०–५/१६/७
५- बा०रा०–५/१७/४
६- बा०रा०–५/२८/१
७- बा०रा०–५/२१/३
८- बा०रा०–३/११/५७
९- मानस- ६/६१/११-१२
१०- वाल्मीकीय रामायण- ३/५६/२५

वा०रामायण के सुन्दरकाण्ड के ...... सर्ग में रावण के रात्रिकालीन भोजन का विस्तृत वर्णन हुआ है। उसके भोजन की सूची में निम्नस्थ पदार्थ वर्णित है—

(१) मृगाणां महिषाणां वराहणा च भागशः न्यस्तानि मांसानि।

(२) रोक्मेषु विशालेषु भाजनेषु मयूरान कुक्कुरान्- स्वर्णपात्र में मोरों और मृगों का भुना माँस।

(३) दही और नमकमिश्रित शूकर, वाघ्रीणस्र (एक प्रकार का बकराया पक्षी) साही, हरिण, मोर का मांस।

(४) कृकलपक्षी, विविध बकरे, खरगोश भेंस, एक शल्य मछली का पका मांस।

(५) चटनियाँ।

(६) विविधपेय तथा नमकीन मीठे पदार्थ।

(७) खट्टे, नमकीन और तीखे राग खांडव

(८) विविधै फलै:- भांति-भांति के फल।

(९) अनेक प्रकार के तथा सुगंधित मसालों से सुवासित शकरा, मधु, पुष्प, फलादि के आसव। पानीयं प्राणिन: प्राणा: (समस्त प्राणियों का जीवन जल है)। वा०रा० के अनुसार रावण की पानभूमि में सुगंधित पुष्पासव, फलसव तथा शर्करा सबका भंडार विराजमान था।

मधु— वानरों तथा निषादों का सामान्य पेय था शराब मानस में सुरा, मध तथा मदिरा शब्द प्रयूक्त हुए हैं।

वारुणी— सबसे तेज नशीली सूरा थी। इसका निर्माण खजूर के रस में विशेष पौधों कीटपीस कर किया जाता था।

सुरा— नैसर्गिक विकार जन्य मदिरा थी। राक्षस पीते थे।

विलाप— (१) वालि-वध के बाद तारा का हृदयद्रावक विलाप मार्मिक है

नाना विधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा।।''[1]

(२) कुंभकर्ण-वध के बाद रावण का वरुणा विलाप द्रष्टव्य है

बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई।।[2]

(३) कुंभकर्ण की पत्नी का विलाप— स्मरणीय है

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी।।[3]

(४) मेघनाद-वध के बाद सुत-वध के शोक में रावण-मन्दोदरी द्वारा विलाप हृदय द्रवक है

---

[1] मानस- ४/१०/२ [2] वही- ३/७१/४ [3] वही- ६/७१/५

सुत बध सुना दसानन जबहीं । मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं ।।
मंदोदरी रुदन कर भारी । उर ताड़न बहुभाँति पुकारी ।।[1]

रावण-वधोपरान्त मन्दोदरी विलाप—

पति सिर देखत मन्दोदरी । मुरुछित बिकल धरनि खसि परी ।।
जुबति बृनंद रोवत उठि धाई । तोहि उठाइ रावन पहिं आई ।।
पति गति देखि ते करहिं पुकारा । छूटे कच नहिं बपुष संभारा ।।
उर ताड़ना करहिंबिधि नाना । रोवत करहिं प्रताप बखाना ।।
तव बल नाथ नित धरनी । तेज हीन पावक ससि तरनी ।
सेब कमठ सहि सकहिं न भारा । सो तनु भूमि परेउ भरि छारा ।।
तेहिकरि विमल विवेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भवमोचन ।।[1]

भवसागरसंतरणहेतु गुरुकृपा अनिवार्य है— विरञ्चि और शंकरसदृश प्रतापवान भी गुरुकृपाबिना भवनिधि पार नहीं कर सकते। गुरु-कृपा से ही ज्ञान-लाभ संभव है। सर्पदंशित प्राणी के लिए गारुड़ी के समान गुरु ही जीवनदाता हैं।

बन्द्ये बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्। यमाश्रितो हि वक्रऽपिचन्द्रः सर्वत्रवन्द्यते।।[2]

वेनतेय गरुड़ को संशयसर्प ने डंस लिया था इसलिए उनमें कुतर्कलहरों का आगमन हो रहा था, किन्तु उनके गुरु काक भुशुण्डि की वाणी ने उनके सम्पूर्ण संशय-विष एवं कुतर्क लहर को दूर कर दिया। गुरु कृपा से उनका सम्पूर्ण मोहजाल समाप्त हो गया और रामरहस्य विदित हो गया--

पुनि पुनि काग चरण सिरु नावा । जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ।।
गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जौं बिरंचि संकर सम होई ।।
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । दुःखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता ।।
तब सरूप गारुड़ि रघुनायक । मोहि जिआयउ जन सुखदायक ।।
तव प्रसाद मम मोह नसाना । राम रहस्य अनूपम जाना ।।[3]

बिना गुरु कुछ भी संभव नहीं—

बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्याान कि होई बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।[4]

"मानस" में उमा अपने गुरु नारद के वचन में अटल प्रीप्ति रखती है तथा रक्षा हेतु शरीर-त्याग के लिए भी तत्पर हो जाती है—

१.
२. मानस/१/१-२
३. वही/१/३/
४. मानस/ ७/९२/(ख)/४-८
५. वही/७/८९/(क)

सत्य कहेउ गिरि भव तनु एहा। हठ न छूटहु छूटै बरु देहा।।[१]

वे कहती हैं—**नारद बचन न मैं परिहरऊ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ।।**[२]

सत्गुरु समर्थ कर्णधार है, जो संसार-सागर से जीव का निस्तार करते हैं-

करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।[३]

जो गुरु को भगवान से भी बड़ा मानकर सब प्रकार से सम्मानित कर उनकी सेवा में निरत रहते हैं, उनके हृदय में भगवान का वास है-

तुम्ह तें अधिक गुरहिं जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।[४]

तथा— **सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ ।**
तिन्ह के मन मंदिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ ।।[५]

योग्य गुरु तथा योग्य शिष्य— **आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा।**[६]
गुरु शिष वधिर अंध के लेखा: -

अंधा गुरु और अंधा शिष्य पतन-खण्डक में गिरता हैं। अज्ञानावृत, अति निर्बुद्धि होकर भी अपने को महापण्डित समझने वाले मूढ़ व्यक्ति अन्धे के नेतृत्व में चलने वाले अन्ध सदृश चारों ओर ठोकरे खाते हुए भटकते रहते हैं—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डित मन्यमानाः।.
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा। अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।[७]

गुरु को धर्मशास्त्रवेत्ता होना चाहिए। शास्त्रों के शब्दजाल को बुनने वाला गुरु शिष्य को भटकाते है, क्योंकि **शब्द जालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम् ।**[८]

तथा— **बाग्वैखरीशब्द झटी शास्त्र व्याख्यान कौशलम् ।**
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।।[९]

सच्चा गुरु— सच्चा गुरु शास्त्रज्ञ, निष्कलुष, कामगन्धहीन तथा श्रेष्ठ ब्रह्मशक्ति होते हैं—**श्रोत्रियोऽवृजिनो कामहतो यो ब्रह्म वित्तमः।।**[१०] पर्वत उपदेशक है। कल-कल बहने वाला झरना विद्या बिखेरता है और कल्याण-ही-कल्याण करता है—

And this our life exampt, from public haunty,
Finds tongues in trees, books in the rnning brooks,
Sermons in stones and good in every thing.[11]

---

[१] वही/१/७९/५
[२] वही/१/७९/७
[३] मानस/७/४३/८
[४] वही/२/१२८/८
[५] वही/२/१२९
[६] कटोपनिषद्/१/२/७
[७] मुण्डक उपनिषद्/१/२/८
[८] विवेक चूड़ामणि १/६२/११
[९] वही १/१६०/
[१०] वही १/१३४/१
[११]

श्री कृष्ण ने भागवत में स्वयं को "आचार्य" कहा है—**आचार्य मां विजानीयात्।।**[1] गुरु की आत्मशक्ति शिष्य की आत्मा में संचरित होती है, जिससे शिष्य का जीवन सफल हो जाता है। प्रायः सभी धर्मग्रंथों में गुरु और शिष्य का उल्लेख हुआ है, यथा—

गुरु प्रदर्शितो देवो मन्त्र-पूजा विधि जपः।
न देवेन गुरुर्दुष्टस्तस्मात् देवात् गुरु परः।।[2]
अभिष्ट देव राष्टे च समर्थों रक्षणे गुरुः।
न समर्थां गुरौरुष्टै रक्षणे सर्वदेवताः।।[3]
यस्य देवेपरा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरो।
तस्यैते कथिनाह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।[4]
वेदान्ते परमं गुह्य पुराकल्पै प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायशिष्याय वा पुनः।।[5]

"........... एवं गुरु कृपां विहाय ब्रह्म विद्या दुर्लभेति त्वरान्वितस्य मुख्याधिकारिणो महात्मन उत्तमस्यैते कथिता अस्यां........ः कविनोपदिप्टा अर्थाः प्रकाशन्ते स्वानुभवाय भवन्ति।।"[6] महाभारत में महर्षि अयोदधौम्याश्रम में शिक्षा ग्रहण करने वाले शिष्य आरुणि और उपमन्यु की गुरु भक्ति अत्यन्त उत्कृष्ट है।"[7]

भवेद्धाभवीर्यवती विद्या गुरु वक्त्र समुद्भवा।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीयाप्यति दुःखदा।।[8]
गुरुर्पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः।[9]
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वैः प्रसेव्यते।।
गुरुप्रसादतः सर्वे लभ्यते शुभमात्मनः।
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत्।।[10]

"बौद्ध तथा शाक्त तंत्रों और सिद्धों तथा नाथों की साधना में जहाँ प्राणायाम, षट्कर्म, अष्टांग योगमुद्रा, श्वास-प्रश्वास का संचालन और नियंत्रण, नादानुसंधान आदि

---

१. श्रीमद्भागवत १/१११११२७/२७
२. ब्रह्मवैवर्त पुराणः ब्रह्मखण्ड/शिवोक्ताह्निकाचाचर १/१
३. ब्रह्मवैवर्त पुराः ब्रह्म खण्ड/शिवोक्ताह्निकाचार वर्णनम्। श्लोक १४
४. श्वोश्वतरोपनिषद/अध्याय ६/मन्त्र २३/
५. श्वेताश्वेतरोपनिषद/५/२२
६. शा० भा० श्वे० ६/२३/
७. महाभारत आदिपर्व ३/२२'२३ तथा आदिपर्व ३/३५-७७
८. घेरंड संहिता ३/१० ९. घेरंड संहिता ३/१३ १०. वही /३/१४/

यौगिक प्रक्रियाओं की साधना करनी पड़ती थी, गुरु तथा मंत्र आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो गये।"[१] सिद्ध योग में सिद्धगुरु की कृपा से सहज ही में योगसिद्धि हो जाती है। किसी अन्य क्रिया की आवश्यकता ही नहीं होती।"[२]

यही मत निम्नस्थ है....... "नाथ पंथी योगियों, सहज और वज्रयानियों, तांत्रिकों और परवर्ती संतों में इसीलिए सद्गुरु की महिमा इतनी फैली है। सद्गुरु के बिना जगत् के चाहे और सभी व्यापार हो जावें, पर यह जटिल साधना-पद्धति नहीं हो सकती।"[३]

"श्री गुरूगीता" में महादेव ने कहा है—

गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुदेवौ महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।
अखण्डानन्दबौधाय शिष्य सन्तापहारिणे।
सच्चिदानन्द रुप तस्मै श्री गुरवै नमः।।

शुक्ररहस्य— ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं।
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं ।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं तन्नमामि ।।

कबीर— गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पाय ।
बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय ।।[४]
सतगुरु सँवान को हितू हरिजन सई न जाति ।।[५]
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट ।
अन्तर हाथ सहार दे बाहर मारै चोट ।।[६]

गोरखनाथ— गगन मंडल में अंधा कूआँ तहाँ अमृत का बासा ।
सगुरा होइ सो भरि भरि पीवै निगुरा जाय पियासा ।।[७]

मीरा— पायो जी मैंने राम रतन धनपायो ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु किरपा करि अपनायो ।।[८]

---

[१] संतदर्शन : डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० १६

[२] योगांक-शंकर पुरुषोत्तम तीर्थ, पृ० १७३-कल्याण

[३] हिन्दी-साहित्य की भूमिका: आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ६५

[४] सं०वा० सं०भा० १ पृ० ३

[५] कबीर ग्रंथावली, पृ० २

[६] कबीर : संताक्षणी संग्रह, भाग-१, पृ० ३

[७] गोरखबानी : गोरखनाथ

[८] मीरा पदावली, पृ० ५५

सतगुरु मिलिया सुंज पिछानी ऐसा ब्रह्म मैं पाती।
सगुरा सूरा अमृत पीवे निगुरा प्यासा जाती।।[1]

चरनदास— हरि सेवा कृत सौ बरस गुरु सेवा पल चार।
तौ भी नहीं बराबरी वेदन कियो विचार।।[2]

सुन्दरदास— औरहू कहा लौं कछु मुख से बनाइ कहों,
गुरु की तो महिमा है अधिक गोबिंद तें।।[3]

दूलन— गुरुं ब्रह्मा गुरु विष्णु हैं गुरु संकर गुरु साध।
दूलन गुरु गोविन्द भजु गुरुमत अगम अगाध।।[4]

बुल्ला साहब— बलिहौं बलि हौं बलि हौं सतगुरु की,
जिन ध्यान दिए परमेश्वर को।[5]

दादू— साचा सत गुरु राम मिलावै।
सब कुछ काया माहिं दिखावै।।[6]

सरहपा— आठवीं सदी में ही सरहपा ने कहा— गुरु-उपदेश अमृत-रस है, शास्त्रार्थ गुरु-स्थल है, जहाँ तृष्णा नहीं बुझ सकती। गुरु-वचन मैं दृढ़ भक्ति करने से सहज उल्लास-परमानन्द की प्राप्ति होती है—

गुरू उबएसे अभिअ-रसु, धावन पीअउ जेहि।
बहु सत्यरथं - मरुस्थलहिं तिसिए मरिअस तेहि।।
वित्ताचित्ति विपरिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु।
गुरू वअणे दि मत्ति करु, होई जइ सहज उलालु।।[7]

गोरखनाथ— श्री गुरुं परमानन्दं बन्दे स्वानन्द विग्रहम्।
यस्य सान्निध्य मात्रेण चिदानन्दायते तनुः।।[8]

गुरु आत्मस्थ अन्तर्ज्योति को आच्छन्न करने वाली माया-आवरण को छिन्न करते हैं। गुरु पूर्ण ब्रह्म, आलेख तथा रमता राम हैं।

---

[1] संतववाणी संग्रह, भाग-२, पृ० ६९
[2] संतवाणी संग्रह, भाग-१, पृ० १४२
[3] संतवाणी संग्रह, भा-२, पृ० १०७
[4] दूलन दास, संतवाणी संग्रह, भाग-१, पृ० १३३
[5] बुल्ला साहिब, संतवाणी संग्रह, भाग-२, पृ० १७०
[6] दादू, भाग-२, पृ० १५१
[7] शर्यापद ५६-५७
[8] गोरखशतक - १

गरीबदास— **सतगुरु पूरन ब्रह्म है सतगुरु आप अलेख।**
सतगुरु रमता राम है, या में मीन न मेख।।[१]

सहजोबाई— वे अपने गुरु चरन दास का त्याग नहीं कर सकती, चाहे भगवान् उनसे छूट जाएँ—

चरनदास पर तन मन वारू, गुरु न तजूं हरि कूं तजि डारूँ।[२]

तन्त्रमतानुयायी के अनुसार गुरुपूजा अनिवार्य है—

गुरु पूजांबिना देवि स्वेष्टपूजां करोति यः ।
मन्त्रस्य तस्य तेजाँसि हरते भैरवः स्वयम् ।।[३]
श्री गुरुं परमानन्दं बन्दे स्वानन्दविग्रहम् ।
यस्य सन्निध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः।।[४]

"निगुरे की मति संभव नहीं, अतः साधना-मार्ग पर अग्रसर होने के लिए गुरु की अनिवार्यता सिद्ध है।"[५] "तब चत्तुर्भुज दास ने कह्यौ जो सूरदास जी ने बहुत भगवत जस वर्णन कियो। परि श्री आचार्यजी महाप्रभू न की जस वर्णन न कीयो। यह बचन सुनि के सूरदास जी बोले, जामे तौ सब श्री आचार्य जी महाप्रसूनको ही जस वर्णन कीजौ है। कछु न्यारो देखू तो न्यारौ करुँ।"[६]

उपर्युक्त विशद विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि गुरु के साथ हमारा सम्बन्ध वैसा ही है, जैसा हमारा अपने पूर्वजों के साथ। इसलिए राम के गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र के समान गुरुजनों के प्रति सेवा, श्रद्धा, आदर, नम्रता, विनय-भाव रखना परम पुनीत धर्म है।

*×**×**×*

---

१. संतवाणी संग्रह, भाग-१, पृ० १८३
२. संतवाणीसंग्रह, भाग-२, पृ० १९२
३. कालीविलास तन्त्र १/१३
४. गोरखनाथ : गोरख शतक १/
५. गोरखबानी, पृ० १२८
६. चौरासी वैष्णवन वार्ता, पृ० २८८

७.

राम कथा के वानर पात्रों के वैशिष्ट्य एवं सम्बद्ध कथा प्रसंगों के सन्दर्भ

वानर— बाल्मीकीय रामायण तथा श्रीरामचरितमानस में वानरसभ्यता तथा संस्कृति पर विशेष रूप से प्रकाश—निक्षेपण हुआ है। बाल्मीकि के अनुसार वानर "कामरूपिणः, शूरवीर, पवनसम वेगवान, नीतिज्ञ, धीमान, विष्णुसदृशविक्रम, अजेय-दिव्य वपुधारी तथा सर्वशास्त्रानिष्णात थे।

मानसकार ने भी हनुमान् के लिए कहा है—

अतुलित बलधामं हेमशैलभदेहम्। दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशम्। रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।।[1]

अस्त्र— पेड़, दांत, नख, पंजे उनके अस्त्र थे—

नख आयुद्य गिरि पादप धारी। चले गगन महि इच्छाचारी।।[2]
कतहु होइ निसिचर सें भेटा। प्रान लेहिं एक-एक चपेटा।।[3]

वानर मुष्टिका, लात और दांत से काटने में दक्ष थे—

मुटिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं।।[4]

उनकी आकृति विचित्र थी—

नख दंष्ट्रायुधाः सर्वेवीरा विकृतदर्शनाः। सर्वेशार्दूल दंष्ट्राश्च............।।[5]
रोहमर्षणाः।[6]

आकार—उनका आकार महागज, वट, शाल-वृक्ष, पर्वत तथा मेघाकार था।

कायिक वर्ण—उनका वर्ण सोने-जैसा था—

---

[1] मानस/सुन्दरकांड/श्लोक ३

[2] वही : वही /३४/९

[3] वही/२३/१

[4] वही/लंकाकांड/५२/५

[5] वा०रामायण / ४/३१/२४

[6] वही/४/३१/२३

कनक बरन तन तेज बिराजा। मानहू अपर गिरिन्ह कर राजा।।[१]

सुग्रीव "हेमपिंगल" तथा वाली "कनकप्रभ:" था। लंका पर आक्रमण करने के समय कपि "ताम्रवदना:" और "हेमाभा:" थे। रावण की सभा में जब अंगद गये, तब उनकी काया का वर्णन मानस में निम्न रूपों में दिया गया है—

अंगद दीख दसानन बैसे । सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे ।

उनके शरीर रोएंदार थे। सुग्रीव के राजमहल में वस्त्र एवं मालाधारी "प्रियदर्शन" नामक वानर था। बाल्मीकीय रामायण के अनुसार वानर पूंछ नामक लोचदार और कोमल उपकरण से विभूषित थे।

मानसिक लक्षण—

कहहूं कवन मै परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।।[२]

वानरों की विशेषताएँ—(१) वे चपल, उद्धत और चंचल चित्त थे।

(२) वे **तेज तथा गरम मिजाज** थे— परम क्रोध मिजहिं सब हाथा।
आयसु पैन देहि रघुनाथा।।[३]

(३) उनका स्वभाव प्रचंड और रुखा था। वे शरारती थे। मतंग ऋषि ने अपने वन (मतंगवन) से उन्हें निकाल दिया था।

(४) वे भावुक मनुष्य थे। सौभाग्य तथा दुर्भाग्य पर वे क्रमश: सुखी और दु:खी हो जाते थे।

(५) वे **कौतुकप्रिय** थे— रहा न नगर बसन घृत तेला।
बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।।[४]

(६) वे **भावुक प्राणी** थे—कह अंगद लोचन भरि वारी।
दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी।।[५]

(७) वे **वातूनी** थे— बालि न कबहूँ गाल अस मारा।
मिलि तपसिन्ह तै भएसि लबारा।।[६]

(८) वे **सरल हृदय** थे—

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे।।
की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए।।

---

[१] मानस/किष्किन्धा काण्ड/२९/७
[२] मानस/सुन्दरकांड/६/७
[३] वही//वही/५४/५/
[४] वही/वही/२४/५
[५] मानस/किष्किन्धाकांड/ २५/३/
[६] वहीं/लंकाकांड/ ३३ (ख) /६/

कह प्रभु हँसि जनि हदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू।।
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे।''[१]

(९) **वानरयूथ**— वे सदा-सर्वदा समूह तथा टोली में रह कर ही विचरण करते थे—

एहि विधि होत बतकहीं आए बानर जूथ। नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरुथ।।[२]
राम काजु आरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा।।[३]
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू।।[४]
चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।।
राम काज लय लीन मन बिसरा तन कर छोह।।[५]
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं।।[६]

(१०) **नेता भक्त**—दलगत आसक्ति के कारण ही वे अंधा-धुंध अपने नेता का अनुसरण करते थे। सीतान्वेषण के क्रम में सुग्रीव ने वानरों से कहा—

जनक सुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महुँ आएहु भाई।।
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराउँ।।[७]
बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत।।[८]
चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह।।[९]

(११) **उचितशिक्षा के प्रेमी**— हनुमान ने जामवान से कहा—

जामवत मैं पूँछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहुँ मौही।।''[१०]

किष्किन्धा नगर वानरगढ़ था। रावण के गुप्तचर सुक के शब्दों में—

नाना बरन भालु कपि धारी। विकटानन बिसाल भयकारी।।''[११]
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला।।[१२]
अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदरा।।''[१३]

---

[१] वही/लंकाकांड/ ३१ (ख) ७-१०/
[२] मानस/किष्किन्धाकांड/२१
[३] वही/वही/२१/६/
[४] वही/वही/२२/२
[५] वही/ही/२३/
[६] वही/वही/२३/२/
[७] मानस/किष्किन्धाकांड/२१/७-८
[८] वही/वही/२२/
[९] वही/वही/२३
[१०] वही/वही/२९/१०
[११] मानस/सुन्दरकांड/५३/६/
[१२] वही/वही/५३/८
[१३] वही/वही/५४/२

बाल्मीकीय रामायण के अनुसार रावण के गुप्तचर सारण के शब्दों में एक "सौ वृद, एक सहस्र शंकु तथा २१ सहस्र कोटि वानर किष्किन्धा में सुग्रीव के संगी-साथी थे।[1] वानर कटक उमा में देखा। सौ मुटख जो करन चह लेखा।।"

वानरों का गुफा में रहना उनकी आदिम जातीय अविकसित सभ्यता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।[2] सुग्रीव द्वारा राम के सहायतार्थ प्रेषित वानर मुख्य आर्य प्रदेश के पूरब तथा उत्तर में निवास करने वाले आदिवासी राजा थो। वानरों का अपना स्वतन्त्र राज्य था। उनका समाज "हरियाणा" नाम से प्रसद्धि था। सुग्रीव क्रमशः कपीश तथा हरीश थे— तब कपीस चरनन्हि सिक नावा। गहि भुज लछिमन कंट लगावा।।[3]
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा।।[4]

हरि की जातियाँ—

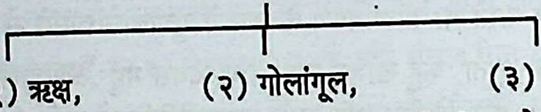
(१) ऋक्ष,
(२) गोलांगूल,
(३) वानर।

ऋक्ष वानर थे, भालू नही। वे ऋक्ष पर्वत के निवासी हरिगण थे। सार के अनुसार गोलांगूल काले मुँहवाले, घोर और महाबली थे। वानर पूर्णतः समुन्नत थे। वानरों का समाज अनेक यूथों (वर्गों) में विभक्त था, जिनके मुखिया "यूथप" थे—
कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ। नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ।।[5]
जथा जोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे।।[6]

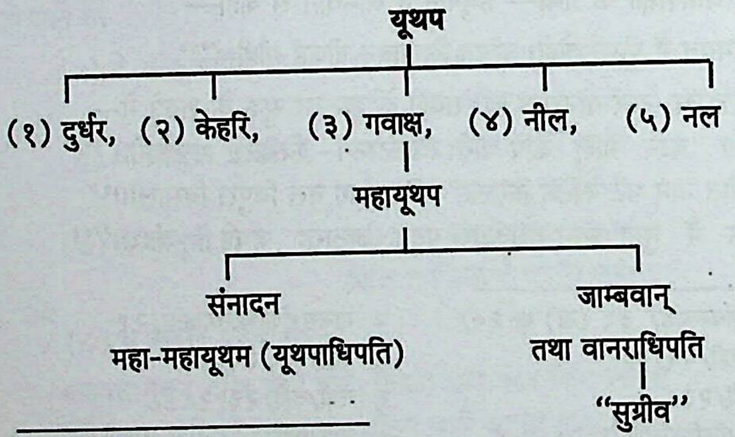
यूथप
(१) दुर्धर,
(२) केहरि,
(३) गवाक्ष,
(४) नील,
(५) नल
महायूथप
संनादन
महा-महायूथम (यूथपाधिपति)
जाम्बवान्
तथा वानराधिपति
"सुग्रीव"

---

[1] वही/किष्किन्धाकांड/२१/१/
[2] जे० मौरे, ओरिजनल संस्कृत अैक्ट्स, वौल, २, पृ० ४१६
[3] मानस/किष्किन्धा कांड/१९/६/
[4] मानस/वही/११/७/
[5] मानस/सुन्दरकांड/३४/
[6] मानस/लंकाकांड/३८(ख)/५/

अस मैं श्रवन सुना दसकंधर। पदुम अटारह जूथप बंदर ।।''[१]
कपि बिचारितन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा ।।

चतुरगिनी सेना

चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल विपुलाई।।[२]
कपि पति बेगि बोलाए आए जूथरजूथ। नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरुथ।।[३]
बानर जूहा— अब मारूतसुत दूत समूहा। पठवहु जह-तहँ बानरजूथा।।[४]
बानरजूथ— एहि बिधि होत बतक.ही आए बानर जूथ।
कीसबरूथ— नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीसबरुथ।।[५]
सुभट— सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मति धीर सुजाना।।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूछेहु सब काहू।।[६]

वानरकटक—वानर कटक उमा मैं देखा। स्त्रो मुरख जो करन चह लेखा।।[७]
कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं ।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ।।[८]

मर्कट विकट बरूथा (कपि भालू की मिलित सेना)—
धावहु मर्कट बिकट बरुथा । आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा।।[९]
मर्कट-भट— चली सेन कछू बरनि न जाई। गर्जहि मर्क ट भट समुदाई।।[१०]
प्रबल-कपि-जूथा—राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहि निसिचर सुभट बरूथा।।[११]
मर्कट-विकट-भट— मर्कट विकटभट जुटत करत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हए।।[१२]
बली मुखजूथा— भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा।।[१३]
कपिभट्टा— देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घनघट्टा।।[१४]
कीस प्रचंड— तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड।
कपि बल प्रबल देख तेहिं कीन्ह पाषंड।।[१५]

---

१. मानस/सुन्दरकांड/५४/३/
२. मानस/लंकाकांड/३/९/
३. वही/सुन्दरकांड/३/३४/
४. वही/किष्किन्धाकांड/१८/४/
५. मानस/किष्किन्धाकांड/२१/
६. वही/२२/१-२
७. वंही/२१/१
८. वही/३०(क)
९. मानस/लंकाकांड/९
१०. वही/३/२/
११. वही/४१/१/
१२. वही/४८(ख)/१०/३-४
१३. मानस/लंकाकांड/६९/१
१४. वही/८८/२/
१५. वही/९५/२/

भटकीसा— मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा ।।[१]
महामर्कट— देखि महामर्कट प्रबल रावन कीन्ह विचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया विस्तार ।।"[२]

राजा प्रजा तथा शासक शासित में मधुर सम्बन्ध था। आपतिकाल में वानर स्वदेश (किष्किन्धा) में श्रम करते थे और लड़ाई के समय सुदूर देशों में लड़ने जाते थे। "इस समाज-व्यवस्था से मध्युगीन सामंत-प्रथा का बहुत साम्य दीख पड़ता है।"[३] वानरों का अपना राजनीतिक संगठन भी था। बाल्मीकीय रामायण में "कपिराज्य" की बहुधाचर्चा हुई है। वानरों में राजा का पद परंपरागत होता था तथा ज्येष्ठ पुत्र उसका उत्तराधिकारी हो जाता था। किष्किन्धा का राजा पहले बालि था। बालि-वध के बाद सुग्रीव राजा तथा अंगद युवराज हुए— लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज।।[४]

इनका अपना मंत्रिमंडल तथा गुप्तचर विभाग था। हनुमान ने "रामकाज" की सुधि सुग्रीव को दिलायी— निकट जाइ चरनन्हि सिरू नावा।
चारिहू बिधि तेहि कहि समुझवा ।।[५]

वानर आन्तरिक मामले में स्वतन्त्र थे, लेकिन वे अवध नरेश के करदाता थे। राम ने शैलवनादि वानर प्रदेश को अयोध्या साम्राज्य के अधीनस्थ बता कर वालिवध को न्याय संगत कहा था— **इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।**
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेकवपि।।[६]

आहार— अशोक वाटिका में हनुमान जी फल खाये—
चलेउ नाइ सिरू पैठेउ बागा। फल खाएसि तरू तारै लागा।।[७]
खाहि मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलावहिं।।[८]

पेय—बाल्मीकि के अनुसार वे मद्यपान करते थे।

वस्त्र—वे वस्त्र पहनते थे। राम को सुग्रीव ने कहा—
ँदमुक्ता तु मा तत्र वस्त्रैणैवेन वानरः।
तदानिर्वासयामास वालि विगत साध्वसः।।[९]

---

[१] वही/९७/२/
[२] वही/१००/
[३] नानूराम व्यास : रामायण कालीन समाज, प्रथम संस्करण, पृ० ५८
[४] मानस/किष्किन्धा कांड/दो०।।
[५] वही/वही/१८/२/
[६] वा०रा० ४/१८/६/
[७] मानस/सुन्दरकांड/·१७/१
[८] वही/लंकाकांड/४/६
[९] वा०रामायण/४/१०/२६

गहना—वे स्वर्णाभूषण भूषित थे। सुग्रीव के राजमहल की स्त्रियाँ "भूषणोत्तम भूषिता:" थी। वालि को आदि-कपि वाल्मीकि ने "हेममाली" (स्वर्णमाला पहनने वाला) कहा है। राम को प्रणाम करते समय सुग्रीव की माला लटकने लगी थी—"प्रलम्बीकृत भूषणा:।

कलाप्रेमी—वानर कला प्रेमी थे। वे पुष्प, गंध, प्रसाधन, तथा अंगराज के शौकीन थे। किष्किन्धा का वायुमण्डल चंदन, अगर तथा इंदीवर की सुरम्य सुरभि से सुवासित था। लक्ष्मण ने सूर्यसदृश तेजस्वी सुग्रीव को "स्वर्ण सिंहासन पर बहुमूल्य बिछौने पर विराजमान देखा था। वह दिव्य मालाओं तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थे और अलंकृत युवतियाँ उन्हें घेरे खड़ी थी।[1]

आर्य सखा वानर—सखा वचन सुनि हरषे कृपासिंधु बल सींव।
कारन कवन बसहुं बन मोहि कहहुं सुग्रीव।।[2]
सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मै तोरें।।[3]

आर्य मित्र—हनुमान ने सुग्रीव और राम के बीच मित्रता (अग्नि साक्ष्य देकर) दृढ़ की— तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाई।।[4]

आचार-विचार—वे बहुत अधिक विनम्र थे।

(१) हनुमान—बिप्र रूप धरि कपि तहं गयउ। माथ नाइ पूछत अस भयउ।।
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा।।
कटिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी।।[5]
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।[6]
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हष हृदयं निज नाथहि चीन्ही.।।[7]

(२) सुग्रीव—सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेटेउ अनुज सहित रघुनाथा।।[8]
बार-बार नावइ पद सीसा। प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा।।[9]

(३) तारा— सुनत बालि क्रोधातुर क्षावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।।[10]

(४) वालि— सुनहू राम स्वामी सन चल चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि।।[11]

---

[1] वही/४/३४/६३-४
[2] मानस/किष्किन्धा/दो० ५/
[3] मानस/६/१०/
[4] वही/४
[5] वही/६-८
[6] मानस/कि०कांड/१/५/
[7] वही/७/
[8] वही/३/७/
[9] वही/६/१४
[10] वही/६/२७/
[11] वही/९/

(५) **अंगद**—बरन नाइ सिरू बिनती कीन्ही। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही।।[१]
अतिथि पूजक वानर—करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारिपलंग बैटाए।।[२]
शिष्टाचार— तब कपीस चरनन्हि सिरू नावा। गहि भुज लछिमन कंट लगावा।।[३]
नाइ चरन सिरू कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी।।[४]

राज्याभिषेक—सुग्रीव का राज्याभिषेक आर्य नीति-रीति तथा शास्त्रीय एवं परम्परागत विधि-विधान से हुआ था।

मृतक कर्म— वालि की और्ध्व दैहिक क्रिया भी सुग्रीव ने आर्यरीति से ही का—
तब सुग्रीवहि अयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा।।[५]

अतिकामी वानर—विषय बस्य सुरनर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अतिकामी।।[६]

किष्किन्धा राजधानी सुख समृद्धि तथा वैभाव विलास का केन्द्र था। रजत, स्वर्ण, हीरे मोती आदि बहुमूल्य द्रव्यों से वह नगर संपन्न था।

उद्दाम काम-व्यापार-प्रिय वानर—

बाल्मीकीय रामायण में वानरों के असंयमित यौन-व्यापार पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। मानस में भी इसका बार-बार संकेत मिलता है। नव यौवनसंपन्न कामरूपिणी अंजना पर आसक्त होकर मारूत ने उसका आलिंगन किया, जिसके कारण वह गर्भवती हुई और उसने एक गुफा में हनुमान को जन्म दिया। शास्त्रानुसार नियोग करने वाले व्यक्ति को स्त्री के पास वासनारहित होकर जाना चाहिए, किन्तु वायु तथा अंजना का यौन सम्बन्ध एक अमर्यादित कृत्य था। वालि-सुग्रीव का वैवाहिक सम्बन्ध तो यौन शैथिल्य के रूप में अवैध संबंधों के सिवा और कुछ नहीं था। "मृत रिपु, की विधवा को युद्ध की लूट के रूप में ले लेने की रिवाज वानर-जाति में अवशिष्ट बर्बर प्रथाओं का सूचक है।"[७]

विवाह-सम्बन्ध वानरों में होता था। घर-द्वार से सुदूर विचरण करने वाले वानरों का प्रमुख संवल था—"पत्नी-पुत्रों की ममता तथा पारिवारिक अन्य बंध। प्रियजनों की याद उन्हें लक्ष्यप्राप्ति कर शीघ्र घर लौटने को आन्दोलित करती थी।

उच्चादर्श—अंगद उच्च आदर्श एवं नैतिक भावनाओं से भरे हुए थे। उन्होंने स्पष्ट स्वरों में स्वीकार किया कि उनके चाचा ने उनके पिता के जीवन काल में ही उनकी

---

[१] मानस/कि०कांड/१९/१
[२] वही/१९/५/
[३] वही/१९/६/
[४] वही/२०/१/
[५] मानस/कि०कांड/१०/८/
[६] वही/२०/३/
[७] डॉ० शान्ति कुमार नानू राम व्यास : रामायण कालीन समाज, प्रथम संस्करण, पृ० ६३

माता तारा का, जो बड़े भाई की पत्नी होने के नाते उनके लिए माततुल्य होनी चाहिए थी, कामवश उपभोग किया था—

मातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतों महिषीं प्रियम् ।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकारोति जुगुप्सितः।।
कथं स धर्मे जानीते... ....।[1]

हनुमान लंका के राज प्रसाद में मंदोदरी को देखकर भी नहीं देख पाये थे। वालिकृत राम की आलोचना आज भी नैतिक तर्क का ज्वलन्त उदाहरण है।

धर्म-कर्म—वानर आर्यों के ही देवी देवता को अपना इष्ट देव मानते थे। वे कर्मकांडी थे। वे अपने पितर का श्राद्ध तर्पणादि करते थे। समृद्धि तथा विजय प्राप्ति हेतु वे स्वस्त्ययन-जैसा मांगलिक कर्म करते थे। लंका-प्रस्थान के समय हनुमान ने नरहरि तथा भगवान को क्रमशः याद किया था—

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी।।[2]
अति लघु रूप घरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।[3]

लंका की अशोक वाटिका में प्रवेश करने के समय हनुमान ने विजयेच्छावश ब्रह्मा, अग्नि, पवन, इन्द्र, पाशयुक्त वरूण, चंद्र, सूर्यादि की अभ्यर्थना की थी।

सुसभ्य तथा सुसंस्कृत—

वानर लोग सुसभ्य तथा सुसंस्कृत थे। हनुमान 'वाक्य कुशल', "ज्ञानिनामग्रगण्यम्" तथा "सकल गुणनिधानम्" थे। उनके वार्त्तालाप से पहले ही राम ने अनुमान लगाया कि "जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार सुललित भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। इन्होंने निश्चय ही व्यकरणशास्त्र का कई बार स्वाध्याय किया होगा, क्योंकि बहुत सी बातें करने पर भी उनके मुंह से कोई अशुद्धि नहीं हुई :—

नानृग्वेदविनीतस्य नायुजवेदधारिणः। ना सामवेद विदुषक्यमेवं विभाषितुम्।।
नून व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधाश्रुतम। बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्।।[4]

आदर्श वक्ता—वे एक आदर्श वक्ता थे। उनकी वाणी बुद्धि के आट गुणों से विभूषित थी—

शत्रुषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। उहापोहो र्थ विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धी गुणाः।।
तथा— **बुद्धया ह्यष्टंगया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम।**[5]

---

[1] वा०रामायण/४/५५/३-४ [2] मानस/सुन्दर कांड/३/१/ [3] वही/४/४/
[4] वा०रामायण/४/३/२८-९ [5] वा०रामायण/६/११३/२४/

आदर्श सचिव—वह उन आदर्श सचिवों तथा दूतों में से थे, जो अपनी वाणी का आश्रय लेकर ही अपने स्वामी का मनोरथ पूरा कर लिया करते थे-

एवं गुणगणैर्यक्ता यस्यस्युः कार्यसाधिकाः।
तस्य सिध्यन्ति सर्वे र्था दूतवाक्य प्रचोदिताः।।[1]

तलवार लेकर वध करने को उतारू शत्रु का हृदय भी उनकी शीतल वाणी से बदल जाता है— **कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेरटेरपि।**[2]

आयुर्वेदज्ञाता—वे औषधियों के ज्ञाता थे। लक्ष्मण को शक्ति वाण से त्राण देने के लिए हनुमान संजीवनी बूटी ले आये। वे जड़ियों के अनुसंधाता थे।

अनुसंधाता—सीतान्वेषण के समय उन्होंने ऋक्ष बिल को ढूँढ निकाला तथा उसकी सुसंस्कृता तपस्विनी अधिष्ठात्री स्वयंप्रभा का परिचय प्राप्त कर गुफा के इतिहास का शोध कर डाला—

चढ़ि गिरि सिखर चहुँ दिसि देखा। भूमि बिबर एक कौतुक पखा।।
चक्रबाक बक हंस उड़ाही। बेहुंतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं।।
गिरि ते उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा।।
आगे कर हनुमंतहि लीन्हा। पैठे बिबर बिलंबुन कीन्हा।।
दीख जाइ उपबन बन सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रूचिर तहं बैठि नारि तपपुंज।।[3]

महान धावक—हनुमान तत्कालीन युग के महान् धावक थे।

कपि देखा दारून भट आवा। कटकटाइ गरजा अरू धावा।।[4]

अर्थ निश्चयी—शरभ वानर राजनीतिक समस्याओं का समाधानकर्त्ता थे।

कुशल नीतिज्ञ—जाम्बवान शास्त्रज्ञ, विलक्षण तथा निर्देष वक्ता थे।

उचित वक्ता—मैंद अपनी युक्ति युक्तता के लिए प्रख्यात थे।

राजा—राजा सुग्रीव ने शास्त्र का अध्ययन किया था। कंडु ऋषिद्वारा रचित गाथा सांहितेय का उसने गहन अवगाहन किया था।

भ्रमणशील— वे भ्रमणंशील थे।

(१) वालि सन्ध्योपासनाहेतु प्रतिदिन चार समुद्रों की यात्रा करता था।
(२) हनुमान ने अपनी ज्ञान पिपाशा के परिशमनार्थ "विश्व-भ्रमण" किया था।
(३) जाम्बवान ने सागर-मंथन के समय इक्कीस बार पृथ्वी की परिक्रमा की थी।

---

[1] वही/४/३/३५/

[2] वही/४/३/३३/

[3] मानस/कि०कांड/२३/५-८,२४

[4] मानस/सुन्दरकांड/१९/४

अभियंता— नल-नील दो वानर भाई थे। दोनों महान अभियंता थे। वे अद्वितीय "स्थापत्यपति;" थे। उन दोनों ने भारत और लंका के मध्यवर्ती सागर पर "सेतु" बनाकर अपने परम अनुपम वस्तु कला कौशल से सम्पूर्ण संसार को आश्चर्य चकित कर दिया। आज तक सागर पर दूसरा सेतु नहीं बाँध जा सका।

अपार सुन्दरी—तारा और रूमादि अपार सुंदरियाँ थी।

तारा— अनिंद्यवर्णा, प्रियवादिनी, चारुनेत्रा तथा चारुहासिनी थी। वह लोकश्रुता, पुराणपारंगता, बहुज्ञा, तेजस्विनी, पतिव्रता तथा अग्रसोचिनी थी। स्पार्टा की नारियों की तरह तारा को भी वीरोचित प्रशिक्षण उसके पिता सुषेण ने दिया था। स्त्रीसुलभ चतुरता, कान्तासम्मित अनुनयविनय एवं धर्नानकूल सारगर्भित वचनों से शशिकलामुखी तारा ने सुग्रीव के प्रति लक्ष्मण के मनोमालिन्य को दूर कर दिया। वह एक असाधारण नारी थी। उसमें स्त्रियोचित गुणों के साथ-साथ उच्च कोटि की राजनयज्ञता तथा वाग्मिता विद्यमान थी। उसमें सरस भावुकता के साथ क्षत्रगत निर्भीकता भी थी। सुख के समय की सुकुमारी, विलासिनी और कुसुमकली-सी कोमलागिनी युद्ध के समय विवेकशीला और सत्परामर्शदात्री बन जाती थी।

राज्य संचालिका—किष्किन्धा के राजा वालि के वध के उपरान्त किष्किन्धा नामक नगरी का शासनसूत्र तारा के ही हाथों में था। सुग्रीव को तारा ने ही सजग कर सीता की खोज करने के लिए प्रेरित किया। लंका से अयोध्या के विजयप्रयाण के समय सीता तारा के अदभुत गुणों से भावाभिभूत होकर ही अयोध्या प्रयाण हेतु आमंत्रण दी थीं। मानस में वानर को पूँछयुक्त बतलाया गया है—

कपि के ममता पूंछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ।।[1]
पूछहीन बानर तहं जाइहि। तब सट निज नाथहि लइ आइहि।।[2]
पूछ बुझई खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जानक सुता के आगें टाढ़ भयउ कर जोरि।।[3]

पूंछ बानरों की प्रिय भूषण है। रावण ने कपियों की पूँछ को उनका आभूषण कहा है—'कपिनां किल आंगूलमिष्ट भवति भूषणम्।'[4] "पूछ" केवल हनुमान के पास ही थी और वानरों के पास नहीं। "अन्वेषकों ने इतिहास में पूँछ लगाने वाले व्यक्तियों या जातियों का अस्तित्व ढूढ़ निकला है। बंगाल के कवि भातृ गुप्त हनुमान के अवतार

---

१. मानस/सुन्दरकांड/२४/
२. मानस/सुन्दरकांड/२४/१/
३. वही/२६/
४. वा०रामायण/५/३३/३/

माने जाते थे और वह एक पूँछ लगाते थे।[१] भारत के एक राज्यपरिवार में राज्याभिषेक के समय पूँछ धारण करने का रिवाज प्रचलित था। श्री विनायक दामोदर सावरकर ने अपने अंडमान-कारावास के संस्मरण में लिखा है कि इस द्वीप में पूँछ लगाने वाली एक आदिवासी जाति रहती है।[२] विजगापत्तन के शबरों में पूँछ आभूषण के रूप में पहनी जाती है।[३]

चाल-ढाल तथा रूपरंग—उनका आकार-प्रकार चाल-ढाल तथा रूप-रंग बानर जैसा था। “रूस वाले किसी समय जापानियों को पीला-बंदर (येलो मंकी) कहकर उनका उपहास किया करते थे।[४] इसीलिए, लोक मानस ने उन्हें वानर मान लिया। श्री मन्मथ नाथ राय के अनुसार “वानर भारत के मूल निवासी व्रात्य थे।”[५] बाद में आर्यों के आगमन के पश्चात वे दक्षिणी पङ्गार के उर्वर भू-भाग में बस गये। “वानर एक आर्य जाति थी, जो दक्षिण भारत में निवास करने के कारण उत्तर भारतवासी अपने मूल बंधुओं से दूर पड़ गए। तदन्तर आर्य संस्कृति से संपर्वित होकर प्रगति पथ पर अग्रसर हुए।[६] “गौरेशियो, हवीलर आदि विद्वान वानरों को दक्षिण भारत की पहाड़ियों में निवास करने वाली अनार्य जाति मानते है।”[७]

वनचर— वे मूलतः वनचर थे। आर्य संस्कृति में वे सब दक्षित हो गये। राजा दंड की दक्षिण विजय के उपरान्त यह आविासी जाति आर्यों की प्रगति शीलता एवं सभ्यता-संस्कृति के समक्ष नत हो गयीं आदिवासी और अन्ततः आर्यों में घुल-मिल गई। वानर राज्य के निकट मधुवन नामक उनकी एक “विहार-भूमि” थी। वानरों की शासन व्यवस्था राजा, परिषद्, सेना तथा मंत्रिमंडल के बल पर चलती थी। सुग्रीव का राज्याभिषेक परंपरागत नहीं हुआ।

अग्नि साक्षी— पशु बंदर आग का उपयोग करना आज तक नहीं सीख पाया, किन्तु हनुमान ने अग्नि-प्रज्वलित कर रामसुग्रीवमैत्री को सुदृढ़ किया और सिद्धकर दिया कि वे मनुष्य हैं, वानर नहीं।

---

१. श्री दिनेश चन्द्र सेन, बंगाली रामायण, पृ० ५२
२. श्री विनायक दामोदर सावरकर : महाराष्ट्रीय कृत “रामायण-समालोचना।”।
३. श्री जी० रामदास
४. श्री चि० वि०वैद्य --दि रिडिल ऑफ दि रामायण, पृ. ९६
५. श्री मन्मथ नाथ राय : सरस्वती भवन स्टडिज, वॉल-५, पृ० ७३
६. फण्डितवर श्री मदमर सिंह : अमर कोष, श्लोक ३, द्वितीय कांड, १९२४, प्रथमावृत्तौ १०.०० पृ० ११३
७. वही, पृ० ११३

वनवासी वानर— वाल्मीकीय रामायण में "वानर", "वनगोचर", "वनकोविद", "वनचरी" तथ "वनौकस" आदि सिद्ध करता है कि वानर वनवासी थे।

व्युत्पत्ति—'वनसि (अरण्ये) भव: चरो वा इति वानर:'। इन्हें "हरि" तथा "प्लवंग" भी रामायण तथा मानस में कहा गया है।

बन्दर के पर्यायवाची नाम—कपिप्लवङ्गप्लवगशाखामृगलोमुखा: ।
मर्क टो वानर: कीशो वनौका अध भल्लुकौ।।[१]

भालू—भालू के भी विभिन्न नाम हैं, जैसे - भल्लूक, ऋक्ष, अच्छ, और भल्लू। "ऋक्ष अच्छ,भल्ल भल्लूका"[२]। मानस में केवल ऋक्ष की ही चर्चा हुई है। अत: रामायणकालीन वैज्ञानिक लब्धि आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों से कहीं अधिक समुन्नत थी, यह उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्टत: सिद्ध हो जाता है। मानसकार ने राक्षसों के विभिन्न पर्यायवाची नामों का उल्लेख मानस में किया है, जिनका वर्णन निम्नस्थ है—

राक्षस—रिषि अगस्त साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी।।[४]

निशाचर—यज्ञविध्वंसकों को 'निशाचर' कहा गया है—

(क) देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं।।[५]

(ख) भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बांधेउ नागपास सोई राम।।[६]

निशिचर—(ग) क्षाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा।।[७]
(घ) लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर।।[८]

रजनीचर— (ङ) प्रभु बिलौकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ।।[९]
(च) उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए विकट भट रजनीचरा ।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा ।।[१०]

असुर— (छ) मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी ।।[११]
(ज) असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ।।[१२]

---

१. श्री के०एस० राम स्वामी शास्त्री : इण्डियन कल्चर, वॉल-५, पृ० १९५
२. शांति कुमार नानू राम व्यास: रामायण कालीन समाज, प्रथम संस्करण, पृ० ९५
३. मानस/५/५६(ख)/११
४. वही/१/२०५/४/
५. वही/७/५८/
६. वही/३/१७/४
७. वही/३/१७/११
८. मानस/३/१८/१/
९. वही/३/
१०. वही/१/२०९/६/
११. वही/१/१२१/
१२. वही/६/३९/१०

मनुजाद— चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा । तिमि धाए मनुजाद अबूझा॥[1]

जातुधान— नाना आयुध सरचाप धर जातुधान बलवीर ।
कोट कंगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर॥[2]

तमीचर— गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाई।
चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराई॥[3]
चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥[4]

राक्षस के अन्य नाम भी हैं, जैसे -कोफप, क्रव्याद, अस्रप, आशर, रात्रिचर, कर्बुर, निकषात्मज, यातु, पुण्यजन, नैर्ऋत, रक्षस:—

राक्षस: कौण: क्रव्याक्रंव्यादो स्रप अशर:। रात्रि चरो रात्रिचर: कर्बुरो निकषात्मज॥
यातुधान: पुण्यजनो नेर्ऋतो यातुरक्षसी॥[5]

किन्तु मानस में उनका उल्लेख नगण्य है ।

राक्षसों की नामावली—

विश्वश्रवा या विश्रवा पुत्र —

१. रावण
२. कुंभकर्ण
३. विभीषण
४. मेघनाद, (ईन्द्रजीत)
५. अक्षय कुमार
६. खर—
 १४००० राक्षसों का नायक
७. दूषण, खर का सेनापति
८. मारीच
९. सुबाहु,
१०. त्रिशिरा
११. कालनेभि
१२. राहु
१३. केतु
१४. सुवेण
१५. कबन्ध
१६. महोदर
१७. महापार्श्व
१८. विरूपाक्ष
१९. अकंपन
२०. विराध
२१. जय
२२. पुर्वाईता, ४०४
२३. चन्द्रोदर ४०५
२४. विधुज्जिह्व
२५. केशी ४१२
२६. बर्गासींगा ४१२
२७. दर्सासींगा ४१३
२८. शम्बूक
२९. सुन्द ४१६
३०. सेमंदारी सीना ४१६.
३१. अतिकाय
३२. प्रहस्त

---

१. मानस/६/४०/
२. वही/५/७४(ख)/
३. वही/६/८५/३/
४. पण्डितवर श्री मदमन सिंह : अमरकोष प्रथम काण्ड, श्लोक ६२-६३, प्रथम काण्ड पृ० १४

(३३) शौष्कल (रावणदूत)
(३४) मारूयवान
(३५) रावणपुत्र सिंहनाद
(३६) रावणदूत लोहिताक्ष
(३७) मधु
(३८) कैटभ
(३९) हिरण्यकशिपु
(४०) हिरण्याक्ष
(४१) मूलकासुर (सीता द्वारा वध)
(४२) कुंभकर्णपुत्र कुंभगर्भ
(४३) लवणासुर
(४४) वाणासुर
(४५) मरूत
(४६) तृणविन्दु
(४७) रावणपुत्र वीरवाहु
(४८) विभीषण पुत्र तरणी सेन
(४९) शुक
(५०) सारण
(५१) अहिरावण या महिरावण
(पाताल का राजा)
(५२) गंगा महासूरी -नागलोक का राजा
(५३) मलद-देश है।
(५४) करूष - सुन्द इसका राजा था।
(५५) सुकेतु
(५६) सुन्द
(५७) इल्वन
(५८) वातापि
(५९) विल्मन रंजन
(६०) चन्द्रोदर
(६१) सेमंदारी सीना
(६२) जलन्धर
(६३) सहस्र बाहु
(६४) राजा बालि
(७७) वृत्र
(७८) दुर्धर
(७९) वेतपानि
(८०) बलिमुख
(८१) ८० हजार किंकर नामक राक्षस
(८२) जम्बुमाली
(८३) ध्रमाक्ष
(८४) निकुम्भ
(८५) अक्षादि
(८६) अनीक
(८७) अनक
(८८) शरभ या पनस
(८९) सम्पाति
(९०) प्रघस
(९१) कुमुख
(९२) कुलिशरद
(९३) धूमकेतु
(९४) नमुचि
(९५) शंबर
(९६) अरिष्ट
(९७) वृषपव्वी दैत्य
(९८) विरोचन
(९९) याण
(१००) महिषासुर
(१०१) मधुकैटभ
(१०२) चण्डमुण्ड
(१०३) रक्त बीज
(१०४) शुम्भ-निशुम्भ
(१०५) नीककुक्षि

(१०६) बलाहक
(१०७) उदराक्ष
(१०८) उदराक्ष
(१०९) ललाटाक्ष
(११०) सुभीम
(१११) भीमविक्रम
(११२) सर्वभानु
(११३) ध्वाऊ
(११४) ध्वस्त कर्ण
(११५) शङ्ककर्ण
(११६) अयोमुख
(११७) ज्योतिवीर्य
(११८) विद्युन्माली
(११९) रक्ताक्ष
(१२०) भीमदंष्ट
(१२१) महाकाय
(१२२) दीर्घबाहु
(१२३) कृतकानत
(१२४) कृतान्त
(१२५) काल
(१२६) हरण
(१२७) मृगहा
(१२८) यज्ञहा
(१२९) ब्रह्महा
(१३०) गोघ्न
(१३२) स्त्रीघ्न
(१३३) माली
(१३४) सुमाली
(माल्यवान)
(१३५) अन्धक
(१३६) अंशुमाली
(१३७) अंजना
(१३८) सत्यभामा
(१३९) नीरान्तक
(शायद नारान्तक)
(१४०) दनु
(१४१) तपन
(१४२) व्रज्रंमुष्टि
(१४३) वज्रदन्त
(१४४) बलाध्यक्ष
(१४५) पिप्रु
(१४६) आतापि
(१४७) असुन्द
(१४८) शुष्ण
(१४९) अर्बुददैत्य
(१५०) देवक
(१५१) द्रूह्य
(१५२) कवष
(१५३) श्रुतबुद्ध
(१५४) पुलोम
(१५५) तारक असुर
(१५६) हाटक लोचन
(१५७) अनिप
(१५८) विघस
(१५९) प्रभाति
(१६०) जम्भ
(१६१) रावण का गुप्तचर
शार्दुत्व
(१६२) देवानतक (रावणपुत्र)
(१६३) मकराक्ष
(१६४) सुमूख
(१६५) दुर्मुख
(१६६) धान्यमालिनी
(१६७) तारकीसुर
(१६८) कालकेतु आदि।

राक्षसियों की नामावली —

(१) ताड़का
(२) शूर्पनखा, चन्द्रनखा
(३) अयोमुखी, रामकथा, पृ० ४०३ देखें
(४) शतहृदा (विराध की माता, पृ०. ४०४)
(५) अनुराधा (पृ० ४०५)
(६) कैकसी
(७) मन्दोदरी
(८) सुलोचना
(९) प्रभंजिनी
(१०) त्रिजटा
(११) कारूणिका
(१२) जालिनी
(१३) स्वयंक्रभा
(१४) नायावती

(१५) लंकिनी
(१६) विभीषण पुत्री की अनला
(१७) निकषा
(१८) विभीषण पुत्री वेंजकाया
(१९) ताड़का (नरभक्षिणी) मारीच की माँ
(२०) सिंहिका
(२१) वरूणकन्या सत्यवती
(२२) अनंग कुसुमा
(२३) नल नंदिनी
(२४) हरिमालिनी
(२५) पद्मरागा (सुग्रीव पुत्री)
(२६) लंकासुन्दरी
(२७) मकरी दैत्य
(२८) सरमा
(२९) प्रमिला
(३०) रत्नश्रवा
(३१) कुषवा
(३२) पुष्पोतकटा
(३३) मालिनी
(३४) रामा
(३५) शार्मिका
(३६) अनला
(३७) अरजा
(३८) देवयानी
(३९) विन्ध्यावली

(१) बाल्मीकीय रामायण की प्रक्षिप्त कथावस्तु के अनुसार हनुमान ने राम के ८०००० यौद्धयों, सात मंत्रिपुत्रों तथा पाँच सेनापतियों का वध किया। सावधान—'रावण' का राम अर्थ का अनर्थ होगा।

(२) कृत्तिवास (५, ९) के अनुसार तीन लाख राक्षसों ने हनुमान की पूँछ धर दबायी थी।

(३). आनन्द रामायण (१, ९, २०९-२११) में दस करोड़ राक्षसों को लेकर रावण लड़ने निकला, किन्तु हनुमान ने लौहस्तम्भ से सबको मार दिया और करोड़ो राक्षसों , को एक साथ पूँछ में बाँध कर कौतुकवश रावण-सिर पर मारा, जिससे रावण मूर्च्छित हो गया।

लंका की सेनाएँ—

(१) **भट**—दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी । भट अतिकाय अकंपन भारी ।।[1]
(२) **रणधीरा**—अपर महोदर आदिक बीरा । परे समर महि सब रनधीरा ।।[2]
(३) **महामहायोद्धा**—तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महामहाजोधा संहारे।।[3]
(४) **सुभट**—सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू।।[4]
(५) **अतिभट**— हैं सूत कपि सब तुम्हहि समाना। जातु धान अतिभट बलबाना।।[5]
(६) **दारुण भट**—कपि देखा दारुन भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।[6]
(७) **परम सुभट**—सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी।।[7]

---

१. मानस/लंकाकांड ६१/११/ २. वही/६१/१२ ३. वही/६१/१०/
४. मानस/लंकाकांड/३९/५ ५. वही/सुन्दरकांड/५/६/
६. वही/१६/८/ ७. वही/१७/२/

(८) भटनाना— सुनि रावण पठाए भटनाना । तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना ।।
(९) सुभट अपारा— पुनि पठयउ तेहिं अच्छ कुमारा । चला संग लै सुभट अपारा।।[१]
(१०)दारुन भट— कपि देखा दारुन भट आबा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा।।[२]
(११) महाभट— रहे महाभट ताके संगा । गहि-गहि कपि मर्दइ निज अंगा ।।[३]
(१२) अतिरनधीरा—इत कपि भालु काल समवीरा । उत रजनीचर अति रनधीरा।।[४]
(१३) मायानागबरूथ— खगपति सब धरि खाए मायानाग बरूथ ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ ।।[५]
(१४) सुभट्टा— कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु भालु कपिन्ह के ढट्टा।।[६]
(१५) भटबलवंत— क्रुद्ध कृतान्त समान कपि तन स्रवत सौनित राजहि ।
मर्दहि निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजही ।।[७]

चतुरंगिनी सेना—
(१६) चली तमीचर अनी अपारा । बहु गज रथ पदाति असवारा।।
(१७) हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले ।
रनमत्त रावन सुभट प्रचंड भुजबल दलमले ।।[८]

नाना आयुध— चले निसाचर आयसु मागी । गहि कर भिंडिपाल बर साँगी ।।
तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा । सूल कृपान परिघ गिरि खंडा ।।[९]
नानायुध सर चाप धर जातुधान बलबीर ।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि-कोटि नरधीर ।।[१०]
बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि-पचारि ।
व्याकुल किए भालु कपि परिध त्रिसूलन्हि मारि ।।[११]

रावण के शस्त्रास्त्र

कहि दुर्वचन क्रुद्ध सकंधर । कुलिस समान लाग छाड़े सर ।।[१२]
तीव्रसक्ति— छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई । बान संग प्रभु फेरि चलाई ।।[१३]
चक्रत्रिशुल— कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारे ।।[१४]

---

१. वही/१७/५/
२. मानस/सुन्दरकांड/१७/७
३. वही/१८/४/
४. वही/१८/६/
५. वही/लंका कांड/७१/१०/
६. मानस लंका का/४/(क)
७. मानस/लंकाकांड/७८/११/
८. वही/९४/१-२
९. वही/३९/७-८
१०. मानस/लंकाकांड/४०/७-८
११. वही/४२/
१२. वही/९०/१/
१३. वही/९०/४/
१४. वही/९०/५

नाना अस्त्र-शस्त्र— तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना । अस्त्रसस्त्र छाड़ेसि बिधिनाना।।[१]

दसशूल— तब रावन दस सूल चलाया । बाजि चारि महि मारि गिरावा ।।[२]

सरासनबान— गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी । धायउ दसहु सरासन तानी ।।
समर भूमि दसकंधर कोप्यो । बरषि बान रघुपति रथ तौप्यो ।।[३]

शक्ति प्रचंड— पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड ।[४]

दिव्य पात्र एवं पात्राओं के आचार मूल्यों का अध्ययन

प्रणाम करने की प्रथा दिव्य पात्रों में भी थी। राम ने सती को प्रणाम किया—

प्रणाम— जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पितासमेत लीन्ह निज नामू ।।[५]

शंकर ने राम के पद का नमन दिया —

तब संकर प्रभु पद सिरु नावा । सुमिरत रामु हृदय अस आवा ।।[६]

समाधि— दिव्य पात्र समाधि लागते थे - शंभु की समाधि विश्रुत है -

बीते संबत् सहस सतासी । तजी समाधि संभु अबिनासी ।।[७]

यज्ञ— वे यज्ञ करते थे। दक्ष प्रजापति ने यज्ञ किया:—

दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग ।।[८]

विमान— वे विमान पर चढ़ कर गगन मार्ग से यात्रा करते थे। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में आमंत्रित देवता विमान से ही भाग लेने गये थे—

किन्नर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा।।
बिष्नु बिरचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई।।[९]

संगीत प्रिय—वे मांगलिक वेला में दिव्य मधुर गीतों से वातावरण को मधुमय बना देते थे। दक्षप्रजा-पति के यज्ञ में सुर सुंदरियाँ कलगान करती थीं—

सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना।।[१०]

सभा— विचारविमर्शहितु उनकी सभा होती थी। ब्रह्मसभा में शंकर से दक्ष दुःखी हुए थे— ब्रह्म सभा हम सन दुखु नाना। तेहि तें अजहुं करहिं अपमाना।।[११]

ज्योतिषविद्या—इन्हें ज्योतिषविद्या से प्रेम था। हिमवंत सुता के हाथ को देखकर नारद ने कहा— जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष।
अस स्वामी एहि कहं मिलिहि परी हस्त असि रेख।।[१२]

---

[१] मानस/लंकाकांड/९१/३
[२] वही/९१/५/
[३] वही/९२/२-३/
[४] वही/९३/४
[५] मानस/बालकांड/५२/७
[६] वही/५६/१/
[७] वही/५९/२/
[८] वही/६०/
[९] मानस/बालकांड /६०/१-२
[१०] वही/६०/४/
[११] वही/६१/३
[१२] मानस/बालकांड/६७/

तप—शंकरप्राप्ति हेतु उमा ने कठिन तपस्या की:—

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना ।।[१]

दिव्य तपबल में विश्वास करते थे। तपबल ही सृष्टि का आधार है—

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहिं जाइ तपु अस जिय जानी।।[२]

ध्यान—शंकर महान ध्यानी थे —

मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना।।[३]

दिव्य के विभिन्न नाम—

देव— एहिबिधि भलेहिं देव हित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई।।[४]

सुर— अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू।।[५]

सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ असभाट ।।[६]

ईश— तौ हमार पन सनुहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा ।।[७]

भगवान—रूद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना ।।[८]

अमर— बोले कृपासिंधु वृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू।।[९]

प्रभु— सासति करि पुनि करहिं पसाउ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाउ।।[१०]

दुंदुभी—देवता प्रसन्नचित्त दुंदुभी बजाते थे—

तब देवन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुरसाई।।[११]

विवाहादि में दिन, लगन, घड़ी, नक्षत्रादि पर विचार किया जाता था। शंकर के विवाहोत्सव में शुभसिद्धिहेतु पर्याप्त विचार किया गया था।

सुदिन सुनखतु सुघरी सोचाईं। बेगि बेद बिधि लगन धराई।।
पत्री सप्तरिषिन्ह सोई दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही।।
जाई बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बांचत प्रीति न हृदयं समाती।।
लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई।।
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुं दिसि साजे।।[१२]

सुरों का अलग-अलग समाज था।

---

[१] वही/७३/१/
[२] वही।७२/३-५/
[३] मानस/बालकांड/८१/४/
[४] वही/८२/७/
[५] वही/८२/८
[६] वही/८३/
[७] मानस/बालकांड/८९/५/
[८] मानस/बालकांड/८५/४/
[९] वही/८७/७/
[१०] वही/८८/३/
[११] वही/८८/६/
[१२] मानस/बालकांड/९०/४-८

सुरसमाज और बारात— वे बारात में भी अलग-अलग ही शामिल होते थे:—

सुरसमाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा।।[1]
बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग-बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज।।[2]

निमंत्रण— दिव्य बहुत उदार थे। वे विवाहोत्सव पर जड़-चेतन सबको निमंत्रण भेजते थे। हिमगिरि ने बन, सागर और सभी नदियों को निमंत्रण भेजा था—

बन सागर सब नदी तलाबा । हिमगिरि सब कहूं नेवत पटावा।।[3]

सुरसेना— सुरों की अपनी सेना थी :—

हिये हरषे सुरसेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी।।[4]

शिवसमाज— शिवसमाज भयंकर था:—

सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बांहन सब भागे।।
धरि धीरजु तहे रह सयाने। बालक सब लैजीव पराने।।[5]

गाली— विवाह के समय सुंदरियां गाली देती थीं :—

नारीं बन्द सुर जेवत जानी। लागीं देन गारीं मृदु बानी।।[6]
गारीं मधुर स्वर देहिं सुन्दरि विंग्य बचन सुनावही।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावही।।[7]

सिंहासन— वे सिंहासन पर बैटते थे :—

सिंहासन अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा।।[8]

पाणिग्रहण— देव पाणिग्रहण करते थे। शिव ने भवानी का प्राणिग्रहण किया —

पानि ग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियं हरषे तब सकल सुरेसा।।[9]

श्वसुर— शंकर के श्वसुर हिमहंत थे और सास मैना थीं —

दाइज दियो बहु भाँति पुनि करि जोरि हिम भूधर कहयौ।
का देउँ पूरन काम संकर चरन पंकज गहि रहयो।।
सिवं कृपा सागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मयना प्रेम परिपूरन हियो।।[10]

भोगविलास—दिव्य भोग विलास करते थे। शंकर ने विविध विधि भोग विलास किया

---

[1] वही/९१/८/
[2] मानस/बालकांड/९२/
[3] वही/९३/४/
[4] वही/९४/३/
[5] वही/९४/४-५/
[6] मानस/बालकांड/९८/८/
[7] वही/९९/८/
[8] वही/९९/३
[9] वही/१००/३
[10] मानस/बालकाण्ड/ १००/८

और गिरिजासहित नित्य नया-नया विहार किया :—

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।।
हर-गिरिजा विहार नित नयउ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयउ।।[१]

सन्तान—दिव्यों की संतानें थीं। शंकर के प्रथम पुत्र "षट्‌बदन" थे —

तब जनमेउ षट बदन कुमारा। तारकु असु समर जेहि मारा।।[२]

अभिमान—उन्हें जीतने के बाद कभी-कभी अभिमान हो जाता था। देव ऋषि नारद को भी काम पर विजय प्राप्ति के उपरान्त अभिमान हो गया था—

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं।।[३]

शिवलोक-कैलास— जबहिं संभु कैलासहि आए। सुर सब निज निज लोकसिधाए।।[४]

दिव्यों के धाम, नगर या लोक भिन्न-भिन्न थे। सुरलोक के सुरेश राजा था। उनकी सभा अलग लगती थी—

स्वर्गलोक— मुनि सुसीलता आपनि करनि। सुरपति-सभा जाइ सब बरनि।।[५]

बिरंचिलोक— संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोग सिधाए।।[६]

क्षीर सिन्धु— श्री निवास क्षीर सिन्धु में निवास करते थे—

छीर सिंधु गवने मुनि नाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा।।[७]

वाहन और अस्त्र-शस्त्र—

लड़ाई में दिव्य पात्र शंख, तुरही, दुंदुभि, मृदग, नगाड़ा तथा डमरू बजाते थे। दिव्यों के वाहन और अस्त्र-शस्त्र नानारंगी हैं। वे तलवार, गदा, वाण, अशनि आदि से लड़ते थे।

ब्रह्मा— ब्रह्मा का वाहन 'हंस' है और वे मण्डलु धारण करते हैं।

शिव— वृषभ ही उनका वाहन है। वे त्रिशूल तथा पिनाक धारण करते हैं।

कार्तिकेय—मयूर उनका वाहन है। वे 'शक्ति' धारण करते हैं।

विष्णु— उनका वाहन गरुड है। वे शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा खड्ग धारण करते हैं।

इन्द्र— गजरात ऐरावत उनका वाहन है और वज्र उनका अस्त्र है।

नरसिंह— इनका शस्त्र इनका 'नाखून' है।

वरूण— इनका शस्त्र 'पाश' है। शंख भी उनका अस्त्र है।

कामदेव— इनका शस्त्र 'पुष्पवाण' है। दिव्यों की भी चतुरंगिनी सेना (हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सेना) थी।

---

१. वही/१०२/५-६
२. वही/१०२/७/
३. मानस/बालकांड/१२६/५/
४. वही/१०२/३/
५. वही/१२६/३/
६. वही/१२६/५/
७. मानस/बालकांड/१२७/४/

वायु— धनुष-वाण इनका अस्त्र है।

यमराज— इनका अस्त्र 'कालदण्ड' है तथा वाहन भैंसा है।

काल— ढाल और तलवार काल का 'शस्त्र' है।

सागर— इनके पास उज्जवल हार है। चूड़ामणि, कुण्डल, काड़ा, केयूर, नूपुर, हँसली तथा अंगूटियाँ उनके पास हैं।

विश्वकर्मा—फरसा तथा अभेद्य कवच उनके पास है। इसके अतिरिक्त दिव्य पात्र ऊँट और गदहा पर चढ़कर भी लड़ाई करते थे।[१]

रथ— "राम-रावण-युद्ध" के समय सुरपति ने अपना तेजपुंज दिव्यरथ राम के लिए भेजा था और राम उस पर आरूढ़ हुए थे—

सुरपति निज रथ तुरत पटावा। हरषसहित मातलि लै आवा।।
तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कौसलपुर भूपा।।[२]

राम के अस्त्रशस्त्र— पावक सर—

पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा।।[३]

सायक और सरासल—

तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक।।[४]

तीर— राम ने प्रचंड तीन रावण पर छोड़ा —

जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं।।[५]

सर— एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं।।[६]

कारमुक—कारमुक से राम ने रावण का सिर काट लिया —

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा।।
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे।।[७]

सारंगसर—सारंगसर का प्रयोग राम ने रावण पर किया था —

सुर बानर देखे बिकल हंसयो कौसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस।।[८]

---

[१] भागवत पुराण ८/१०/८-९
[२] मानस/लंकाकाण्ड/८८/२-३
[३] मानस/लंकाकाण्ड/९०/३
[४] वही/९१/६
[५] वही/९१/१४
[६] वही/९१/१४
[७] वही/९२/५-६
[८] वही/९६/६

वनमाला—राम का आभूषण बनमाला थी—

भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी।।[१]

नूपुर— राम नूपुर पहनते थे—

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे।।[२]

किंकिनी—कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा।।[३]

हरिनख— भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हिंय हरि नख अति सोभारूरी।।[४]

मणिहार— उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा।।[५]

नाग-मणिमाला— केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति चिर नाग मनि माला।।[६]

दिव्यों मणि से बड़ा प्रेम था। यही कारण है कि मणियों में सर्वाधिक कीमती नागमणि होता है। राम नागमणि की पूरी माला ही पहनते थे।

नागमणि अंगूठी— सीता जी ने रामचन्द्र जी को केवट के नौका द्वारा गंगानदी पार कराने के समय दिया था— पियहिय की सिय जाननि हारी।

आरति— करि आरति नेवछावरि करहीं। बार-बार सिसु चरनन्हि परहीं।[७]

मनि मुदरी मन मुदित उतारी।।[८]

श्री राम की इच्छा जानकर सीता जी ने अपनी मणि की मुदरी (अंगुठी) उतारकर रामचन्द्र को दी, तब रामचन्द्र जी ने उक्त अंगूठी को केवट की ओर बढ़ाते हुए कहा कि केवट उतराई लो और तब केवट उनके चरणों में लिपट गया—

कहेउ कृपालु लेहि उतराई। केवट चरण गहे अकुलाई।।[९]

बहुत प्रयास के बावजूद राम की नाग मणि अंगूटी केवल ने नहीं ली। उसी समय से वह मुद्रिका राम के पास ही रह गयी थी। उस अंगूठी पर राम नाम अंकित था—

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर।।[१०]

अंगूठी पर नामांकन की परम्परा की पुष्टि तक्षशिला की खुदाई से होती है।

चूड़ामणि—लंका में सीता जी ने चूड़ामणि उतारकर हनुमान को निशानी दी थी—

---

[१] मानस/बालकांड/१९१

[२] मानस/बालकांड/१९८/३/

[३] मानस/बालकांड/१९८/४/

[४] वही/१९८/५/

[५] वही/१९८/६

[६] वही।१९८/६

[७] मानस/१/१९३/५/

[८] वही/बालकांड/१०१/३/

[९] वही/१०१/४/

[१०] वही/सुन्दरकांड/१९/१

चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ।।[१]

अंगुठी तथा कूड़ामणि नारी का सौभाग्य सूचक आवश्यक आभूषण है। चित्रकूट में भरत निषद सहित उस स्थन पर गये, जहाँ राम-सीता ने रात्रि में कुशासन पर शयन कर रात बितायी, तब उन्हें वहाँ सोने के पायल के घुघुरूं सदृश कुछ कण मिले थे—

कनक बिन्दु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे।।[२]

तब उन्होंने दो-चार स्वर्ण बिन्दुओं को सिर पर लगाया और उसे सीता जी के समान समझा। वाल्मीकि का कथन है कि जब रावण सीता को हरकर ले जा रहा था, तब उनके कुछ आभूषण किष्किन्धा पर्वत पर गिरे, जिसे वानरों ने पाया और जब राम-सुग्रीव मिलन हुआ, तब सुग्रीव ने उसे लाकर रामचन्द्र को दिया। गो०तुलसी दास जी के शब्दों में—

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पटडारी।।
मांगा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अतिकीन्हा।।[३]

रत्नपादुका—कथा प्रसंगानुसार राम ने जब भरत का आग्रह स्वीकार नहीं किया, तब भरत ने उस तिलक के पूरे साज-सामग्रियों में से रत्न जरित चरणपादुका निकाली और कहा कि —

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेम भूषिते।
एतेहि सव्रलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः।।[४]

(आर्य) सुवर्ण मण्डित यह पादुका पैरों में पहनें, ये ही सब लोगों का योग क्षेम करेंगी। "(दिव्य पुरूष राम ने खड़ाऊँ पहन ली और उतार कर भरत को दे दी —

सोऽधिरूहय नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च।
प्रायच्छत सुमहातेजा भरताया महात्मने।।[५]

तदुपरान्त भरत ने उस पादुका को अपने मस्तक पर लगाया और उसकी प्रदक्षिणा की और अयोध्या लाकर उसे राम की अनुपस्थिति तक राज्य सिंहासन पर बैठाया और राज्य का संचालन किया, ताकि भोगी हुई सत्ता के हस्तानान्तरण की बात ही न उठने पाये। अग्रज की चरण पादुका को अग्रज का प्रतिरूप मानकर राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त कर प्रतिष्ठित करना और उसे ही निवेदित कर राज्य का संचालन करना एक अद्वितीय उदाहरण है। राम जन्म महोत्सव दशरथ के घर कनक-कलश देखने

---

[१] मानस/सुन्दरकांड/२६/२/
[२] वही/अयोध्याकांड/१९८/३/
[३] मानस/किष्किन्धाकांड/४/५-६
[४] बाल्मीकीय रामायण/२/११२/२१/
[५] वही/२/११२/२२/

योग्य हैं— कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा ।।[१]

मणिमय मंदिर की शोभा अवर्णनीय है:—

मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गहकलस सो इंदु उदारा।।[२]

सीताराम-विवाह के प्रसंग में मरकत मणि, मोती, तथा सुवर्णादि की पर्याप्त चर्चा हुई— मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी।।[३]

जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनिमानिक लगे।[४]
बैटारि आसन आरती करि निरखि बरू सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं।।[५]
मधुपर्क मंगल द्रव्य जेहि समय मुनि मन महुं चहें।
भरे कनक कोपरकलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं।।[६]
कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे।।[७]

मणिखंभा— राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभनमाहीं।।[८]
कनकमणिमंडप—कहि न जाइ कुछ दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडप पूरी।।[९]
मणिमोती— पिआ उपरना कारवा सौती। दुहुँ आचरन्हि लगे मनि मोती।।[१०]
मुक्तामणि— सोहत मौरू मनोहर माथे। मंगलमय मुकुतामनि गाये।।[११]
महामणि— गाथे महामनि और मंजुल अंग सब चित्त चोरही।
मणि— मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।।
निज पानि मनि महु देखिअति मूरति सुरूप निधान की।।[१२]
कनक कील मणि पान संवारे—
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे।।[१३]

कनक-बसन-मणि—कनक बसन मनि हय गय स्पंदन। दिए बुझि रुचि रबिकुलनंदन।।[१४]
कुण्डल— नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना ।।
मणि सोपान— बापी कूप सरित सरनाना। सलिल सुधा सम मनि सोपाना।।[१५]

---

[१] मानस/बालकांड/१९३/४/
[२] वही/वही/१९४/६/
[३] वही/वही/३१४/७/
[४] मानस/बालकांड/३१५/८
[५] वही/३१८/८/
[६] वही/३२२/८/
[७] वही/३२३/५/
[८] वही/३२४/३/
[९] वही/३२५/२/
[१०] मानस/बालकांड/३२६/७/
[११] वही/३२६/९/
[१२] वही/३२६/९
[१३] वही/३२७/८/
[१४] मानस/बालकांड/३३०/६/
[१५] वही/२११/६/

धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति।।[१]

कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु विधि नाना।।[२]
सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए।[३]

कुंजर मनिकंटाकलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभकंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल।।[४]

कनक कदली के खंभा—

बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा।।[५]
हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचित कर भूल।।[६]
बेनु रहित मनिमय तब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हें।।
कनक कलित अहि बेलि बनाई। लखिनहिं परइ सपरन सुहाई।।
तेहि केरचिपचि बंध बनाए। बिच-बिच मुकुता दाम सुहाए।।
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा।।[७]
चौंके भाँति अनेक पुराई। सिंधुर मनिमय सहज सुहाई।।[८]

नीलमणि— सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत धवरि लसत पाटमय डोरि।।[९]

मणिमय दीप— दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना।।[१०]
लगे सुभग तरू परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी।।[११]

कनक थाल— कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिए मात।
चलीं मुदित परिछनिकरन पुलक पल्लवित गात।।[१२]

मणिमय बंदनवार—मंजुल मनिमयं बंदनि वारे। मनहु पाकरिपु चाप संवारे।।[१३]
करहिं निछावरि मनिगण चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा।।[१४]

---

१. वही/२३१/
२. वही/३३२/८/
३. वही/३३७/१/
४. वही/२४३/
५. मानस/बालकांड/२८६/८/
६. वही/२८७/
७. वही/२८७/१-४/
८. वही/२८७/७/
९. वही/२८८/
१०. मानस/बालकांड/२९८/३/
११. वही/३४३/८/
१२. वही/३४६/
१३. वही/३४६/३/
१४. वही/३५७/६/

भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँति।।[१]

पारसमणि—जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा।।[२]
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे।।[३]

जरित कनक जड़ित मणिपलंग—
भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलंग उसाए।।
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना।।

मणिमंदिर—उपबरहन बर बरनि न जाहीं। तगर सुगंध मनि मंदिर माहीं।।
रत्नदीप— रतन दीप सुठि चारु चंदोवा। कहतन बनइ जान जेहि जोवा।।[४]
दासी दास तुरग रथ नाना। × × × ×
धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा।। × × × ×
अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।।[५]

मानसकार तुलसी ने रामचरित मानस में मणि, माणिक्य और मुक्ता को रत्नों की श्रेणियों से ऊपर रखकर उसकी विशिष्टता का विशेष उल्लेख किया है। मणि, माणिक्य और मुक्ता,क्रमशः नृपकिरीट, और तरुणीतनु में अधिक शोभा पाते हैं—

मनिमानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर लोह न तैसी।।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।।[६]

फणिमणि और मानसकार तुलसीदास—
बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुंसरहीं।।[७]

मणिदीप— राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुं जौ चाहसि उजियार।।[८]

× × × ×

सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुन गन जैसे।।[९]

शिव-तत्त्वरत्नाकर में नागमणि पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है।

नागमणि की मुद्रिका नाग की मणि की बनी हुई नहीं थी। वह तो सहस्र फण शेषनाग के किसी एक मुख से निकली थी। आज नागमणि अप्राप्त है। उसमें भी राम-

---

१. वही/३४८/२/
२. मानस/बालकांड/३४९/७/
३. वही/३५०/(ख)/४/
४. वही/३५५/१-४/
५. मानस/बालकांड/१००/७-८
६. वही/१०(ख)/१-२
७. वही/२/१०/
८. मानस/बालकाण्ड/२१/
९. वही/२/१२/

नाम अंकित नागमणि मुद्रिका आज प्राप्त करना संभव कहाँ । इस प्रकार हम देखते हैं कि सोना, हीरा, मोती, माणिक्यादि के प्रति मानसकार अधिक आकृष्ट है, जिसके कारण उनके प्रायः सभी दिव्य पात्र स्वर्ण, मणि तथा मुक्तादि दुर्लभ द्रव्यों से अलंकृत हैं।

दिव्य कृषक—ऋग्वेदानुसार वरुण तथा विष्णु ने अन्नों के बीजों का अपने अपने राज्य में बपन किया। वे हल चलाते थे।[१] सीता-हल का अग्रभाग (लोहे की फाली) है।”[२]

पशुपालक—वे घोड़ा, भेंड़, गधा, मोर, सिंह, गाय बैल आदि पालते थे। काण्वः ऋषि ने इन्द्र से १०० भेंड़, गधे तथा दास के लिए स्तुति किये।[३]

दिव्य बुनकर—सूर्य, विष्णु, वरूण तथा यमादि उनी तथा सूती वस्त्र स्वयं बुनते थें।[४] देवाङ्गनाएं ओढ़नी ओढती थीं।[५]

प्रधान भोजन—उनका प्रधान भोजन चावल (नीवार) था ।[६]

दिव्यस्वर्णकार—आभूषण बनाने की विधि भी वैदिक युग के देवता जानते थे।[७]

देवासुर-संग्राम—क्षीरसागरतट पर देवासुर संग्राम हुआ।[८] दैत्यों के सेनापति विरोचन पुत्र वली मय दानव के द्वारा निर्मित ‘वेहासय’ नामक विमान पर सवार हुए। वह विमान चालक की इच्छा के अनुसार सर्वत्र गमन करता था।[९] असुरों ने अनेक बार देवों को हराया।[१०] युद्धोपरान्त देवता लोग स्वर्ग-गमन किये। असुर असुर लोक को सिधारे। असुरों का ‘बसीरिया देश आज तक विद्यमान है।[१०] युद्ध से बचे दैत्यों में नारद् के परामर्शानुसार बज्रघात से मृग बलि को लेकर अस्ताचल शुक्राचार्य के पास ले गये। शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से उन असुरों को जिला दिया।[१२] देवासुर इसी पृथ्वी के मानव थे। उनके पूर्वज छठवें मनुचाक्षुष के पुत्रादि ने क्षीर सागर के उस पार जाकर अपना राज्य विस्तार किया।[१३]

ऋग्वेदानुसार देवार्य धरालोक के अनुसन्धाता थे। देवार्य तथा राक्षस सप्त सिन्धु प्रदेश छोड़ कर क्षीर सागर के उस पार भी गये। सागर-मंथन क्षीरसागर का ही हुआ

---

१. ऋग्वेद/४/५७/७-८/
२. वही/४/५७/६/
३. वही/८/५६/३/
४. वही/९/६९/६/
५. वही/१०/८५/१३/
६. तैत्तिरीयोपनिषद /१/३/६/८/
७. डॉ० राय गोविन्द चन्द्र : वैदिक युग के भारतीय आभूषण, प्रकाशक- चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-१
८. भागवत पुराण/८/१०/५/
९. वही/८/१०/१६/
१०. वही/८/१०/२३
११. वही/८/११/४५/
१२. वही/८/११/४७/
१३. श्री सुमन शर्मा : प्राचीन भारतीय आर्य राजवंश ।

था। भूगोल साक्षी है कि "पर्शियन गल्फ" ही प्राचीन क्षीर-सागर है। मेरी दृष्टि में "सागर-मंथन" का अर्थ है— सागर-तट का व्यापक अनुसन्धान। क्षीर-सागर-मंथन से प्राप्त द्रव्य एवं वस्तुएँ —

(१) **कालकूट विष**— शंकर ने विषपान किया।

(२) **कामधेनु**— देवता ने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

(३) **उच्चैःश्रवा घोड़ा**— वे अरब देश में गये, जहाँ के आदिवासियों ने उन्हें अरबी घोड़ा "उच्चैश्रवा" नाम दिया। 'अरबी घोड़ा' आज भी नामी है

(४) **ऐरावत हाथी**—अरब देश से ही ऐरावत मिला, जिसे इन्द्र ने लिया। आज भी अरब के जंगलों में हाथी बहुतायत में पाया जाता है।

(५) **कौस्तुभ मणि-नौरत्न**—(१) हीरा, (२) पन्ना, (३) मूंगा, (४) मोती, (५) नीलम, (६) पोखराज, (७) लहसुनिया, (८) गोमेध, (९) माणिक्य। अरब देश के नगरपति ने "संधि" के कारण विष्णु को कौस्तुभ मणि भेंट-स्वरूप दी होगी।

(६) **कल्पवृक्ष**— यह सुरतरू (कल्प वृक्ष) देवताओं को मिला। इसमें सर्वदा फल लगा रहता था।

(७) **अप्सराएँ**—सुन्दरियों को देवासुर ने "अपसरा" की संज्ञा दी होगी।[१]

(८) **लक्ष्मी**— कल्पवृक्ष के स्थान पर लक्ष्मी भी पैदा हुई थी।

मेरा अनुमान है कि देवासुर पर्शिया (अरब) तथा ईरान गये होंगे। वहाँ की नारियाँ विश्व सुन्दरी होती हैं। सम्भवतः तत्कालीन युग की सर्वाधिक सुन्दरी को "लक्ष्मी" नाम दिया होगा और नारायण ने उसका वरण किया होगा। ईरानी सुन्दरियों के सौन्दर्य, औदार्य, रूप-रंग, चंचल-चितवन, कुटिल कटाक्ष से लक्ष्मी की रूप माधुरी की तुलना सटीक प्रतीत होती है। ईरानी स्त्रियों की कमर पतली, यौवन (घटद्वयसदृश), पीन पयोधर-परस्पर सटे हुए सुन्दर होते हैं। वे उस पर कुंकुम केसर लेपती हैं तथा स्वर्णाभूषणों से सजी होती है। लक्ष्मी का रूपरंग तथा अलंकार प्रियता भी कुछ इसी प्रकार की थी।[२]

अतः भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से लक्ष्मी को ईरानी कन्या मानना समीचीन होगा। 'लक्ष्मी' का एक अर्थ सोना भी है। सागरमंथनोपरान्त देवासुर उस पार गये। उस

---

[१] कैस्पियन प्रान्त का विवरण : हिस्ट्री ऑफ पर्शिया, जिल्द १, पृ० ३०-३१ (साइन्स)।

[२] भागवत पुराण /८/८/९-१०

पार के दैत्य अभियंता हिरण्यकशिप ने सोने की खान की खोज की। उसी दैत्य के नाम पर ''हिरकेनिया'' गोल्डमाइन'' उस स्थान का नाम पड़ा। उसी स्वर्ण-खान की प्राप्ति हेतु देवासुर संग्राम हुआ।

(९) वारुणि— वारुणी नामक कमलनयनी कन्या के रूप में 'वारुणि देवी' प्राप्त हुई। राजा सूर्य और विष्णु भगवान के आदेशानुसार देत्यों ने उसे ग्रहण किया।[१]

(१०) धन्वन्तरि तथा अमृत कलष— सागर मंथन से आलैकि पुरूष प्रकट हुए।[२] इसके हाथ में कंगन तथा अमृत कलश था।[३] वे ही आयुर्वेद के प्रवर्त्तक 'धन्वन्तरि' के नाम से विख्यात हुए। राक्षसों ने उसे तुरत हस्तगत किया, किन्तु मोहिनी रूप बनाकर देवताओं ने छलपूर्वक अमृत कलश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि देवासुर-संग्राम देवासुरों के जीवन का एक ''न भूतो और न भविश्यति'' संग्राम ही है।

धर्मविज्ञान तथा मानवेतर चरित्र—धर्म विज्ञान है। वह चेतना का नियमन कर उसे प्रयोजन में नियोजित्त करता है। विचार, भाव तथा प्रवृत्ति चेतना के चरण हैं। पदार्थों की जड़ता को चेतना की सौरभसिक्ता आनन्दांचल में सजाना चेतना का ही काम है। विचार संस्थान की वरेण्यता से ही मानव का अन्तरंग हुलसित तथा बहिरंग व्यापक बनता है। लोकचेतना की प्रसन्नधारा ही मानव को सुविकसित तथा समाज को सुव्यवस्थित करती है। इन तथ्यों पर आधारित धर्मचेतना की तुलना वैज्ञानिक उपलब्धियों से की जा सकती है। धर्म को प्राणवन्त बनाकर रखने के लिए आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि धर्म के साथ यथार्थवादी विज्ञान का विवक्षण हो । विज्ञान को भी विचार संस्थान के चक्र व्यूह से निकल कर भाव संस्थान की देहली पर बैठना होगा। विज्ञान केवल खुद्धिवादी रहेगा तो उसके सूत्र सूख जायेंगे और अन्वेषणों का मूलभूतस्फुरणात्मक उत्स क्षीण हो जाएगा।

प्रत्येक आविष्कार की संभावनाओं का मूल विचार अन्त—स्फुरण से उद्रिक्त होता है। बुद्धि तो पूर्वक्षणों का केवल उहापोह करती है। विज्ञान का विस्तार बुद्धि तथा उपकरणों पर निर्भर करता है, किन्तु आविष्कारों से पूर्व अन्त:करण की उत्पित्ति अन्त:स्फुरणाएँ मस्तिष्कगत नहीं होतीं। पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण की झलक, प्रतीति तथा अन्ततः उसका अनुसन्धान (पेड़ के गिरते हुए पत्ते से) करना न्यूटन की बुद्धि का नहीं, अन्तः स्फुरण का ही परिणाम है। अन्तः करण वैज्ञानिकोपब्धियों का आधारभूतकारण है तथा मानवी व्यक्तित्व की सर्वोच्चता तथा सामाजिक संरचना का

---

[१] भागवत पुराण/८/८/३० [२] वही/८/८/३१ [३] वही/८/८/३४

उद्‌गम है। यदि अन्तःकरण की सत्ता समाप्त कर दी जाय तो वैज्ञानिक अनुसन्धानों की प्राथमिकानुभूति क्षमता तथा पशुचरित्रों से ऊपर उटाकर मानवीसंस्कृति की प्राप्ति आकाशकुसुमलब्धि सदृश होगी। सर्वतामुखी प्रगति का श्रेय शारीरिक तथा मानसिक श्रमशीलता की अपेक्षा संस्कृति को ही है। अन्तःस्फुरण प्रसूत धार्मिक स्थापनाएँ मानवी पुरुषार्थ का ही प्रतिफल है। धर्म की माला वैज्ञानिक ग्रीवा में शोभोत्पन्न करती है। तभी तो वैज्ञानिक स्वार्थ तथा विलासित के पंक से ऊपर उठकर योगी तथा तपस्वी बनकर सत्य का शोधन करता है। धर्म के बिना विज्ञान पंगु है तथा विज्ञानविहीन धर्म अंधा। दोनों एक दूसरे के अनुपूरक हैं।

राम-चरित-मानस में जिन रहस्यमयी उपलब्धियों की विवेचना हुई है, उन सिद्धियों तथा चमत्कारों का आधार विज्ञान ही है । हर तत्त्व सुब्यवस्थित है। सुव्यवस्था का अज्ञान ही "अद्‌भुत" का जनक है। वैयक्तिक चेतना का अन्तःस्त्रोत जब निस्पन्न होता है, तब वह देवी प्रतीत होता है। विशाल ब्रह्माण्ड में संव्यक्त चेतना सागर का स्वरूप तथा उपयोग-बोध सिद्ध करता है कि दिव्य लोकादि (स्वर्ग, वैकुंठ) के देवता मनुष्य ही थे। वैयक्तिक विभूतियां ही तो कल्पना की अतिरंजना के कारण देवी शक्ति का प्रतिफल बनती है। "सागर-मंथन" नामक पौराणिक गाथा" धर्म और विज्ञान" की अनन्यता का प्रतीक है। मेटाफिजिक्स तथा पैरासाइकालॉजी की अनेकः शाखाएँ यह अनुसन्धान कर रही है कि "अतीन्द्रियानुभूतियों के मूल में विभूतियों का सन्मिवेश है। "अपने जमाने में वैज्ञानिक क्षेत्र की यह बड़ी क्रान्ति है कि जो अप्रत्यक्ष है उसकी सत्ता को भी अनुसन्धान के क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया गया है।"[१]

"वे दिन बीत गए, जब विज्ञान का क्षेत्र मात्र तथ्यों तक सीमित था। अब उसका कार्य क्षेत्र कहीं आगे बढ़ गया है तथा 'रहस्योद्‌घाटन' को भी अनुसंधान का उपयुक्त आधार मान लिया गया है।[२] "विज्ञान के रहस्य तथ्य में सम्मिलित किये गये हैं।"[३] इससे स्पष्ट होता है कि उसने अपने में अध्यात्म के सुरक्षित सीमा क्षेत्र तक पहुँचने और उसमें गोता लगाने का अपरिमित साहस जुटाया है। कतिपय वैज्ञानिकों ने धर्म तथा विज्ञान को अपनी दो आँखे मानकर अनुसन्धान किया है। ये वैज्ञानिक धर्म तथा विज्ञान की समन्विति पर बल देते रहे हैं।[४] प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के दरवाजे पर एक तख्ती पर लिखा रहता था— "जिसे गणित न आता हो, वह भीतर न आये"। धर्म के लिए

---

[१] दि न्यू कंसेयशंस ऑफ मैटर : ग्रेट मैथेमेटिशियन सी०ए०, डारविन।
[२] साइनटिस्ट हरबर्ट डिगल
[३] ऐस्ट्रोलोंगर अन्तरिक्ष विज्ञानी एडीग्रीन
[४] पैरासेल्सस, ब्रूनो, पेस्काल तथा न्यूटन

अन्धानुकरण के बजाय़ तथ्यों की कथा पर श्रद्धा तथा परम्परा को कसना परमावश्यक है। विग्रह का शमन तथा समन्वय-युग का समारंभानिवार्यता पर बल देते हुए मेरी अपनी स्थापना है कि धर्म तथा विज्ञान की समान स्वीकृति ही युगधर्म पालन है। विज्ञान को भावनान्वित तथा धर्म को तथ्यानुरागी बनना पड़ेगा, तभी जीवन परिपूर्णता की ओर अग्रसर होगा। अन्त में "अध्यात्म सार्वभौम सत्ता है और विज्ञान युग-धर्म है।"[१]

गंगा नदी का मानवी चरित्र—

पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करू सीता।।[२]

गंगा को माता माना गया है। चुँकि गंगा हमारे तन-मन का पोषण करती है इसीलिए उसे 'गंगा माता' कहा गया। पौराणिक मान्यतानुसार भगीरथ ने गंगा को तपस्या के बल पर स्वर्ग से धरती पर उतार लाया। धार्मिक मान्यतानुसार शिव जी अभी भी गंगा को अपनी जटा में धारण किये हुए हैं। वे विष्णु पदजा हैं।

मेरी स्थापनाएँ— गंगा तो हिमालय का अमृतरस है। गंगा की रासायनिक विशेषता अमोध है। ब्राह्मी बूटी, अष्टवर्ग तथा शिलाजीत पत्थर के प्रभाव से गंगा जल स्वच्छ रहता है। हिमालय प्रदेश की महत्वपूर्ण जड़ी-बूटियों का रासायनिक निचोड़ गंगा में मिल जाता है। आरोग्यशास्त्र की दृष्टि से भी गंगा-जल का महत्व बहुत है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य संवर्द्धन गंगा की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है।

मानव की तरह गंगा का अस्तित्व भी स्थूल तथा सूक्ष्म है। स्थूल प्रत्यक्ष होता है और सूक्ष्म अदृश्य, किन्तु तथ्य पूर्ण होता है। "तरित अनेन इति तीर्थः" तारने वाले को 'तीर्थ' कहते हैं। तरना सत्कर्मों, सद्भावना सद्‌विचारों एवं सज्जनों के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए इन्हीं को 'तीर्थ' कहते हैं।[३] गंगास्नान से तत्त्वदर्शी अध्यात्मवेत्तओं के अनुसार शारीरिक, मानसिक तथा आंरभिक अनुकूलताओं पर सुंदर प्रभाव पड़ता है। गंगा सर्वप्रधान पयस्विनी है।

आर्थिक प्रभाव— आर्थिक दृष्टि से गंगा जन से नहर निकाल कर सिंचाई की जाती है। गंगा-स्नान, गंगा-घाट-तट-निवास, गगाजन-पान, गंगा-तट का वायु सेवन वैज्ञानिक दृष्टि से स्वास्थ्यप्रद है। गंगा की गरिमा सार्वभौम तथा सार्वजनिक है। ९२५ ई० में कृष्णराव,दक्षिण भारत के राजा, का असाध्य रोंग गंगा जनपान से ही छुटा। इंगलैंड कै हॅप्किंस ने गंगा जन पर शोध कार्य किया। काशीनगरी के गंदे नालों को जाँचा, उससे हैजे के असंख्य कीटाणु उस जल पाया गया।

---

[१]. श्री ज्ञानेश्वर-योगिराज देवराहा बाबाः उपदेशामृत और भक्तों के अनुभव, खंड-३, पृ० २

[२]. मानस/६/११९/(ख)/६/

[३]. अखंड ज्योति, जून १९७८, पृ० ३९.

गंगा की महत्ता— पुष्करं तु कृते सैव्यं त्रेतायां नैमिषं तथा ।
द्वापरे तु कुरूक्षेत्र कलौ गंगा समाश्रयेत् ।।[१]

गंगा जल कीटाणु (विषाणु)नाशक है। सड़े हुए मुर्दों की लाश से निकलने वाला विष भी गंगा में घुलते ही अपनी हानिकारक प्रकृति खो बैटता है। इससे सिद्ध है कि गंगाजल संक्रामक रोगों को नष्ट करता है। रसायन विज्ञानी प्रो० एन०एन० गोडवाले ने गंगाजल में कुछ विशेष "प्रोटैक्टिव क्लोराइड" पाया जो जल को कीटाणुहीन बनाता है। यह तत्व संसार की अन्य नदियों में अत्यल्प है। गोडवाले ने अपने निष्कर्ष में लिखा है कि "गंगाजल जीवाणु वृद्धि को रोकने के साथ-ही-साथ विनष्ट भी करता है। गंगा जल की रासायनिकता मुख्य रूप से प्रयाग तक ही सीमित है।[२]

राजनिघण्टु— शीतं स्वच्छं स्वादृ अतिरोचक पथ्यं पाचकं।
पावन तृष्णमोहध्नं दीपन प्रज्ञाकर च।

गंगा नदी के गुण—

आयुर्वेदानुसार— गंगा वारि सुधा समं बहु गुण पुण्यं सदा युष्करं
सर्व व्याधि विनाशनं बलकर वाण्रू पवित्र परम।
हाघ दीपन पाचन सुरूचिरम्मिष्ट सुपथ्यं लघुस्वान्तध्वान्त
निवारि बुद्धि जननं दोष ऋघ्नं वरम् ।

मानसानुसार— गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।।

गंगा जल अमृतोमपावन, उत्तम, आयुवर्द्धक, सर्वरोग शामक, बलवीर्यवर्द्धक, परमपावन हृदय को हितकर (हर्ट डिजिज को दूर करनेवाला), क्षुधा बढ़ाने वाला) दीपन, पाचन, रूचिकारक, मीटा (मृदुल जल), उत्तम तथा लघु पथ्य तथा भीतरी दोषों का नाशक, बुद्धि-जन्म (मेन्टल एफेक्ट) तथा त्रिदोष (कम, पित्त, वात) नाशक है।[३]

सामाजिक गुण—गंगाजल से ६ लाख ५ हजार हेक्टर भूमि की सिंचाई भारत में होती है। गंगाजल से भद्रावाद, मुहम्मद पुर तथा पथरी पर बिजली-घर बनाया गया है। बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय के प्रवक्ता डॉ० एन० एन० गोडवोले ने गंगाजल की रासायनिक परीक्षा की, जिसका निष्कर्ष इस प्रकार है— "मुझे फिनाइल शैगिकों की

---

[१] स्मृति चन्द्रिका, पं० २८ पर विष्णु, धर्मोत्तर का वचन।

[२] अखंड ज्योति, गंगा माता की गोद : सितम्बर १९७८ में अमृतोपम पय : पान, पृ० ३९

[३] अखण्ड ज्योति, गंगामाता की गोद में अमृतापम पयःपान, पृ० ३९, अखंड-ज्योति संस्थान, मथुरा, सितम्बर ७८

जीवाणु निरोधिता के परीक्षण का काम दिया गया था, तभी मुझे गंगा-जल पर कुछ चिकित्सा सम्बन्धी शोध पत्र पढ़ने को मिले, जिनमें यह बताया गया था कि ऋषिकेश से लिये गये गंगा जल में कुछ प्रोटेक्टिव क्लोराइड होते हैं। यही उसकी पवित्रता को हर दर्जे तक बढ़ाते हैं।[१] क्लोराइड एक ऐसा तत्त्व है जो न पूर्णत: घुलनशील है और न मात्र ठोस ही। शरीर में लार, रक्तादि देहगत क्लोराइड हैं। ऐसे ही क्लोराइड गंगाजल में भी जाये जाते है। जब "रिडैलवाकर" नामक यंत्र से पता लगाया गया तो हम इस निष्कर्ष पर पहुचे कि गंगा जल जीवाणु वृद्धि को रोकता ही नहीं, वरन् उन्हें मार भी देता है।[२] गंगाजल कायिक विकृतियों का शमन करता हुआ मानसिक असादों को भी मिटाता है— दरस-परस मज्जन अरुमाना। हरइ पाप कह वेद पुराना।।

समुद्री यात्रियों को पहले जल की समस्या हो जाती थी। उनके चावल समुद्र में सड़ जाते थे, किन्तु गंगाजल न सड़ता और न चावल ही खराब होता था। "क्लोराइड" अत्यधिक शक्तिशाली कीटाणु निरोधी तत्त्व है। फ्राँस के डॉक्टर डी० हेरेल ने भारत आकर गंगा जल की वैज्ञानिक परीक्षा की जिसके आधार पर डनहोंने सिद!ध किया कि गंगा जल में कृमि नाशक कीटाणु बहुतायत है। गंगा जल किसी भी मिश्रण वाले जल को अपने गुण से आवेष्टित कर लेता है। डॉ० डी० हेरेल के प्रयागों से सिद्ध हुआ कि गंगाजल में टी०वी०, अतिसार, संग्रहणी, व्रण, हैजा के जीवाणुओं को मारने की शक्ति वर्तमान है। गंगा जल से हीं उन्होंने सुप्रसिद्ध औषधि "बैक्टीरियोफैज' का निर्माण किया, जिससे उपरियुक्त बीमारियाँ" दूर हुई। डॉ० केहिमान के शब्दों में किसी के शरीर की शक्ति जवाब देने लगे तो उस समय यदि गंगा जल पिला दिया जाय तो आश्चर्य जनक ढंग से जीवनी-शक्ति बढ़ती है। अमेरिका के साहित्यकार मार्कट्वेन ने आगरा प्रवास के समय "भारत-यात्रा वृत्तान्त" लिखकर गंगा जल की शक्ति पर प्रकाश डाला। बर्लिन के विश्व-विख्यात वैज्ञानिक डॉ० जे० ओलिवर ने परीक्षण के आधार पर सिद्ध किया कि गंगा जल विश्व की सभी जलाशयों के जल से श्रेष्ठ हैं। आस्थाओं के द्वारा आस्थाओं का उपचार संभव है। जैसे जंगली हाथी को पालतु हाथी पकड़ लेता है, काँटा से काँटा निकलता है तथा होम्योपैथी के अनुसार 'विष: विषस्यमौषधम्' है। उदात्त आस्थाओं की स्थापना से ही निकृष्ट आस्थाओं का निराकरण संभव है। उपासना तथा साधना का उद्देश्य अन्तकरण में उच्च-स्तरीय श्रद्धा का आरोपण, परिपोषण एवं अभिवर्धन करना ही है। चमत्कारी सिद्धियाँ आत्मबल की दीप्त फुलझरियाँ हैं। विश्वामित्र ने कर्मवाद की प्रतिष्ठा की।

---

[१] वही, पृ० ४०

[१] वही ।

आर्य तथा अनार्यों के युद्ध का वैज्ञानिक विश्लेषण:—

विश्वामित्र—पौराणिक वार्ताओं तथा हिन्दू समाज की प्रचलित अनेक कथाएँ सिद्ध करती हैं कि वैदिक युग में महर्षि विश्वामित्र एक बहुत ही क्रांतिकारी तथा महान व्यक्तित्व लेकर पैदा हुए थे। बौधायनसूत्र तथा अध्यात्मरामायण-दोनों के अनुसार सप्तर्षियों में उनका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भारद्वाजो थ गोतमः।
अत्रिर्वशिष्ठः कश्यपः इत्येते सप्तर्षयः।।[1]
विश्वामित्रो सितः कण्वो दुर्वासः भृगुरंगिरा।
वशिष्ठो वामदेवो भिस्तथा सप्तर्षयो मला।।[2]

यज्ञ— सुखार्थी को नित्य अग्निहोत्र करना चाहिए। इससे निश्चित रूप से कल्याण होता है[3]—पद्म पुराण।

जय होमोपहारे ज्या जलिन संस्कार तपोनियमदयादा।
नदी क्षाम्युपगम देवता ब्राह्मण गुरूपरे भवितव्यम्।।[4]

सन्ध्याकाल में अग्नि में आहुति देने से वह सम्पत्ति देने वाली है तथा सूर्योदयकालीन आहूति आयुदा होती है—

सम्पतकरी तथा श्रेया सायमग्न्याहुतीर्दिजाः।
प्रायुष्यकरीतिविज्ञेया प्रातः सुर्याहुतिस्तया।।[5]

"जो भक्त जितेन्द्रिय रहकर जप तथा यज्ञ करते हैं, उनकी आयु बढ़ती है।"[6] विश्वामित्र ऋषि करते थे। वे कर्मानुसार आर्य-अनार्य में विभेद मानते थे। उनके अनुसार अनार्य-दस्यु भी आर्य धर्म का पालन कर आर्य बन सकते था। यद्यपि युद्ध में विश्वामित्र की हार हुई। चूंकि जनमत उनके पक्ष में नहीं था, किन्तु हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था साक्षी है कि व्यवहार में उनके ही सिद्धान्त की विजय हुई। अन्त में वशिष्ठ को भी कर्मानुसार जातिभेद को स्वीकार करना पड़ा तथा उन्हें ब्रह्मर्षि कहकर विश्वामित्र का सम्मान करना पड़ा —

---

१. बोधायन सूत्र, प्रवर अध्याय। २. अध्यात्म रामायण, उत्तर काण्ड।

३. अहन्यहन्यनुष्ठान यज्ञानां पार्थिवेत्तिम।
उपकारकरं पुंसा क्रियमाणं फलार्थिनाथ।। —पद्मपुराण।

४. सुश्रुत, सूत्र ६/२/ ५. शिव-पुराण ।

६. आयुष्यश्चापि भक्तानाां त्रयाणां विधि पूर्वकम् यजेत जुहूयाग्नौ जपेद्यद्याज्जितेन्द्रिय
—कूर्मपुराण।।

स्वाहा युक्तं च मन्त्रं च यो गृहणाति प्रशस्तकम् ।
सर्वसिद्धवित्तस्य ब्रह्म ग्रहण मात्रतः।।[1]
देवसविता प्रसुव यज्ञ प्रसुवयज्ञपति भगाय।
दिव्योगन्धर्वः केतपूः केतनः पुनातु वाचस्पतिवाच नः स्वदतु।।[2]

मानस के मानवेतर मुख्य रूप से दिव्य तथा राक्षसादि-सात्विक, राजस तथा तामस तप करते थे, यथा—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई।।[3]
धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनबर के साथा।।[4]
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करों अजय मख अस मन धरा।।

× × × ×

मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन।।[5]
'लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई।।[6]
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जबन उठई तब करहिं प्रसंसा।।[7]
दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग।।[8]
सतीर जाइ देखउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा ।।[9]
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा।।[10]
सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस।।[11]
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा।।[12]

उपर्युक्त उद्धारणों के आलोक में सिद्ध है कि रामायण-काल में सभी शुभाशुभ कर्मो की सिद्ध हेतु "यज्ञ" आवश्यक था।

हनुमान-द्वारा छाया ग्रसनी राक्षसी का वध— सागर में एक सिंहिका राक्षसी रहती थी। वह माया के द्वारा अन्तरिक्ष के उड्डीयमान जीव-जन्तुओं की छाया सिन्धु में बिलोक कर पकड़ लेती थी, जिसके कारण जीव-जन्तु सागर में गिर जाते थे। तत्पश्चात्

---

१. ब्रह्म वैवर्त्त पुराण ।
२. यजुर्वेद द।
३. मानस/१/२०९/१/
४. वही/१/०९/१०/
५. मानस/६/७४(ख)/४/
६. वही/६/७४/(ख)/७
७. वही/६/७५/२/
८. वही/१/६०/
९. वही/१/६२/४
१०. वही/१/६३/८/
११. मानस/१/६४/
१२. वही/१/६४/२/

वह उनका भक्षण (नाश) करती थी। इस प्रकार वह सदा-सर्वदा गगन चरों को समाप्त करती थी। स्रागर-संतरण के समय उसने वही छल हनुमान जी के साथ भी किया। हनुमान जी ने उसके छल-उद्म को शीघ्र ही समझ लिया और उसको मारकर मतिधीर हनुमान जी वारिधि पार चले गये।

हनुमान-गदा तथा छाया ग्रसनी सिंहिका का वैज्ञानिक अध्ययन— अनुमानतः हनुमान् की गदा में जो चुम्बकीय वस्तु थी, उसमें संभवतः चुम्बक भी था । चुम्बक के सिद्धान्त के अनुसार चुम्बक समान ध्रुव (सेम पोल) को विकसित और असमान ध्रुव को आकर्षित करता है। संभव है, सिंहिका में जो ध्रुव (उत्तर या दक्षिण) इनकी ओर अभिमुख था, हनुमान उसी ओर आकर्षित होने लगे। और वे शीघ्रं ही समझ गये कि चुम्बकीय आकर्षण के कारण ही वे सागर की ओर खिंच रहे हैं। इसीलिए उन्होंने झट चुम्बकीय गदा का दिशा-परिर्वतन कर दिया, जिससे सिंहिका के चुम्बक से इनके गदावाले चुम्बक में विकर्षण हुआ और हनुमान उसकी ओर अधिक खिंच नहीं सके।

पदार्थ विज्ञान के अनुसार हर वस्तु की एक आकर्षण-सीमा (एट्रेक्टिव एरिया) होती है। जिसके कारण हर वस्तु दूसरी वस्तु को एक बल से आकृष्ट करती है—प्रकृति में प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तु को एक बल से आकर्षित करती है। संभव है, हनुमान सिंहिका की आकर्षणसीमाके बाहर चले गये हों, जिससे सिंहिका का प्रभाव निष्फल हो गया हो। सिंहिका की चुम्बकीय शक्ति के निष्प्रभाव को सिद्ध करने के लिए ही वैज्ञानिक बोध संपन्न महाकवि तुलसीदास जी ने "सिंहिका-मरण" प्रकरण की सृष्टि की है।

हनुमान-गदा तथा छायाग्रसनी सिंहिका का वैज्ञानिक विवेचन– रावण ने अपनी तथा अपने राज्य की सुरक्ष। के लिए हिन्द महासागर में सिंहिका नामक रडार लगा दिया था, जिसके प्रभाव स्वरूप लंका-गढ़ में कोई विदेशी प्रवेश नहीं कर पाता था। हनुमान-गदा लोहे से बनी थी जिसके कारण सिंहिका ने हनुमान को अपनी ओर खींचना शुरू किया। महाकवि तुलसी दास ने उसे "निसिचरि" तथा "मायावी" कहा है।

निसिचरि एक सिंधु मह रहई। करि माया नभ के खग गहई।।[१]

वह गगनगामी जीव-जंतुओं को उसकी परछाई पकड.कर अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थी तथा उन्हें खा जाती थी। इसी प्रकार वह सदा-सर्वदा गगनचरों का भक्षण करती थी—

जीव-जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह के परछाहीं।।
गहइ छांह सके सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगन चर खाई।।[२]

---

[१] मानस/५/२/१

[२] वही/५/२/२-३/

उसने उसी प्रकार का छल हनुमान जी के साथ भी किया। हनुमान जी उसके कपट को तुरन्त ताड़ गये और उसे मार (ध्वस्त) कर मतिधीर मारुतसुत वारिधि-पार चले गये—

सोइ छल हनुमान कहं कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।।
ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मति धीरा।।[१]

'रडार' का सिद्धान्त—अभियन्त्रणा विज्ञान तथा पदार्थ विज्ञान के प्रकाश-सन्दर्भ के अनुसार "रडार" का सिद्धान्त" निम्नस्थ है—"एक पर्दे पर निश्चित क्षेत्र में विचरण करने वाली वस्तुओं का चित्र अंकित होना। "कुछ प्रक्षेपास्त्र (मिसाइल्स) "रडार" से संघालित होते हैं। आकाशीय वस्तु चाहे जिस दिशा में और जिस गति से विचरण करे "रडार" अपने प्रक्षेयास्त्र को लक्ष्य भेद के लिए प्रेरित करता है और वह तब तक प्रेरित करता है, जब तक वह वस्तु धाराशायी नहीं होती है अथवा निश्चित क्षेत्र से बाहर चली नहीं जाती है।

"The term radar is derived from the phrase "radic detection and ranging." Radar is essentially and echo-ranging system in which the radar transitter needs out energy in the form of preodic pulses of very high power but very short duration. Objects such as air crafts, ships, mountains, buildings, etc. reflect some of this energy back to the transmitter. The time delay of a returned echo-a measure of the distance to the reflecting object, since, for a wave travelling with the velocity of light, each microse cond of deley corresponds to a round trip time of travel over a path 492 ft. long. The direction of the reflecting object can be obtained by the use of directional transmitting and receiving antennas."[2]

इस सिद्धान्त की व्याख्या निम्न है—

"Radar, which is the appreviation for" vadio defection and ranging" may be defined as a device in which radio waves are used to locate the postion in space of an obejct, though it may not he seen by the eye, on account of either the great distanced involved or some other causes, such as darkneas, cloud, etc.

Just as a reach high station on the ground sends out a narrw

---

१. मानस/५/२/४-५/

२. Frederick Emmons Terman : Electronic Radio Engineering, International student Edition, chapter 26- "Radar and Radio Aids to Nevigation, Page 1015.

beam of high, which after falling on a object (not very high above the earth say, an aeroplane, is reflected and then received by an obssorver near the reach light station, simiratly with a radar very short radio pulses, of only a few microw scond duration from a high power magnetron are directed as a cencentrated bean in some particular derection so as to sean particular protion of the sky in which an nemy plane is likely to come. When an aeroplane inters this area, the short radio pulses pom the transmitter strike the target part of these waves are reflected back in the form of an echo from the metallick surfaces of the aeroplane. The echo is picked up by highly sensitive receiver and is amplifed and fed into an oscillogreph, and the time internal between the start of radio pulse from the transmitter and the reception of the reflected echo is measured. Since the radio waves travei with the vilocity of light, the faire interval gives corresponding distance between the flying target and transmitter. This distance can be read directly on the oscillograph screen.[1]

जिस प्रकार १९६५ ई० में भारतीय वायुयान ने पाकिस्तान के सबसे बड़े रडार को ही टक्कर मारकर ध्वस्त कर दिया था, टीक उसी प्रकार हनुमान ने भी विशेष-शक्ति-स्रोत प्रक्षेपास्त्रविनिर्मित गदा से सिंहका नामक रडार को नष्ट कर दिया। सिंहिका गगनचर जीव-जन्तुओं की परछाँही जल में देखकर उन्हें अपनी ओर खींच लेती थी, रडार भी गगनमार्गीय जीव-जन्तु की तस्वीर खींच लेता है और प्रक्षेपास्त्र (मिसाइल्स) से उसे मार गिराता है। हनुमान के पास 'सुपर मिसाइल्स'' रहा होगा, जिससे उन्होंने सिंहिका को मार दिया।

सिंहिका और हनुमान-गदा का तुलनात्मक अध्ययन—सिंहिका राक्षसी में यह गुण था कि वह आकाश में विचरणशील किसी भी जीव का अवलोकन पानी में परछांही देखकर कर लेती थी। रडार एक ऐसा यंत्र है,जो किसी भी वस्तु की दूरी अपने पद पर अंकित कर देता है। इसके दो भाग होते हैं—(१) ट्रांसमीटर और (२) रिसिवर।

(१) ट्रांसमीटर—इसका कार्य है— इलेक्ट्रोनिक बीम को सभी दिशाओं में प्रेषित करना। वही बीम अगर किसी वस्तु से टकराता है तो उसी वस्तु के आकार में प्रत्यावर्त्तित होता है। यह प्रत्यावर्त्तित इलेक्ट्रानिक बीम रिसिवर-यूनिट-द्वारा ग्रहण कर

---

1. a) Atomic Physics by J.B. Rajan.
   b) Fundamentals of Magnetism & Electricity by D.N. Vasudeva.
   c) Megratism & Electricity by Ehare & Srivastava

तदाकार पर्दे पर अंकित कर देता है। सिंहिका में ट्रांसमीटर तथा रिसीवर-दोनों प्रर्याप्त मात्रा में पाया जाता था, जिसके कारण वह सभी गगनचर जीवों का अवलोकन कर लिया करती थी। प्रक्षेपास्त्र (मिसाइल्स) एक ऐसा यंत्र है जो रडार की सहायता से वस्तुओं का अवलोकन करता है तथा उसकी दूरी निर्धारित करता है और उसी दूरी (डिस्टेंस एण्ड डायरेक्सन) तथा दिशा में अपने विध्वंसक गोलों को निर्देशित कर उसका विनाश कर देता है।

सिंहिका राक्षसी उसी प्रक्षेपास्त्र की भांति गगनचर जीवों की परछाई को पकड़ कर चुम्बकीय शक्ति से अपने सीमाक्षेत्र की ओर आकृष्ट कर उसको विनष्ट कर देती थी। हनुमान जी के साथ भी सिंहिका राक्षसी का वही विध्वंस कार्य शुरू हो गया था, जिसे वे अपनी दिव्य शक्ति (सुपर पावर) से ताड़ गये थे। यह दिव्य शक्ति और कुछ नहीं, अपितु उच्चतम शक्ति संपन्न रडार था जो सिंहिका राक्षसी के प्रभाव को तुरन्त जान लिया था। इसीलिए उसके प्रक्षेपास्त्र के प्रत्युत्तर में हनुमान ज़ी के पास एक अतिशक्तिशाली प्रतिप्रक्षेपास्त्र था, जिसके प्रयोग से उनहोंने सिंहिका नामक निशाचरी का विध्वंस किया।

इस प्रकार "खाई" का अर्थ नष्ट करना तथा "मारि" का अर्थ ध्वस्त करना ही होगा, भक्षण करना तथा वध करना कदापि नहीं। वैज्ञानिक बोधसंपन्न अप्रतिम, अपांक्तेय तथा अक्षर महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने सिद्ध कर दिया है कि रामायणकालीन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों से कहीं अधिक समुन्नत तथा श्रेष्ठ थीं।

मानस का अंक विज्ञान

राम-राज्याभिषेक के श्री गणेश के समय का प्रसंग है—

भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥[1]

वन प्रयाण की तैयारी के समय राम ने कहा—

बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आह पाप पुनिं देखिहउँ मनु जनि करसि मलान॥[2]
बरस चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारू।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों के प्रकाश में स्पष्ट है कि "चारिदास" दो संख्याओं का मिलन है, जिसका अर्थ चौदह होता है। "चारि" छोटा भाग है और "दस" बड़ा भाग है। उपर के उद्धरणों में पहले छोटे भाग "चारि" को कहा गया है, उसके बाद बड़े भाग "दस"

---

१. मानस/२/२/ २. वही/२/५३/ ३. वही/२/८८/

का कथन है। इससे यह सूचित होता है कि अभी चार वर्ष ही व्यतीत हुआ है, दस वर्ष बाकी है। यही बात जब किष्किन्धा में सुग्रीव को राम ने कही हैं, तब बड़े भाग "दस" को प्रथमतः कहकर लघु भाग "चारि" को पीछे कहा गया है—

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा।[1] पुर न जाउँ दस चारि बरीसा।।'

इसका अर्थ यह है कि वनवास की अधिकांश अवधि तो अब बीत ही गयी, थोड़ी बाकी है। उस समय तक सचमुच बारह-तेरह वर्ष व्यतीत हो चुका था। लंका विजयोपरानत पितावचनपालनार्थ राम ने कहा कि—

पिता वचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पटावउँ।।[2]

उस समय वनवासावधि समाप्त प्राय थी, इसीलिए वहां अवधि के किसी भाग-आगे या पीछे की चर्चा नहीं की गयी है और न चौदह वर्ष वनवास का ही उल्लेख किया गया है। यहाँ अवधि के विभाजित शब्द-योजना द्वारा काल-निर्णय स्वतः हो जाता है। गणितीय भाषा में ४ + १० तथा १० + ४ के नियम निम्नस्थ हैं— "योग की क्रिया में अंकों के क्रम परिवर्तन से उनका मान अपरिवर्तित रहता है। योग के क्रम-विनिमेय-नियम को बड़ी कुशलता से नवीन् गणित के बोधा तुलसीदास जी ने मानस के विभिन्न प्रसंगों में निगदित किया है। एतद्वविषयक प्रसंग-पुष्टि हेतु "योग का क्रम-विनिमेय-नियम" द्रष्टव्य है।[3]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास ने मानस के मार्मिक प्रसंग वन-गमन के माध्यम से तत्कालीन जनमानस में योग के क्रम-विनिमेय नियम को प्रति बिम्बित कर "नवीन गणित बोध" के क्षितिज का उद्घाटन बहुत पहले ही कर दिया था।

मानस के अशुभ ग्रह तथा उनसे मुक्ति

मानस का शनि ग्रह— मानस मेंमन्थरा के व्याज से "साढ़े साती शनि" का चित्रण किया गया है—सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़ेसाती तब बोली।।[4]

मन्द ग्रह शनि का ही दूसरा नाम है। वह मंद ग्रह कैकेयी के सिर पर सवार हो गया तथा उन्हें स्वेच्छानुसार संचालित करने में सफलता हस्तगत किया। कैकेयी-कार्य रूपी राहु असमय में ही दशरथ रूपी सूर्य को ग्रस लिया—

---

[1] मानस/४/११/७
[2] वही/६/१०५/४/
[3] गणित भाग-१, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, १९७५ पृ० १७।
[4] मानस/२/१६/४

अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू।।[1]
ग्रसहि न कैकइ करत बराहू।

जहाँ मंथरा रूपी शनि और कैकेयी रूपी राहु एक साथ मिलकर अनर्थ बीज बो रहे हों, वहाँ गुरू वशिष्ठ रुपी "गुरू-ग्रह" की अनुकूलता की कामना की जा सकती थी, परन्तु जब वे (वशिष्ठ) भी उन्हीं के पक्ष में सम्मिलित हो गये, तब कल्याण की आशा कहाँ?

गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना।
मो कहँ तिलक साज सजि सोऊ। भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ।।[2]

शनि और राहु पातक ग्रह हैं। वृहस्पति-गुरू-शुभ ग्रह हैं। दोनों में मैत्री संभव नहीं, किन्तु राम-वन-गमन के समय मंथरा रूपी शनि, कैकेयीरूपी राहू (दोनों पाप ग्रह) तथा गुरु वशिष्ठरूपी वृहस्पति ग्रह (शुभ ग्रह) का अभिमत एक हो गया था। भरत ग्रह शांति चाहते थे, किन्तु अपनी माँ कैकेयी द्वारा ग्रहों को उद्दीप्त होते देखकर हतप्रभ हो गये, किन्तु काल बद्ध ग्रह सतत् परिवर्त्तनशील होता है।

ग्रह-दशा-निष्प्रभाव— राम-जन्म के समय भुवन भास्कर ने काल-मर्यादा का परित्याग कर दिया था—

मास दिबस कर दिबस मा, मरमु न जानइ कोई।
रथ समेत रबि थाकेउ, निसा कवन विधि होई।।[3]

भारत के अनुसार, दशरथ ने अयोध्या का फिर "रामपुर" बनाकर अवधवासी को ग्रहमुक्त करना चाहते थे। "मिटहिं कुयोग सब फिरि आस" से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

ग्रह-निवारण—शनि, राहु आदि अशुभ ग्रहों के निवारणार्थ राम की आवश्यकता है। उनकी कृपा होते ही सभी अनुकूल हो जायेंगे। राम-जन्म के समय सभी अनुकूल हो गये थे—

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरू अवर हर्ष जूत राम जनम सुख मूल।।[4]

अत: कहा जा सकता है कि सकल ग्रह भय मुक्ति हेतु राम की जीवन में अनिवार्य आवश्यकता है।

मानस में त्रिदोष-वर्णन—कफ, वात और पित्त को आयुर्वेद शास्त्र में त्रिदोष कहा गया है। कफ, वात और पित्त का साम्य स्थिति में रहना स्वास्थ्य परक है और

---

१. मानस/२/११५/६/
२. वही/२/
३. मानस/१/
४. वही/१/१९०

उनका विषम हो होना रोग का कारण है। मानस रोगों में काम को "वात" क्रोध को "पित्त" तथा लोभी को "कफ" कहा गया है—

काम बात कफ लौभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाही जारा।।[१]

त्रिदोष में सर्वाधिक दृढ़ "वात" ही है। "पित्त" तथा "कफ" पगु हैं। "वात" उनका संवाहक है। काम ही क्रोध तथा लोभ का अधिष्ठता है। गीता भी "कामात्क्रोधी भिजायते "कहकर इसी तथ्य की संपुष्टि करती है। कैकेयी का अन्तःकरण राज्य काम से लबालब है और दशरथ का अन्तःकरण कामवासना से बौझिल है। दोनों के एक साथ मिलते ही "वातरोग" उत्पन्न हो गया। बात रोग में शरीर-पीड़ा बहुत होती है। अतः उससे मुक्ति हेतु रोगी सुरापान करता है, जिससे वह तत्काल दुःखमोचन सिद्ध होता है। उससे स्थायी लाभ नहीं होता। यह लक्ष्य उपशामक हैं, रोग-निरोधक नहीं।

मद—राज्य सत्ता मद है—कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सबतें कठिन राज मदु भाई।।[२]

मद-पान—मदपायी अल्पमात्रा में मद नहीं लेता हैं। उसीलिए वह मद के वश में होकर होश खो बैठता है। काम रूपी मद का सेवन अगर सीमित मात्रा में हो, तब वह मानसिक तुष्टि देता है, परनतु काम-रूपी-मद का सेवन करते समय व्यक्ति अपना आपा खो बैटता है। टीक उसी प्रकार राज्य सत्ता रूपी मद भी व्यक्ति को वक्र तथा वधिर बना देता है— श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि केहि। प्रभुता बधिर न काहि।[३]

प्रभुता पाकर मद होना स्वाभाविक है—

नहीं कोउ अस जनमा जग माही। प्रभुता पाई जाहि मद नाहीं।।[४]

मद्यप को होश में लाने के लिए संयम रूपी दवा की आवश्यकता है। इसके लिए काम-मदादि से निवृत्तिहेतु विषय-विरति अनिवार्य है—

वैद्य— सदगुरू, दवा— विषयविरति

मानसकार के शब्दों में—सदगुरू बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न विषय के आसा।।[५]

वात रोगी को ग्रह ग्रसित कर लिया, वातरस भी सताने लगा, उस पर वृश्चिक दंश हो गया—नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन तीछी।।[६]

बिच्छू डंक ज्यों-ज्यों नीचे से ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों-त्यों पीड़ित व्यक्ति का दुःख बढ़ता जाता है। राम-वन-गमन बिच्छू डंक सदृश है।

रोग-निदान— रघुनाथ पद दर्शन ही अचूक दवा है, जिससे बिच्छू डंक मिट जायेगा।

---

१. मानस/७/ २. मानस/२/ ३. वही/७/
४. वही ५. मानस/७/ ६. वही/२/

आपनि दारून दीनता, कहउँ सबहि सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय के जरनि न जाइ।।[३]

दर्शन—राम के हदय कुंज में प्रवेश करते ही काम-वात का शमन हो जाती है। उनके दर्शन मात्र से ही काम रूपी वात भाग जाता है—

जहाँ राम तहें काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ न रहि सके, रबि रजनी इक टाम।।''[४]

अन्त: रामरूपी भेषज से ही काम-वातरूपी रोग का निवारण संभव है।

****

---

१. मानस/२/

२. वही/७

८.

चरित्र तथा चारित्र्य का परिप्रेक्ष्य तथा उपसंहार

"वाल्मीकि रामायण यदि देववाणी की पवित्रता से अभिशिक्त प्राचीन भारत का कैलास-शिखर है,तो महाकवि गो० तुलसीदास जी का "रामचरित मानस" मान-सरोवर है।"[१] "मानस भारत की श्रेष्ठ साहित्यिक, धार्मिक और आध्यात्मिक परम्पराओं का उत्कृष्ट प्रमाण है। यदि राम कथा भारतीय संस्कृति और मानवीय इतिहास की अमर कथा है, तो रामचरित-मानस राम की तरह ही काव्य के समस्त गुणों का पूंजीभूत रूप है। वह हिन्दी भाषा की क्षमता, सौन्दर्य एवं अथाह गौरव की निधि है। वह राम और सीता के यशोमयी सुधासलिल से परिपूर्ण राष्ट्रिय चेतना का सूर्य, इस देश का राष्ट्रिय-ग्रंथ और विश्व साहित्य का अमर काव्य है।"[२]

रामचरित मानस हमारे हदय में सामाजिक बोध, विचार तथा हमारी स्वानुभूतियों को सप्राण बनाकर हमें सतत् नव जीवन प्रदान करने में संलग्न है। "मानस भारतीय धर्म-भावना का सार तथा भारतीय इतिहास और जीवन- दर्शन का ऐसा अनूटा संगम है, जहाँ काव्यमयी यमुना, धर्ममयी गंगा तथा लोक मंगलमयी सरस्वती की त्रिवेणी प्रवाहित है। वह भक्त के लिए भक्ति का सरोवर है, धर्मात्मा के लिए स्मृति कोश है, नीतिमानों के लिए नीति-ग्रंथ है और जन-जन के मन का मानस है।"[३] महर्षि बाल्मीकि रामायण को "वेद सम्मत" कहा है- "इदंपवित्रं पापध्नं पुण्यं वेदेश्च सम्मताम्।" श्रीमद्भागवत निगम (वेद) कल्प तरू का गलित फल है— "निगम कल्प तरोर्गलित फलम्" तथा अध्यात्मरामायण सर्वपुराणसम्मत है— "रामायणम् सर्वपुराण सम्मतम्।।" रामचरित मानस की सर्व जनहितकारिण कविता देवसरि, आदि काव्य रामायण की

---

१. कल्याण: भारत का अमर काव्य "मानस" लेखक- डॉ० श्री शुकरत्न जी उपाध्याय, पृ० ६४८. वर्ष - ५५, अंक-६जून १९८१.

२. कल्याण: भारत का अमर काव्य "मानस" लेखक- डॉ० श्री शुकरत्न जी उपाध्याय, पृ०६४८, वर्ष - ५५, अंक-६जून १९८१.

३. वही, पृ० ६४८

गोमुखी से निःसृत होकर महाभारत, विविध पुराण तथा निगमागम की उपत्यकाओं में कल-कल छल-छल निनाद करती हुई प्राकृत और भाषा कवियों के हरिचरित-सरित से जल पोषण पाकर सहसाब्दियों से कोटि-कोटि मानवों को तृप्त, आश्चर्यान्वित, हुलसित वं संतृप्त करती हुई राम भक्ति-भागीरथी में समाहित हो गयी है। इस भागीरथी में जीवन, साहित्यि, कत्भा, संस्कृति, सृष्टिबोध, वेद-पुराण उपनिषद की उल्लसित त्रिवेणी की तरल तरंगें दर्शनीय हैं। "मानस ने अपनी शक्तिमत्ता, सरलता, श्रेठता और व्यापकता द्वारा पूर्ण बल से इस देश की संस्कृति और समाज की आत्मा को जीवित रखने में सच्चे संविधान के रूप में महान् योगदान किया है।"[१] चरित्रवान् व्यक्ति को ढूँढने के प्रयत्न में ही रामायण का जन्म हुआ।[२] श्री राम ही सम्पूर्ण राम-कथा में निर्णायक पात्र हैं—"नाते नेह राम के मनियत"। रामकथा के अन्य सभी पात्र श्रीराम के चरित्र से ही परिचालित है, उनके स्नेह से ही संसिक्त हैं।"[३] "अनन्त गुण-गुणों की खानि श्रीराम सभी चरित्रों के महाकेन्द्र हैं।"[४] सीता का चरित्र महान् कहा गया है— "सीतायाश्चरितं महत्।"[५] त्रिभुवनजयी रावण की अशोक वाटिका में हनुमान् की भुवन घोषी हुँकार गूँज उटी—

जयत्यति बलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः।।
दासोअहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकणः।
हनुमाञशत्रु सैन्यानां निहनता मारूतात्मजः।।
रावण सहस्त्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहसशः।।[६]

यह निर्भय गर्जना अपने सर्व समर्थ स्वामी के प्रति प्रत्यय की अभय-तर्जना थी।

शेषनाग—पौराणिक दृष्टि से— "तस्यमूलदेशे त्रिशं घोजन सहस्रान्तर आस्तेया- वैकला भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्.कर्षणमहमित्यभिमान लक्षणं यं सड्क़र्षणमित्याचक्षते।।"[७] अनन्त के नाम से कही गयी है और जो अहं का रूप होने से द्रष्ट-दृश्य को खींचकर एक कर देती है, उसे ही सात्वत तन्त्र

---

[१] कल्याणः भारत का अमर काव्य "मानस" लेखक- डॉ० श्री शुकरत्न जी उपाध्याय, पृ०६४९, वर्ष - ५५, अंक-६ जून।

[२] वही, पृ० ६४९

[३] वही, पृ० ६५०

[४] वहीं, पृ० ५६१

[५] वहीं पृ० /२/४/७

[६] वा०रा०/५/४३/३३/३६

[७] श्रीमद्भगवत ५/२५/१

निष्ठ चतुर्व्यूह उपासना में संकर्षण कहते हैं।''[१]

यस्ये दं क्षितिमण्डलं भगवतो नन्त मूर्तेः सहस्त्रशिरस़ एक स्मिन्नेव शीर्षण ध्रियमाणं सिद्धर्थ इव लक्ष्यते।।[२]

जिन हजार सिरों वाले अनन्त मूर्ति भगवान के सिर पर स्थित यह पृथ्वी मण्डल सरसों के दानों की तरह प्रतीत होता है उन्हें ही अनन्त कणें होने के कारण अनन्त शेषनाग भी कहते हैं।

शेषश्च सर्वनागेशो महामणि विभूर्षितम् ।
नागहारं ददौ तस्यै धत्तेयः पृथिवीमिभास।।[३]

शेष जो सब नागों का स्वामी है उसने बहुत मणियों से विभूषित हार भगवती के लिये दिया, जो शेष पृथ्वी को धारण करता है—**वासुदेव कलानन्तः सहस्त्र वदनः स्वराट्**[४] के अनुसार शेषनाग के हजार मुख हैं। दार्शनिक तथा आगम दृष्टि से महतत्व वासुदेव हैं। **न निरूद्धम अनिरुम्** । अहंकार शेषनाग है और मन अनिरूद्ध है। वासुदेव का अर्थ है— (१)सर्वत्र वसति इति वासुदेवः। (२) वसति अस्मिन् सर्वम् इतिवासुः। ''दीव्यति इति देवः, जो सर्वत्र प्रेतीत हो रहा है, उसको देव कहते हैं।

उपासना— **वासुदेव सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरूषः स्वयम् ।**
अनिरूद्ध इति ब्रह्मनुमूर्तिव्यूहो अभिधीयते।।[५]

चित्त वासुदेव, अहंकारी आकर्षण (शेषनाग) बुद्धि प्रद्युम्न तथा मन को अनिरूद्ध कहा जाता है। अहंकार मनुष्य को अच्छी तरह कर्षण करता है। अहंकार होने पर विषय-भेद से चित्रवृत्ति नाना रंगी हो जाती है। अतः चित्त वृत्ति अनन्त होने से ही अहंकार अनन्त कहलाता हैं।

वैज्ञानिक मत (शेषनाग)— सूर्य सौरमण्डल सहित अभिजित नक्षत्र की ओर बढ़ रहा है। वह सीधा नहीं जाता। बल्कि जैसे बेलि टेढ़ी-मेढ़ी होकर वृक्ष पर चढ़ती है, उसी प्रकार सूर्य सर्प की भाँति टेढ़े-मेढ़े रास्ते अपने लक्ष्य अभिजित की ओर जा रहा है। टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग ही शेषनाग का शरीर है और सौर मण्डल शेषनाग का फण है। सौर

---

१. कल्याण- शीर्षक-शेषनाग क्या है? ले० श्री देवदत्त जी शास्त्री व्याकरणाचार्य, विद्या निधि, पृ० ६५८, वर्ष५५, अंक-६

२. रीमद्भगवत ५/२५/२/

३. मार्कण्डेय पुराण /२/३०-३१/

४. श्रीमद्भागवत/दशम स्कन्ध/१०वा अध्याय/२४वां श्लोक।

५. वहीं/स्कन्ध १२/अ. ११/श्लोक २१

मण्डल में ग्यारह ग्रह हैं- बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, अरुण, बरुण, यम, कुबेर, तथा इन्द्र। ये ग्यारह ग्रह शेष नाग के फण हैं। ग्रहों की संख्या एक से अधिक होने के कारण शेषनाग को अनन्त कहते हैं। वैज्ञानिक पक्ष में दो पिण्डों के परस्पर आकर्षण को संयुक्त आकर्षण अथवा संकर्षण (म्युचुअल ग्रैविटेशन) कहते है।"[१]

चरित्र— चरित्र शब्द की निष्पत्ति "चर" + "इत्र' से होती है, जिसका अर्थ है कर्म का प्रेरक। "पाणिनि के सूत्र "चर-गति भक्षणयोः" धातु से "अतिलूघूसूखन सहचर इत्रः" द्वारा निष्पन्न चरित्र शब्द गति बोधक है। हिरण्यगर्भ बुद्धि से चरित्र संवारना आवश्यक है। चरित्र शब्द का अर्थ है— शास्त्रसम्मत आचरणीय पद्धति को व्यावहारिक रूप देकर जीवन हितार्थ दैनिक ऐहिक पदार्थों की लब्धि पुरः सर परम पुरूषार्थ की प्राप्ति करना। चरित्र रक्षणीय है। चरित्र नष्ट होते ही मनुष्य मृतक तुल्य माना जाता है— "वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्......... वृत्ततस्तुहतो हतः।"[२]

चरित्र मनुष्य का अपने जीवन की गाड़ी को लक्ष्य तक पहुँचाने वाला सारथि है, बुद्धिमत्ता (इन्टेलिजेन्स) उसकी मार्गदर्शिका है।[३] "चरित्र" बुद्धिमत्ता से ऊपर की वस्तु है। महान् आत्मा जिस दृढ़ता के साथ जीवन धारण करता है, उस प्रकार चिन्तन भी करता है। 'कैरेक्टर' शब्द के व्युत्पत्यर्थ पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वानलेखक ने लिखा है— 'मूलतः' चरित्र शब्द का प्रयोग चित्रकारी मुहर लगाने तथा उसके द्वारा उरेहे चिह्न के अर्थ में किया जाता था।"[४] ५वीं शताब्दी ई० पू० में इस शब्द का रूपकात्मक प्रयोग होने लगा।" हेरोडोटस[५], ऐसचीलिस आदि लेखकों ने नैतिक मनोविज्ञान तथा साहित्य-समालोचना के क्षेत्र में समान रूप से इस शब्द को व्यवहृत किया है। महान-यूनानी दार्शनिक अरस्तू के शिष्य तथा उत्तराधिकारी "थेओ फ्रैस्टस" नामक लेखक ने "मौरल कैरेक्टर" पर एक प्रबंध लिखा। "चरित्र" शब्द का अर्थ है— "प्रकृति का वरदान जो निसर्गतः मनुष्य को प्राप्त होता है। पर व्यक्ति का निजी सहयोग भी चरित्र निर्माण की दिशा में सर्वथा उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता है।[६]

चरित्र के चरित्र—पाश्चात्य दर्शनशास्त्री "कांट" के अनुसार "चरित्र" (कैरेक्टर)

---

१. पण्डित जगन्नाथ भारद्वाज, अम्बाला निवासी, भारतीय खगोल-विज्ञान, पृ० ७१-७२

२. महाभारत /५/३६/३०

३. इन्साइक्लोपीड़िया ब्रिटेनिका, जिल्द ५, १७६८, संस्करण "कैरेक्टर"।

४. इमर्सन- नेचर, ऐडेसेज ऐण्ड लेक्चर्स- "द अमेरिकन स्कॉलर।

५. कल्याण, वर्ष ५७, अंक-२

६. "इन्साइक्लौपेडिया आफ रेलीजन ऐण्ड एथिक्स" सं० जैम्स हेस्टंगस, भाग-३, टी०टी० क्लार्क 'कैरेक्टर"।

के दो भेद है—"फिजिकल कैरेक्टर- अर्थात् "शारीरिक चरित्र" तथा "मौरल कैरेक्टर- अर्थात् "नैतिक चरित्र"। शारीरिक चरित्र से मात्र इतना ही ज्ञात होता है कि प्रकृति ने उसे किस ढाँचे में ढाला है। और निसर्गतः उसकी मनोवृत्ति किस प्रकार की है। नैतिक चरित्र अविभाज्य है। इससे विदित होता है कि मनुष्य ने अपना निर्माण स्वतः किस प्रकार किया है। किसी व्यावहारिक सिद्धान्त को अंगीकार करने हेतु मनुष्य स्वयं को अपरिवर्त्तनीय इच्छा शक्ति की ग्रंथि में उलझाये रहता है तथा वह स्वविवेक द्वारा अपने जीवन को एक निर्दिष्ट गन्तव्य पर नियंत्रित रूप में ले चल चरित्र निर्माण के लिए स्वेच्छा अनिवार्य है। चरित्र निर्माण हेतु मानव का व्यक्तिगत निर्णय उसकी लिप्सा तथा निर्बन्ध कर्मसहायक सिद्ध होते हैं।

सच्चरित्रता—मानव चरित्र द्विकोटिक होता है। सदगुणसंपन्न को सच्चरित्र और दुर्गुणसंपन्न को दुश्चरित्र कहा जाता है। सच्चरित्र व्यक्ति विद्वान् और शिष्टचार तथा नैतिकता से सम्पन्न होता है।[1] चरित्रवान् व्यक्ति इतना अच्छा होता है कि कोई दूसरा व्यक्ति उससे अच्छा नहीं हो सकता।[2] सच्चरित्र व्यक्ति शिष्ट प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा गंभीरता से संपन्न अपनी और सबको खींच लेने की शक्ति रखने वाला व्यक्ति होता है।[3] सच्चरित्र व्यक्ति अपने निश्चय का पक्का, आत्माग्नि से दीप्त, नीडर तथा कटिन परिश्रम करने पर भी नहीं थकता है।[4]

पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में "चरित्र" पर विचार करने के क्रम में अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ कि सदगुणों की पराकाष्ठ ही सच्चरित्रता है। शील, चरित्र, चारित्र तथा चरित आदि शब्द समानार्थक है।

"निष्ठा च शीलं चारित्र शास्त्रं चरित तथा।"[5] "शुचौ च चरिते शीलम्।"[6]

इसके आधार पर सुस्वभाव ही चरित्र शब्द वाक्य है। "एकं सुस्वभाक्य।"[7]

स्वभाव में सुष्ठत्व ही चरित्र है। शास्त्रानुकूल कायिक, वाचिक तथा मानस क्रियाकलाप चरित्र है। शील स्वभाववाची चरित्र शब्द के पूर्व सद्धविशेषण लगाकर "सच्चरित" बनता है। मनुष्य की कुलीनता से उसका चरित्र व्यंजित होता है।

---

१. काउ पद्ध टाडरोसि-नियम।
२. होरेस- सेटायर्स -भाग -१
३. सिसरो-सस्व युलैनरम् डिस्प्युटेशनम् भाग-५
४. सैमुएल जौनसन - द वैनीटी ऑफ ह्युमन विशेज, १, १९१.
५. रत्नकोष।
६. अमरकोश /१/७/२६
७. रामश्रयी टीका।

चरित्र, शील तथा सदाचार पर्यायवाची शब्द हैं—"चरण" चारित्रमाचारः शीलमित्यर्थान्तरम्।[१] बाल्मीकि जी ने नारद जी से पूछा—

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः।।[२]

उसके उत्तर में निर्दिष्ट समस्त गुण चरित्र के अन्तर्गत सन्निविष्ट हो जाते हैं। व्यापक शब्द चरित्र में धर्म, सदाचार तथा सभी सदगुण समाविष्ट हो जाते हैं। हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए एक चरित्र भी आवश्यक तत्त्व हैं—

वचनेषु च बुद्धै च स्वभावे च चरित्रतः।
आचारे व्यवहारे ज्ञायते हृदयं नृणाम् ।।[३]

"चरित्र" शब्द का प्रयोग सदाचार कर्म कुशलता, धर्म तथा कहीं स्वभाव के अर्थ में होता है।

चरित्र

(१) जन्मजात स्वभावज चरित्र	(१) अनुभवात्मक
(२) सत्संगज चरित्र	(२) लीलात्मक

"अनुभावज लीला चैत्युच्यते चरितं द्विधा।।"[४]

नाथयोग के अनुसार यमनियम की चरित्र निर्माण हेतु स्थापना की गयी है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य क्षमा घृतिः।
दर्याजवं मिताहारः शौचं चैव यमा दशः।।
तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम् ।
सिद्धन्त वाक्यश्रवणं हीमती च जपो हुतम।
नियमा दश सम्प्रेषता योगशास्त्र विशारदैः।।[५]

सदाचार, शौर्य, व्यवसाय तथा सेवा भाव द्वारा ही चरित्र निर्माण संभव है—

"सदाचार तत्तवे ब्राह्मणास्तिष्ठन्ति, शौयेक्षत्रिया, व्यवसाये वैश्याः सेवाभावे शुद्राश्च।"[६] अमृतोपम सत्य से ही चरित्र निर्माण होता है—

---

[१] शंकराचार्य : वेदान्त भाष्य /३/१/९/

[२]

[३] उज्जवल नीलमणि।

[४] वही।

[५] हटयोग प्रदीपिका १/१७-१८

[६] गोरक्षमहायोगी गोरखनाथ : सिद्धसिद्धान्त पद्धति/३/६/

सत्यमेकमतं नित्यमनन्तं चाक्षमं ध्रुवम् ।
ज्ञात्वा यस्तु वदेद्धीरः सत्यवादी स कथ्यते ।।[१]
यदिदं किंच तत्सत्यमित्याचक्षते।[२]

सर्वाश्रय सत्य अक्षय तथा सनातन चरित्र-निर्माण का सर्वोपरि शक्ति केन्द्र है।

परिमाग्ने दुश्चरिताद्धवाधस्वा मा सुचरितै भज।
उदायुषा स्वायुषादस्थाममृता अनु।।[३]

"चरितांस्ते मा हिंसिषम्।"[४]

"प्रतिष्ठायै चरित्राय अग्ष्टिाअभियातु।।"[५]

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्तः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः।।[६]

रामवनगमन, रामभरतसंवाद, पादुका-ग्रहण, पंचवटी में भरत गुणगान, जटायु का दाह-संस्कार, सुग्रीव का राज्याभिषेक, विभीषण के शरणागत पालक, रावण का दाह-संस्कार, महाराज दशरथ का वरदान, दीनवत्सला सीता की दया तथा विभीषण की प्रार्थना उत्तम चरित्र के प्रतीक हैं।

सभ्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणिा मौक्षमार्ग ।[७]
चरतिचर्यते अनेन चरणमात्रं का चारित्रम्।[८]

जो आचरण करता है या जिसके द्वारा आचरण किया जाता है अथवा आचरण करना ही "चरित्र" है।

चरित याति येन हित प्राप्तिम् अहित निवारणं चेति
तच्चारित्रम चर्यते सेव्यते सज्जनैरिति वा चरित्रम् ।[९]

चरित्र का सम्बन्ध मानव के समग्र जीवन एवं व्यवहार से होता है।

(1) Be a man of Action and Character"[10]

(2) "The man of unpright life,

---

१. गोरक्ष महायोगी गोरखनाथ : सिद्ध सिद्धान्त-पद्धति/६६०/

२. तैत्तिरीयौपनिषद/२/६/१/

३. यजुर्वेद/४/२८/

४. काङ्गसंहिता/३९/२३

५. यजुर्वेदीय काट संहिता/३/२२

६. महाभारत/५/३३/३९

७. लैनियों की बाइबिल आचार्य उमास्वाति (ई० प्रथम शती) तत्त्वार्थसूत्र का प्रथम सूत्र।

८. "तत्त्वार्थसूत्र की टी "स्वार्थ सि)" /१/१/६/२/

९. भगवती आराधना /८/४/१/११

१०. नैपोलियन बोनापार्ट।

Whose guiltless heart is free,
From all thoughts of vanity,
If a real man indeed,"[1]

(3) "True criterion of good government is not the increase of weaith and population, it is the creation of character and personality,"[2]

(४) "चारित्र्यशील मानव देवता के ही समान अल्पन्यून गौरव एवं प्रतिष्ठा से विभूषित होता है। उसका परमात्मा की अन्य समस्त कृतियों पर अधिकार होता है।"[३]

चारित्रिक विविक्ति से सुन्दर स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। "चरित्रवान व्यक्ति के रक्तचाप, हदय की दुर्बलता, मधुमेह, कैन्सर, टी०वी० आदि बीमारियाँ" नहीं होती हैं, हो भी जाएँ तो कष्टायक नहीं होती है।"[४] चारित्रिक निर्माण का उत्स वेद है। "हे मेरे जीवन यज्ञ के अग्नि देवता। मुझे दुश्चरित से सर्वतोभावेन बचाइए तथा सुचरित में मेरी प्रीति तथा भक्ति होवें।

"परिमाग्ने दुश्चरिताद वाघस्वामासुचरिते भेज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृता अनु।।"[५]

शरीर की समस्त इन्द्रियों का व्यवहार सर्वथा पवित्र तथा अमल होता है, तभी मानव सच्चरित्र कहलाता है। किसी एक भी इन्द्रिय अशुद्ध है तो मानव चरित्रहीन है—

प्रतिष्ठायै चरित्राय अग्निष्ट अभिपातु।।[६]

मान जीवन-यज्ञ के पुरोहित अग्निप्रतिष्ठा तथा चरित्र बनाये रखने के लिए रक्षा करें— **"चरित्रांस्ते माहिं सिषम।"[७]** सच्चरित्र के निम्न लिखित चार आवश्यक कर्त्तव्य हैं—

"आर्द्रसंतानता त्यागः कायवाकचेतसां दमः।
स्वार्थ बुद्धिः परार्येषु पर्याप्तमिति सद्व्रतम् ।।"[८]
"अचिन्तयं शील गुंप्तानां चरित्र कुलयोषिताम।"[९]

---

[१] अंग्रेज कवि वेल्स

[२] सपेंसर।

[३] पाश्चात्य विद्वान रासः ग्राउण्ड वर्क ऑफ एडुकेशन थियोरी, पृ० ११५.

[४] कल्याणः चरित्र-निर्माणङ्क, वर्ष ५७, सं० , सन् १९८३ ई० शीर्षक निर्मल चरित्र से बिना औषधि रोगमुक्तिः वैद्य श्री ज्ञान निधि श्री अग्रवाल, आयुर्वेदाचार्य, पृ०६४।

[५] यजुर्वेद ४/२८/

[६] काङ्ग संहिता ३९/२३, यजु० १३/१९

[७] यजुर्वेदीय काट संहिता ३/२२

[८] इष्ट० ह० सूत्रस्था० २/४६/

[९] कथासरित्सागर ३९६/

आर्य संस्कृति का आधार चरित्र ही है। शास्त्रनिर्देश के अनुसार लोक-मर्यादा, समाज की आवश्यकता तथा तात्कालिक स्थिति के अनुसार कर्त्तव्याकर्त्तय का ध्यान रखकर व्यवहार करना इसके प्रमुख अंग हैं।[1]

चरित्र की परिभाषाएँ —चरित्र से स्वभाव,व्यवहार,आचरण, मानवता तथा कर्त्तव्यनिष्ठा का बोध होता है।

न कुतूहलिकस्य मनश्चरितं हिमहात्मानां श्रोतुम।[2]
उदारचरितानां हि वसुधैव कुटुम्बकम् ।[3]
अमृतं नाभिक्षास्यामि चारित्रं भ्रंशकारणम।।[4]
चारित्र्यबिहीन आढ्यो पि दुर्गतो भवति।[5]
अर्तिलूधूसूखेन सहचरइत्रः।[6]
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येंक महात्मनाम् ।
मनस्यन्मद वचस्यन्यत कर्मएयन्यद दुरात्मनाम् ।।[7]
ऋषीणां पुनराद्यानां बाचमर्थोअनु धावति।।[8]
अनृत नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम् ।।[9]
धृतिः क्षमा दमोअस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।[10]
धीर्विद्या सत्यमक्रोधे दशकं धर्मलक्षणम ।।[11]
सत्यं दया शौचं तितिक्षेक्षाशमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचयं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ।।
संतोषः समदृक सेवा ग्रामे होपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ।।
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवता बुद्धि सुतरां नृपु पाण्डव।
श्रवणं कीर्तनं वास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवे ज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ।।
नृणामयं परोधर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन सर्वात्मा येन तुष्यति।।[12]

---

१. विहित वहित्र चरित्रमखेदम। अभिवन जयदेवः गीत गोविन्द।
२. हषचरित।
३. हितोपदेश/१/७०
४. मच्छकटिक
५. वही।
६. पा० अष्ट० ३/२/४८
७. पा० अष्ट० ३/२/८४
८. हितापदेश।
९. भवभूति - उत्तर रामचरित
१०. मृच्छकटिक, दृष्टय टिप्पणी-३/
११. मनुः मनुस्मृति /६/९२/
१२. श्री मद्भागवत ७/११/८-१२/

सद्वृत्त का नाम चरित या चरित्र है। अच्छा आचरण सच्चरित्र तथा बुरा आचरण ही दुश्चरित्र है।

पाश्चात्य दृष्टि में चरित्र और रामचरित मानस—अंग्रेजी में एक कहावत है— "मनि इज लौस्ट, नथिंगइज लौस्ट । हैल्थ इज लौस्ट, समथिंग इल लौस्ट। बट कैरेक्टर इज लौस्ट, एवरिथिंग इज लौस्ट।

"चरित्र" मानव का गुप्त धन है, जिसका ज्ञान उसके सिवा किसी को नहीं होता। अतः व्यक्तिगत चरित्र पर ही किसी भी समाज की भित्ति टिकती है— "व्यक्तिगत चरित्र ही समाज की महान आशा है।"[१] चरित्र एक आदत है— "चरित्र बहुत समय तक जारी रहने वाली एक आदत है।"[२] "जीवन का महान ध्येय चरित्र निर्माण है।"[३] "चरित्र भाग्य है।"[४] "छोटी बातों की बहुधा पुनरावृत्ति के चुनाव में ही चरित्र की दृढता है।"[५]

"चरित्र की पूर्णता का तो कहीं अन्त नहीं वह कथित सफलता के बिना भी प्रतीक्षा कर सकता है।"[६] **हर्बर्ट** की दृष्टि में चरित्र दो वस्तुओं का परिणाम है— मानसिक झुकाव और समय व्यतीत करने का हमारा ढंग। चरित्रपूर्णतः शिक्षित इच्छा शक्ति है।[७] चरित्र की उदात्त्ता कुछ नहीं हैं, सिवाय अच्छाई के प्रति स्थिर प्रेम तथा बुराई के प्रति स्थिर घृणा है।[८] हमारे चरित्र हमारे व्यवहार के परिणाम हैं।[९] समुन्नत चरित्र सभी कौमों में शोभा प्राप्त करता है। बाल्यावस्था से ही शुभ संकल्प तथा कार्य हमें योवनावस्था तथा वृद्धावस्था में भी चिरत्रवान बनाता है। जीवन की पूर्णता उत्तम चरित्र में ही है। परिस्थितियों की किसी भी परिवर्तन से चरित्र की कमी सुधारी नहीं जा सकती।[१०] "आनन्द नहीं, जीवन का लक्ष्य चरित्र ही है।"[११] सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्ति भाग्य से सरल, विनम्र, पुरूषार्थी और सत्यवादी होने के अतिरिक्त मांग भी क्या सकता है। वह चाहेगा कि वह बहुत की दृष्टि से सुरक्षित रहे, बहुत थोड़े लोगों द्वारा सम्मानित हो तथा संसार में तुच्छ समझा जाय, परन्तु अपने अन्तर में गोपनीय ढंग से महान् हो।[१२]

"चरित्रवान् व्यक्ति आनन्दमय आत्माओं में से है, जो पृथ्वी का नमक (लवण) है और जिसके बिना संसार में मकबरे-जैसी गन्ध होगी।"[१३] "पूर्ण चरित्र तो एक हजार साल में एक बार प्रकट होता है।"[१४] "मनुष्य और किसी वस्तु से अपना चरित्र इतना नहीं दिखाते जितना वे अपने हँसने की वस्तु से प्रकट करते हैं।"[१५] "प्रसिद्धि वह है,

---

१. कैनिंग।
२. प्लटार्क।
३. मिलेर।
४. एक यूनानी कहावत।
५. विल्वर फोर्स
६. एमर्सन।
७. नौवालिस।
८. फ्रायड।
९. अरस्तु।
१०. एमर्सन।
११. बीचर।
१२. लावेल।
१३. शैली
१४. चार्ल्स चर्चिल।
१५. गेटे।

जो तुमने ली है और चरित्र वह है, जो तुम देते हो।"[१] "चरित्र चरित्र को प्रेरणा देता है।"[२] "चरित्र हीरा है, जो अन्य सभी पत्थरों पर खरोंच बना देता है।" "चरित्र की अन्तिम उपलब्धि पूर्ण आन्तरिक शांति है।[३] वर्तमान युग को "चरित्राभाव का युग कहा है—Crisis of character" मनुष्य जैसे विचारों का चिन्तन करता है, वह वैसा ही बन जाता है—

"As a man thinketh in his heart, so is he"[4]

"All your thinkings workei ther for good or for bed. positive thinking can make you stronger. Negative thinking is exbansting."[5] "New are, what they were."[6]

चरित्र विजय है, उपहार नहीं........."Character is a victory, not gift," किसी का कहना है........"What a man has, may depend upon others, but what he is, depends upon him alone.

चार सद्गुण आवश्यक हैं—(१) अपने-आप कुछ करने की वृत्ति पहलकदमी अथवा उपक्रम क्षमता, (२) कल्पनाशीलता, (३) वैयक्तिक प्रतिभा, (४) स्वातन्त्र्य[७]।

"Reputation is no character." प्रतिष्ठा चरित्र नहीं है। मनुष्य जिस प्रकार काम करता है, उसका चरित्र उसी प्रकार निर्मित होता है। छोटे-छोटे कार्यों से भी चरित्र का पता लगता है—"Character is revealed by very triffil action."[8] "जैसी छोटी-छोटी लकड़ी से किये हुए प्रकाशपुंज बंदरगाह पर रह कर समुद्र पर भटकती नौकाओं को सहायता पहुंचाते हैं, उसी तरह अशांतिग्रस्त नगरों में अल्प संतोषी मनुष्य अपने बान्धव नागरिकों को अपने आशीर्वाद भेज सकता है। संतोष वाले मनुष्य का चारित्रिक गङ्गन कितना प्रभावपूर्ण बन जाता है, यहा इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है। नगरों में लोगों की एक शिकायत रहती है, वह यह कि हम संयोगों के शिकार बने हुए है। इस संयोगों में कुछ परिवर्त्तन नहीं कर सकते है।[९] मनुष्य संयोगों का सर्जन है। कहीं वह संयोगों का निर्माता भी है, ऐसा मानना चाहिये। संयोगों में वह अपना अस्तित्व चारित्रिक संगठन द्वारा बना लेता है।[१०] चरित्र हमारे आचरण से अद्भूत जीवन की एक महत्तवपूर्ण उपलब्धि है।[११] चरित्रवान की एक ऐसी वर्ग पहेली है, जिसे बांये से दांये, दांयें से बांये और ऊपर-नीचे या तिरछे जैसे पढ़ा जाय, एक ही वर्ण-विन्यास को सूचित

---

१. टेलर
२. गेटे।
३. बेट्रोल।
४. रिचर्ड लिन्व।
५. महामनीषी सोलन।
६. आर्मोल्ड ग्लासो।
७. बर्नार्ड शा।
८. महामनीषी कैप्टन एडवर्ड रिकनेबेकर।
९. आल्फ्रेड बैरेट।
१०. विख्यात मनीषी एपिक्टेटस।
११. कार्ला इल।

करता है।[१] चरित्र की केन्द्रीय विशेषता यही है कि चरित्रवान व्यक्ति विपरीत परिस्थिति में विचलित और अस्थिर नहीं होता।[२] चरित्र असफलता के बावजूद सुरक्षित रहता है। महान चरित्र एक दैवी विभूति है। उसका निर्माण सिर्फ अपने ही युग के लिए नहीं, वरन् चिन्तन काल के लिये एक प्रगतिशील एवं अनन्त तत्त्व के रूप में होता है, जो उस मनुष्य के जीवन के पश्चात्, उसके युग के ऊपरान्त, उसके देश के बाद और उसकी भाषा के पश्चात् भी जीवित रहता है।[३]

चरित्र और प्रतिभा— प्रतिभा का विकास एकान्त में होता है, पर चरित्र का विकास संसार के बबंडरों के बीच होता है।[४] प्रतिभा और चरित्र दो वस्तुएं हैं। प्रतिभा रहित व्यक्ति भी चरित्रवान् होते हैं।[५] चरित्र मानव-जीवन का नियामक तत्त्व है और प्रतिभा से उसका स्थान कहीं ऊँचा है।[६]

चरित्र और कीर्ति— चरित्र एक वृक्ष के समान है और ज्योति उसकी छाया के समान । वृक्ष ही मूल तत्त्व है, छाया तो छाया ही है।[७] प्रसिद्धि वह वस्तु है, जिसे आप दूसरों को देते हैं। जब आप इस सत्त्व के प्रति जाग्रत होते हैं, तभी आपके वास्तविक जीवन का प्रारंभ होता है।[८]

चरित्र और प्रसन्नता—प्रसन्नता जीवन का लक्ष्य नहीं, चरित्र जीवन का लक्ष्य है।[९]

चरित्र की दुर्बलता—हजार वर्षों में एक बार कभी पूर्ण सच्चरित्र व्यक्ति अवतरित होते हैं।[१०] आदर का भाजन बनना उतना ही दुर्लभ है, जितना उसके लिये योग्य बनना है।[११] आप जिस भाषा का प्रयोग करना चाहें, करें, परंतु आपकी वाणी से वही बात प्रकट होगी, जो आप स्वयं है।[१२] आप वहीं हैं, जो आप हैं, उससे भिन्न कुछ भी

---

१. यूनानी दार्शनिक अरस्तूः निकोनैशियन एथिक्स भाग-३ अध्याय ५-"अनकालेक्टेड लेक्चर्स।"

२. इमर्सन एसेज फर्स्ट सीरीज,

३. इमर्सन- वही।

४. एडवार्ड एवरेस्ट 'एडवार्ड एवरेस्ट्स" स्पीच।

५. गेटे 'दो क्वोंटो टास्सौ', अङ्क-१, दृश्य-२

६. हेनरिच हेन-अट्टा ट्रोल-अध्याय २४

७. फेड्रिक सैण्डर्स स्ट्रेलीब्ज- लाइफस लिट्ल डै।

८. अब्राहम लिंकन-ग्रौस- लिंकन्स ओन स्टोरीज, पृ० १०९

९. बेयार्ड टेलर इम्प्रोमीजेशम्स, सेक्शन-११

१०. हेमरी बार्डबीचर लाइफ थाट्स।

११. चार्ल्स चर्चिल, दि घोस्ट, भाग-३

१२. इर्सन कण्डक्ट ऑफ लाइफ "वरशिप"।

नहीं।[१] आप इस बात की चिन्ता न करें कि लोग आपको किस रूप में जानते हैं। आवश्यक यह है कि आप जो हैं, अन्तर से वहीं बने रहें।[२]

चरित्र और सम्पत्ति— मै चाहूंगा कि ज्वाहरातों की अपेक्षा सच्चरित्रता से मेरा शृंगार किया जाय, क्योंकि जवाहरात तो सौभाग्य की बात है, जबकि सच्चरित्रता अन्तःकरण की निधि है।[३] सद्‌विचार चरित्र से उत्पन्न होता है— हम सद्‌विचार की फसल को तब तक कैसे काट सकते हैं, जब तक हमाने अपने जीवन काल में सच्चरित्रता के बीज का वपन नहीं किया।[४]

चरित्र तथा सौभाग्य—मनुष्य का चरित्र ही उसके भाग्य का नियामक है।[५] सच्चरित्रता ही सौभाग्य और दुश्चरित्रता ही दुर्भाग्य है।[६] आदतों से चरित्र का निर्माण होता है और चरित्र ही भाग्य है।[७] बुरी वस्तुओं की "आदत" डालना "मामूली बात (ट्राइफल) नहीं है।[८] कर्मबीज से ही प्रवृत्तियां आविर्भूत होती है, आदत बीज ही चरित्र-विटप के रूप में विकसित होता है। हर इन्सान अपने चरित्र-बीज के अनुसार ही मीटा फल चख्ता है, यह मेरी अटल मान्यता है। चरित्र एक ऊपज है, जिसका निर्माण दैनिक कर्त्तव्य के कारखाने में होता है।[९] चरित्र प्रकृति (आदत) का सर्वोच्च प्रतिरूप है।[१०] जिस काम को करने की आदत बन जाती है, वह प्रकृति का अंग बन जाती है। वस्तुतः आदत और प्रकृति में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि प्रायः और "सदैव" में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है, आदत "प्रायः" की कोटि में आती है और प्रकृति सदैव की कोटि में।[११]

चरित्रवान व्यक्ति सदासर्वदा एकरस-समरस रहता है—

प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुः खतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमङ्गल्प्रदा।।[१२]

---

१. टाम्स आकेम्पिस डी इमिटेशन कुष्टी भाग-२, अध्याय-६
२. पब्लीलियस साइटस सेन्सीटिम सं० ७८५।
३. प्लूटस पोयनुलस, अंक- , दृश्य -२
४. डी० एच० थौरियन जौर्नल (इमर्सन थौरियन)।
५. पबलीलियस साइंटस : सेन्सीटिभ सं० १४१
६. हिरैक्लिटस (मुल्लाक फ्रैग्मैण्ट्स ऑफ ग्रीक फिलासफी)
७. जौसेफ केन्स एट्सेस "आवर डेली फौल्टस ऐण्ड फैलिंग्स।
८. डी० एन० घोष : कालेज एसेज।
९. उडरो विल्सन : ऐडेस, आलिंगटन : ३१-५-१५१५ ई०
१०. इमर्सन : "दे सेलेक्टेड राइटिंग्स आफ आर) डब्लू इमर्सन : द माडर्न लाइब्रेरी: पृ० ३६५
११. एरिस्टोल : "रेटोरिक"। १२. मानस/२/२/

मानस में कर्म (आदत) को ही भाग्य-निर्माण का नियामक तत्त्व माना है—

"कर्म प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा।।"[१]

सदाचार, शौर्य, व्यवसाय तथा सेवा भाव द्वारा ही चरित्र निर्माण संभव है— **सदाचारतत्त्वै ब्राह्मणास्तिष्ठन्ति, शौर्य क्षत्रिया, व्यवसाये, वैश्याः, सेवाभावे शुद्धाश्च।**[२] मानव जिसके माध्यम से समाज में यथोचित सदाचरण करता है, उसे "चरित्र" तथा उसके द्वारा मानव-कल्याण की सुरक्षा होती है, उसके कारण उसके तात्त्विक स्वरूप को "चारित्र्य" कहा जाता है—

सम्यक चरति ये नातश्चरित्रं व्यवहारतः।
चरितस्त्राणशील स्वाच्चारित्र्यमिति वध्यते।।[३]

वेदों में चरित्र-निर्माण के उद्धबोधक मंत्रों की भरमार है— चरित्रवान मनुष्य का बहुत महत्त्व है— **न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति में मतिः।**
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमैव विशिष्यते।।[४]

अग्निदेवता से ऋषियों ने दुश्चरित्र से मुक्त होकर सुचरित्र में लगाने की प्रार्थना की है— **"परिमअग्ने दृश्चरिताद्ध बाधस्वामा सुचरिते भज।"**[५] सच्चरित्र का सम्मान उसका शत्रु भी करता है—

"उत नः सुभगा अरिवंचियुर्दस्मकृष्टाः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि।।"[६]

उपयुक्त वैदिक मन्त्र चरित्र-निर्मांण की शृंखलाएँ है, जिनकी क्रियान्विति से मनुष्य सर्वोत्तम चरित्र बन सकता है।

चरित्र-निर्माण के साधन— (१) ईशाराधना तथा सपर्या, (२) विश्वकल्याण की भावना, (३) आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान का चिन्तन तथा आत्मप्रयास, (४) यज्ञमय जीवनयापन, (५) षडविकार-विजय, (६) पावन जीवन, (७) उन्नतिहेतु सतत् जागरूकता, (८) अपवित्रता का वर्जन, (९) आदर्श पारिवारिकता, (१०) परान्तः सुखायार्थ जीवन, (११) श्रेष्ठों की सेवा, (१२) अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति।

चरित्र का निष्ठा तथा विधिपूर्वक पालन कर मनुष्य अपने अन्तिम उद्देश्य-मोक्ष को पा लेता है। चरित्र व्यक्ति की सिद्धि तथा सामाजिक सांस्कृतिक उन्नयन का आधार है। हरिश्चन्द्र, भीष्म, राम, भरत, लक्ष्मण, हनुमान, सीता, सावित्रि और द्रौपदी जैसी राष्ट्र की महान विभूतियों का आदर्श चरित्र उनके सम्मुख बार-बार उपस्थित किया जाता

---

१. मानस/
२. सिद्धसिद्धन्तपद्धति/३/६/
३. गीता
४. महाभारत/उद्योगपर्व/३६/३०
५. शुक्ल यजुर्वेद/४/२८/
६. ऋग्वेद/१/४/६/

था। इससे उनके चरित्र के निर्माण में सहायता मिलती थी[१]—**शीलं पर भूषणम्।**[२]

मानस के अनुसार राजा राम अपनी प्रजा के साथ पितृवत व्यवहार करते थे। प्रजा के दुःख को दूर करते थे। वे शास्त्रानुसार अपराधियों को दंड भी देते थे। धर्मशास्त्रों में वर्णित राजा के विधि-विधान से स्पष्ट होता है कि राजा राम सच्चरित्रता की प्रतिमूर्ति थे। वह आदर्श प्रजापालक थे। उनके राज्य में धर्मशास्त्रानुकूल चारित्रय विधान का विधिंवत् परिपालन किया जाता था, जिससे "रामराज्य" सर्वाधिक कल्याणकारी राज्य सिद्ध हो सका। गीता भी "चरित्र" का गुणगान करती है—

सम्यक चरिति येनातश्चरित्रं व्यवहारतः।
चरितस्त्राणशीलत्वाच्चरित्र्यमितिक्थ्यते।।[३]

मानस में चरित्र निर्माण के प्रसंग

मानस एक सर्वोत्तम चरित्र महाकाव्य है, जिसके कतिपय प्रसंगों को प्रस्तुत किया जा रहा है—

राम-वन-गमन— राम राज्याभिषेक के समय कैकेयी द्वारा वनवास की सूचना मिलते ही राम माता-पिता से आज्ञा लेकर चौदह वर्ष लिए वनवास को चल पड़े। उनके साथ अयोध्या के असंख्य नागरिक चल पड़े, किन्तु सबको समझा-बुझाकर राम ने अयोध्या वापस कर दिया और कहा— मेरे वन चले जाने पर महाराज दुःखी न हों, इस पर आप लोग ध्यान देंगे। वनवास भेजने वाले पिता दशरथ के प्रति यह सहृदयता राम के उदात्त चरित्र का अवदात निदर्शन है।

चित्रकूट में राम-भरत-संवाद— भरत जी समस्त राजसमाज सहित चित्रकूट पहुँच कर श्री राम के चरणों में लीन हो गये और उन्हें अयोध्या का राजा बनने के लिए विनय करने लगे, किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ राम ने स्पष्टः कहा— "मैं अपने पिता के आदेश को छोड़ नहीं सकता। सत्य प्रतिज्ञ राम का शुभ चरित्र अन्यत्र कहाँ मिल सकता है?

पादुका-ग्रहण— भरत जी ने राम की चरण-पादुका को अपने मस्तक पर चढ़ाकर राज-सिंहासन के राजा के रूप में उसे अभिषिक्त किया और स्वतः उसका सेवक बनकर राजकार्य देखने लगे। इस प्रकार भरत जी का भ्रातृ प्रेम अनुपमेय है उनका दिव्य चरित्रादर्श भी अनूठा ही है।

---

[१] अलकेतर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति (वाराणसी, १९६८), पृ० ९, २-महा०शांति पर्व १२/६६, दिव्यावदान-३२९/१२-१३

[२] नीतिशतक ८३/ [३] गीता ।

पंचवटी में भरत कीर्त्ति कीर्त्तन— श्री राम ने लक्ष्मण के समक्ष भरत के शाल, स्नेह तथा चरित्र की अनेकविध प्रशंसा की है।

गृध्रराज जटायु का दाह-संस्कार— गृध्र राज जटायु की दशा देखकर राम शोकाकुल हो गये और स्व-कर चिता बनाकर उनका दाह संस्कार किया। गोदावरी में स्नान कर श्री राम ने उनका पिण्डदान किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनार्य जटायु ने आर्य राम की भलाई करते हुए अपना प्राण-त्याग दिया और आर्य राम ने परार्थ प्राण त्यागी जटायु का वैदिक रीति से अन्त्येष्टि संस्कार किया। इस घटना के द्वारा स्पष्ट है कि राम और जटायु-दोनों का चरित्र महान् है।

सुग्रीव का राज्याभिषेक— श्री राम ने मित्रता का निर्वाह करते हुए सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बना दिया और स्वयं चौदह वर्षों तक वनवास किया। इससे स्पष्ट होता है कि राम एक त्यागी दिव्य पुरूष थे।

शरणागत रक्षक— रावणानुज विभीषण को अभयदान देने वाले राम शरणागत रक्षक हैं।

रावण-अन्त्येष्टि-क्रिया— रावणवधोपरान्त विभीषण को राम ने समझाया और कहा— "तुम उसका दाह-संस्कार करो।" विभीषण ने तदनुसार अनुसरण किया। राम के समदर्शी चरित्र ने शत्रु-मित्र के भाव को मिटा दिया!

लंकेश विभीषण— लंकापति रावण का वध कर राम ने रावण भाई विभीषण को लंकेश बना दिया और स्वतः उससे निस्पृह रहे।

अवधपुरी के राजा राम तथा नागरिकों का चरित्र गेय तथा व्याख्येय है। मानस में निम्नलिखित दिव्य गुणों की चर्चा की गयी है, जिससे चरित्र का निर्माण होता है—(१) अहिंसा, (२) पतिव्रत, (३) लज्जा, (४) सत्य, (५) क्षमा, (६) तप, (७) मित्रता, (८) उपासना, (९) सदाचार, (१०) त्याग।

रामचरित मानस और चरित्र-निर्माण— चरित्र मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है। मनुष्य की आदतों का समूह ही चरित्र है। इसके दो भेद है — उत्तम और अधम। उत्तम चरित्र हेतु हृदय की निर्मलता, उदारतादि कर्मनिष्ठता, समस्त सद्गुणों का समाविष्टन आवश्यक है। समस्त दुर्गुण अधम चरित्र के उद्घोषक हैं। उत्तम चरित्र से ही व्यक्ति, समाज, जाति, देश तथा अखिल ब्रह्माण्ड की उन्नति संभव है। अधम चरित्र वाला व्यक्ति मानव-समाज को ले डूबता है।

"रामचरित मानस" उत्तम एवं चरित्रवान् नागरिकों का निर्माण करने में सहायक सिद्ध हो रहा है। यह मानव-चरित्र को ऊर्ध्वमुखी करने में, गार्हस्थ्य आदर्शों की स्थापना

करने में, समाज-हेतु मांगलिक विधान की संरचना में तथा राष्ट्रीय चरित्र को प्रकाशित करने में अद्वितीय है। मानस के सभी मुख्य पात्र— दशरथ, कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान आदि लोक रक्षक सर्वोत्तम चरित्र की पूंजीभूत सवाक प्रतिभाएँ हैं।

मानस में सर्वाधिक प्रशस्त, प्रमाणित एवं प्रेरक चरित्र राम का है। उनका दिव्य चरित्र विविध मानवीरूपों में अनुकरणीय है। उनमें अपार आत्म विश्वास, अनासक्ति, कर्त्तव्यप्रेम, वीरता, न्याय-प्रियता, कष्टसहिष्णुता तथा आत्म-निर्भरता व्याप्त है। वे बड़ों को श्रद्धा एवं सम्मान तथा लघु जनों को स्नेह दान देते हैं। वे माता-पिता-गुरू के महान् आज्ञाकारी तथा सेवक हैं। उनका सखा-रूप सौहार्दपूर्ण है तथा उनका जन नायक-रूप, जन-प्रेम, सामाजिक न्याय, लोकवेद मत समन्वय, अन्याय-अत्याचार-दमन, अभेद-बुद्धि-तथा अनार्य जातियों से पारिवारिक सम्बन्ध-स्थापन-कला श्लाध्य है। राम-रावण-युद्ध धर्म-अधर्म-युद्ध का वाचक है। यह युद्ध उत्तम चरित्र तथा अधम चरित्र की हारजीत का निदर्शक है।

सत्संग, स्वाध्याय तथा अभ्यास से मानव सच्चरित्र बनता है चरित्र निर्माण तथा सत्संग की प्रेरणा प्राप्त्यर्थ निम्नांकित पंक्तियाँ ग्राह्य हैं—

सङ्ग सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कृधातु सुहाई।।"
समसीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाव सबहिं सन प्रीती।।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ।।
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर विपति बिसेषी।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परूष वचन कबहू नहिं बोलहिं।।

उत्तम सद्ग्रंथ मानस में ग्रथित श्रेष्ठ आदर्शों का सुन्दर चरित्र तथा मुनियों की विमल वाणी का श्रवण तथा उनका सत्संग वरदायक एवं शिवप्रद है। भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, काग सुशुण्डि गरूड़, बाल्मीकि, सुतीक्ष्ण, अत्रि, विश्वामित्रादि महर्षियों का जीवन-चरित्र उत्तम तथा पावन गुणागार है। मानस के अध्ययन क्रम में निरन्तर चिन्तन-मनन करने से मानव चरित्र सुष्ठु बन जायगा। उनके जनहित शिवप्रद संदेशों को जीवन में ढालना आवश्यक है।

कठोर तपश्चर्या के द्वारा ही उत्तम चरित्र का सृजन संभव है। चारु चरित्र मनुष्य के जीवन की सर्वोच्च उपासना है। इसे अग्नि-परीक्षा भी कहा जा सकता है। मानस के नायक राम सत्य के बल पर ही मर्यादा पुरुषोत्तम की संज्ञा से अभिहित हुए। उन्हें सत्यपालनार्थ घोरतम कष्टकंटकों का सामना करना पड़ा। उनके पिता दशरथ ने सत्य

की रक्षा के लिए अपना प्राण त्याग दिया। उत्तम चरित्र राम मन, वाणी तथा कर्म से एक थे—

सुग्रीव में मारिहऊँ बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रूद्र सरनागत गए न उबरिहिं प्रान।।[१]

और वचन-निर्वाहार्थ—

"बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा भय मानि।
मारा बाली राम तब हृदय मांझ सर तानि।।"[२]

लक्ष्मण की भी "कथनी और करनी" में एकरूपता थी— "लक्ष्मण द्वारा मेघनाद का वध करने की प्रतिज्ञा करना तथा पूरा करना लक्ष्मण के उदात्त चरित्र का बोधक है। धर्म-रथ के मिस श्री राम ने विभीषण को विजय-प्राप्ति-हेतु जो उपाय बतलाया है, वह सर्वोत्कृष्ट चरित्र की सृष्टि तथा मनुष्य - जीवन की सार्थकता के लिए अत्यधिक उपादेय है—

"सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृए.ध्वजा पताका।।
बल बिषेक दम परहित घोरे। छमा दया समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठ्ठिन को दंडा।।
अमल अचल मम गो न समाना। संयम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुरू पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहं न कतहूं रिपु ताकें।।
महा अजय संसार रिंपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होई दृए.सुनहु सखा मति धीर।।[३]

चरित्र निर्माण— समस्या और समाधान

अमेरिका के प्रेसीडेण्ट स्वर्गीय रूजवेल्ट के पत्र "रूजवेल्ट्स-लेटरस" एक प्रकार से उनकी जीवनी ही है।[४] महामहोपोध्याय पण्डित गौपीनाथ कविराज की जीवनी के लेखक ने अपने ग्रंथ में लिखा है— "जीवन की अन्तर्धाराओं के संधान में पत्रों का महत्त्व निर्विवाद है। उनसे व्यक्ति के मानस की उन सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों के अनुचिह्नों के पता लगता है जो जीवन-निर्माण के अन्य उपकरणों से सामान्यतया लक्षित नहीं किये जा सकते।[५]

---

[१] मानस/४/ [२] मानस/४/ [३] मानस/६/
[४] डॉ० चन्द्रावती सिंह : हिन्दी साहित्य में जीवन चरित का विकास, पृ० २१।
[५] डॉ० भगवती सिंह : मनीषी की लोक-यात्रा, शीषर्क-पत्रालोक, पृ० २२९

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर- द्वारा दीनबन्धु एण्डूज को लन्दन से लिखे गये पत्र—"लैटर्स टू ए फ्रैंड" शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित किये गये हैं।

रूसी साहित्यकार लियोटाल्सटाय ने सन् १८८७ ई० में फ्रांसीसी नवयुवक रोमां रोलां को एक पत्र लिखा था, जो सांस्कृतिक विचारों से ओतप्रोत था। उस पत्र ने युवक रोमां रोला की जीवन-धारा बदल दी। लोकवाद से पीड़ित मीरा ने एक बार तुलसी जी को पत्र लिखा था। तुलसी दास जी ने पत्रोत्तर दिया—

जाको प्रिय न राम वैदेही। तजिय ताहि कोटि वैरि सम, जद्यपि परम सनेही।।[१]

यह पढ़ते ही मीरा अपने दृढ़व्रत पर आरुढ़ हो गयी और कृष्ण प्रेम में पग कर अमर हो गयी। मनुष्य में मनुष्यत्व संचरण हेतु सुन्दर रूपक संदेश मानस में तुलसी ने गुम्फित्त किया है। इस दिव्य संदेश से मानव-चरित्र उत्तमोत्तम बन जायगा, यह मेरी दृढ़ उद्घोषणा है।

चरित्र-निर्माण और समस्या-समाधान– आज चरित्र-निर्माण एक विकट समस्या बन गया है, किन्तु मानस में उसका भी समाधान उपस्थित किया गया है—(१) सत्साहित्य तथा सत्संगति द्वारा, (२) राजा राम सदृश उदार राजा द्वारा, (३) विश्वामित्र तथा वसिष्ठादि आचार्यों के द्वारा।

मानस की नारी पात्राओं का चारित्रिक महत्त्व—मानस की नारी-पात्राओं का चरित्र अनुकरणीय है। कौसल्या, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, माण्डवी, सती, शिरोमणि अनसूया तथा त्रिजटादि के नाम विशेषोल्लेख्य हैं।

चरित्र–जिससे चला जाय, उसे चरित्र कहा जाता है। चरित सेट चर धातु से भूत-काल में वत् प्रत्यय करने से बनता है, जिसका अर्थ है, "कृत, विहित अथवा आचरण।

रामायण और मानस का सीता-चरित— भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म है। इसमें ही सब कुछ प्रतिष्ठा है। अतः धर्म सर्वश्रेष्ठ है-

"धर्मो विश्वस्थ जगतः प्रतिष्ठा। लोके धर्मिष्ठ प्रजा उपसर्पन्ति।
धर्मेण पापमपनुदन्ति सर्वे। धर्मे सर्वे प्रतिष्ठिाम। तस्मादधर्म परमं वदन्ति।"[२]

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वे धर्मसारमिदं जगत्।।[३]
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवाभि युगे युगे।[४]

---

१. तुलसीदास : विनयपत्रिका।
२. तैत्तिरीय आरण्रूक /१०/६३/
३. वाल्मीकीय रामायण- ३/९/३०
४. गीता।

महर्षि वाल्मीकि ने सीता को "सर्व लक्षणसम्पन्ना नारीणामृत्तमा वधू:" कहा है। रामानुरूपा श्रीसीता माँ उत्तमा हैं। सीता रूपी सागर में त्याग, दिव्य पातिव्रत्य, सहन शीलता, धैर्य, करूणा, क्षमा तथा शरणागत वत्सला के रत्न भरे हुए हैं। विदेह वंश-वैजयन्ती सीता सौन्दर्य सौकुमार्य संपन्न राम को सदा-सर्वदा प्रियतम मानती है। राज्य श्रीविहीन वनवासी राम के साथ रहकर वह राजसी वेशभूषा का परित्याग कर देती हैं। और तदनुसय वसन धारण कर लेती हैं। वनागत विपरीत परिस्थितियों से किंचित भी विह्वल नहीं होतीं। वन में राम की सेवा करती हुई वे कभी निराहार रहती हैं, तो कभी श्री रामानुकूल आहार-विहार करती हैं। सदाचारिणी चारुशीला श्रीसीता राज धर्मों की धात्री हैं। दु:खसहचरी-सहधर्मिणी सीताराम को उनके पूर्व प्रतिज्ञात अहिंसाव्रत के परिपालनार्थ प्रवृत्त करती हैं। मानस का अरण्यकाण्ड इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

रावण-द्वारा त्रैलोक्य के वैभव का प्रलोभन देने पर भी परम असहाय सुदृढ़व्रता सीता विभूति से आकृष्ट नहीं हुई। वे वसुधा की वसुधाश्री तथा श्रीराम की प्राणप्रिया भर्तृवत्सला हैं— **वसुधायाश्च वसुधां श्रियाः श्री भर्तृवत्सलाम्** ।[1] वे राम की मनः-कान्ता हृदयविहारिणी तथा अनन्त सौभाग्यफलक की चारूपात्रा हैं। आदि कवि बाल्मीकि ने अपनी रामायण को "सीता चरित" कहा है— "काव्य रामायण" **कृत्स्नं सीतायाश्चरितं भइत्** ।[2] इस प्रकार सम्पूर्ण रामयण महाकाव्य ही सीता जी का महान् चरित्र है।

विश्रुतविद्वान् भूषणटीकाकार गोविन्द राज ने "सीतायाश्चरितं महत्" की व्याख्या करते हुए कहा है कि रामायण में रामचरित का "अप्राधान्येन एवं प्राधान्येन" के द्वारा सीता-चरित को प्रतिपादित किया गया है। "**रीमद्रामायणनपि परं प्राणीति तवच्चरिचैः**।"[3] के अनुसार श्रीमद्रामायण भी सीता के चरित्र से ही उज्जीवन को प्राप्त कर पाया है। अगर श्री रामादि के चरित्र रामायण को जीवन-लाभ प्रदान करते हैं, तो सीता चरित उसे उच्चतम जीवन समर्पित करतौ।

श्री राम से भी उत्कृष्ट अतिशत ऐश्वर्य जानकी है, क्योंकि राम ने शरणापन्न जयन्त तथा विभीषण की रक्षा की, परन्तु अकारण करुणा वरुणालया सीता ने निरवधिक अपराधिनी लंकावासिनी निशिचरियों की हनुमान कोप से बचाकर उनकी प्राण-रक्षा की थी। उनकी अहेतुकी कृपा- क्षमा अधम अपराधियों को भरी सुखी कीं—

मातर्मैथिलिराक्षसीस्त्वयितदैवार्द्रापराधस्त्वया।
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लधुतरारामस्य गोष्ठी कृता।

---

[1] वा० रा० ६/११०/२१/
[2] वहीं /१/१/७
[3] स्वामी श्री पराशर भट्ट : श्री गुणरत्नकोश।

काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमो रक्षतः।
सा नः सान्द्रमहामसः सुखयतु क्षान्तिस्तवकस्मिकी।।[१]

श्री राम शरणागत के दोष का दर्शन करते हैं, किन्तु श्री सीता तो किसी के अपराध पर दृष्टि ही नहीं डालतीं— **"न कश्चिन्नापराध्यति"**।[२] अतः "रामचरित" की तुलना में "सीताचरित" वरेण्य है। मानवेतर कन्याओं को कारामुक्त कराने के लिए ही सीता लंकास्थ कारागृह-अशोक वाटिका-में आबद्ध होती है। इसीलिए श्री राम की अपेक्षा सीता आश्रित-रक्षण में "अतित्वरिता" है। सीता मातृत्ववश जयन्त पर करूणा करती हैं और राम-द्वारा उन्हें क्षमा दिल वाती है। अतः सीता करुणा, दया और क्षमा की त्रिवेणी हैं। तनिश्लोकी -काट-यात्रा श्री अहौबल स्वामी ने 'रामायण' शब्द की व्युत्पत्ति ही सीता चरित्र परक कर दी है—

"रसीया इदं चरितं रामम्, तस्यायनमिति वा व्युत्पत्तिः।"

राम शब्द का लक्ष्मीयत्यादि शब्द इव स्त्रीपुरः सरनिर्देश प्रबंध के लक्ष्मी-प्रधान्य ज्ञापनार्थ ही है। इसीलिए महर्षि द्वारा रामायण का सीता चरित नामकरण युक्तियुक्त है। सीता चरित के माध्यम से सीता का प्रबंध नायिकात्व परिलक्षित होता है। सापराधी मानवेतरचरितों में भी सीता का रक्षणप्रवणत्व प्रतिपादन समुद्भुत है। आनन्दसिन्धु सुख राशि सर्व-सम्पत्कर परम देव दिव्य राम को सीताचरित आनन्द और अभ्युदय प्रदान करता है। श्री जानकी-स्तवराज के अनुसार परमाराध्या प्रियतमा सीताराम की आहलादिनी पराशक्ति हैं, जिनके वे अधीन हैं तथा उनके बिना राम नहीं रह सकते हैं। सीता राम का परम जीवन हैं—

तदाराध्यस्तदारामः तदधीनस्तया बिना।
तिष्ठमि न क्षणं शम्भौ जीवनं परमं मम।[३]

सीता राम की अनपायिनी शक्ति, सत्ता·दायिका तथा जीवन धरिका है-

हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारयाचि।ता।
श्लिष्ट कमल धारिण्या पुष्ट कोसलजात्मजः।।[४]

श्री सीताचरित दुर्विज्ञेय महिमा-मण्डित है—**"नेतुर्नित्य सहायिनी जननि न स्त्रातुं त्वमत्रालोके त्वन्महिमाववबोधधिरे प्राप्ता विमदं बहु।"**[५]

एक बार राम विशाल सिंहासनारूढ़ होकर लवकुश के मूखों से प्राण वल्लभा

---

[१] श्री गुणरत्न कौश/५०
[२] वा० रामायण /६/११३/४५/
[३] जानकी-स्तवराज/श्लोक /८
[४] श्री राम तापनीयोपनिषद।
[५] श्री पराशर भट्टः श्री गुणरत्नकोश/५२

मैथिली का चरित श्रवण कर रहे थे, लेकिन सिंहासन पर अकेला होने के कारण वे मन्थर गति से सिंहासनावरोहित होकर परिषद् में उपस्थित हो गये। "एकः स्वादु न भुञ्जीत" नामक न्यायानुसार राम सबके साथ गानरसास्वाद न करने के लिए श्रोत्र सुखानुभवार्थ कान्ताकथा श्रवण द्वारा स्वसत्ता लाभार्थ सभामध्य पदार्पण कर गान श्रवण में तल्लीन हो गये।

अतः, रामायण सचमुच श्री सीताचरित ही है। सीता अपने आश्रवणदीर्घ अर्धोन्मीलित आँखो से अनवरत करुणामृत की वर्षा करती रहती हैं। रामायणानुसार वे नारी लोक की विशिष्ट आदर्शभूता हैं। सम्पूर्ण नारी जगत् के योगक्षेम की संवाहिका सीता ऐश्वर्याधिष्ठात्री हैं।

रामचरितमानस में सीताचरित—चरित ही जीवन चूड़ामणि है। चरित्रवान् मनुष्य को आत्म-प्रकाश प्राप्त होता है। वह स्वतः तो द्योतित होता ही है, साथ-साथ अपने परिसरागत व्यक्ति को भी प्रकाशित करता है। सच्चरित्र के संसर्ग से ही—"काक होहिं पिक बकहु भराला।"

तुलसी ने मानस में सीता के चरित को तीन रूपों में विभक्त किया है—(१) जनकसुता, (कुमारी), (२) माँ, (३) पत्नी।

"जनक सुता जगजननि जानकी। अतिशय प्रिय करूणा निधान की।"[१]

परवर्त्ती पीढ़ी की प्रेरणा पयस्विनी सीता के विभिन्न रूपों का विशिष्ट समाहार सती तथा करुणानिधान प्रिया के रूप में हुआ है। वनगमन के प्रसंग में मंत्री सुमंत से सीता ने अपने पितृ-गृह के भव्य वैभव का वर्णन निम्न शब्दों में किया है-

पितृ वैभव बिलास में डाटा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीटा।।
सुख निधान अस पितु-गृह मोरें।[२](पिय बिहीन मन भाव न भोरें)।

इसी समय कौसल्या ने भी सीता के सुख तथा सुकुमारिता को राम के समक्ष स्पष्ट किया था— पलंग पीठ्ठ तजि गोद हिंडोरा। सियं न दीन्ह पगु अवनि कटोरा।।[३]

लाड़ली पुत्री की विदाई के समय सुनयना की छाती फटने लगी। श्री राम के प्रति सुनयना के शब्द ध्यातव्य है— "परिवार पुरजन मोहि राजबहि प्रानप्रिय सिय मानिबी।।[४]

विदा वेला में मानवेतरों-खग-मृगों-ने भी व्याकुल होकर सीता बेटी को जुदा किया था—

---

१. मानस/१/१७/७
२. मानस/२/९७/१-२/
३. वही/२/५८/५/
४. मानस/३३५/

"सुकसारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए।।
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरज परिहरइ न कैही।।
भए बिकल खग मृग एहि भाँति। मनुज दसा कैसें कहि जाती।।"[१]

माता-पिता, स्वजन, परिजन-पुरजन के लाड़प्यार, पोषण शिक्षण तथा उपदेश के कारण ही सीता मन, वाणी तथा कर्म से पति की प्राणवल्लभा, अनुचरी, सहचरी तथा सेविका बनकर पूजित हुईं। सीता की यह गरिमान्वित मान्यता "नभूतो" और "न भविष्यति" को चरितार्थ करती है—

जहँ लगि नाथ नेह अरू नाते। पिय बिनु तियहि तरनि हूते ताते।।
तनु धनु क्षामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू।।[२]

गृह कार्य दक्षा सीता वन में भी राम की सेवा करती रहीं और राजरानी बनकर भी पति सेवा के सभी कर्मों का निष्पादन वह स्वयं करती थीं—

पति अनुकूल सदा रह सीता। सौभा खानि सुसील बिनीता।।
जानति कृपा सिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई।।
जद्यपि गृहं सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।
निज कर गह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।
जेहि बिधि कृपा सिन्धु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवाविधि जानइ।।[३]

वन प्रस्थानावसर पर कौसल्या से विदा माँगती हुई सीता ने सक्षोभ कहा था—

सेवा समय दैव दुख दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा।।[४]

उस मनोरथ को सीता ने चित्रकूट में पूरा किया—

सीय सासु प्रतिवेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई।।[५]

राजारानी होने पर भी सीता ने कौसल्यादि सास की अनवरत सेवा की—

कौसल्यादि सासु गृह माही। सेवइ सबहिं मान मद नाही।।[६]

पति सेवा व्रत पालिका सीता शील और संकोचवश मनोगत भावों को अभिव्यंजित नहीं कर पा रही थीं—

कहतिन सीय सकुच मन माहीं। इहा बसब रजनीं भल नाहीं।।[७]

इस रहस्य का उद्घाटन सुनयना रानी ने जनक के समक्ष किया—

"लख लख रानि जनायउ राजु।" हदय साराहत सील सुभाउ।।[८]

---

१. वही/१/३३८/१-३/   २. वही/२/६५/३-४/   ३. मानस/८/
५. मानस२/२५२/२/   ६. मानस/७/२३/८/

श्री राम वियोगिनी सीता सूख कर कांटा हो गयी हैं—

कृसतनु सीस जटा एक बैनी। जपति हृदयं रघुपति गुन श्रेनी।।[१]

अतिक्षीणतावश— "कनगुरिया के मुदरी कंकन होत।"[२] श्री राम दर्शनाभाववश सीता अपना प्राण त्यागना चाहती हैं, किन्तु उनकी आँखे उन्हें ऐसा करने से रोकती हैं—

नाथ सो नयनन्हि को अपराधा। निसरत प्रान करहिं हटि बाधा।।"[३]
बिरह आगि उर उपर जब अधिकाइ। ए अंखियां दोउ बैरिनि देत बुताई।।[४]

राम वियोगिनी सीता तीन कारणों से मरण का वरण नहीं करना चाहती हैं—
(१) राम का स्मरण, (२) राम का गुण-श्रवण, (३) उत्तरदायित्व कानिर्वहण।
(१) राम का स्मरण वे उनके नाम जय से करती हैं।
(२) राम गुणानुवाद का श्रवण वे त्रिजटा तथा हनुमान् द्वारा करती हैं, तथा
(३) उत्तरदायित्व का निर्वाह वे लव-कुश के माध्यम से करती हैं।

राम ने हनुमान् से पूछा—

कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की।।[५]

हनुमान ने दो प्रश्नोत्तर दिये —

विरह आगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा।।
नयन सवहिं जल निज हित लागी। जरें न पाव देह बिरहागी।।[६]

तथा— नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट।।[७]

सीता ने प्राण त्याग हेतु त्रिजला से सहायता माँगी—

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि।।[८]

हनुमान ने रामचन्द्र के गुणों का वर्णन कर सीता का दुःख दूर कर दिया—

रामचंद्र गुन बरनें लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।"[९]

निष्कासन-काल में सीता राम के दायित्व के पालनार्थ अपना प्राणत्याग नहीं करती हैं— दुखी सियपिय विरह तुलसी सुखी सुत सुख पाय।।

हनुमान ने सीता के दुःखसागर को स्पष्ट निम्नशब्दों में कर दिया—

---

[१] वही/५/७/८/
[२] बरवैरामायण ३८/
[३] मानस/५/३०/६/
[४] तुलसीदास : बरवै रामायण ३६/
[५] मानस/५/२९/८/
[६] वही/५/३०/७-८/
[७] वही/५/३०
[८] वही/५/११/५/
[९] मानस/५/१२/५/

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभुआनिअ भुजबल खलदल जीति।।[१]

हनुमान् के शब्दों में सीता की व्यथाकथा अकथनीय है—

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहं भलि दीन दयाला।।[२]

सती सीता जीवन में दो कोही चाहती हैं— श्री राम को या मृत्यु को। सीता स्वर्णकुटी में रहकर भी रावण पर एक बार भी दृष्टि डाली, अपितु उससे वार्त्ताक्रम में वह "तृण" तथा परम स्नेही अवधपति के स्मरण का सहारा ली–

तनु धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।।"[३]

सीता ने अपने सतीत्व की रक्षा प्रवास काल में भी की। यही कारण है कि सती अनसूया ने सीता को नारियों की प्रथम कोटि में रखा तथा स्वत: को द्वितीय कोटि में। उन्होंने सीता से कहा–

सुनु सीता तब नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथासंसार हित।।[४]

चित्रकूट में-तपस्विनी वेष में सीता का अवलोकन कर जनक ने कहा-

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ।।[५]

सीता को उन्होंने गंगा से भी श्रेष्ठ माना—

जिति सुरसीरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी।।
गंग अवनिथल तीनि बढ़रे। एहिं किए साधु समाज धनेरे।।"[६]

सीता का कलंक-निवारण

अग्नि-परीक्षा के समय सीता ने अग्नि से कहा था—

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर और गति नाहीं।।

मानस का सीता चरित—

तौं कृसानु सब के गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना।।"[७]

सती सीता का विनय सुनकर अग्नि श्रीखंडसम हो गयी और सीता अग्नि में प्रवेश

---

[१] वही/५/३१/
[२] वही/५/३०/२/
[३] मानस/५/८/६/
[४] वही/३/४/५/(ख)/
[५] वही/२/२८६/२/
[६] वही/२/२८६/३-४/
[७] मानस/६/१०८/७-८

कर गयी, जिससे उनका—प्रतिबिंब अरू लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुं जरे।[1]

दूसरी बार कलंक का मार्जन सीता ने निर्वासिता बनकर किया।

लोक हित की दृष्टि में राम ने इस प्रकार निर्णय ले लिया था—

चरचा चरित सों चरची जनमन जान मनि नघुराह।
दूतमुख सुनि लोक धुनि धर धरनि बूझि आह।।
तात तुरतहि साजि स्पंदन सीय लेहु चढ़ाइ।
बाल्मीकि मुनीस आश्रम अइहु पहूँचाई।।''[2]

निष्कासित सीता ने बाल्मीकि आश्रम पर पहुँच कर लक्ष्मण से मात्र इतना ही कहा था—'पालिबी सब तापसिनी ज्यों राजधर्म बिचारि।' कुमारी सीता ने गौरी से मनोकामना पूर्त्ति के लिए माँग की थी, तो विवाहिता सीता ने गंगा से अपने पति तथा देवर के साथ सकुशल वापस आने की याचना की थी। सीता चरित की सर्वाधिक सफलता उनके मातृत्व में है। हनुमान उनके दत्तक पुत्र (एडांप्टेड चाइल्ड) हैं, तभी तो सीता ने हनुमान से कहा—

अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहिं बहुत रधुनायक छोहू ।।[3]

सीता के मातृ हदय का परीक्षण कर ही सुमित्रा ने वनगमन के समय लक्ष्मण से कहा था—हे तात! सीता तुम्हारी माता है—

तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।।[4]

उद्‌भवस्थितिसंहारकारिणी, क्लेश हारिणी तथा सर्वश्रेयस्कारिणी सीता लव-कुश की माँ बनकर दुःखदावाग्नि में दहन होती रहीं-

दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी सुखी, सुत-सुख पाइ।
आँच पय उफनात, सींचत सलिल ज्यों सकुचाई।।''[5]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि सीता का चरित पातिव्रत, शील, त्याग, क्षमा, विनम्रता, कष्टसहिष्णुता, निर्भीकता, संयम, सेवा तथा साहसादि दिव्य गुणों का प्रकाश पुंज है। सीता का चरित नारी समाज हेतु सर्वोत्तम आदर्श है।

''सीताचरित'' नारी की भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणापुंज है। नारी सदेह करूणा है। वह जगत् के उद्भव-पोषण का कारण है। वह माँ बनकर पूर्णता को प्राप्त करती हैं और

---

[1] वही/६/१०८/५७
[2] तुलसीदास/गीतावली/७/२७/
[3] मानस/५/१६/३/
[4] वही/२/७३/२/
[5] तुलसीदास, गोतावली, ३६

पत्नी बनकर पातिव्रत्य को सफल बनाती है। अस्तु, नारी पुरुष की आराधिका हैं और हैं- "उसकी आह्लादिनी शक्ति।"

"कृषि और वन,के संतुलन से उपजी समृद्धि की पथिका सीता जगजननी के रूप में तो आज भारतीय समाज में घर-धर् पूजिता हो रही हैं।[१] "जिस पर कृषि, वन और गोसंपदा का सम्मिलित आयोजन ही राम-राज्य की कल्पना साकार कर सका था। हमें एक बार फिर प्रयत्न पूर्वक इसी समन्वित समृद्धि की शक्तिदायिनी सीता को पहचानना हैं, उन्हें अपने कल्याण के लिए अपने जीवन में इसी रूप में प्रतिष्ठा करना है।"[२] मानव जाति के सर्वांगीण विकास तथा निःश्रेयसार्थ सामान्य-विशेष रूप धर्मों, को राम ने जीवन में उतरा।

सदाचारी-संयमी राम के पाँच व्रत हैं— (१) एक वचनी होना, (२) एक दान, (३) एक वाण, (४) एक स्थापन और (५) एक व्रत का पालन। रामचन्द्र ने कभी भी पर स्त्री पर दृष्टि नहीं डाली— "रामचन्द्रः परानदारान् चक्षुषा नाभिवीक्षते।"[३]

मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के गुण और चरित्र

अत: सर्वविदित है कि श्री राम के गुण, चरित्र, प्रभाव, आचरण, लीला आदि परमादर्श थे। उनके गुणों और चरित्रों का अद्भूद् प्रभाव उनके शासनकाल में उनकी प्रजा पर पड़ा, जिससे राम राज्य में त्रेतायुग सतयुग से भी श्रेष्ठतर हो गया। रामराज्य की व्यवस्था महान् आदर्श को उपस्थित करती है। आज भी संसार में जब कोई किसी राज्य की प्रशंसा करता है या महान आदर्श राज्य की बात कहता है तो सबसे ऊँची प्रशंसा में वह यही कहता है कि बस वहाँ तो "रामराज्य" है।"[४]

राम दिव्य गुणोपेत हैं— शिक्षा गुरू की भक्ति— गुरु के प्रति आदर, बुद्धि, विश्वास, प्रसन्नचित-सेवा तथा व्यवहार में विनम्रता की वे साक्षात मूर्ति थे। वे अपने शिक्षा गुरु महामुनि विश्वामित्र के साथ लक्ष्मण सहित जनकपुर में जाते हैं और गुरू अनुशासन पाकर नगर-भ्रमण के बहाने नगर निवासी नर-नारियों को नेत्र लाभ प्रदानार्थ जनकपुर में गमन करते हैं। वहाँ कुछ विलम्ब हो जाता है, तब गुरु जी को भय उन्हें सताने लगती है—

---

१. दिनमान १५-२१, मई, ८३, पृ० २४

२. वही, १५-२१, मई ८३, पृ० २४-२४

३. वा० रामायण।

४. कल्याण, वर्ष ५७, अंक-२, फरवरी १९८३ ई०।

कौतुक देखि चले गुरू पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं।।
जासु त्रास डर कहुँ उर होई। भजन प्रभाऊ देखाबत सोई।।''[1]
सभय सप्रेम विनीत अति सकुच सहित दोऊ भाई।
पद पंकज नाइ सिर बैठे आसयु पाई।।''[2]

रात्रि के समय दोनों भाई प्रेमपूर्वक श्री गुरू चरण कमल को दबाते हैं—

तेइ दोऊ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरू पद कमल पलौटत प्रीते।।''[3]

कुलगुरू वसिष्ठ की सेवा—रामचन्द्र जी अपने कुल गुरू महामुनि श्री वसिष्ठ जी की सेवा प्राण पण से करते हैं। वन में वसिष्ठ जी भरत की ओर से राम से कहते हैं—

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होई सो कहिअ उपाउ।।[4]

इतना सुनते ही श्रीरामचन्द्र श्री भरतजी पर गुरूकृपा देखकर भरत के भाग्य की प्रशंसा करने लगते हैं—

जे गुरू पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहूँ बड़ भागी।।
राउर जापर अस अनुरागू। को कहिं सकइ भरत कर भागू।।[5]

एक बार वसिष्ठ जी राम से एकान्त में मिलकर उनके चरणों में जन्म-जन्मान्तर तक प्रेम बना रहने के लिए वर माँगने आते हैं, उस समय भी राम चन्द्र जी गुरु-भक्ति का ही आदर्श स्थापित किये हैं—

अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पसाकरि पादोदक लीन्हा।।''[6]

पितृ-भक्ति— पिता की भक्ति के कारण ही श्री रामचन्द्र ने प्रसन्नतापूर्वक चौदह वर्षों के लिए अयोध्या त्याग कर वन-वास किया।

मातृ-भक्ति—कैकेयी माता के द्वारा पिता दशरथ की मूक सम्मति का पता लगते ही आपने वन की विपत्ति को सम्पत्ति मानकर माता की कामना को पूरा किया। माता कैकेयी की कठोर वाणी का उत्तर राम ने सविनय सोत्साह देते हुए कहा—

अहंहि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेंय विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।।[7]

---

[1] मानस/बालकांड/२२४/६-७

[2] वही/वहीं/२२५/

[3] मानस/बालकांस/२२५/५/

[4] वही/अयोध्याकांड/२५७/

[5] वही/वहीं/२५८/५-६/

[6] मानस/उत्तर कांड/दो० ४४/२/

[7] वा०रामायण/अयोध्याकांड/१८/२८-२९/

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के गुण और चरित्र

माता कैकेयी से रामचन्द्र ने कहा—

सुनु जननी सोह सुतु बड़ भागी। जो पितु मातु बचन जनुरागी।
तनय मातु पितु तोष निहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।
मुनिगन मिलनु बिसेवि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि मह पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर।।
भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सन मुख आजू।।
जौं न जाउ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।"[१]

दुःखी माता कौसल्या के पास जब आप विदा माँगने गये, तब उन्होंने इन्हें रोकना चाहा, किन्तु आपने स्पष्ट कहा—.

नास्ति शक्तिः पितुवाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये हवां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यं वनम् ।।[२]

भातृ-प्रेम—भातृ प्रेम वश ही-

बंधु संखा संग लेहिं बोलाई। बन मृबगया नित खेलहिं जाई।।[३]
तथा- अनुज सखा संग भोजन करहीं। मातु पिता आग्या अनुसरहीं।।[४]

राम जी लक्ष्मण जी को धर्म की महिमा तथा श्रेष्ठजनों की आज्ञा के पालन का महत्त्व समझाते हुए कहते हैं—

धर्मोहि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठिाम्।
धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम् ।।
सो हं न शक्ष्यामि पुनर्नियोगमति वर्तितुम।
पितुहिं वचनाद वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः।।[५]

सेवक-प्रेम- सुनु कपि तोहि उरिन में नाहीं। देखों करि बिचारि मन माहीं।।[६]
सखासहायक- सखा सोच त्यागहू बन मोरे। सब विधि घटब काज में तोरे।।[७]
शरणागत वत्सल— कोटिबिप्र वध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजऊ नहिं ताहू।।"[८]

राम ने भरद्वाज, शरभङ्ग, सुतीक्षण, बाल्मीकि तथा अगस्त्याश्रम में जा-जा कर

---

[१] मानस/२/४०/७-८, ४२/१-२
[२] वा० रामायण/अ०कांड/२१/३०
[३] मानस/१/२०४/२/
[४] वही/१/२०४/४/
[५] वा०रा०अयो०/२१/४१, ४३
[६] मानस/४/
[७] मानस/४/१०/
[८] वही/४३/१/

महर्षियों के कष्ट का शमन किया। उन्होंने अनार्य गुहराज, सुग्रीव, विभीषणादि को अपना सखा बनाया। वे प्रशान्तात्मा, मृदुल भाषी, धार्मिक, दानी, तथा माता-पिता-गुरु-भक्त एवं महान् प्रजापालक थे। अतः अतिगंभीरता, आचरण में पवित्रता गुणों में रूचि, शास्त्रभिज्ञता, सर्वाङ्गसुन्दरता तथा सर्वगुण संपन्नता के कारण ही राम से बढ़ कर सत्यशील चरित्र वान कोई नहीं हुआ—**'नहि रामात् परोलोके पिघते सतयपे स्थितः।'**[१]

राम को देखकर सर्प-बिच्छु भी विष का परित्याग करते हैं-

"जिनहिं निरखि मग सांपिनि बीछी । तजहिं विषम विष तामस तीछी।।[२]

उनकी प्रशंसा उनका शत्रु-खरादि भी करता है-

प्रभु बिलोकि सर सकहिंन डारी। यकित भई रजनीचर झारी।
सचिव बोलि बोले खरदूषन। यह दोउ नृप बालक नर भूषन।।
नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देंखे जिते हते हम केते।।
हमभरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई।।"[३]

राम हमारे जीवन को अर्थवान बनाते हैं। वह हमारे संबल ही नहीं, हमारे सारे नैतिक मूल्यों के रक्षक भी है। अतः उन्हें अथवा उनकी अयोध्या को भूलकर हम अपने को ही खो देंगे।[४] पाप का खोना, सड़े गले मूल्यों और त्रुटियों का खोना जरूर अच्छा है, पर उस राम कोकैसे खो दें, जो एक गरीब से गरीब आदमी को भी अपनी तमाम कठिनाइयों के बीच सच बोलने का साहस दिखाते हैं।[५] अपने को भूलना राम को भूलना होता है और राम को भूलना अपने को भूलना होता है। यह कैसे संभव है कि हम अपने को ही भूल जायें। अतः राम भी भुलायें नहीं जा सकते औ वह राम की अयोध्या भी भूली नहीं जा सकती है, क्योंकि अवधपुरी में ही तो वह चरित्र प्रकाश में आया, जिसको गाते रहने से सारे तीर्थ वहीं चले आ जाते हैं। बुद्धि मन और वाणी से राम सिद्ध नहीं किये जा सकते। "राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी" हैं। और रहेंगे।।[६]

****

---

[१] वा०रा० २/४४/२६ [२] मानस। [३] वही ३/सो० /१८/चौ० १-४ ।
[४] दिनमान १५-२१ मई, ८३, शीर्षक अयोध्या एक नगर ही नहीं है भगवती शरण सिंह, पृ० २५ ।
[५] वही १५-२१ मई, ८३ शीर्षक अयोध्या एक नगरही नहीं है : भगवती शरण सिंह, पृ० -२५
[६] दिनमान १५-२१ मई, ८३, शीर्षक अयोध्या एक नगर ही नहीं है : भगवती शरण सिंह, पृ० - २५

९.

उपसंहार

रामकथा की कथावस्तु राम + अयन (राम का पर्यटन) न रहकर सम्पूर्ण रामचरित के रूप में परिपल्लवित हुई। उस समय तक रामायण नर काव्य के रूप में ही जानी गयी तथा राम एक आदर्श क्षत्रिय के रूपमें जनता के बीच उपस्थित हुए। इसकी झलक—'राम: शस्त्रभूतामहम्' के द्वारा हमें मिलती है।[१]

रामायण की जनप्रियता के साथ-साथ राम की वीरता में मानवेतरपन आने लगा, जिसके कारण रामचरित "विष्णुलीला" के रूप मे परिणत हो गया। भारतीय भक्ति-मार्ग का श्री गणेश वैदिक साहित्य में हो ही चुका था, परन्तु वह शताब्दियों के ऊपरान्त ही भागवत धर्म में मिल सका। राम विष्णु का अवतार माने जाने लगे, किन्तु कई शताब्दी बाद राम-भक्ति का सूत्रपात हुआ और शनैः शनैः राम-भक्ति जनसामान्य की धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना की स्रोतस्विनी बन गयी। राम-कथा-विकास का मूलोद्देश्य है—अधर्म पर धर्म की विजय का पाञ्चन्य फूँकना ।

रामकथा कालान्तर में विष्णु की अवतार लीला न रहकर भगवान राम के कीर्ति गायन के रूप में पूर्ण रूपेण प्रस्फुटित होती है। मानवहृदयविहारिणी रामकथा की अप्रतिम लोकप्रियता "गंगतरंग" बनकर जन-जन का कंठहार बन गयी है। तुलसी के पूर्व भी रामकथा वर्णाश्रम-कर्त्तव्यों को इंगित करती हैं। इसमें लोकरंजन तथा लोकरक्षण के भाव दुधमिश्री की तरह परस्पर मिले हुए हैं। यह जन-जीवन का आरसी हैं, जिसमें भारत की सम्पूर्ण आदर्श भावनाएँ मर्यादा पुरूषोत्तम राम और सती सीता के चरित्र में केन्द्रित हो गयी हैं।

"तुलसी ने जनमानस को पहचाना था। अत: उन्होंने जो कुछ लिखा, उसे जनकाव्य कहना अनुचित नहीं होगा। जो कुछ लिखा पुराणसम्मत ही लिखा। अतः लोकवेद ने 'सरयू को पुनीत और सुमंगलमूला' कहा तो उसमें उन्होंने लोकभावना का आदर ही किया।"[२] 'रामचरित' भारतीय संस्कृति की ऋद्धि-सिद्धि है। उस पुष्प के तीन फल हैं- वीरता, प्रतिभा तथा पवित्रता। सम्पूर्ण जीवन की प्रगति की एकमात्र शक्ति हैं "चरित्र"। इसके द्वारा ही विश्वबान्धवतव की स्थापना संभव है।

प्रेममूलक आदर्श चरित्रों के द्वारा सर्वाङ्गीण निर्माण तथा विकास की परम्परा की लड़िया गूंथी जाती हैं। "राम चरित मानस" ने निर्धन से लेकर धनकुबेरों तक विकीर्ण अपनी शक्तिमत्ता, श्रेष्ठता, ऋजुता तथा व्यापकत्व द्वारा भारतीय संस्कृति तथा समाज की आत्मा को प्राणवन्त बनाने में अपना हृदय खौल दिया है। इसमें मानवमन की दुर्बोध ग्रंथियों को खोलकर उसका अध्ययन, मनन तथा चिनतन जीवन के व्यापक पटल पर रखकर किया गया है। भारतीय संस्कृति, चरित्र,इतिहास तथा जीवन-दर्शन का अपूर्व कल्पवृक्ष है "रामचरित मानस"।

"राम-चरित" चरित्रदीप हैं, जिसका एक मात्र काम है- अंधकार में प्रकाश भरना। राम सार्वदेशिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक हैं। वे मृदुल, कोमल तथा उदार हैं। उन्होंने अनार्य, वन्य, विजातीय, असंस्कृत तथा उपेक्षित चरित्र निषादराज, गुह, वानरराज सुग्रीव तथा राक्षसराज विभीषण को अपना मित्र बनाकर समकक्ष पद प्रदान किया। मुझे आशा है, बन्दनीय रामचरित सम्पूर्ण मानवता का आदर्श बनकर, युग-युग से उसे उत्फुल्ल करता रहेगा। रामकथा एक कभी न समाप्त होने वाली यात्रा है, जो जनमानस के स्तर पर निरन्तर सम्पादित हो रही है।[१] राम-राज्य की स्थापना हो जाने के पश्चात् देश की जनता रामराज्य की समता, न्याय और अंहिसा का रूप अपने नित्य के जीवन में देख रही है।[२]

मानवेतर चरित्रों के अध्ययन से कथा की सुनियोजित उपब्धि और उसके शीर्षफल तक पहुँचा जा सकता है। मूल रूप में 'राम-चरित' मानस ईश्वर स्वरूप राम के चारित्रिक आदर्श का उदघाटन है तथा इसके निमित्त सभी पात्र उसी मूल ईश्वर की कृपा ज्योति सेप्रोद्भाषित हैं। सारे चरित्रों के स्वरूप, स्वभाव औरप्रयोजन का विवेचन करते हुए,मै शोधकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूँ कि मर्यादा और लोकाचार की सिद्धि के लिए सभी पात्र अपनी विशेष उपयुक्तता प्रभावित करते हैं। विरोधी चरित्रों में भी ईश्वर कृपा की दिव्यता की आंशिक छटा प्रापत होती है। रावण भी ईश्वर भक्त हैं और सामाजिक, नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का प्रतिपादक हैं।

तुलसी ने मानव चरित्र अथवा मनावेतर चरित्र दोनों वर्गों के साथ न्याय किया है। समन्वयात्मक दृष्टिबोध के कारण तुलसी का प्रयोज़न निषेध मूलक नहीं, संश्लेषण प्रधान हैं। संत और असंत दोनों को स्वीकार करते हुए मानसकार ने मर्यादा पुरूषोत्तम के चरित्र को उभारने, संवारने और निखारने का प्रयत्न किया है। मानस के चरित्रों के इस विश्लेषणात्मक अध्ययन के फलस्वरूप उनके भावी प्रतीकात्मक अध्ययन को निश्चित रूप से दिशा मिलेगी, क्योंकि मैंने सभी पात्रों तथा चरित्रों के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं दार्शनिक पक्षों का अन्वेषण किया है।

वस्तुतः पात्रों का अध्ययन क्रमबद्ध एवं संतुलित समायोजन की अपेक्षा रखता है—भारत तथा निकटवर्त्ती देशों के साहित्य में राम कथा भी अद्वितीय व्यापकता एशिया के सांस्कृतिक इतिहास का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्व है।[१] मानसकार ने "मानवीय यात्रा के ऐसे उत्कर्ष स्थल पर हमें पहुंचाया हैं, जहां जाति, धर्म, भेद, प्रभेद के तथा कथित मतवाड़ बड़ें ओछे और छिबले लगते हैं और जिस शिखर से बिखरे हुए मानव समुदाय अत्यधिक लघु और बौने प्रतीत होते हैं।[२]

गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों के पुनर्मूल्यांकन के संबंध में स्वर्गीय परशुराम चतुर्वेदी ने संकेत किया था— "गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों को अब हमें केवल किसी साधारण भक्त या कवि अथवा भारतीय को ही पंक्तियों के रूप में नहीं पढ़ना हैं, उनमें कथितविषयों की अब हमें नवीन संख्या करनी चाहिए और उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों को सार्वभौम विचारों की दृष्टि से देखाना चाहिए,........ हमें इसके लिए उनके उस मानव-रूप का अध्ययन करना पड़ेगा, जो इन तीनों (भक्त, कवि और सुधारक) का भी वास्तविक आधार है और इसके प्रकाश के द्वारा ये सदा प्रकाशित हुआ करते हैं।"[१]

काव्य के माध्यम से युग की पहचान होती है और इसी पहचान पर आधारित है- 'मानवीय-बोध', जो हमारे सम्पूर्ण दार्शिनिक-आध्यात्मिक उन्नयन का आधार है। "सांस्कृतिक परिवर्तन एवं दार्शनिक निष्पत्तियों के विकासमान चरण काव्य में प्रतिपादित होते हैं। जब भी कोई सांस्कृतिक आन्दोलन अथवा परिवर्त्तन होता है तो कविता की आत्मा आलोड़ितविलोड़ित होने लगती है।"[२]

तुलसी ने समाज या धर्म की दिशा में होने वाले अन्यायों के प्रति आध्यात्मिक रूप में विद्रोह ही किया। पतनोन्मुख सांस्कृतिक जातीय बोध का संस्कार किसी भी कवि का मूल दायित्व है। एक पतनशील सांस्कृतिक वृत्त के बाहर कदम रखने की प्रेरणा[३] पाकर संकीर्णताओं के प्रति विद्रोह का स्वर निर्गुनिया संतों के विस्फोटपूर्ण पदों में प्रकट हुआ, किन्तु तुलसी ने सभी पात्रों और चरित्रों की उपयुक्तता सिद्ध करते हुए भारतीय जीवन-दर्शन के सही स्वरूप को परिभाषित किया है, जहां केवल प्रेम है, सब के लिए, मित्र के लिए, शुभ के लिए, पक्ष के लिए, विपक्ष के लिए।

सांख्यिकी के अनुसार मानस में पदों की कुल संख्या -४७४६, चौपाइयों की कुल संख्या- ५१००, तथा सोरठा एवं दोहों की कुल संख्या ९९९० है।

राम कथा के वक्ता हैं— (१) शिव, (२) काकभुशुंडि, (३) याज्ञवल्क्य, तथा (४) तुलसी।

राम-कथा के श्रोता हैं—(१) पार्वती, (२) गरूड़, (३) भारद्वाज तथा (४) सुजन।

इसका आधार– (१) अध्यात्म रामायण, (२) बाल्मीकीय रामायण, (३) हनुमान्नाटक, (४) प्रसन्नराधव, तथा (५) श्रीमद्भागवत है।

हिन्दी के सर्वाधिक सुनियोजित एवं सर्वांगपूर्ण गरिमायुक्त "रामचरितमानस" नामक महाकाव्य के बल पर ही हिन्दी-साहित्य विश्व-साहित्य के समक्ष अपना गौरवान्वित मस्तक ऊँचा किये हुए है।

"रामचरित मानस" की उपमा गंगा से दी गयी-

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।।

यह मानव-समाज की आधारशिला है तथा हमारी परम पकाशमय संस्कृति तपः पूत "प्रकाशप्रासाद" है। मानस की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके पात्र पशु-पक्षी से लेकर देवता तक हैं। इसमें पारिवारिक जीवन का आदर्श तथा भव्य रूप अवलोक्य है- श्री राम जैसे पुत्र, भरत-लक्ष्मण सम भाई, सीता-सी भार्या, कौसल्या जैसीं माता, सग्रीव सम सखा, वसिष्ठ सम कुल पूज्य, विश्वामित्र सदृश शिक्षा गुरू तथा हनुमान जैसे सेवक भारत की महामहिम परम्परा के ध्रवतारा हैं।

मानस में विस्तृत, व्यापक तथा परिमार्जित दर्शन का हमें दर्शन होता है, जैसे - लक्ष्मण-निषाद-संवाद,शिव-सती-संवाद,राम-नारद-संवाद,वर्षा-शरद- वर्णन राम-लक्ष्मण-संवाद तथा गरूड़-कागभुशुडि-संवाद आदि। मानस के कतिपय स्थल अत्यन्न मर्मस्पर्शी हैं। जैसे-राम का वन-गमन, चित्रकूट- निवास।

०००००

है—
के सां
के ऐ
मतवा
अत्य

चतुर्वे
किसी
उनमें
सिद्ध
उस
का
करते

आर

रूप
का
पाव
हुअ
जीव
मित्र

संर

(४

जीवन-वृत्त

दण्डी स्वामी (डॉ०) महेश्वरानन्द सरस्वती

जन्म- १० जून १९४६

ग्राम- बलुआ, जिला-मुजफ्फरपुर।

पूर्वाश्रम नाम- डॉ० महेशचन्द्र राय शर्मा

प्रारम्भिक शिक्षा- ग्राम में।

उच्च शिक्षा- बिहार वि०वि०, मुजफ्फरपुर।

शैक्षणिक अर्हताएँ- बी०ए० (ऑनर्स), एम०ए०, बी०एड० एल०एल०बी०, पी-एच०डी०।

जीवन-व्यवसाय- हिन्दी शिक्षक, प्रधानाध्यापक, विभिन्न उच्च विद्यालयों में (बिहार में ही)

प्राध्यापक- डॉ० जगन्नाथ मिश्र कॉलेज, (अवैतनिक) मुजफ्फरपुर (बिहार)

अधिवक्ता की डिग्री लेकर भी सत्यवाद के कारण प्रैक्टिश नहीं किया।

सेवा निवृत्ति के उपरान्त ०६ जून २००९ (गुरु-पूर्णिमा) को दण्ड-ग्रहण किया।

वर्तमान पता- दण्डी स्वामी (डॉ०) महेश्वरानन्द सरस्वती।
पिता/गुरु - स्वामी देवानन्द सरस्वती
बी० ३/१७५, राजगुरुमठ, शिवाला घाट,
वाराणसी-२२१००१ (उ०प्र०)

सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित

प्रकाशक
वेंकटेश प्रकाशन
लंका, वाराणसी-5 (उ०प्र०)

Printed at : Venkatesh Publication, Varanasi # 9415820493